# Śodha Pravāha

***Śodha Pravāha*** is a multidisciplinary quarterly refereed research journal. The journal is meant to serve the interest of creative writers, researchers, scientists of the country and abroad. Hence articles, papers, reviews and comments are invited from researchers, educationist and scientists working in Arts, Linguistics, Humanities, Social and Basic Sciences. We hope that the journal will certainly cater the needs of the young researchers in their all future academic endeavors. The forthcoming issues are expected in the months of January, April, July and October every year.

The generation of knowledge is a continuous process which needs to be recorded and documented for future references. Hence, the qualitative aspect of the journal will always be a primary parameter in publishing the contents and will be solely based on the report of the experts. We thank all of you for associating and contributing your original work in this issue of the journal in making this academic endeavor a great success. We invite your contributions for the forthcoming issues. Let us come together; and join our hands in making the India a knowledge super power.

| Annual Subscription | India | Foreign |
|---|---|---|
| Institution | ₹ 2500 | US $ 200 |
| Individual | ₹ 2000 | US $ 125 |
| Students & Teachers | ₹ 1800 | US $ 100 |
| Life Membership | ₹ 15000 | US $ 500 |

**Chief Editor :**
Dr. S. K. Tiwari
Academic Staff College,
Banaras Hindu University
Varanasi - 221005 (INDIA)
sodhapravaha@gmail.com, sktiwari.bhu@gmail.com
Contact (Editor) : 09415390515, 08960501747

ISSN 2231 - 4113

Śodha Pravāha Vol. 11, Issue III July 2021

UGC Approved Journal No-49297
ISSN 2231 - 4113

# Śodha Pravāha

**A Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal**

**Vol. 11, Issue III July 2021**

Chief Editor
Dr. S. K. Tiwari
Editor
Dr. S. B. Poddar

(IIJIF) Impact Factor - 3.262

Regd. No. : 1687-2006-2007 ISSN 2231-4113

# *Śodha Pravāha*

***(A Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal)***

***Editor : S. B. Poddar***

**Vol. 11**

**Issue III**

**July 2021**

***Chief Editor : S. K. Tiwari***

*Academic Staff College*
*Banaras Hindu University,*
*Varanasi-221005, INDIA*

**E-mail : sodhapravaha@gmail.com** **www.sodhapravaha.blogspot.com**

***Editorial Board***

**Dr S K Tripathi**
*MGCG Vishwavidyalay,*
*Chitrakoot, Satna,Madhya Pradesh*

**Dr. N K Mishra**
*Technological Institute of Textile & Science,*
*Bhiwani, Haryana*

**Dr G R Sharma**
*Department of Higher Education*
*Government of Uttar Pradesh*

**Dr. A Rahman**
*Jamia Milia IslamiaUniversity,*
*New Delhi*

**Dr. Archana Singh**
*Associate Prof., Physical Education*
*Mahila Maha Vidyalaya*
*Banaras Hindu University,Varanasi*

**Dr. Priti Saxena**
*Professor, Department of Human Rights,*
*School for Legal Studies,*
*BBAU Lucknow*

**Dr. Reeta Yadav**
*Deptt. of Home Science*
*VPG College, Faizabad*

**Dr Rajiv Kumar Bhatt**
*Department of Economics*
*BHU, Varanasi,* Uttar Pradesh

**Dr. S K Shukla**
*Institute of Technology*
*B.H.U., Varanasi,* Uttar Pradesh

**Dr. Pradeep Kumar**
Editor-Shodh Prerak
*Lucknow*

***Editorial Advisory Board***

**Prof. S N Tiwari**
*BRA Bihar University,*
Muzaffarpur, *Bihar*

**Prof. B L Dubey**
*Department of Psychology*
*University of Alska, USA*

**Prof. Ajit Kumar Pandey**
*Department of Sociology*
*Banaras Hindu University, Varanasi*

**Dr. A Sisodia**
*Physical Education*
*LNUIP, Gwalior,* Madhya Pradesh

**Dr Anant Shastri**
Washington DC, USA

**Dr A Bhowmik**
*Niyame, Niger, Africa*

**Dr G C Pandey**
Bhagalpur University,
Bihar

**Dr. Pratima Pakla**
*University of Minnesota,*
*USA*

**Dr. A K Singh**
*CIMFR, (CSIR), Dhanbad,*
*Jharkhand*

**Dr. H K Pandey**
CGWB,GOI, Raipur,
*Chhatisgarh*

# Contents


- **'कुच्ची का कानून : कोख के अधिकार का प्रश्न'** **1-6**
  ***डॉ. गरिमा तिवारी,*** सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार
- **प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन** **7-9**
  ***पवन कुमार सिंह,*** शोधार्थी शिक्षक-शिक्षा विभाग, सिब्ली नेशनल पी. जी. कालेज, आजमगढ़ (उ. प्र.)
  ***डॉ. आसिफ कमाल,*** एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षक-शिक्षा विभाग, सिब्ली नेशनल पी. जी. कालेज, आजमगढ़ (उ. प्र.)
- **सितार के विकास में भारत रत्न पं. रविशंकर जी का योगदान** **10-12**
  ***प्रों पं. प्रेम कुमार मल्लिक,*** शोध निर्देशक विभागाध्यक्ष संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
  ***सुमन यादव,*** शोधार्थी (SRF) संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
- **राष्ट्रीय सुरक्षा एवं प्रबन्धन चुनौतिया** **13-18**
  ***डॉ. अरविन्द कुमार चतुर्वेदी,*** एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातेजिक अध्ययन विभाग, गनपत सहाय पी.जी. कालेज, सुल्तानपुर
- **मिर्जा गालिब का जीवन दर्शन** **19-20**
  ***डॉ. दिनकर त्रिपाठी,*** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, फीरोज गॉधी कॉलेज, रायबरेली
- **महात्मागाँधी और एनी बेसेण्ट का भारतीय शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान** **21-22**
  ***निरंजन सिंह,*** शोधार्थी, शिक्षा विभाग, बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **जैन दर्शन और पर्यावरण में सम्बन्ध** **23-28**
  ***अनिता यादव,*** शोध छात्र, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **भारतीयदार्शनिकानां प्रमाणचिन्तनम्** **29-31**
  ***शचीन्द्रत्रिपाठी,*** शोधच्छात्रः, बौद्धदर्शनविभागः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी
- **बालकों की सामाजिक समस्या के कारण : एक अध्ययन** **32-35**
  ***वृजेश कुमार पाठक,*** शोध-छात्र, समाजकार्य 0189, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना, मध्य प्रदेश
- **उच्च शिक्षा के क्षेत्र में मुक्त विश्वविद्यालय की भूमिका** **36-42**
  ***डॉ. संजय कुमार,*** असिस्टेन्ट प्रोफेसर - समाजशास्त्र, स्व. चन्द्रिका किसान महाविद्यालय, सैनूपुर-आमघाट भावरकोल गाजीपुर
- **भारत में आपदा एवं उसका निदानों का भौगोलिक विश्लेषण** **43-45**
  ***डॉ. मनोज कुमार सुमन,*** नेट, एस.आर.एफ. (यू.जी.सी.), भूगोल विभाग, कॉलेज ऑफ कॉमर्स, पटना-२०

- **उपन्यास जैनेन्द्र का मानवीय धरातल** **46-48**
  ***डॉ. वन्दना त्रिपाठी,*** पूर्व शोधच्छात्रा, हिन्दी, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ.प्र.
- **वर्तमान परिदृश्य में विनोबा भावे के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता** **49-52**
  ***विवेक कुमार सिंह,*** शोधकर्ता, जे.एल.एन. मेमो.पी.जी. कालेज, बाराबंकी (उ.प्र.)
  ***डॉ. छत्रसाल सिंह,*** एसो. प्रो., शिक्षाशास्त्र विभाग, जे.एल.एन. मेमो.पी.जी. कालेज, बाराबकी (उ.प्र.)
- **जगदीश गुप्ताकृत 'शम्बूक' : वर्ग चेतना के संघर्ष का जीवन्त प्रतीक** **53-59**
  ***डॉ. राम कृष्ण,*** एसो० प्रोफे०, हिन्दी विभाग, पं० दीनदयल उपाध्याय राजकीय बालिका, महाविद्यालय सेवापुरी वाराणसी (उ० प्र०)
- **भारतीय कानून निर्माण में मानव-जाति विज्ञान : अध्ययन की भूमिका** **60-65**
  ***चन्दन कुमार,*** पीएच.डी., राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 110007
- **वालमिकि कृत रामायण में वर्णित सारगर्भित महातम्य एवं जीवकोपार्जन के आर्थिक संसाधन** **66-71**
  ***राकेश कुमार,*** शोध छात्र, सहकारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मिहरावाँ, जौनपुर (समबद्ध पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर)
  ***डॉ. श्याम नारायण सिंह,*** शोध निर्देशक, सहकारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मिहरावाँ, जौनपुर (समबद्ध पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर)
- **भारत और श्रीलंका चिंताएँ एवं प्रतिक्रियाएँ : चीन के संदर्भ में** **72-75**
  ***डॉ. राम विजय सिंह,*** एसो० प्राफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा।
- **वैशेषिकसूत्रोपस्कार के सन्दर्भ में आत्मप्रत्यक्ष के साधन योग** **76-78**
  ***रमेश चन्द्र,*** शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221005
- **बौद्धदर्शने निर्वाणस्वरूपविमर्शः** **79-82**
  ***रम्बुक्कन अमितानन्द थेरो,*** वैदिकदर्शनविभागः, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसङ्.कायः, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी-221005
- **पूर्वाग्रह एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया** **83-89**
  ***डॉ. संजय तिवारी,*** एम.ए., एल-एल.बी., पी-एच.डी., एसो. प्रो. एवं विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, डी.ए.वी. पी.जी., कालेज, लखनऊ
- **बाल अपराध के सामाजिक एवं आर्थिक कारण** **90-97**
  ***डॉ. छोटेलाल बाजपेयी,*** एसो. प्रोफेसर, बी.एस.एन.वी. पी.जी. कालेज,लखनऊ
- **हेमचन्द्र का धातुपारायणम्** **98-107**
  ***डॉ. कल्पना आर्या,*** संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007
- **गाँधी के सत्याग्रह के मायने** **108-109**
  ***सतीश कुमार,*** शोध छात्र, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005
- **बौद्ध परंपरा में शिक्षा-पद्धति** **110-114**
  ***प्रवीण कमार यादव,*** शोध छात्र, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

- **कम्पनी-शासन म भारत में अनौद्योगीकरण एवं ग्रामीण ऋणग्रस्तता** **115-117**
  ***श्वेता कुमारी,*** शोध छात्रा, इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
- **सतत् आन्तरिक मूल्यांकन : आवश्यकता एवं महत्व** **118-121**
  ***डॉ.(श्रीमती)नीलिमा श्रीवास्तव,*** प्राचार्या, साकेत गर्ल्स पी०जी० कालेज, दहिलामऊ, पतापगढ़
- **योग दर्शन और मनोविज्ञान** **122-123**
  ***नितेश अग्निहोत्री,*** शोधच्छात्र-संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **शिक्षा द्वारा दलित महिलाओं का सामाजिक बदलाव** **124-126**
  ***कौशल कुमार झा,*** (शोधार्थी), शिक्षा संकाय, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा
- **बिहार की राजनीति में अतिपिछड़ों का उभार** **127-132**
  ***कुमार मंगलम पाण्डेय,*** शोधार्थी, राजनितिशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
- **नागार्जुन की कविता और राजनीतिक व्यंग्य** **133-139**
  ***डॉ. गोरखनाथ,*** एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी
- **ऑनलाइन कक्षाएं शिक्षा का भविष्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० के विशेष संदर्भ में** **140-143**
  ***डॉ. अशोक कुमार,*** एसोसिएट प्रोफेसर एजुकेशन, डी.सी.एस.के.पी.जी. कॉलेज मऊ
- **ग्रामीण पटभूमि में अनुसूचित जाति की महिलाएं एंव स्वास्थ्य - एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण** **144-148**
  ***अनिल कुमार यादव,*** शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, मड़ियाहूँ पी.जी. कॉलेज, मड़ियाहूँ, जिला-जौनपुर
  ***डॉ. दुर्गेश्वरी पाण्डेय,*** अध्यक्ष एंव सुपरवाइजर, समाजशास्त्र विभाग, मड़ियाहूँ पी.जी. कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर
- **अम्बेडकर और उनकी न्याय दृष्टि** **149-153**
  ***डॉ. संजय कुमार,*** एसोसिएट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, श्री महंथ रामाश्रय दास स्ना. महाविद्यालय, भुड़कुड़ा, गाजीपुर
- **संगीत साधना एवं प्राणायाम** **154-156**
  ***डॉ. शशि शुक्ला,*** एसोसिएट प्रोफेसर, सा.रा.म. महाविद्यालय, बरेली
- **भारत की आन्तरिक सुरक्षा एवं चुनौतियों का समग्र अध्ययन** **157-160**
  ***डॉ. अशोक कुमार सिंह,*** रीडर, रक्षा एवं स्त्रात्जिक अध्ययन विभाग, आर.आर.पी.जी. कालेज अमेठी, जनपद-अमेठी।
- **आत्मज्ञान एवं योग का मार्गः एक दार्शनिक विश्लेषण** **161-163**
  ***रजनी गोस्वामी,*** शोधार्थी, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग
- **किशोर न्याय (बालको की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम 2015 के अनुरुप गठित "बाल कल्याण समिति" की भूमिका का एक अध्ययन, सिवनी जिला मध्यप्रदेश के विशेष संदर्भ में** **164-169**
  ***शोभाराम डेहरिया,*** सहायक प्राध्यापक एवं पूर्व विभागाध्यक्ष (समाज कार्य) एवं सदस्य बाल कल्याण समिति, जिला सिवनी मध्यप्रदेश शासन

- **ग्रामीण चिकित्सा-संस्कृति के बदलते प्रतिरूप : जनपद फिरोजाबाद (उ.प्र.) के विकास खण्ड मदनपुर के विशेष सन्दर्भ में** **170-175**
  ***डॉ. (श्रीमती) मधु यादव,*** एसोसियेट प्राफेसर भूगोल विभाग, आदर्श कृष्ण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद)
- **नारदीय पुराण में कर्मकाण्ड विवेचन** **176-179**
  ***ज्योतिषबरण राय,*** शोध छात्र, विश्वविद्यालय संस्कृति विभाग, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **स्वातंत्र्योत्तर बिहार का आर्थिक इतिहास (मगध क्षेत्र के विशेष संदर्भ में) : एक अध्ययन** **180-186**
  ***मनोज कमार,*** शोध प्रज्ञ, मगध विश्वविद्यालय
- **वैदिक कालीन समाज में नारी शिक्षा पर विहंगावलोकन** **187-190**
  ***अनिल कुमार,*** एसोसिएट प्रोफसर, इतिहास विभाग, एस. डी., पी.जी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ.प्र.
- **कर नियोजन एवं प्रबन्धन द्वारा आयकर-भार में कमी** **191-195**
  ***डॉ. रमेश चन्द्र वर्मा,*** एसोसिएट प्रोफेसर-वाणिज्य, पं.दी.द.उ.राजकीय महाविद्यालय, राजाजीपुरम, लखनऊ
- **हिन्दी साहित्य इतिहासकारों के नजर से ओझल महामति प्राणनाथ** **196-198**
  ***डॉ. शिवाजी,*** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, आर.एम.पी.(पी.जी.) कालेज, सीतापुर
- **पर्यावरणीय संरक्षण में लॉकडाउन की सकारात्मक भूमिका** **199-206**
  ***डॉ. चिन्तामणि देवी,*** एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग, के.आर.पी.जी. कॉलेज, मथुरा
- **चार्वाक के नीतिशास्त्र का महत्व - वर्तमान परिप्रेक्ष्य में** **207-209**
  ***Dr. Dhanajoy Mahto,*** Assistant Professor, Department of philosophy, Murshidabad Adarsh Mahavidyalaya, Islampur, Murshidabad, West Bengal
- **वाल्मीकि रामायण में जाति व्यावस्था एक नैतिक दृष्टि** **210-212**
  ***संदीप शीट,*** राँची विश्वविद्यालय, राँची
- **वर्तमान छापा कला के परिप्रेक्ष्य में भारतीय कला** **213-215**
  ***डॉ. नीतू वशिष्ठ,*** विभागाध्यक्ष - चित्रकला विभाग, श्री कुन्द-कुन्द जैन स्नात्कोत्तर, महाविद्यालय खतौली, मुजफ्फरनगर
- **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की साहित्यिक संवेदना** **216-220**
  ***डॉ. शिखा तिवारी,*** एसोसिएट प्रोफेसर, डी सी एस के पी जी कॉलेज मऊ
- **।। ज्योतिषीय नक्षत्रों में रोहिणी नक्षत्र का महत्व ।।** **221-224**
  ***डॉ. योगेंद्र कुमार,*** असिस्टेंट प्रोफेसर (ज्योतिष), महर्षि महेश यागी वैदिक विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र.) 462038
- **आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का राष्ट्रवादी चिन्तन** **225-230**
  ***विजय प्रकाश,*** असिस्टेंट प्रोफेसर, विषय-हिन्दी, आर.एम.पी.(पी.जी.) कालेज सीतापुर

- **बौद्ध धर्म में महिलाओं का स्थान एवं सामाजिक उत्थान में सहभागिता** **231-233**
  ***डॉ. यु. कुण्डला,*** सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, चीनी एवं जापानी अध्ययन विभाग, नव नालन्दा महाविहार, (मानित विश्वविद्यालय) संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, नालन्दा।
- **सोशल मीडिया के प्रमख स्वरूप** **234-239**
  ***दिग्विजय त्रिपाठी,*** शोध छात्र, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।
- **भारतीय समाज में धर्म की भूमिका** **240-243**
  ***डॉली कुमारी,*** शोध छात्रा, दर्शनशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
- **गगनेन्द्र नाथ टैगोर के चित्रा पर पाश्चात्य प्रभाव** **244-248**
  ***डॉ. विनोद सिंह,*** असि. प्रोफेसर, चित्रकला, डॉ.पी.द.ब.हि. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटद्वार
- **उत्तर भारत के राजनीतिक इतिहास में स्त्रियों का योगदान : अभिलेखों के संदर्भ में** **249-253**
  ***पूजा अर्चना,*** शोध छात्रा, प्रा. भा. इ. सं. एवं पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय.
- **भीष्म साहनी कृत 'कबिरा खड़ा बाजार में' : धार्मिक विसंगतियों की अभिव्यक्ति** **254-257**
  ***दिव्या मिश्रा,*** शोध छात्रा, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ. प्र.) 221002
- **लोकतान्त्रिक राज्य में नौकरशाही की भूमिका और उनका संवैधानिक संरक्षण-एक अवलोकन** **258-261**
  ***डॉ. मनीष शंकर तिवारी,*** एसोसियेट प्रोफेसर, विधि विभाग, आगरा कालेज, आगरा
- **संपोषणीय विकास का मूल तत्व एवं पर्यावरण** **262-267**
  ***डॉ. उमेश सिंह,*** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, आर.आर.पी.जी. कॉलेज, अमेठी, उ.प्र.

# 'कुच्ची का कानून : कोख के अधिकार का प्रश्न'

*डॉ. गरिमा तिवारी* *

**मेरा कहना है कि कोख देकर बरम्हा ने औरतों को फँसा दिया । अपनी बला उनके सिर डाल दी । अगर दुनिया की सारी औरतें अपनी कोख वापस कर दें तो क्या बरम्हा के वश का है कि वे अपनी दुनिया चला लें ?"**

शिवमूर्ति का यह कथन उनके अत्यंत लोकप्रिय कहानी संग्रह 'कुच्ची का कानून' के आवरण पृष्ठ पर उद्धृत है, जिससे इस कहानी की केन्द्रीय विषय-वस्तु का पता चल जाता है ।स्पष्ट है कि उनकी कहानी 'कुच्ची का कानून' स्त्री के, उसकी ' कोख पर अधिकार' की माँग विषय पर केन्द्रित है । भूमंडलीकरण के इस दौर में जब साहित्य मानव-जीवन की आधुनिकतम समस्याओं के इर्द-गिर्द सिमट कर रह गया है, ऐसे समय में, शिवमूर्ति ने अपने साहित्य में ग्रामीण जीवन का अत्यंत सजीव चित्रण,उसकी समस्त सामाजिक मान्यताओं, आस्थाओं, विश्वासों, परम्पराओं, सकारात्मकता और नकारात्मकता के साथ किया है । शिवमूर्ति का ग्रामीण परिवेश से सीधा सरोकार रहा है, इसीलिए उनके लेखन में ग्रामीण जीवन की सरलता, सहजता और ताजगी का मणिकांचन संयोग मिलता है । लेकिन एक प्रगतिशील रचनाकार ना सिर्फ अपने परिवेश की सकारात्मकता को अत्यंत सच्चाई के साथ प्रस्तुत करता है बल्कि वह उसकी नकारात्मकता को भी उतनी ही ईमानदारी के साथ रूपायित करता है । शिवमूर्ति ने इस कहानी में अपनी इसी रचनात्मक ईमानदारी का परिचय दिया है ।

शिवमूर्ति की इस कहानी की पृष्ठभूमि ग्रामीण परिवेश पर आधारित है जो अपनी उत्सवधर्मिता, निश्छलता, सरलता और सादगी के लिए जाना जाता है लेकिन इस परिवेश में व्याप्त उन तमाम रुढियों, आडम्बरों और विसंगतियों का भी चित्रण शिवमूर्ति ने किया है जो इस परिवेश के माहौल को अभिशप्त करते हैं । पूरी कहानी कुच्ची नामक स्त्री पात्र के इर्द-गिर्द घुमती है, जो एक निम्नवर्गीय परिवार से संबंध रखने वाली विधवा है ।लेकिन उसका व्यक्तित्व प्रेमचंद के 'गोदान' उपन्यास की स्त्री-पात्र धनिया की तरह ही मुखर और क्रांतिकारी है । वह उन सभी सामाजिक नियमों का पुरजोर विरोध करती है जो स्त्री के शोषण को सामाजिक मान-मर्यादा और कायदे-कानून की आड़ में जायज ठहराता है । एक विधवा होकर भी कुच्ची विधवाओं के लिए निर्धारित उन सभी सामाजिक कुरीतियों का पालन करने से साफ़ इनकार कर देती है जो विधवाओं को एक मनुष्य होने के नाते मिलने वाले उनके नैसर्गिक अधिकारों से वंचित कर देती है । अत्यंत तार्किक ढंग से वह उन सभी धार्मिक ठेकेदारों को कठघरे में खड़ा करती है जो एक विधवा को गर्भ धारण करने का अधिकारी नहीं मानते और उसे कुकृत्य मानते हुए समाज से बहिष्कृत करना चाहते हैं तथा उसे चरित्रहीन मानते हैं ।

शिवमूर्ति की यह कहानी हिंदी कहानी के इतिहास में एक क्रांतिकारी प्रयोग है क्योंकि पहली बार किसी निम्नवर्गीय विधवा स्त्री ने पूरे समाज के सामने अपने गर्भ को अवैध घोषित किए

* सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, महात्मा गाधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

जाने का विरोध किया। कुच्ची एक ऐसी मुखर पात्र है जो अपने प्रति हुए अत्याचार को सहन नहीं करती,बल्कि उसका प्रतिकार करती है ।वह शिवमूर्ति की कहानी 'तिरिया चरित्तर' की स्त्री पात्र विमली की ही तरह पंचायत में तो पेश की जाती है लेकिन विमली की तरह पंचायत के अंधे कानून का शिकार नहीं होती बल्कि खुद अपना कानून बनाती है । कुच्ची और विमली दोनों शिवमूर्ति की कहानियों की सशक्त स्त्री पात्र हैं लेकिन विमली पंचायत के गलत निर्णय का शिकार बन जाती है और कुच्ची पंचायत को अपनी तर्कसंगत बातों से निरुत्तर कर देती है ।

कहानी की शुरुआत, कुच्ची द्वारा अवैध गर्भ धारण करने की सूचना से होती है । यह बात पूरे गाँव में जंगल में लगी आग की तरह फ़ैल जाती है । गाँव की औरतें इस बात से अत्यंत हतप्रभ रह जाती हैं । वे कुच्ची से पूछती हैं कि तेरे आदमी को मरे तो साल से ज्यादा हो गए,फिर अपने बच्चे को किसका नाम देगी ?कुच्ची तपाक से उत्तर देती है **–किसी का नाम धरना जरुरी है क्या ?अकेले मेरा नाम काफी नहीं है?**[1]कुच्ची के इस निर्भीक जवाब से गाँव की औरतें सन्न रह जाती हैं । वे सोचती हैं ऐसे करम और ऐसा जवाब ।[2]

पितृसत्ता प्रधान भारतीय समाज में स्त्रियों के लिए बनाए गए कायदे-कानून,रीति-रिवाज उन्हें अपनी शर्तों पर जीने की स्वतंत्रता नहीं देते । उन्हें समाज का भय दिखाकर हमेशा घर की चहारदीवारी में कैद रखा जाता है । वैधव्य का दंश झेलने वाली स्त्रियों की स्थिति तो और भी दयनीय होती है । उनसे तो अपनी मर्जी से जीवन जीने का अधिकार भी छीन लिया जाता है और एक अभिशप्त जीवन जीने को विवश कर दिया जाता है ।कुच्ची के पति की मृत्यु के बाद उसे भी तमाम तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है । वैधव्य स्त्री जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है ।कुच्ची के पिता उसके पति की मृत्यु के बाद उसे अपने साथ ले जाना चाहते हैं और कहते हैं - **तुम्हारा दाना पानी अब इस घर से उठ गया बिटिया । अब यहाँ की मोह-माया छोड़ो । कुछ खा पी लो और चलने की तैयारी करो ।**[3] लेकिन कुच्ची अपने असहाय सास-ससुर को बेसहारा छोड़कर नहीं जा पाती है ।

उसके पति की मृत्यु के उपरान्त उसका चचेरा जेठ बनवारी उसकी संपत्ति, जगह-ज़मीन सब हड़पना चाहता है और इसके लिए वह अनेकों स्वांग रचता है । जब वह उसमें सफल नहीं होता है तो जबरदस्ती करता है और डराता है । ऐसे समय में कुच्ची का निर्भीक और साहसी व्यक्तित्व उभर कर सामने आता है । वह निम्नवर्गीय स्त्री है,विधवा है,कम पढ़ी-लिखी है, लेकिन कमजोर नहीं । वह अत्यंत सूझ-बूझ, चतुराई, और साहस से प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करती है । हालांकि, उसे आभास है कि उसके समक्ष स्थिति और भी विकट है क्योंकि **पीठ पर पति की छाया रहती तब भी एक बात थी । बेवा औरत को ज्यादा ही फूँक-फूँककर कदम रखना होता है । पता नहीं किस बात का क्या मतलब निकाल लिया जाए ।**[4]

लेकिन फिर भी कुच्ची परिस्थितियों के आगे आत्मसमर्पण नहीं करती,उनसे लोहा लेती है । वह अपने आत्म-सम्मान से कभी भी समझौता नहीं करती ।बनवारी जब छल से कुच्ची को पाना चाहता है तब वह डरती नहीं है बल्कि शेरनी की तरह दहाड़ती है और कहती है **-कान खोलकर सुन लो । हमारी राहें जुदा हैं और रहेंगी । फिर कभी मेरी राह काटने की कोशिश की तो अपने और तुम्हारे खून की धार एक कर दूँगी ।**[5]ऐसी अदम्य साहस की प्रतिमूर्ति, कुच्ची से हिंदी साहित्य

का परिचय शिवमूर्ति ने कराया है, जो अद्वितीय है । कुच्ची ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं है लेकिन उसे व्यावहारिक ज्ञान है । वह बनवारी की चाल समझ जाती है और अपने सास-ससुर से इस अन्याय का प्रतिकार करने को कहती है । वह उनसे कहती है कि **बात अपने हक-हिस्से के लिए खड़े होने की है । वह एक-एक चीज हड़पता जा रहा है ।**[6]बनवारी की बदनीयति देख, और अपना घर-परिवार,जगह-जमीन, तथा आबरू बचाने के लिए वह एक साहसिक निर्णय लेती है । वह समझ जाती है कि बनवारी उसके सास-ससुर को मारकर उनकी संपत्ति हड़पना चाहता है क्योंकि उसके पति के बाद कोई भी उस संपत्ति का क़ानूनी वारिस नहीं है । अब कुच्ची के सामने उस खानदान को वारिस दिलाने का प्रश्न खड़ा होता है । वह निर्णय लेती है,कि वह माँ बनेगी और इसके लिए किसी से बीज उधार लेगी। यह जब उसकी सास उससे कहती है कि लोग जब सवाल करेंगे कि तुम्हारी कोख में पलने वाला बच्चा किसका है,तो क्या जवाब देंगें ? इस पर कुच्ची निर्भीक होकर कहती है-**गाँव-देश हमारी हर्ज-गर्ज,आफत-विपत में आजतक कभी आया है कि जवाब माँगने ही आएगा?**[7] लेकिन कुच्ची के गर्भधारण की बात पता चलने पर पूरे गाँव में,तरह-तरह की बातें होने लगती है । बड़े – बुजुर्गों की नजर में यह गंभीर मामला लगता है ।उनका मानना है कि-**"इसने तो पूरे गाँव की बहू-बेटियों के बिगड़ने का रास्ता खोल दिया । वे पूरी बात रस लेकर सुनते हैं,पूछताछ करते हैं,बच्चे के बाप का अनुमान लगाते हैं और पंचायत में पहुँचने का वादा करते हैं ।**[8]कुच्ची समझ जाती है कि **'उसने भारी जोखिम उठा लिया है ।यह लड़ाई उसे अकेले दम पर लड़नी है ।घर के अन्दर भी और बाहर भी ।'**[9]

शिवमूर्ति ने कुच्ची के रूप में एक ऐसी स्त्री पात्र की सर्जना की है जिसकी दृढ इच्छाशक्ति और आत्मबल के सामने बड़े से बड़े शूरमा भी धराशायी हो जाते हैं । सचमुच कुच्ची शिवमूर्ति जी की अद्‌भुत सृष्टि है । पूरा समाज उसका विरोधी है, उसे समाज के लिए कलंक समझा जाता है और उसे दण्डित करने के लिए पंचायत भी बुलाई जाती है लेकिन कुच्ची उनके सामने अकेली खड़ी है, निहत्थी लेकिन निर्भीक । महाभारत के युद्ध में शत्रुओं से घिरे अकेले अभिमन्यु की तरह ।लेकिन ऐसी परिस्थिति में भी वह सच्चाई का दामन छोड़ने को तैयार नहीं ।पंचायत के दंड से बचाने के लिए जब धन्नू बाबा उसे अपने ससुर को अपने बच्चे का बाप बताने के लिए कहते हैं तो वह साफ़ इनकार कर देती है और कहती है कि **मैं झूठ नहीं बोलना चाहती बाबा ।सही बात यह है कि मुझे बच्चे की तलब लगी, जरुरत लगी और मैंने कहीं से इंतजाम कर लिया । मैं अपनी बात पर ही कायम रहना चाहती हूँ ।**[10]धन्नू बाबा कुच्ची की इस ईमानदारी के कायल हो जाते हैं और कहते हैं कि **-तू पहली औरत है जो कह रही है कि अपनी जरुरत से पैदा कर रही हूँ । ऐसा सोलह आने का सच कौन बोल पाया है आजतक ?**[11]

पंचायत बैठती है, कुच्ची से कहा जाता है कि वह वचन दे कि पंचायत जो भी फैसला करेगी, उसे वह मानेगी लेकिन कुच्ची कहती है-**पंद मानेंगे,कुपद नहीं ।**[12]जबपंचायत उससे उसके पेट में पलने वाले बच्चे के विषय में पूछती है तो वह कहती है-**मैंने दूसरे से बीज लिया... मुझे जरुरत लगी महाराज ।मेरा आदमी तो एक बार मरकर फुरसत पा गया लेकिन बेसहारा समझ कर हर**

**आदमी किसी न किसी बहाने मुझे रोज मार रहा था ।मैं मरते-मरते थक गई तो जीने के लिए अपना सहारा पैदा कर रही हूँ ।**[13]

कुच्ची सिर्फ सातवीं पास है लेकिन उसके तर्कों से, श्रेष्ठता के दंभ से आप्लावित पूरा पुरुष-समाज निरुत्तर हो जाता है । जब पंचायत कुच्ची की कोख पर सिर्फ उसके पति के हक़ होने का दावा करती है तो कुच्ची प्रश्न करती है- **मरे हुए आदमी के काम तो यह कोख आ नहीं सकती बाबा ।उनके मरने के बाद किसका हक बनता है ? मेरी कोख पर मेरा हक़ कब बनेगा ?**[14]निःसंदेह कुच्ची का यह प्रश्न इस कहानी की मूल संवेदना की ओर संकेत करता है ।एक स्त्री अपनी कोख पर अपना अधिकार होने का दावा करती है, साथ ही स्त्री-अस्मिता और उनके अधिकारों की भी जोरदार वकालत करती है । पंचायत से कुच्ची का यह प्रश्न अत्यंत प्रासंगिक है कि-**जब मेरे हाथ,पैर,आँख,कान पर मेरा हक है, इन पर मेरी मरजी चलती है तो कोख पर किसका होगा,उस पर किसकी मरजी चलेगी ।इसे जानने के लिए कौन-सा कानून पढ़ने की जरुरत है ?**"[15]जब कुच्ची अपने तर्कों से सबको निरुत्तर कर देती है तो उसके सामने कानून का सहारा लिया जाता है, उससे कहा जाता है कि बनवारी के बच्चों में से किसी को गोद ले ले तो उसे वारिस मान लिया जाएगा। इस पर कुच्ची तर्क देती है-**दूसरे का पैदा किया हुआ गोद ले लूँ तो उसे सबकुछ मिल जाएगा और अपनी कोख से पैदा करुँगी तो उसे कुछ भी नहीं मिलेगा ।जो मेरी कोख से पैदा होगा उसका आधा चाहे जिसका हो आधा खून तो मेरा होगा ।**[16]

कुच्ची की अमोघ तर्कशक्ति का प्रतिउत्तर पंचायत में किसी के पास नहीं रहता । वह पूरे पंचायत को कठघरे में खड़ा करती है । वह उनसे कहती है कि या तो **बात से कायल कर दीजिए या कायल हो जाइए । मेरी कोख पर मेरा हक है या नहीं ।**[17] कुच्ची का यह प्रश्न सम्पूर्ण स्त्रीजाति के अस्तित्व एवं उनके अधिकार के प्रश्न से जुड़ा है । एक स्त्री का उसकी कोख पर पूर्ण अधिकार क्यों नहीं है ? पूरे गाँव को यह विश्वास ही नहीं होता कि **कोख पर अधिकार की माँग एक ऐसे गाँव की सातवीं पास औरत भरी पंचायत में कर रही है जहाँ न सड़क है, न स्कूल है ।**[18]वह निर्भीकता के साथ कहती है कि बच्चे के बाप का नाम नहीं बताएगी क्योंकि यह गुप्तदान है ।जब पंचायत कोकुच्ची के इन तर्कों के आगे कुछ भी नहीं सूझता तब बलई बाबा उसे अहिल्या को मिले शाप का स्मरण दिलाकर डराने की कोशिश करते हैं और कहते हैं कि अगर औरतों ने अहल्या के किस्से से सबक सीखा होता तो आज पंचायत बुलाने की जरुरत ही न पड़ती । इस पर स्त्री-चेतना की प्रतीक सुघरा ठकुराइन कहती है-**"कुच्ची ने न सही लेकिन हजारों साल से इस देश में पैदा हो रही औरतों ने जरुर सबक सीखा है । उसी सीख से उनका कलेजा पत्थर का हो गया है । उसी का डर दिखाकर वे आज भी भेड़ के झुंड की तरह हाँकी जा रही हैं । गौतम मुनि ने अपनी सारी मर्दानगी अपनी औरत पर ही क्यों दिखाई?सूने घर में घुसकर जिसने छल से अकेली औरत की इज्जत लूटी, उसका तो आप कुछ उखाड़ नहीं पाए ।उल्टे अपनी ही छली गई पत्नी को पत्थर बना दिया।यह कैसा इंसाफ है ?"**[19]

कुच्ची के रूप में शिवमूर्ति ने एक प्रगतिशील,आधुनिक चेतना संपन्न नारी का चित्रण किया है जो अपने अधिकारों के प्रति सजग है, अन्याय का प्रतिकार करती है, तर्क-शक्ति संपन्न है और

समाज की सड़ी-गली ऐसी पुरातन मान्यताओं को अस्वीकार करती है जो स्त्री को उसके अधिकारों से वंचित करती है,स्त्री होने के नाते उसका शोषण करती है । कुच्ची नूतन और आधुनिक चेतना की वाहक है । वह निर्भीकता से पूरे पंचायत से सवाल करती है-**मेरा सवाल है कि फसल पर पहला हक किसका है?खेत का कि बीज का ?'**[20]कुच्ची के इस प्रश्न के आगे समाज के विद्वतजन, शास्त्र-मर्मज्ञ पंडित सब निरुत्तर नजर आते हैं । यह कुच्ची का कानून है ।धन्नू बाबा कुच्ची के पक्ष में निर्णय देते हैं और कहते हैं कि फसल पर पहला हक खेत का है बीज का नहीं । अपनी पराजय को बनवारी स्वीकार नहीं कर पाता और कुच्ची के बच्चे को जान से मारने की धमकी देता है । कुच्ची दहाड़ उठती है-**कुंती माई डर गईं,अंजनी माई डर गई,सीता माई डर गई लेकिन बालकिसन की माई डरने वाली नहीं है । मेरा बालकिसन पैदा होकर रहेगा ।**[21]कुच्ची के इस अदम्य साहस को देखकर पूरी पंचायत सन्न रह जाती है ।शिवमूर्ति ने भले ही इस कहानी में कुच्ची के सामने समाज के ठेकेदारों की पराजय दिखाकर कहानी को एक सुखद अंत दिया हो लेकिन वास्तविकता इससे कोसों दूर है । भारतीय समाज और उसमें भी विशेषकर ग्रामीण पृष्ठभूमि के लोगों के लिए अभी भी अवैध गर्भ धारण सहज स्वीकार्य नहीं है । उनके लिए उनकी झूठी मान-मर्यादा, अभी भी मनुष्यता से ऊपर है ।लेकिन शिवमूर्ति का यह काल्पनिक अंत हमें एक नई सोच जरुर प्रदान करता है ।

शिवमूर्ति ने स्त्रियों के संपत्ति पर क़ानूनी हक होने के प्रश्न को भी उठाया है । सुघरा ठकुराइन कहती है-**औरत सरकार की नजर में गोबर का चोत है ।किसान की ज़मीन हड़पने का कानून तो सरकार मिनटों में पास कर देती है, लेकिन औरत-मर्द के बीच मालिकाना हक़ बाँटने का कानून पास करने की फुरसत आज तक किसी सरकार को नहीं मिली ।**[22]

शिवमूर्ति की रचनाओं में ग्रामीण जीवन और परिवेश का अत्यंत यथार्थ चित्रण मिलता है । इस कहानी में उन्होंने स्त्रियों की सामाजिक, पारिवारिक स्थिति और उनके शोषण की परत दर परत उधेड़ कर रख दी है –**अस्पताल में एक बेड का नाम ही है 'प्वाइजन बेड । जहर खा कर आने वाली औरतों के लिए रिजर्ब ।रोज इसी समय कोई न कोई आती है,बिना नागा । सिर्फ औरतें । आदमी एक भी नहीं ।**[23]इतना ही नहीं वह यह भी लिखते हैं कि **स्त्रियों पर होने वाले जुल्म की हर दिन की अलग कहानी है ।अवैध गर्भ । पति द्वारा पिटाई । दहेज-प्रताड़ना । तीसरी बेटी पैदा कर देना ।**[24]निःसंदेह शिवमूर्ति ने स्त्री-शोषण के विविध रूपों का अत्यंत ही यथार्थ चित्रण किया है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिवमूर्ति ग्रामीण परिवेश की निम्नवर्गीय पात्र कुच्ची के माध्यम से स्त्री अस्मिता और उनके अधिकारों की जोरदार वकालत करते हैं । कुच्ची जैसी साहसी,निडर,स्वाभिमानी और विवेकशील पात्र, शिवमूर्ति की अनोखी सर्जना है । वह इस बात को मानने को तैयार नहीं है कि उसकी कोख पर उससे ज्यादा बीज डालने वाले का हक है, वह भरी सभा में प्रतिवाद करती है कि एक स्त्री की कोख पर उसका अधिकार कब होगा? सब लोग उसके तर्कों से स्तब्ध रह जाते हैं और अंत में उसे अपनी कोख पर अधिकार प्राप्त हो जाता है । शिवमूर्ति जी ने इस ज्वलंत एवं सार्वभौमिक प्रश्न को लोकल से ग्लोबल बना दिया है । निश्चित रुप से हम आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी के इस कथन से सहमत हैं कि-'एक भी ऐसा समकालीन

रचनाकार नहीं है जिसके पास कुच्ची जैसा सशक्त चरित्र हो । यह चरित्र निर्माण क्षमता शिवमूर्ति को बड़ा कथाकार बनाती है ।"

**सन्दर्भ-सूची :**


1. कुच्ची का कानून : शिवमूर्ति, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,1-बी,नेताजी सुभाष मार्ग,दरियागंज नई दिल्ली -110 002, पहला संस्करण : 2017, पृष्ठ सं०-77
2. वही, पृष्ठ संख्या-77
3. वही, पृष्ठ संख्या-78
4. वही, पृष्ठ संख्या-85
5. वही, पृष्ठ संख्या-94
6. वही, पृष्ठ संख्या-100
7. वही, पृष्ठ संख्या-109
8. वही, पृष्ठ संख्या-112
9. वही, पृष्ठ संख्या-113
10. वही, पृष्ठ संख्या-114
11. वही, पृष्ठ संख्या-114
12. वही, पृष्ठ संख्या-117
13. वही, पृष्ठ संख्या-118
14. वही, पृष्ठ संख्या-118
15. वही, पृष्ठ संख्या-131
16. वही, पृष्ठ संख्या-120
17. वही, पृष्ठ संख्या-132
18. वही, पृष्ठ संख्या-130
19. वही, पृष्ठ संख्या-132
20. वही, पृष्ठ संख्या-133
21. वही, पृष्ठ संख्या-137
22. वही, पृष्ठ संख्या-138
23. वही, पृष्ठ संख्या-89
24. वही, पृष्ठ संख्या-90


***

# प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

*पवन कुमार सिंह* *
*डॉ. आसिफ कमाल* **

*शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का सर्वोत्तम साधन है और शिक्षक इस शैक्षिक प्रक्रिया का प्रमुख ध्रुव है वह अपने शिक्षण कौशलों के द्वारा शिक्षार्थी की अन्तर्निहित दक्षता एवं प्रतिभा को निखारता है। शिक्षक अपने ज्ञान के आलोक से पूरे समाज को प्रकाशित करता है। शिक्षक द्वारा व्यक्तिक, समाज और राष्ट्र के नवनिर्माण के लिए दिये गये विशिष्ट योगदान के लिए उसका स्थान आदरणीय और सम्माननीय रहा है। शिक्षक को राष्ट्र का निर्माता माना जाता है और उसका स्थान ईश्वर से भी ऊँचा माना गया है। शिक्षक की महत्ता व्यक्त करते हुए राधाकृष्णन ने लिखा कि समाज में शिक्षक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परम्पराओं और शिक्षण कौशलों को स्थानान्तरित करते हुए सभ्यता और संस्कृति के प्रकाश को आलोकित करता रहता है।*

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने शिक्षकों के महत्व को व्यक्त करते हुए कहा कि सर्वोत्तम और पूर्ण पाठ्यक्रम निष्प्रभावी और व्यर्थ माने जाते हैं यदि इनके लिए सही शिक्षण विधि और आदर्श शिक्षक द्वारा विद्यार्थी के जीवन में वास्तवविकता से नहीं उतारा जाता है।

शिक्षकों का दायित्व अत्यन्त गुरूवर एवं महत्वपूर्ण माना जाता है शिक्षकों में अपने शिक्षण के प्रति सन्तुष्टि का भाव उनके विभिन्न परिस्थितियों में कार्य करने की क्षमता, योग्यता एवं क्रियाशीलता में वृद्धि करती है। शिक्षक में आदर्श व्यक्तित्व, उत्तम चरित्र, नैतिकता, ईमानदारी उनका कक्षागत व्यवहार उनकी शैक्षिक योग्यता एवं सामाजिक आर्थिक तथा पारिवारिक प्रस्थिति आदि कारक उनके शैक्षिक दायित्वों के निर्वाह में सहायक होते हैं। अतः शिक्षक में ये गुण विशेष रूप से अपेक्षित होते हैं ताकि वह समाज का पथ प्रदर्शन कर सके। शिक्षक एक दीपक की भाँति होता है जो स्वयं के प्रकाश से अपने चारों ओर उजाला फैलाता है किन्तु इसके लिए उसमें सत्यनिष्ठा, ईमानदारी एवं श्रम से कार्य करने रूपी तेल क्या शिक्षण कौशल, व्यावसायिक सन्तुष्टि रूपी बाती होनी चाहिए। शिक्षक को स्वयं भी एक खोजी अहमेता होना चाहिए इसीलिए शिक्षक को छात्र से अधिक स्वाध्यायी और जिज्ञासु होना चाहिए। शिक्षक व्यवसाय एक पवित्र और विश्वासी पेशा है जिसको हमेशा निष्कलंक बनाये रखना चाहिए। समाज और राष्ट्र का भी यह दायित्व होना चाहिए कि वह अपने शिक्षकों का सम्मान और उनकी मौलिक आवश्यकताओं का ध्यान रखें। शिक्षा के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर अध्यापनरत शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि की विशेष अपेक्षा की जाती है क्योंकि इसके आधार पर वे शिक्षा के इस महत्वपूर्ण दायित्व का कुशलतापूर्वक निर्वाहन कर सकते हैं। प्राथमिक शिक्षकों में अपने शिक्षण के साथ–साथ विभिन्न सह–शैक्षिक दायित्वों का निर्वाहन भी करना पड़ता है जिसके कारण उनकी व्यावसायिक रूचि पर असर पड़ता है। इसलिए प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत शोध प्रपत्र में किया गया है।

**अध्ययन के उद्देश्य** :

1. प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों की व्यावसयिक संतुष्टि की तुलना करना।
2. प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत सामान्य एवं विषिष्ट बी0टी0सी0 प्रषिक्षित अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि की तुलना करना।

---

* शोधार्थी शिक्षक-शिक्षा विभाग, सिब्ली नेशनल पी. जी. कालेज, आजमगढ़ (उ. प्र.),
** एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षक-शिक्षा विभाग, सिब्ली नेशनल पी. जी. कालेज, आजमगढ़ (उ. प्र.)

**परिकल्पनाएं** :

1. प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों की व्यावसयिक संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नही है।
2. प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत सामान्य एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नही है।

**शोध विधि :**

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि पर आधारित है। जिनमें न्यादर्श के रूप में प्रयागराज जनपद में स्थित प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों का चयनयादृच्छिक न्यादर्श प्रतिचयन विधि से किया गया है। प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों का चयन उद्देश्यकपर न्यादर्श प्रतिचयन विधि से किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में प्राथमिक विद्यालयों से 50 एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों से 50 कुल 100 अध्यपकों का चयन किया गया है। प्राथमिक शिक्षकों में 25 बी0टी0सी0 एवं 25 विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों को लिया गया है। प्रदत्तों के संकलन हेतु द्वारा डॉ0 मीरा दीक्षित, शिक्षा संकाय, राष्ट्रीय महाविद्यालय लखनऊ (उ0प्र0) द्वारा निर्मित व्यावसायिक संतुष्टि मापनी का प्रयोग किया गया है। प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, एवं टी0 अनुपात ज्ञात किया गया है।

**विश्लेषण एवं व्याख्या :**

**सारणी–1**

**प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों की व्यावसयिक संतुष्टि की तुलना**

| Variable | N | M | S.D. | D | □□ D | T-value | सार्थकता |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| प्राथमिक स्तर के अध्यापक | 50 | 205.90 | 15.10 | 5.28 | 3.14 | 1.68 | 0.05 स्तर पर असार्थक |
| उच्च प्राथमिक स्तर के अध्यापक | 50 | 200.62 | 16.29 | | | | |

**विश्लेषण** :उक्त सारणी से स्पष्ट है कि प्राथमिक स्तर के अध्यापकों की व्यावसायिक संतुश्टि सम्बन्धी प्राप्ताँकों का मध्यमान 205.90 तथा मानक विचलन 15.10 है जबकि उच्च प्राथमिक स्तर के अध्यापकों के व्यावसायिक संतुश्टि सम्बन्धी प्राप्ताँकों का मध्यमान 200.62 तथा मानक विचलन 16.29 है। परिगणित टी–अनुपात 2.61 है जो स्वतन्त्रयांश (df) 98 के लिये सार्थकता स्तर .05 पर सी0आर0–सारणीमान 2.02 से कम है, जो असार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों की व्यावसायिक संतुश्टि कोई सार्थक अन्तर नहीं है को स्वीकृत कर दिया गया है। यद्यपि प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों व्यावसायिक संतुष्टि सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों से उच्च है। किन्तु सार्थकता स्तर पर यह मान सार्थक नहीं है। अतः प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि समान है।

**व्याख्या** :प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि समान होने का सम्भावित कारण प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य दशाओं में समानता, उनके विद्यालयीन परिवेश में समानता, शिक्षण परिस्थिति एवं संसाधनों की स्थिति में समानता, प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक शिक्षकों के विभिन्न देयकों एवं वेतनमान की भुगतान की स्थिति में समानता आदि हो सकते हैं।

**सारणी–6**

**प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत सामान्य एवं विषिष्ट बी0टी0सी0 प्रषिक्षित अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि की तुलना**

| Variable | N | M | S.D. | D | □□ D | T-value | सार्थकता |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| सामान्य बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापक | 25 | 211.88 | 11.55 | 9.45 | 3.46 | 2.73 | 0.05 स्तर पर सार्थक |
| विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापक | 25 | 202.43 | 12.93 | | | | |

**विश्लेषण** :उक्त सारणी से स्पष्ट है कि प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत सामान्य बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि सम्बन्धी प्राप्ताँकों का मध्यमान 211.88 तथा मानक विचलन 11.55 है जबकि प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि सम्बन्धी प्राप्ताँकों का मध्यमान 202.43 तथा मानक विचलन 12.93 है। परिगणित टी–अनुपात 2.73 है जो स्वतन्त्रयांश (df)49 के लिये सार्थकता स्तर .05 पर सी0आर0–सारणीमान 2.12 से अधिक है, जो सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत सामान्य एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है को अस्वीकृत कर दिया गया है। चूकि सामान्य बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों से उच्च है। अतः सामान्य बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों व्यावसायिक संतुष्टि विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों से उच्च है।

**व्याख्या** :सामान्य बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों से उच्च होने का सम्भावित कारण उनकी शैक्षिक योग्यता एवं प्रशिक्षण दक्षता के अनुरूप व्यवसाय प्राप्त होना, उनका छात्रों के साथ अधिक सरलता से जुड़ पाना उन्हें बाल मनोविज्ञान एवं बालकों को पढ़ाने की अनेक विधियों का ज्ञान होना एवं कार्य संलग्नता आदि हो सकते हैं।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध अध्ययन से प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि के सम्बन्ध में उपयोगी एवं सार्थक जानकारी प्राप्त हुई जिसके आधार पर उनकी व्यवसायिक संतुष्टि को बढ़ाया जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए–

1. प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों व्यावसायिक संतुष्टि सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों से उच्च पाया गयाकिन्तु सार्थकता स्तर पर यह मान सार्थक नहीं था अर्थात प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि समान है।
2. सामान्य बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों से उच्च पायी गयी अर्थात सामान्य बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों व्यावसायिक संतुष्टि विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों से उच्च है।

**सन्दर्भ :**


1. गुप्ता, एस0पी0 : उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
2. अग्रवाल, जे0सी0 : उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षा, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन।
3. गुप्ता, एस0पी0 एवं डॉ. अलका गुप्ता : उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
4. पाण्डेय, के0पी0 : शैक्षिक अनुसंधान, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन।
5. गुप्ता, एस0पी0 : अनुसंधान विधियां, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन
6. उपाध्याय, प्रतिभा : भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियां, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन–2005


***

# राष्ट्रीय सुरक्षा एवं प्रबन्धन चुनौतियाँ

*डॉ. अरविन्द कुमार चतुर्वेदी**

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सुरक्षा एक महत्वपूर्ण अवयव है। वही राष्ट्र विश्व शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो सकता है जो वाह्य व आन्तरिक रूप सें अपनी सुरक्षा करने में हर सम्भव समर्थ है। वर्तमान समय में विश्वभर के विद्वानों का ध्यान राष्ट्रीय सुरक्षा तथ्यों की ओर आकृष्ट हुआ है। इसमें भी तृतीय विश्व की सुरक्षा सम्बन्धी समस्याओं ने विद्वानों को विशेष रूप से प्रभावित किया है। तृतीय विश्व के राष्ट्र असुरक्षा और अस्थायित्व का सामना निरन्तर करते आ रहे हैं। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय सुरक्षा की समस्याओं का नया आयाम ग्रहण कर लिया है। इससे भी एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि तृतीय विश्व की सुरक्षा कहीं न कहीं विकसित राष्ट्रों से प्रभावित हो ही जाती है। विद्वान इन संलक्षणों का अध्ययन करते हुए उचित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए प्रयासरत हैं ताकि राष्ट्रीय सुरक्षा का विश्लेषण करते हुए इसके सम्बन्ध में व्यावहारिक व स्वीकार्य अवधारणा प्रस्तुत की जा सके।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय सुरक्षा की खोज करने का तात्पर्य है अनिश्चितता एवं अतृप्तता (यथोचित निष्कर्ष न निकाल पाना)। ''संपूर्ण सुरक्षा'' शब्द भ्रामक है। इसे और सटीक शब्दों में हम ''आंशिक'' या ''सापेक्षिक'' सुरक्षा कह सकते हैं। यद्यपि यह भी स्वतः सिद्ध तथ्य है कि हम ''सापेक्षिक'' या ''आंशिक'' असुरक्षा से रह रहे हैं। ''पूर्ण सुरक्षा'' और ''आंशिक सुरक्षा'' विस्तृत वर्णक्रम के दो सिरों के समान है। इसमें यह कहना अधिक उचित प्रतीत होता है कि राष्ट्रीय हितों के अनुरुप सुरक्षा का निर्धारण होता रहता है।

परम्परागत रूप से प्रायः लोग ''राष्ट्रीय सुरक्षा'' को ''राष्ट्रीय रक्षा'' का पर्याप्त समझ लेते हैं। रक्षा सदैव किसी सन्दर्भ में होती है परन्तु सुरक्षा क्षेत्रवाद–राष्ट्रवाद और अन्तर्राष्ट्रीय वाद के सभी आयामों से सम्बन्धित है।[1] इसमें ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है, कि किसी प्रकार की धमकियों, चुनौतियों या विरूद्ध प्रतिक्रियाओं का सामना ही न करना पड़े। सामान्यतः सुरक्षा को संकट या आक्रमण की आशंका से मुक्ति के रूप में भी परिभाषित किया जाता है।[2]

वर्तमान परमाणु युग में सुरक्षा समस्याओं समाधान के तहत प्रतिस्पर्धात्मक रूप से शक्ति की निरर्थक वृद्धि की जाती है, और साथ ही परमाणु प्रतिरोधकता नीति के अन्तर्गत परमाणु युद्ध की सम्भावनाएँ भी कम होती हैं। 'आतंक के संतुलन' तथा 'प्रतिरोधक क्षमता' के माध्यम से विदेश नीति व कूटनीतिक उपायों से अर्थात् दूसरे शब्दों में असैनिक माध्यमों से विश्वसनीयता (वैधता) बढ़ाकर सुरक्षा सम्बन्धी लाभ प्राप्त कर लिया जाता है।

राष्ट्र निर्माण में 'सुरक्षा' के साथ–साथ 'विकास' का भी महत्वपूर्ण स्थान है। 'सुरक्षा' और 'विकास' एक ही सिक्के के दो पहलू हैं दोनों एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते।[3] 'सुरक्षा' और 'विकास' का आपस में सहजीवी सम्बन्ध है। बिना 'सुरक्षा' के 'विकास' सम्भव नहीं और बिना 'विकास' के 'सुरक्षा' का कोई अर्थ नहीं। विकास अपने आप में आर्थिक विकास के महत्वपूर्ण अर्थ को संजोये हुए है परन्तु विकास के अन्तर्गत कृषि, वैज्ञानिक व प्रौद्योगिकी, औद्योगिकीकरण, लोकतंत्रीकरण और राष्ट्र निर्माण की समस्त प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं।

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातेजिक अध्ययन विभाग, गनपत सहाय पी.जी. कालेज, सुल्तानपुर

विख्यात विचारक आर्नल्ड वुल्फर के अनुसार राष्ट्रीय सुरक्षा का तात्पर्य है ''विभिन्न समय में विभिन्न लोगों की विभिन्न आवश्यकताएँ''। यह परिभाषा उन्होंने 'डिस्कार्ड एण्ड कोलैबोरेशन' में प्रदान की है जिस प्रकार विभिन्न समयों में विभिन्न लोगों की विभिन्न आवश्यकताएँ होती हैं उसी प्रकार विभिन्न आवश्यकतानुरूप राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया होगी। तद्नुरूप ही राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बन्धी नीति निर्धारित होगी। राष्ट्रीय सुरक्षा के अवधारणीकरण के संदर्भ में विभिन्न ने अपने–अपने मत दिये हैं।

परम्परागत भाषा शैली में राष्ट्रीय सुरक्षा का तात्पर्य निकाला जाता है सीमाओं की सुरक्षा से। इस अर्थ में यह रक्षा नीति की प्रक्रिया है जो राष्ट्रीय सुरक्षा की समृद्धि का कार्य करती है। सीमाओं की सुरक्षा में रक्षा सेनाओं का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान है।[4] वास्तव में इसे 'सैन्य सुरक्षा' कहा जाना चाहिए।

यहाँ तेजी से लोकप्रिय हो रही 'व्यक्तिक' या 'एकल' सुरक्षा या जिसे फैशनप्रिय शैली में 'मानव सुरक्षा' कहा गया है का भी उल्लेख करना न्यायसंगत होगा क्योंकि राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा का प्रचलन सदैव 'मानव सुरक्षा' अथवा 'व्यक्तिक' या 'एकल' सुरक्षा में परिलक्षित होते नहीं देखा गया है और राष्ट्र की सुरक्षा मात्र 'भौतिक' रूप से ही नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करती है। मानवीय आवश्यकताओं के बढ़ते हुए आयाम को देखते हुए 'चाह की उन्मुक्तता' और 'आकांक्षा की उन्मुक्तता' की मांग भी होने लगी है और दक्ष सरकारों ने इसे पूर्ण करने हेतु अपेक्षायें बढ़ रही हैं क्योंकि लोग 'मानवीय विकास मानक' (ह्यूमन डेवलैपमेन्ट एन्डेक्स या एच0डी0आई0) के स्तर को बढ़ाना भी सुरक्षा के मापदण्ड से जोड़ने लगे हैं। स्पष्टतः सुरक्षा का आयाम बहतु बढ़ गया है।

राष्ट्रीय सुरक्षा को परिभाषित करते हुए मार्टिन बर्कोविट्ज व पी0जी0 बुक का कथन है कि ''राष्ट्रीय सुरक्षा का तात्पर्य है कि राष्ट्र की वह क्षमता जो वाह्य चुनौतियों से राष्ट्र के आन्तरिक मूल्यों की रक्षा करती हो''[5] जो उपरोक्त भावना को व्यक्त करती है।

सुरक्षा के संदर्भ में प्रश्न उभर सकता है कि सुरक्षा कितनी (क्यों?) और किसके प्रति सुरक्षा? मोटेतौर पर निष्कर्ष रूप में इसका उत्तर निम्नांकित रूप में दिया जा सकता है–

- वाह्य चुनौतियों या आक्रमण के विरूद्ध राष्ट्र की सीमाओं की अखण्डता हेतु सुरक्षा।
- राष्ट्र द्वारा निर्मित संवैधानिक और राजनीतिक व्यवस्था का परिरक्षण व स्थायीकरण की सुरक्षा।
- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के सर्वांगीण विकास में आर्थिक व्यवस्था के संचालन को कायम रखने एवं प्रोत्साहन हेतु सुरक्षा।
- उन मूल्यों को बढ़ावा देने या परिवर्धित करने से जिन्हें राष्ट्र ने पोषित एवं घोषित किया हो यथा–सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरण, विश्व सरकार, आन्तरिक मूल्यों और न्याय संगत हितों की ओर इंगित मंगलकारी कथनों की सुरक्षा।

इस प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा के अन्तर्गत राष्ट्र की आन्तरिक एवं वाह्य सुरक्षा के साथ राष्ट्र के सर्वांगीण विकास हेतु सतत् प्रयत्नशील रहना है ताकि राष्ट्र की तमाम चुनौतियों का सक्षमतापूर्वक सामना करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी महत्वपूर्ण स्थिति बना सके। राष्ट्रीय सुरक्षा को परिभाषित करते हुए वाल्टर लिपमैन ने कहा है कि ''एक राष्ट्र की सुरक्षा उसी सीमा तक समझीं जाती है जब तक उसे युद्ध के निवारण के लिए अपने उचित हितों का बलिदान नहीं करना पड़ता है और यदि उसे चुनौती दी गई तो वह युद्ध के द्वारा उसे कायम रखने में सक्षम हो।[6] स्पष्टतः वाल्टर लिपमैन ने राष्ट्र के उचित हितों के निवारण के लिए युद्ध को अपरिहार्य साधन माना है। माइकेल लॉव के अनुसार ''राष्ट्रीय सुरक्षा वाह्य या भौतिक चुनौतियों से स्वतंत्रता या प्रतिबन्धिता है।''[7] वही फ्रैंक ट्रैगर एवं फ्रैंक सिमोनी ने लिखा है कि ''राष्ट्रीय सुरक्षा की नीतियों का अंग है, जिसका लक्ष्य विस्तृत राष्ट्रीय

मूल्यों की संरक्षा और विस्तार के लिए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों के अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करता है।''[8] इस प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा के अन्तर्गत वे सभी तथ्य समाहित हैं जिससे राष्ट्रीय मूल्यों का पोषण होता है और राष्ट्र विकास के पथ पर अग्रसर होता है। औरविक का कथन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि ''यदि राष्ट्रीय मूल्यों और संस्थाओं को कोई चुनौती या संकट नहीं है तो सुरक्षा विकास की प्रक्रिया है।''[9]

तृतीय विश्व के अग्रणी एवं विकासशील राष्ट्र भारत की सुरक्षा सम्बन्धी समस्याओं से जूझ रहा है। हमारी सुरक्षा का दृष्टिकोण भारतीय राष्ट्रीय–राज्य मूलभूत मूल्यों का सतत् संरक्षण है जो प्रजातांत्रिक सिद्धांत, धर्म–निरपेक्ष समाज, संघीय ढांचा, नैतिक मूल्य, मौलिक समानता का अधिकार, राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रीय शक्ति है। भारतीय सुरक्षा के स्थायित्व एवं विकास पथ पर विभिन्न प्रकार के खतरें हैं–असैनिक, वाह्य एवं आन्तरिक। हमारे सुरक्षा प्रबन्धन को इन खतरों के विभिन्न स्वरूप को ध्यान में रखते हुए सक्रिय रहना होगा। अतएव हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा के दृष्टिकोण के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है।

बुद्धजीवियों और शोधकर्ताओं ने असैनिक और आन्तरिक कारकों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। ऐसा संभवतः इसलिए हुआ है क्योंकि विकसित और पाश्चात्य राष्ट्रों में सुरक्षा का अर्थ वाह्य रूप से उत्पन्न खतरों तक ही सीमित है और पठन–पाठन की अधिकतर सामग्री जो उपलब्ध है वह पाश्चात्य विचारकों के द्वारा ही प्रदान की गयी है। राष्ट्र विकास का लम्बा दौर देख चुके पाश्चात्य राष्ट्रों में आन्तरिक और असैनिक कारक उतना महत्व नहीं रखते हैं क्योंकि वहां इन खतरों का आयाम नियन्त्रणीय सीमा में है। परन्तु जब हम विकासशील और तृतीय विश्व के राष्ट्रों पर दृष्टिपात करते हैं तो वाह्य खतरों के साथ–साथ आन्तरिक और असैनिक कारक अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाते हैं। अतः इस बौद्धिक अभ्यास में हम अपना ध्यान असैनिक और आन्तरिक कारकों पर ही केन्द्रित करेगें।

सुरक्षा का सम्बन्ध प्रायः शांति की स्थापना से माना जाता है। कौटिल्य ने शांति को इन शब्दों में व्याख्यायित किया है–''ऐसा समय जिसमें पराजित राष्ट्र निकट भविष्य में अगले चक्र के लिए तैयारी करता है तथा विजयी दोहन करता है।''[10]

इस प्रकार यह स्वप्रमाणित सत्य है कि स्त्रातेजिक वातावरण के परिवर्तन, खतरों के दृष्टिकोण, आन्तरिक सुरक्षा तथा आर्थिक दशा में परिवर्तन का सम्बन्ध हमारी स्त्रातेजिक, कूटनीतिक एवं राजनीतिक तरीके से खतरों के प्रबन्धन के पुनर्मूल्यांकन, जहाँ संभव एवं आवश्यक हो और जहाँ कहीं भी परिवर्तन अपेक्षित हो, के साथ होना चाहिए।

आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, देशकालिक एवं सैनिक तत्वों से समन्वित सुरक्षा की अर्थयुक्त परिभाषा सुरक्षा नीति के निर्धारण में एक विश्वसनीय राजनैतिक–सामाजिक–आर्थिक विकल्प प्रस्तुत कर सकेगी बजाय इसके कि शुद्ध सैन्य संसाधन प्रयोग में लाये जायं। जब तक हमारे पास गतिशील एवं बीच–बीच में होने वाले परिवर्तन (शुद्धिकरण) को आत्मसात करने वाली एक ठोस राष्ट्रीय सुरक्षा स्त्रातेजी नहीं होगी तब तक यह अत्यन्त तीव्र परिवर्तनशील चक्र हमारे लिए गम्भीर एवं दूरगामी परिणाम देने वाला होगा। इस संदर्भ में हमें रौबर्ट मैकनमारा के मत को ध्यान में रखना चाहिए जहां उन्होंने कहा है कि ''सुरक्षा सैन्य सुदृढ़ता नहीं है, यद्यपि इसे सम्मिलित किया जा सकता है और न ही सुरक्षा सैन्यबल है, यद्यपि इसे भी समाहित किया जा सकता है, सुरक्षा विकास है और जहां विकास नहीं वहां सुरक्षा भी नहीं है।''[11]

भारत के विशेष क्षेत्रों के संघर्षों के कारणों को रेखांकित करने के लिए एक सार्थक प्रयास होना चाहिए और तब ऐसे विश्लेषणात्मक साधन प्रस्तुत करने चाहिए जो किसी यथोचित समाधान की

दिशा दे सकें। परिवर्तन के सामान्य सिद्धान्त तथा संघर्ष के वर्गीकृत वैचारिक हल के लिए निर्मित विशिष्ट नीतियों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने का शायद ही कभी प्रयास किया गया हो। निम्नांकित प्रश्नों के रूप में कुछ उद्देश्यों का स्पष्ट वर्गीकरण किया जा सकता है–

1. भारत के विशेष राज्यों की न्यायोचित मांगों के विधिक/संस्थागत गुण एवं सांस्कृतिक अर्थ क्या है?
2. पिछले कुछ दशकों में भारत के कुछ भागों में उच्च प्रशासनिक व्यवस्था के स्तर में तीव्र गिरावट क्यों हुई है?
3. कानून एवं व्यवस्था के रख–रखाव तथा सम्बन्धित नीतियों के क्रियान्वयन को लोक सेवा के संगठन किस प्रकार प्रभावित करते हैं?
4. 'आर्थिक सुधारों' की नीति ने कानून एवं व्यवस्था को कैसे प्रभावित किया है?
5. जाति, भाषा, धर्म, जनजातीय तथा क्षेत्र के आधार पर सामाजिक संशक्तिशीलता (लामबन्दी) तथा राजनीतिक संगठन किस प्रकार राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करते हैं?
6. भारत में घरेलू राजनीति किस प्रकार राजनैतिक व्यवस्था को प्रभावित करती है?

देश के विभिन्न भागों की वास्तविक दशाओं के विशेष ढांचे के फलस्वरूप राजनैतिक अटकलबाजी तथा सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन की शक्तियों द्वारा लाई गई कार्यप्रणाली की समस्या के रूप में भारत में राजनीतिक संघर्ष तथा सामाजिक अस्थिरता की समस्या का क्रमबद्ध परीक्षण होना चाहिए न कि एक लाक्षणिक समस्या के रूप में। और तभी हम विवेकशील नीतियों तथा कार्यों में योगदान करने की आशा कर सकते हैं। साथ ही यदि इनका पूर्ण उन्मूलन नहीं तो समस्या को कमतर करने की आशा तो कर ही सकते हैं।

समाज विज्ञानी एवं नीति निर्माता को संयुक्त करने का सचेतन प्रयास समान रूप से होना चाहिए और तभी हम जनसाधारण के कल्याण के लिए सिद्धान्त एवं व्यवहार की संयुक्ति प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं और भारत में हम न्यायप्रिय एवं कल्याणकारी प्रशासन तथा सहयोग प्राप्त कर सकेगें।

कुछ स्वतंत्र (निष्पक्ष) परिवर्तन रेखांकित किये जा सकते हैं जो स्वयं अथवा किन्हीं अन्य कारकों के साथ इस दुरव्यवस्था के लिये उत्तरदायी है–

1. कानून एवं व्यवस्था सम्बन्धी प्रबन्ध– कौन लोग वास्तविक रूप में व्यवस्थापक हैं? वे किस प्रकार के वेतनभोगी, प्रशिक्षित, संचालित एवं राजनीतिक रूप से कार्य के प्रति उत्तरदायी होते हैं? राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा जिले स्तर पर संघर्षों के अदालती निस्तारण के क्या उपाय हैं?
2. पुनर्विभाजित नीतियाँ– लोगों के कार्य व्यवहार जो कभी–कभी विवेकहीन/दिशाहीन होते हैं, को नियंत्रित करने के लिए कौन से कानून बनाये जाते हैं? संदर्भित कानूनों से तात्पर्य विशिष्ट अपराधों से निबटने हेतु कानून, श्रम कानून, भूमि सुधार कानून, न्यूनतम मजदूरी कानून, कल्याणकारी कानून, वास्तविक भेदभाव के कानून आदि से है।
3. 'पवित्र विश्वासों' की संवैधानिक संस्तुति– ऐसे सुलझाये जा सकने वाले मूल्य यथा दलगत पहचान, वर्गभेद, धामिक आदर्श। भारत जैसे विभाजित समाज (विभिन्नताओं वाले समाज) वाले देश में विभिन्न समस्याओं के संवैधानिक हल के लिए सामुदायिक स्थायित्व का आधार तैयार करना।
4. उत्तराधिकार के नियम, नवगणमान्यों की भर्ती तथा राजनीतिक व्यवस्था– इसके अन्तर्गत परीक्षण किये जाने वाले परिवर्तनों में गणमान्यों की भर्ती के लिए चयन का तरीका तथा चुनाव आयोग द्वारा स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव कराने की प्रभावशीलता आते हैं।

5. प्रवसन की समस्या– भारतीय सुरक्षा के लिए बड़े स्तर पर प्रवसन तथा शरणार्थी एवं गंभीर समस्या बने हुए हैं। भारत ने विगत पाँच दशकों में (प्रवसन) एवं शरणार्थियों के कई दौर का सामना किया है। इसे रोका जाना चाहिए यथा संभव हो तो इसे उलटने का प्रयास करना चाहिए।
6. संस्थाएं– नई व पुरानी दोनों प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त बोझिल भारत की राजनीतिक संस्थाएं स्वयं को गहरे दबाव में पाती हैं। सुशिक्षित राष्ट्रवादी गणमान्य लोगों द्वारा प्रभावित प्रारम्भिक राजनैतिक व्यवस्थाएं अब वास्तव में बिखर रही है। उच्च स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण व्यवस्थापकों की प्रमाणिकता का धीरे–धीरे ह्रास हो रहा है। शासन करने की क्षमता का समझौता करने की क्षमता से उल्टे अनुपात में ह्रास हो रहा है।

कई विश्लेषकों द्वारा यह बताया गया है कि भारत में व्यवस्था के शासन के ह्रास का मुख्य कारण ''संस्था का विखण्डन'' रहा है परन्तु ऐसी वैकल्पिक नीति की अभी परिकल्पना करना कठिन है जो भारत में इस स्तर पर ''व्यवस्थित शासन'' की पुनर्स्थापना कर सके। संसाधनों की भयंकर कमी, केन्द्र पर राज्यों की बढ़ती निर्भरता तथा असमान विकास की दशा में संघर्ष सदैव होते रहेंगे। अन्त में, सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दे तथा जीवन स्तर में सुधार और आधुनिक स्तर से बहुत दूर गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले अधिकांश लोगों के जीवन स्तर का उत्थान अभी तक किसी की कार्यसूची (एजेंडे) में नहीं रहे हैं। इसलिए आय की विषमताओं में कमी तथा संतुलित क्षेत्रीय औद्योगिक विकास हमारी विस्फोटक स्थिति को कम कर सकता है।

उत्कृष्ट स्त्रातेजी से युक्त आर्थिक सुदृढ़ता आज के समय की मांग है, जो कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हमारे राष्ट्रीय हितों को सुरक्षित एवं संवर्धित करने के उद्देश्यों एवं उपायों को स्थापित करने सम्बन्धी निर्णय लेने की एक प्रक्रिया है।

मूलभूत मानव आवश्यकताओं को प्रदान करने, आन्तरिक सामंजस्य संरक्षित करने तथा देश में व्यवस्था स्थापित करने के लिए एक राष्ट्रीय स्त्रातेजी की तत्काल आवश्यकता है। इसके बिना सुरक्षा का विचार भ्रामक है। भारत की उपलब्धियों को सुनिश्चित करने के लिए एक समग्र सुरक्षा नीति बनाने में आन्तरिक सुरक्षा का दृष्टिकोण कानून व्यवस्था स्थापित करने तथा सीमाओं के संरक्षण के ऊपर होना चाहिए। इसमें उपरिलिखित ऐसे मुद्दों का समावेश करना चाहिए जो हमारे नागरिकों को भौतिक सुरक्षा के साथ–साथ अन्य आयामों की सुरक्षा भी सुनिश्चित कर सकें।

**सन्दर्भ :**

1. B.M. Jain, "South Asian Security : Problems & Prospetcts", New Radiant Publishers, New Delhi, 1985, p. 2.
2. Kenneth Twichett, "International Security : Reflections on Survival and Stability", Oxford University Press, London, 1971, pp. 4-5.
3. K. Subrahmanyam, "International Security and National Security", Strategic Analysis, April, 1984, p. 5.
4. Some of the significant works from this prespective are : David M. Abshire and Richard. V. Allen, ed., "National Security", New York, 1963; William W. Kaufmann ed., "Military Policy and National Security", New Jersey (N.J.) 1965; Gorden B. Turner and Richard D. Challener, "National Security in the Nuclear Age", London, 1960.
5. M. Berkowitz and P.G. Booke, "National Security", in David L. Shills, ed., International Encyclopaedia of the Social Sciences, London, 1968, Vol. II, pp. 41-45. Micheal Lonw defines National Security as the condition of freedom from external

physical threat. See his, ed. "National Security : Modern Approach" Pretoria, S.A. 1978, p. 2.

6. Walter Lippmann, "U.S. Foreign Policy : Shield of the Republic", Boston, Mass, 1943, p. 2.
7. Micheal Louw ed. "National Security : Modern Approach", Pretoria, S.A., 1978, p. 10. Such definition of National Security is also found in SIPRI, "Strategic Disarmament, Verification and National Security", London, 1977.
8. Frank N. Traeger and Frank T. Simonie, "An Introduction to the Study of National Security" in Frank N. Traeger and P.S. Koenberg, eds. "National Security and American Society : Theory, Process and Policy". Manhattan, 1973, p. 6. A similar exposition is found in Klaus Knorr, "National Security Studies : Scope and Structure of the field" in the same book, pp. 5-16.
9. Nils Orvik, "The Threat : Problems of Analysis", International Journal, Toronto, Vol. 26, No. 4, Autumn 1971, p. 675.
10. Dr. R. Rama Sastri, "Kautilya Arthshastra", Wesleyan Mission Press, Mysore, 1923, p. 10. Also see Hans. J. Morgenthou, "Politics among Nations", Albered A. Knof. Inc., New York, 1972, pp. 16-24.
11. Robert MacNamara, "The Essence of Security", London, 1968.

***

# सितार के विकास में भारत रत्न पं. रविशंकर जी का योगदान

*प्रों पं. प्रेम कुमार मल्लिक* *
*सुमन यादव* **

**गीत वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतिमुच्यते।**

सितार की उत्पत्ति समुद्रगुप्त के काल में हुई इस मत का उल्लेख श्री उमेश जोशी ने अपनी पुस्तक भारतीय संगीत का इतिहास में किया है।

डा. लालमणि मिश्र ने इसके बारे में कहा है कि ''सितार का पूर्व नाम त्रितन्त्री वीणा था, किन्तु जब हिन्दु संगीतज्ञ मुसलमान बनाए जाने लगे तब उनकी जुबान भी हिन्दी से उर्दू हो गई तथा उन्हें संगीत के उच्चारण कठिन प्रतीत होने लगे। इसलिए मुसलमान उस्तादों ने त्रितन्त्री का तर्जुमा कर उसे सहतार या सितार का नाम दे दिया।

सितार का विकास लगभग 17वी शताब्दी में होना शुरु हुआ। सातवीं से तेरहवीं शताब्दी तक भारत में एक तन्त्री तथा किन्नरी वीणा का सर्वाधिक प्रचार था। एक तन्त्री सारिका रहित तथा किनरी वीणा सारिकायुक्त वीणा थी।

महान संगीतज्ञ तानसेन के वंशज दो भाईयों–इमरत सेन और निहाल सेन–ने सितार के विकास में काफी योगदान दिया उन्होंने सितार के तीन तारो में दो तार और जोड़ दिया। इस तरह तारो की संख्या पाँच हो गई यह तार इस क्रम में मिलाए जाते थे–म–सा–प सा (खरज) सा एक सप्तक ऊँचा। इसका उददेश्य तारो को मिलाने का आधार तैयार करना था। इन दोनों भाइयों ने सितार में एक और तुम्बा लगा दिया, इसी अवधि में सितार का एकांकी वादन वाद्य के रुप में प्रयुक्त होने लगा। इसके पूर्व इसका प्रयोग संगति वाद्य के रुप में किया जाता था।

सितार को लोक प्रिय बनाने में दो संगीतज्ञ ने बहुत बड़ा नाम किया है। मसीत खां एवं रजा खां, इनको मसीत खानी एवं रजाखानी गतें प्रसि0 हैं। सितार के विकास में उनका योगदान न केवल तकनीकी, इसके अलावा संगीत रचनाकारों के रुप में उन्होंने सितार को अविस्मरणीय प्रतिष्ठा प्रदान की। उन्होंने दूसरा तुम्बा हटा दिया और कुछ परदो की संख्या को बढ़ा दिया अब सितार में 23 परदो का सितार अचल थार में विकसित हो गया। सन् 1900 के आते–आते सितार में पांच बड़ी और दो क्षुद्र तन्त्रियों का प्रचलन सर्वमान्य हो गया था। जो क्रमशः म–सा–सा–प–प–सा–सा में मिलाया जाते थे।

इसके पश्चात् इमदाद खां के साथ सितार वादन में एक नवीन 'गतशैली' का विकास हुआ। इस महान कलाकार ने राग को पेश करने में मीण्ड के महत्व और गुण पर पूर्ण बल दिया।

मसीत खां रजा खां के युग में चल ठाठ के 23 परदों के प्रयोग मीण्ड का क्षेत्र कम था। इमदाद खाँ साहब ने परदों की संख्या घटा कर 19 की इस प्रकार संतुलन की पुनः स्थापना की दिशा में प्रथम कदम उठाया। उन्होंने सितार पर 4 स्वरों की मीण्ड और सुरबहार पर 7 स्वरों की मीण्ड का प्रदर्शन किया था, साथ ही सितार के इस विकास क्रम को आगे बढ़ाते हुए इमदाद खाँ साहब ने सितार में तरब के तार जोड़ने का महत्वपूर्ण योगदान दिया। इससे सितार वादन में ध्वनि की गूँज में ठोस वृद्धि हुई और स्वर की ध्वनि अधिक समय तक कायम रखने में सहायता मिल गई तरब के तारों की संख्या 11 होती है, और उन्हें किसी विशिष्ट राग में प्रयुक्त स्वरों के अनुसार मिलाया जाता है।

इमदाद खाँ के पुत्र इनायत खाँ ने सितार में मुख्य तुम्बे को गोल बनाकर तथा पुनः दूसरा तुम्बा जोड़कर अपने वंश की अविष्कार परम्परा को आगे बढ़ाया।

वर्तमाान समय में सितार देश का सर्वाधिक प्रचलित वाद्य है। इस वाद्य के अनेक कलाकार देश में मौजूद है आज कल के प्रमुख सितार वादकों में भरतरत्न पं0 रविशंकर जी तथा 'अफताबे

---

* शोध निर्देशक विभागाध्यक्ष संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
** शोधार्थी (SRF) संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सितार' उस्ताद विलायत खाँ ने भी सितार पर नया आविष्कार किया तथा सितार में 7 तारों के स्थान पर पुनः 6 तार कर दिये। इन्होंने जोड़ी के तारों में से एक तार कम कर दिया तथा पीतल के इस्पात के पंचम की तंत्री को लगा दिया है। इन दोनों इस्पात के पंचम की तन्त्रियों से राग में स्वर संवाद बनाकर तार मिलाए जाते है।

पं0 रविशंकर उस्ताद अलाद्दीन खाँ साहब जी प्रमुख शिष्य विश्वविख्यात सितार वादक पं0 रशिंकर जी का जन्म 7 अप्रैल 1920 को बनारस में हुआ था।

सन् 1930 में रविशंकर जी अपने बड़े भाई श्री उदयशंकर जी के नृत्य दल के साथ पहली बार विदेश यात्रा पर गये। इसी दल के साथ रहकर रविशंकर जी ने कथक एवं कथक कली नृत्य का विधिवत प्रशिक्षण लिया।

सन् 1938 में पं0 रविशंकर जी ने उलाद्दीन खाँ से शिक्षा ग्रहण करने के लिए मैहर आ गये। मैहर में ही रहकर पं0 रविशंकर जी ने 7 वर्षों तक अलाउद्दीन खाँ से शिक्षा प्राप्त की। प्रातः 4 बजे से 6 बजे तक ये अलंकार पलटों का अभ्यास करते थे। उसके बाद दो तीन घण्टे सीखते थे। खाँ साहब अपनी संगीत शिक्षा ग्रहण करने के विषय में रविशंकर जी ने लिया है–प्रारम्भा में अधिकतर बाबा मुझे अकेले ही सिखाया करते थे लेकिन बाद में अली अकबर भाई व कभी–कभी अन्नपूर्णा भी सीखती थी। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, पं0 रविशंकर जी को गाकर सीखाते थे। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ गम्भीर प्रकृति की राग जैसे ललित, मुलतानी, यमन कल्याण, विहाग, मियां की मलहार दरबारों कान्हड़ा, तीन से चार घण्टे तक सीखाते थे।

पं0 रविशंकर जी जब संगीत की शिक्षा लेते थे तभी से सितार में परिवर्तन करना शुरू कर दिये थे जैसे उस्ताद अलाउद्दीन खाँ जब सरोद से बजाकर बताते थे। तो रविशंकर जी के लिए सीखना कठिन होता था। तो रविशंकर जी ने अपने सितार की ट्यूनिंग ऐसी कर ली कि सितार और सरोद एक साथ बजे सके। परिवर्तन का यह सिलशिला शुरु हुआ।

पं0 रविशंकर जी के मन में यह विचार रहता था कि सितार में भी जोड़ी के तार के अतिरिक्त भी मंद्र सप्तक में बजाने की पूर्ण स्वतंत्र होनी चाहिए, जोड़ी का तार वैसे भी टाइट होता है। उसमें मीड़ का काम नहीं हो पाता है। पं0 रविशंकर जी सुरबहार वाद्य से बहुत प्रभावित थे। क्योंकि अतिमन्द्र सप्तक में बजाने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। पं0 जी उस समय के दो प्रसिद्ध सितारिया रामेश्वर पाठक व लखनऊ के श्री युसूफ अली खाँ के सितार वादन से बहुत प्रभावित थे, क्योंकि वे लोग अपने सितार में पंचम का तार (लरज का तार) प्रयुक्त करते थे। रामेश्वर पाठक का सितार थोड़ा बड़ा था। पं0 रविशंकर जी ने उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के छोटे भाई आयत अली खाँ जो कि सुरबहार वादक भी थे, लेकिन उन्होंने ब्राह्मण बाड़ियां में वाद्यों की दुकान भी खोल ली थी, उनसे रविशंकर ने एक सितार बनवा जिसमें पंचम (लरज का तार) लगा कर दिया, और थोड़ा तुम्बा भी बड़ा था। दूसरा सितार रविशंकर ने कलकत्ता के कन्हाई बाबू से बनवाया। लेकिन रविशंकर ने पहले ही समझा दिया था कि लरज (पंचम) तार ऐसा तार सितार में चाहिए कि जिस पर मींड खीची जा सके। उन्होंने कई मॉडल बनाया और अन्त में रविशंकर जी जैसा चाहते थे, वह तैयार हो गया।

द्रुततान में लरज (पंचम) के जोर से बजने के कारण रविशंकर ने हुक का प्रयोग कर दिये और अन्त में रविशंकर ने श्री नोदूमल से बनवाया और रविशंकर जी उन्हीं का बनाया हुआ सितार बजाते थे।

रविशंकर जी को सितार वादन मुख्य विशेष्ता यह था कि भावपक्ष व कलापक्ष का समन्वय था किसी भी राग को गहराई से प्रस्तुत करने व उसमें अपनी कल्पना शक्ति से स्वर विस्तार, जोड़ के कार्य में उनकी विशेषता, सितार के लरज खरज के तार का प्रयोग व उस पर मींड का प्रयोग सर्वप्रथम रविशंकर ने ही प्रारम्भ किया था, इस प्रकार रविशंकर जी ने सितार पर सभी अंग के वादन जैसे अलाप, जोड़अलाप, झाला, ठोंक झाला, मसीत खानी गत, द्रुपगत, तान, तिहाइयां लड़लपेट जमजमा कृन्तन, घसीत तारपरन झाला जैसे एक सुव्यवस्थित क्रम विकसित किया।

**निष्कर्ष**–उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि पं0 रविशंकर जी का सितार में योगदान अदभूत है। उन्होंने जब सितार सीखना प्रारम्भ किया, तभी से उन्होंने सितार में परिवर्तन शुरु कर दिया, क्योंकि उनके गुरु उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब पं0 रविशंकर जी को सितार की शिक्षा सरोद के माध्यम से दिया करते थे। इस लिए उन्होंने सितार को सरोद की तरह मिलाना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार रविशंकर जी ने सितार में अनेक परिवर्तन किया लरज खरज का तार, अलापचारी का प्रयोग, दूसरे तुम्बा का प्रयोग बीन अंग के सितार वादन शैली का विकास इस वादन शैली को विश्वविख्यात कर दिये। भारतीय शास्त्रीय संगीत जगत पं0 रविशंकर जी का सदैव ऋणी रहेगा।


| | पुस्तक का नाम | लेखक | प्रकाशन | पृष्ठ सं0 |
|---|---|---|---|---|
| 1. | भारतीय संगीत के उन्नायक उस्ताद अलाउददद्दीन खाँ | डॉ0 जैन प्रभा | मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादमी भोपाल | 61 |
| 2. | मैहर घराने की संगीत परम्परा | डॉ0 वर्मा संजय कुमार | बी–33/33ए–1 न्यू साकेत कालोनी बी0एच0यू0 वाराणसी | 103 |
| 3. | जहान ए सितार सितार वाहन की विभिन्न शैलियां का उद्भव एवं विकास | बी0एस0 राय सुदीप | कनिष्क प्रब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली | 47 |
| 4. | भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण | डा0 शर्मा स्वतंत्र | स्वर गंगा 78ए, जीरो रोड चौराहा, इलाहाबाद | 230 |
| 5. | भारतीय संगीतवाद्य | डा0 मिश्र लालमनि | भारतीय ज्ञानपीठ 18, इंस्टीयूशनल एरिया, लोदी रोड नई दिल्ली–03 | 132 |
| 6. | हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तन्त्र वादन शैलियां | डा0 मृगुवंशी रचना | | 95 |
| 7. | My Music my Life | Shankar Ravi | Vikash Publishing House P.V.T.-5, Ansari Road New Delhi | |

**पत्रिका**

1. संगीत के महान रत्न
2. संगीत कला विहार जीवनी विशेषांक मई 2013
3. संगीत कला विहार 2014
4. संगीत कला विहार सितम्बर 2013


***

# मिर्जा गालिब का जीवन दर्शन

*डॉ. दिनकर त्रिपाठी* *

27 दिसम्बर 1797 को आगरा में जन्मे ''मिर्जा गालिब'' का मूल नाम मिर्जा असदउल्ला बेग खान था। मिर्जा गालिब के पूर्वज तुर्की से आये थे जो पहले समरकन्द और फिर दिल्ली के शासक शाह आलम के समय भारत में बसे। उर्दू शायरी के उस्तादों में गालिब सबसे अलग महानतम थे। उन्होंने ग्यारह–बारह बरस में पहला शेर लिखा था। जो कि उर्दू दीवान का पहला शेर था–

**नक्श फरियादी है, किसकी शोखिए तहरीर का।**
**कागजी है पैरहन, हर पैकर–ए–तस्वीर का।।**

वे सही मायनों में सार्वलौकिक कवि हैं। गालिब के अंदाज–ए–बयां में खास तरह की परिपक्वता और विविधता है। वास्तव में गालिब वह नाम है जिसे न उर्दू–फारसी से सीमित किया जा सकता है और न भारतीय उपमहाद्वीप की भौगोलिक सीमाओं से। गालिब गैर नहीं हैं, अपनों से अपने हैं। मिर्जा गालिब की बोली ही आज हमारी बोली हैं ऐसा कहने वाले प्रसिद्ध कवि त्रिलोचन आज के हिन्दी कवियों में अकेले नहीं हैं।

अभिव्यंजना गालिब की शायरी की एक खास प्रकृति है। मिर्जा गालिब कविता का वह व्यक्तित्व हैं जिसे लोग न जानते हुए भी जानते हैं और जानते हुए भी नहीं जानते। लेकिन जब भी कोई गालिब को जानने की कोशिश शुरू करता है तो वह उन्हें कभी अत्यधिक दुरुह पाता है कभी अत्यधिक सरल, लेकिन जैसे–जैसे गालिब की कविता पढ़ने वाले को अर्थ देती जाती है वैसे–वैसे वह कभी चकित होता है, कभी भ्रमित और कभी विस्मित। दरअसल गालिब सबसे पहले एक बहुत ही संवेदनशील इंसान थे। इसलिए जिंदगी की हर जद्दोजहद में हर अच्छे– बुरे वाकये से वे सुख–दुःख का अनुभव करते थे। उनकी अनुभव की प्रतीति इतनी गहरी होती थी और अभिव्यक्ति इतने मार्मिक कि गालिब अनायास ही बड़े हो जाते थे। उनका मार्मिक एक शेर देखिए–

**''रगों में दौड़ते–फिरने के हम नहीं कायल**
**जो आंख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है।**
**हर एक बात में कहते हो तुम के तू क्या है?**
**तुम्हीं कहो कि ये अंदाज ए गुफ्तगू क्या है?''**

गालिब उस सर्वशक्तिमान के आगे झुकते थे जो अचल होते भी सब चीजों को संचालित करता है और जो सर्वज्ञान का अज्ञात स्त्रोत है। वे कहते हैं कि मैं एक ईश्वर को मानता हूं। सभी सम्प्रदायों का निषेध मेरा धर्म है। जब सभी सम्प्रदाय मिट जाते हैं तो मेरी सच्ची निष्ठा बन जाती है। वे कहते हैं–

**हम मुवाहिद हैं हमारा केश है तर्के रसूम**
**मिल्लतें जब मिट गयीं जज्बा–ए–ईमां हो गयीं।**

मिर्जा गालिब मानते थे कि सबसे बड़ा दुर्भाग्य जीवन की वास्तविक त्रासदी व्यक्ति की आत्मचेतना है क्योंकि यह ब्रह्मांडीय चेतना से उसे अलग कर देती है। मन को छू जाने वाले अवसाद के स्वर में वे कहते हैं वे कहीं ज्यादा खुश होते, अगर उन्हें अपने ईश्वर से अलग–थलग न करके वैयक्तिकता के संकीर्ण बंधन में न जकड़ दिया गया होता। उनकी शिकायत है–

**'न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता।**
**डुबाया मुझको होने दे, न होता मैं तो क्या होता।'**

दरअसल उन्नीसवीं सदी में गालिब पहले ऐसे उर्दू शायर थे जिन्होंने स्थापित सामाजिक व धार्मिक मान्यताओं पर अपनी गजलों में प्रश्न चिन्ह लगाया। स्पष्ट है कि अपने समय से आगे देखने वाले गालिब के विचार पुरातन समाज को अच्छे नहीं लगे परन्तु गालिब ने उनकी चिंता नहीं की तथा

---

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, फीरोज गॉधी कॉलेज, रायबरेली

अपनी काव्य साधना में संलग्न रहे। गालिब ने जन्नत (स्वर्ग) की पुरातन मान्यता पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए कहा–

**'हम को मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन**
**दिल को खुश रखने को गालिब से ख्याल अच्छा है?'**

उर्दू का यह मानवतावादी शायर काबा और कलेसा (पूजा स्थल) दोनों का सम्मान करता था और हिन्दू व इस्लामी दर्शन दोनों से प्रभावित था। कोई बात हिन्दुओं की अच्छी लगती थी तो कोई सिद्धांत मुसलमानों का गालिब को पसंद था। अपनी इसी मानसिक स्थिति और कश्मकश का चित्रण गालिब ने इन शब्दों में किया है–

**ईमां मुझे रोके है, जो खींचे है मुझे कुफ्र,**
**काबा मेरे पीछे है कलेसा मेरे आगे।**

गालिब को मुख्य रूप से उर्दू ग़जल में प्रसिद्ध हैं। गालिब जी स्वयं अपने बारे में भी लिखा है कि दुनिया में बहुत सारे शायर मिलेंगे पर मुझ जैसा कोई नहीं अर्थात् मेरा हर चलन निराला है। इस पर गालिब जी ने कहा है कि–

**है और भी दुनिया में सुखनवर बहुत अच्छे**
**कहते हैं कि गालिब का है अंदाज–ए–बयाँ और**

मिर्जा गालिब की अनेक कृतियाँ हैं जो इस प्रकार हैं:–

**दीवाने गालिब (उर्दू) –** इसमें उर्दू के शेर हैं।
**'मैखाना–ए–आरजू'**– यह फारसी का काव्य संकलन है। गालिब के जीवन काल में इसके दो संस्करण प्रकाषित हुए।
**'पंज–आंहग'–** इसमें गालिब द्वारा फारसी में लिखे पत्रों का संग्रह है।
**मेहरे नीम रोज**– तैमूर वंश का यह इतिहास 1854 में प्रकाशित हुआ। इसमें तैमूर से बाबर तक का इतिहास दर्ज है।
**कादिरनामा**– यह फारसी का काव्य संग्रह है।
**दस्तंबो**– इसे गालिब का रोजनामचा या डायरी भी कहते हैं। इसमें प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दौरान दिल्ली में 11 मई 1857 से 31 जुलाई 1857 के बीच घटी घटनाओं का उल्लेख है।
**काते बुरहान**– प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दौरान इसे लिखा गया।
**कुल्लियात–ए–नसर फारसी**– यह फारसी का गद्य संकलन है।
**अब्र गहर बार**– इसमें मसनवियों का संग्रह है।
**अदेहिन्दी**– यह उर्दू के पत्रों का संकलन है।

गालिब की शायरी उनके जीवन का दर्पण भी है। वह मृत्युपर्यन्त आर्थिक परेशानियों में फँसे रहे, इश्क भी किया, समाज के ठेकेदारों से भिड़े भी, जेल भी गये, बादशाह और नवाबों की दरबारदारी भी की परन्तु स्वाभिमान और अपनी सोच पर आंच नहीं आने दी। गालिब ने कठिनाइयों से कभी हार नहीं मानी। उनकी शायराना महानता का एक रहस्य यह भी है कि घोर आपदाओं और दुःखों में भी वह आशावादी रहे।

**सन्दर्भ :**

1. राष्ट्रीय सहारा– 9 जनवरी 1999 (हस्तक्षेप)
2. अली सरदार जाफरी (सम्पादक), दीवान–ए–गालिब, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, ISBN- 978-81-2870527-6
3. www.epustakalay.com
4. नसीम अब्बासी–दीवाने–गालिब, सम्पूर्ण व्याख्या सहित, गालिब एकाडेमी 2021,
5. देवेन्द्र मॉझी (सम्पादक)– मिर्जा गालिब की चुनिंदा शायरी
6. सलीम आरिफ– तेरा बयान गालिब, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2016
7. कलीम आनन्द, दीवान ए गालिब, तृतीय संस्करण, मनोज पब्लिकेशन, 2009

***

# महात्मागाधी और एनी बेसेण्ट का भारतीय  शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान

*निरंजन सिंह* *

**शोध परिकल्पना :**

चूँकि यह शोध दार्शनिक विधि द्वारा किया जाएगा, इसलिए इस पर शोध परिकल्पना नहीं की जा सकती है।

**संबंधित साहित्य का अवलोकन :**

डॉ० मानवलय राजीव (2011) के अनुसार गाँधीजी ने बालक में तर्कशक्ति तथा शारीरिक संवेगात्म तथा आध्यात्मिक विकास के साथ ही मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी मानना ही शिक्षा के मुख्य उद्देश्य पाना है। एनी बेसेण्ट के अनुसार (त्यागी गुरुशरण दास, 2010) "शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ऐसा अवसर सुलभ कराना है कि बालक के अवतरित गुणों में वृद्धि हो और इस प्रकार विकास हो कि शिशु पूर्ण पुरुषत्व को प्राप्त कर सके।"

लाला लाजपत राय ने एनी बेसेंट का हवाला देते हुए कहा कि–"Indian education must be controlled buy Indians, shaped by Indias, carried by Indians."

एक विदेशी महिला द्वारा इस तरह की बात करना अपने आप में विस्मयकारी है (British ideas are good for Britain, but is Indians ideal that are good for Indian) Op.cit.

डॉ० विपिन चन्द्र पाल ने डॉ० एनी बेसेंट के विषय में कहा है कि–"डॉ० बेसेंट एक व्यक्तित्व ही नहीं अपितु एक विचार थीं। वास्तव में यह विचार ही नहीं एक आदर्श भी थीं। वह एक महान विभूति थीं। उन्होंने अपना समस्त जीवन मानवता की सेवा में उत्सर्ग कर दिया था। उनका व्यक्तित्व आकर्षक एवं बहुमुखी था।"

डॉ० एनी बेसेन्ट ने अपनी पुस्तक "इण्डिया बाण्ड ऑफ फ्री" में शरीर को प्रशिक्षित करना, संवेगों को प्रशिक्षित करना, मस्तिष्क का विकास एवं नियंत्रण करना तथा मनुष्य को एक स्वतंत्र एवं आध्यात्मिक मानव बनाना बताया है। डॉ० एनी बेसेण्ट ने उनके शिक्षा के उद्देश्य सामान्यतया शारीरिक विकास करना संवेगात्मक बौद्धिक विकास, आध्यात्मिक विकास तथा व्यक्ति को एक सामाजिक आध्यात्मिक प्राणी बताया है।

दूबे रमाकान्त के अनुसार महात्मा गाँधी एवं एनी बेसेण्ट का शैक्षिक विचार आदर्शवाद एवं प्रयोजनवाद में अनुप्राणित है। दोनों ही भारतीय राष्ट्रीयता के पोषक एवं भारतीय परिस्थिति के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था बनाने के पक्षधर थे।

गाँधीजी ने कहा है (हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, 1857), शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्तों में एक सिद्धान्त यह है कि समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इसकी रचना की जानी चाहिए।

**शोध विधि**

प्रस्तुत शोध में निम्नलिखित तत्वों को शामिल किया जायेगा –

---

* शोधार्थी, शिक्षा विभाग, बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

(क) तर्कशास्त्र (Logic)

(ख) तत्व मीमांसा (Metaphuysics)

(ग) ज्ञान की मीमांसा (Apistemology)

**प्रदत्तों के स्त्रोत**

प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्त तथ्यों के संकलन के लिए निम्नलिखित स्त्रोत का उपयोग किया जायेगा :

**प्रथम स्त्रोत :**

1. महात्मा गाँधी द्वारा लिखित पुस्तकों एवं लेखों का अध्ययन।
2. एनी बेसेन्ट द्वारा लिखित पुस्तकों एवं लेखों का अध्ययन।

**द्वितीय स्त्रोत :**

1. महात्मागाँधी पर लिखी गई पुस्तकों का अध्ययन।
2. एनी बेसेण्ट पर लिखी गई पुस्तकों का अध्ययन।

**संदर्भ :**

1. डॉ० बिपिनचन्द्र पाल : आइडियल इन इंडियन एजुकेशन
2. नायडू, सरोजिनी : आधुनिक भारत का इतिहास, गाँधी शांति प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1965
3. आर०टी०ई०, 2009-एम०एच०आर०डी०, नई दिल्ली, 2009
4. Mrs. Annnie Besan quoted by Lala Lajpat Ray—The Problems of Indian Education in India, New Delhi
5. NCF, 2005- NCERT, New Delhi
6. डॉ० बेसेण्ट एनी, आइडियल इन एजुकेशन, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1970

***

# जैन दर्शन और पर्यावरण में सम्बन्ध

*अनिता यादव* *

*प्राचीन काल से ही भारत में प्रकृति के साथ मानव के सम्बन्ध सौन्दर्यतः एवं संजीवतः रूप में विकसित है। सम्पूर्ण वसुन्धरा पर भारत ही ऐसी भूमि है जहाँ प्रकृति के साथ सन्तुलन के साथ जीवन पर्यन्त चलने का संस्कार है। भारतीय संस्कृति व परम्पराओं में प्रकृति संरक्षण हेतु संदेश निहित है। जिस प्रकार हिन्दू धर्म का प्रकृति के साथ गहरा सम्बन्ध है उसी प्रकार जैन धर्म का प्रकृति के साथ अटूट रिश्ता है, अर्थात् पर्यावरण जैन धर्म एवं जैन दर्शन का अभिन्न अंग है। जैन धर्म एवं जैन दर्शन की जीवन पद्धति वैज्ञानिक है। समस्त भारतीय दर्शन किसी न किसी रूप में प्रकृति के साथ गहरा सम्बन्ध स्थापित करते हैं। क्योंकि प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक ऋषि–मुनियों को प्रकृति की शक्ति का ज्ञान था इसलिए शास्त्रों एवं ग्रन्थों में पर्यावरण संरक्षण हेतु उपदेश प्राप्त होते हैं और प्रकृति तथा मानव के मध्य अति प्रेम का सम्बन्ध प्राप्त होता है। प्रकृति पूज्यनीय है ऐसा प्रतीक प्राप्त होता है।*

**पर्यावरण क्या है?**

पर्यावरण का तात्पर्य 'वातावरण' है या वह स्थान जो हमें चारों ओर से अपने अंक में घेरे हुए है। अर्थात् प्राकृतिक वातावरण ही पर्यावरण का अभिप्रायः है। प्राकृतिक वातावरण का व्यापक अर्थ है, जिसके अन्दर समूचा जैविक तथा अजैविक जगत सम्मलित है। वस्तुतः पर्यावरण भूमि, जल, वायु, जंगल, नदियाँ और पर्वतों से संबद्ध है। देखा जाय तो कहीं न कहीं हमारी संस्कृति जीवन और धर्म के साथ प्रकृति से शत–प्रतिशत साम्यता रखती है।

यदि पर्यावरण का आशय साधारण सन्दर्भ में देखें तो पाया जाता है, कि ''पर्यावरण एक सार्वजनिक विरासत'' है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है, कि प्रकृति के साथ मनमाना व्यवहार किया जाय।

''यह एक मिथ्या दृष्टिकोण कतिपय धार्मिक विचारकों ने लोगों के मन में भर दिया है कि प्रकृति के सारे तत्व उनके भोगोपभोग के लिए ईश्वर ने बनाये हुए हैं, इसलिए उन्हें तहस–नहस करने का उनको पूरा अधिकार है।''[1] यही धारणा पर्यावरण असन्तुलन का केन्द्र बिन्दु है। जहाँ से उपभोगवाद का जन्म होता है। जबकि पर्यावरण अर्थात् प्रकृति के भी अपने अधिकार है, संवेदना हैं। प्रकृति ने माँ की भाँति निःस्वार्थ भाव से अपने कर्तव्यों का वहन करती आ रही है।

मानव समाज का भी कर्तव्य होता है कि प्रकृति के साथ माँ जैसा व्यवहार करें। क्योंकि आचार्य उमास्वाती के अनुसार ''परस्परोपग्रहो जीवानाम्''[2] जीवन का मूलभूत स्वर है। अर्थात् परस्पर (एक–दूसरे) का सहायक होना (निमित्त होना) जीवों का उपकार है।''[3] और यही पारिस्थितिकी तन्त्र है।

**पर्यावरण का शाब्दिक आशय व परिभाषाएँ**

''पर्यावरण'' शब्द अंग्रेजी के Environment से और ment शब्द फ्रेन्च क्रिया Environ से बना है। जिसका तात्पर्य To Surround (आस–पास होना) है। अर्थात् सभी स्थितियाँ, परिस्थितिया जो मानव के साथ–साथ उसके इर्द–गिर्द रहने वाले सभी संजीव तथा निर्जीव घटक सम्मिलीत है।

**कुछ प्रमुख परिभाषाएँ :–**

**''हर्ष के अनुसार :** पर्यावरण उन समस्त बाह्य दशाओं और प्रभाव का योग है, जो प्राणी के जीवन एवं विकास को प्रभावित करते हैं।

**ए0फिटिंग :** जीव की परिस्थिति के समस्त तत्व या घटक मिलकर पर्यावरण कहलाते हैं।

**डगलस व हॉलैण्ड के अनुसार,** पर्यावरण अथवा वातावरण वह शब्द है, जो समस्त बाह्य शक्तियों, प्रभावों और परिस्थितियों का सामूहिक रूप से वर्णन करता है, जो जीवधारी के जीवन, व्यवहार तथा अभिवृद्धि, विकास तथा प्रौढ़ता पर प्रभाव डालती है।

---

* शोध छात्र, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**पर्यावरण विज्ञान के उद्देश्य**

प्रकृति में अस्तित्वान सभी जैविक और अजैविक तत्वों में एक सामुदायिक सम्बन्ध रहता है। जिसमें सभी साथ–साथ रहते हैं और प्रकृति में उपस्थित उसके सभी संसाधनों का उपभोग करते हैं जिस कारण प्रकृति में संयोजन, वियोजन, विनाशकारी इत्यादि जैसी घटनाएँ घटित होती है। सभी घटनाओं का प्रभाव सम्पूर्ण वातावरण पर लाभकारी व हानिकारक रूप में पड़ता है तो इस प्रकार से प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण हेतु और पर्यावरण प्रदूषण के संरक्षण हेतु स्थितियों और परिस्थितियों का वैज्ञानिक पद्धति में अध्ययन करना अति आवश्यक है। पर्यावरण अध्ययन में केवल प्रकृति का ही अध्ययन नहीं होता बल्कि मानव समाज की संस्कृति ही पर्यावरण अध्ययन का आधार होता है। क्योंकि ''प्रकृति ही एक ऐसा तत्व है जो अपना भोजन स्वयं बनाती है। सभी शाकाहारी प्राणी प्रकृति की गोद में फलते हैं और एक दूसरे को समाप्त करते हुए अपना जीवन यापन करते हैं।''[4]

**पर्यावरण अध्ययन का दायरा**

जैन दर्शन इस बात का द्योतक है कि किसी भी तत्व के सभी पहलुओं को नहीं जाना जा सकता। अर्थात् पर्यावरण अध्ययन का क्षेत्र निश्चित कर पाना सहजन नहीं होगा। वैज्ञानिक अध्ययन का महत्व अत्यधिक प्रिय व विश्वसनीय होने के कारण सभी समस्याओं का निजात विज्ञान को ही माना जाने लगा है, जबकि सभी समस्याओं की नींव ही वैज्ञानिक जगत है। इस आधार पर प्रदूषण का कारण ही उसका अध्ययन क्षेत्र है–

1. वनस्पति जगत
2. पशु–पक्षी जगत
3. जनसंख्या वृद्धि
4. उत्पादन संस्थाएँ
5. जल, मिट्टी, हवा

अर्थात्

1. भौतिक
2. जैविक
3. रासायनिक
4. सामाजिक

**पर्यावरण और जैन दर्शन में सम्बन्ध**

विज्ञान की बढ़ती लोकप्रियता तथा विश्वसनीयता ने धर्म को जीवन के निषेधात्मक पक्ष के रूप में लाकर स्थित कर दिया है और मिथ्या दृष्टि ने धर्म को अन्धविश्वास की कसौटी सिद्ध कर दिया है। अतः लोगों को ऐसा अनुभव होने लगा कि धर्म जीवन को कष्ट में डालता है। इस आधार पर भोगवादि, उपयोगवादी जीवन दृष्टि का विकास हुआ। परन्तु आदिकाल से अवलोकन या विश्लेषण किया जाय तो ऋषियों, महर्षियों की जीवन शैली प्रकृति के साथ समन्वयात्मक दृष्टिकोण के साथ–साथ वैज्ञानिक पद्धति का भी समावेश प्राप्त होता है, न कि मात्र धर्म पर आधारित था। **'सम्यग्दर्शनचारित्राणि–मोक्षमार्गः।।1।।'** तत्वार्थसूत्र आचार्य उमास्वाती द्वारा प्रस्तुत सूत्र मानव को एक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यग्चारित्र का मार्ग प्रशस्त करता है जो एक सभ्य समाज, सभ्य पर्यावरण तथा सभ्य आचरण की स्थापना करता है। सम्यग्दर्शन तत्वों अर्थात् ब्रह्माण्ड के सभी तत्व जैविक व अजैविक आदि अतः प्रत्येक तत्व के प्रति श्रद्धा अथवा उस तत्व का सत्य ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् उस पर निश्चयपूर्वक विश्वास करना सिखाता है। जो वैज्ञानिक दृष्टि भी रखता है।'' और दूसरी तरफ विज्ञान ने जितना ही जीवन को सुखमय बनाने का प्रयास किया है, उसने उतना ज्यादा ही प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रकृति के सन्तुलन को बिगाड़ने का कारण बना है, क्योंकि प्रगति की होड़ में, विकास की अन्धाधुन्ध दौड़ में उसने प्रकृति को सिर्फ और सिर्फ उपयोग तथा प्रयोग करने की वस्तु समझा और पर्यावरण समस्या पर बीना चिंतन व अनुभव किये ही विकास योजनाओं का क्रियान्वयन करता रहा है। जो पर्यावरण की समस्या का केन्द्र है।

चूँकि जैन दर्शन की शैली वैज्ञानिक दृष्टि के साथ लौकिक, अलौकिक जगत सभी में विश्वास रखता है। आरम्भ से ही पर्यावरण के प्रति जैनों की दृष्टि चेतनवत है। ''महावीर की हिंसा की बात को आज प्रदूषण के रूप में पहचाना जा रहा है। शब्द तो समय–समय पर बदलते ही हैं, पर अर्थ शाश्वत है।''[5] अतः महावीर आज बहुत प्रासंगिक बन गए है, यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि महावीर सिर्फ आज (वर्तमान) ही प्रासंगिक नहीं है आगे भविष्य में भी निरन्तर अनादि काल तक प्रासंगिक सिद्ध होंगे क्योंकि केवल पर्यावरण संतुलन नहीं हर क्षेत्र में चाहे वह जैविक हो या अजैविक सभी में संतुलन अनिवार्य है। आध्यात्मिक, भौतिक, रासायनिक, सामाजिक आदि स्तरों पर भी संतुलन अनिवार्य है। जैसे–जल के रसायनिकरण $H_2O$ में हाईड्रोजन तथा ऑक्सीजन को संयुक्त होने का एक अनुपात है जो हाइड्रोजन के 2 अणु और 'आक्सीजन' के एक परमाणु के मिश्रण से बनता है। अर्थात् $H_2O$ को बनने में इसके यौगिक के अनुपात का संतुलन भी आवश्यक है। $H_2 + O = Water$

चूँकि श्वसन क्रिया में यदि ऑक्सीजन अनिवार्य तत्व है, तो कार्बनडाइ आक्साईड ($Co_2$) भी पौधों के श्वसन हेतु अनिवार्य है। $Co_2$ के अभाव में वनस्पति सुरक्षित नहीं है और यदि वनस्पति खतरे में है, तो प्राणी जगत स्वभावतः खतरे में होंगे। वायु में $Co_2$ भी एक प्रमुख तत्व है, और इसके साथ ही इनका यौगिक और भी प्रमुख है। कुछ मात्रा में $Co_2$ जल में घुली होती है, जो उपयोगी है, पौधों को अपना भोजन बनाते समय प्रकाश संश्लेषण के समय अतः प्रकाश संश्लेषण में जल में घुली हुयी $Co_2$ ही प्रयोग में लायी जाती है। परन्तु जल में $Co_2$ की मात्रा अत्यधिक हानिकारक भी हो सकता है, इस प्रकार संतुलन सुखमय सृष्टि अथवा प्रत्येक तत्व हेतु अपरिहार्य है। ''कुछ मात्रा में $Co_2$ जल में घुली होती है। यह अन्य तत्वों आदि के साथ संयुक्त होकर अनेक खनिज पदार्थों का निर्माण करती है। इनमें सोडियम, कैल्सियम आदि के Carbonates प्रमुख है।''[6]

आचार्य महाप्रज्ञ ने अपनी पुस्तक ''पर्यावरण समस्या और समाधान'' में प्रस्तुत किया है कि पानी भी एक सजीव है। एक तो वह स्वयं सजीव तत्व है, उसमें अपकार्य के स्थावर जीव पाये जाते हैं, तथा दूसरे उसके आश्रय में वनस्पतिकाय के स्थावर तथा त्रसकाय के द्वीन्द्रिय आदि जीव पलते हैं।''

यद्यपि जैनों ने सृष्टि का ऐसा कोई तत्व नहीं होगा जिसे चेतन (जीव) के स्तर पर न रखा हो। तत्वार्थ सूत्र उमास्वाती द्वारा विरचित ग्रन्थ से यह सिद्ध होता है कि जीवों का वर्गीकरण देखें तो यह स्पष्ट होता है कि जैनों की दृष्टि कितनी व्यापक व संवेदनशील है।

**जैन सन्दर्भ जीवों का वर्गीकरण :**

**संसारिणो मुक्ताश्च ।।10।।**[7]

अतः संसारी और मुक्त अवस्था की भेद से जीव दो प्रकार के है।

''संसारी जीव कर्म और शरीर से युक्त होते हैं। मुक्त जीव कर्म और शरीर से रहित होते हैं। इस प्रकार जो नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव गति रूप संसार में अष्टकर्मों में बँधे राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ में आसत् बार–बार जन्म–मरण करते हुए परिभ्रमणशील रहते हैं, वे संसारी जीव कहलाते हैं, और जो कर्मों से रहित, जन्म–मरण के बन्धनों से मुक्त होकर अविचल, अविनाशी, सुख में लीन हैं, वे मुक्त जीव (सिद्ध जीव) कहलाते हैं।''[8]

**समनस्काऽमनस्का ।।11।।**[9]

इस प्रकार संसारी जीव मनसहित और मनरहित दो प्रकार का होता है।

समनस्क (मनसहित)– ''जिन जीवों में मन होता है अर्थात् विचार करना, ऊहापोह करना, आदि शक्ति होती है वे समनस्क जीव होते हैं। और

अमनस्क (मनरहित)– ''जिनमें यह शक्ति नहीं होती है वे अमनस्क जीव कहलाते हैं।''[10]

**संसारिणस्त्रसस्थावराः ।।12।।**[11]

इस प्रकार आचार्य उमास्वाती अन्य सन्दर्भ में भी जीव (संसारी जीव) के भेद को सूत्रित किया है। जिसमें जीव के दो भेद है। एक त्रस जीव दूसरा स्थावर जीव। अतः ''त्रस नामकर्म के उदय से जिन जीवों के सुख–दुःख, इच्छा, राग, द्वेष आदि स्पष्ट दिखाई देते हैं, वे चलते–फिरते, गमन आदि क्रियाएँ करते हैं, त्रस जीव कहलाते हैं। इसी प्रकार स्थावर नामकर्म के उदय से जिन जीवों के राग,

द्वेष, सुख–दुख, गमन आदि भाव स्पष्ट न दिखाई देते हों एक ही स्थान पर रहने वाले हों, वे स्थावर जीव कहलाते हैं।[12]

**पृथित्यम्बुवनस्पतयः स्थावराः।।13।।[13]**

अतः पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय ये तीन स्थावर जीव हैं।इस प्रकार पृथ्वीकाय जीवों का औदारिक शरीर ही पृथ्वी होता है। इस प्रकार वनस्पतिकाय एवं अप्काय जीवों का औदरिक शरीर ही क्रमशः वनस्पति और जल होता है।

वनस्पतिकाय के दो भेद होते हैं–

1. **प्रत्येक वनस्पतिकाय** – जिनके एक शरीर में एक जीव होते हैं, वे प्रत्येक वनस्पति काय कहलाते हैं। फल, फूल, छाल, मूल, पत्ते, बीज आदि। भिंडी, आम, सेब आदि में जितने बीज हैं, उतने जीव हैं।
2. **साधारण वनस्पतिकाय** – जिनके एक शरीर में अनन्त जीव हों वे साधारण वनस्पतिकाय कहलाते हैं। भूमि के भीतर पैदा होने वाले सभी प्रकार के कंद, बीज से निकले हुए अंकुर, पाँच रंग की नील फूल, काई जो जल के ऊपर छाई रहती है, सफेद रंग की छत्राकार वनस्पति, अदरक, गाजर, छोटी मोगरी आदि।

पानी की एक बूँद में 36,450 त्रस जीव होते हैं।[14]

**तेजोवायु द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः।। 14।।[15]**

अतः तेज्सकाय, वायुकाय और द्वीन्द्रिय आदि त्रस है।चूँकि उमास्वाती द्वारा पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक, तेजोवायुकायिक को स्थावर एवं त्रस में विभाजित करते हैं। क्योंकि तेज और वायु के त्रस की गति होती है। परन्तु स्थानीका आदि ग्रन्थों में पाँचों स्थावर की ही श्रेणी में रखे गये हैं।

''तेज्सकाय एवं वायुकाय जीव का औदारिक शरीर क्रमशः अग्नि एवं वायु (हवा) है। त्रस जीव दो इन्द्रियों से लेकर पाँच इन्द्रिय तक होते हैं। पंचेन्द्रिय धारक जीव दो प्रकार के होते हैं। एक में मन होता है तथा दूसरे में मन का अभाव रहता है।''[16]

**संसारी जीवों के भेद**

| स्थावर (एकेन्द्रिय) | त्रस |
|---|---|
| • पृथ्वी<br>• जल<br>• अग्नि<br>• वायु<br>• वनस्पति<br>▪ साधारण (निमोदिया) एक शरीर अनेक जीव<br>▪ प्रत्येक एक शरीर एक स्वामी | • द्वीन्द्रिय– स्पर्श, रस–शंख, कृमि, सीप<br>• तीन्द्रिय– स्पर्श, रस, घ्राण–जूँ, चींटी<br>• चतुरिन्द्रिय– स्पर्श, रस, घ्राव, चक्षु– मक्खी, भौरा<br>• पंचेन्द्रिय– स्पर्श, रस, घ्राण, कर्ण–सर्प मनुष्य, बंदर। |

अतः तत्त्वार्थ सूत्र में प्रस्तुत सूत्र 10, 11, 12, 13, 14 में जीवों की व्याख्या व भेद से यह स्पष्ट होता है कि पर्यावरण परिवेश की चिन्तन व अध्ययन किस गहराई तक है। क्योंकि एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक (पर्वत, नदियाँ, पेड़, पौधे, सीप, फल, फूल, सब्जि, काई आदि) सभी को जीव की श्रेणी में रखा है। यदि सभी जीव हैं, तो हिंसा की सीमा अवश्य समिति होगी, जिससे पर्यावरण की सुरक्षा का पूर्ण ध्यान होगा। वैज्ञानिक दृष्टिकोण जैन दर्शन व जैन धर्म की परम्परा में ही समाहित है, क्योंकि कि आज विज्ञान मानता है कि हवा, पानी में अनगिनत वायरस मौजूद है, इस प्रकार यदि जैन सम्प्रदाय में श्वेत मास्क को धारण करने की परम्पा है इस पर विचार करें तो यह परम्परा आदि काल से चली आ रही है, क्योंकि जैन धर्म हवा को स्वयं जीव मानता है, और उसमें मौजूद सूक्ष्म जीव को भी। फिर आधुनिक काल में कुछ महामारी जैसी बीमारी के कारण विदेशों में मास्क का प्रचलन हुआ परन्तु आज

(वर्तमान) 2021 में जो महामारी संकट के कारण सम्पूर्ण विश्व में मास्क आवश्यक हो गया। जबकि हजारों सालों पहले जैनों द्वारा व्याख्यायित है, कि एक बूँद पानी में 36,450 त्रस जीव होते हैं!

''दशवैकालिक सूत्र का एक सूक्त है– 'पुढो सत्ता' अर्थात् प्रत्येक प्राणी की स्वतन्त्र सत्ता है। चाहे वह छोटा पौधा हो, चाहे वह कोंपल हो, चाहे वह छोटा पत्ता है, और चाहे वह छोटा सा अग्नि का कण है। सबकी स्वतन्त्र सत्ता है।''[17]

**तीर्थंकरों के प्रतीक व प्रकृति**

स्थानांग सूत्र के 1058 सूत्र में इस प्रकार के इस कल्पवृक्षों का उल्लेख आता है।

1. मत्तंग – मत – रस देने वाले
2. भृगांग – पात्र भाजन देने वाले
3. त्रुटितांग – आमोद – प्रमोद के निमित्त वाद्य देने वाले
4. दीपांग – प्रकाश के लिए दीपक के समान फल देने वाले
5. ज्योति – अग्नि की तरह ताप ऊढणता देने वाले
6. चित्रांग – विविध वर्णो के फूल देने वाले
7. चित्तरस – अनेक प्रकार के रस देने वाले
8. मणियंग – मणि, रत्नादि की तरह चमकदार आभूषणों को पूर्ति करने वाले
9. गेहागर – घर शाला आदि आकार वाले
10. अनग्न – नग्नता दूर करने वाले अर्थात् बल्कल को तरह वस्त्र की पूर्ति करने वाले

इसी प्रकार पर्यावरण रक्षा के संदेश के लिए –

1. ऋषभदेव का वृक्ष वटवृक्ष तथा बैल पशु है।
2. अजित नाथ जी का सर्प वर्ण वृक्ष
3. संभवनाथ जी का शाल वृक्ष
4. अभिनंदन जी का देवदार वृक्ष
5. सुमतिनाथ जी का प्रियंगु वृक्ष
6. पद्मप्रभुजी का प्रियंगु वृक्ष
7. सुपार्श्वनाथजी का शिरीष वृक्ष
8. चन्द्रप्रभुजी का नाग वृक्ष
9. पुष्पदंतजी का साल वृक्ष
10. शीतलनाथजी का प्लक्ष वृक्ष
11. श्रेयांसनाथजी का तेंदुका वृक्ष
12. वासुपूज्यजी का पाटला वृक्ष
13. विमलनाथ जी का जम्बू वृक्ष
14. अनंतनाथजी का पीपल वृक्ष
15. धर्मनाथ जी अधिपर्ण
16. शांतिनाथ जी का नंद वृक्ष
17. कुंथुनाथ जी का तिलक वृक्ष
18. अरध्यनाथ जी का आम्र वृक्ष
19. मल्लिनाथ का कुम्प अशोक
20. मुनिसुव्रतनाथ जी चम्पक
21. नमिनाथ का वकुल वृक्ष
22. नेमिनाथ जी का मेषश्रृंग
23. पार्श्वनाथ जी घव
24. महावीरजी साल वृक्ष

**सन्दर्भ :**


1. जैन धर्म की वैज्ञानिक आधारशिला, कान्ति वी0 मरडिया
2. जैन विद्या और विज्ञान, आचार्य महाप्रज्ञ का साहित्य, प्रो0 डॉ0 महावीर राज गेलड़ा।
3. Science in Jainisom, Dr. M.R. Gelra
4. तत्त्वार्थ सूत्र, अनुवादक– वाचस्पति आचार्य श्री सुभद्र मुनिजी महाराज।
5. पुरूषोत्तम महावीर, आचार्य महाप्रज्ञ, जैनविश्वभारतीय लाडनू 2002
6. जैनधर्म और पर्यावरण, भागचन्द्रजैन 'भास्कर' (2019), न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, पृ0 5
7. पर्यावरण विज्ञान, डॉ0पी0एल0 मिश्र, आर0पी0 सिंह, विश्वभारतीय पब्लिकेशन्स
8. Davis, D.H., Man and Earth, New York, 1948
9. पर्यावरण समस्या और समाधान, आचार्य महाप्रज्ञ जैन विश्वभारती लाडनूं (2003)
10. पर्यावरण एवं पर्यावरणीय संरक्षण, डॉ0 आलोक कुमार बंसल।
11. ऋग्वेद, 10, 136, 1–7
12. Scientific Perspectives of Jainism, Samani Chaitanya Prajna


---

[1]जैनधर्म और पर्यावरण, भागचन्द्रजैन 'भास्कर' (2019), न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, पृ0 5

[2]त0सू0 529

[3]त0सू0, अनुवादक, आचार्य श्री सुभद्र मुनि जी महाराज, पंचम अध्याय, 21 सूत्र

[4]भागचन्द्र, पृ0 4

[5]पर्यावरण समस्या और समाधान, आचार्य महाप्रज्ञ जैन विश्वभारती लाडनूं (2003)

[6]पर्यावरण एवं पर्यावरणीय संरक्षण, डॉ0 आलोक कुमार बंसल, सबलाइम पब्लिकेशन्स, जयपुर भारत, 2007, पृ0 38

[7]त0सू0 का 10 सूत्र

[8]त0सू0 अनुवादक, आचार्य श्री सुभद्र मुनी जी महाराज, मुनियाराम सम्बोधि प्रकाशन, 2017

[9]त0सू0

[10]वहीं, पृ0 53

[11]त0सू0 IInd

[12]वही, 53–54

[13]त0सू0

[14]वही, त0सू0 54

[15]त0सू0

[16]पृ0सं0 55

[17]पर्यावण समस्या और समाधान, महाप्रज्ञ जी, जैन विश्व भारतीय 2003, लालू

***

# भारतीयदार्शनिकानां प्रमाणचिन्तनम्

*शचीन्द्रत्रिपाठी* *

दार्शनिकं समीक्षणं ज्ञानमीमांसा वा यत्र, यमधिकृत्य वा विधीयते, तत्र प्रमाण निश्चयः समावश्यको मन्यते। दार्शनिकदृष्टिकोणोपस्थापनप्रसंगे चत्वार आयामाः सम्मुखीभवन्ति। ते च प्रमाणं, प्रमेयं, प्रमा, प्रमाता चेति सन्ति। एतेषां सम्यक्तया निश्चयात् परमेव दार्शनिकमालोचनं प्रवर्तते। किरातार्जुनीय महाकाव्यं सौन्दरनन्दं च महाकाव्यमित्युभावपि काव्यप्रबन्धौ यद्यपि काव्यात्मानौ भवतस्तथापि तयोर्लक्ष्यं न केवलं कवित्व करणकमनोरंजनमात्रम् अपितु तयोर्लक्ष्यभूते द्वे वस्तुनी स्तः, प्रथमं वस्तु निर्वाणम्, यत् सौन्दरनन्दमहाकाव्यस्य लक्ष्यरूपम्, अपरञ्च वस्तु अर्थः, इमं लक्ष्यीकृत्य प्रवर्तते किरातार्जुनीय महाकाव्यम। द्वाभ्यामेव रचनाकाराभ्यां भारतीयदर्शन परम्परा स्वस्वप्रबन्धयोः समादृता। अथ च तयोरन्तिमं परमं च लक्ष्यमपि परमतत्त्वसम्प्राप्तिरेवा। सौन्दरनन्दं परमतत्त्वोपलब्धये साक्षात् प्रयतते किन्तु किरातार्जुनीयं परम्परया। अत्र ताभ्यामाचार्याभ्यां लक्ष्यसिद्धये स्वीकृतानि प्रमाणानि निरूपयिष्यन्ते, एतत् तथ्यमपि प्रसंगेऽस्मिन् अवधेयं, यद् इमावाचार्यौ प्रमाणसन्दर्भे सममतौ स्तः। अश्वघोषः प्रथमदशायां वेदनिष्ठो ब्राह्मणः, मध्यदशायां सद्धर्मनिष्ठो बौद्धस्तथा उत्तरदशायां सर्वधर्मसमन्वयप्रस्तावकः। अस्मादुभयोर्लक्ष्यं भिद्यमानमपि अभिन्नम्, अथ च प्रमाणानि समानानि ताभ्यामादत्तानि। अत्र तदधिकृत्य किञ्चिदुच्यते।

**तत्रादौ प्रमास्वरूपतो निरूप्यते–** तर्कसंग्रहकृद्दिशा 'तद्वतितत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः। सैव प्रमेत्युच्यते।' यद् वस्तु यादृशमस्ति तस्य तादृशा रूपेण एव अधिगमः, अवगमोवा प्रभा भवति।[1] प्रमाया एव पर्याया भवन्ति, यथार्थः, यथार्थज्ञानम्, तत्त्वज्ञानम्, ज्ञानम्, अवगमादिकश्च। प्रमा एव परमपुरुषार्थो पलब्धये हेतुर्भवति। भगवता वात्स्यायनेन सूत्रभाष्ये सम्यगुक्तम्– तत्त्वज्ञानं तु खलु मिथ्याज्ञानविपर्ययेण व्याख्यातम्। आत्मनि तावदस्तीति, अनात्मन्नि अनात्मेति, एवं दुःखे, अनित्ये, अत्राणे, सभये, जुगुप्सिते, हातव्ये च यथाविषयं वेदितव्यम्।'[2]

प्रमेयविज्ञानं हि मोक्षहेतुः। अस्य तु तत्त्वज्ञानादपवर्गो मिथ्याज्ञानात् संसारः इति भाष्यकृता वात्स्यायनेन प्रतिपाद्यते। न्यायसूत्रवृत्तिकृता विश्वनाथाचार्योऽपि आह– तत्र च प्रकृष्टं मेयं प्रमेयमिति योगार्थः। प्रकर्षश्च संसार हेतुमिथ्याज्ञान विषयत्वं मोक्षहेतुधी विषयत्वं वा, रूढ्या तावदन्यान्यत्व मित्यर्थः।[3] एवम्प्रकारिकया प्रतिपादनया आत्मादीनि प्रमेयाण्येव तत्त्वानि, तेषां यथार्थतो ज्ञानमेव तत्त्वज्ञानम्। अस्यायमाशयो हि शरीरादीनां सर्वेषामात्मेतरत्वेन आत्मनश्च आत्मेतरभिन्नत्वेन आत्मविशेष्यक मात्मेतरभेदप्रकारकं साक्षात्कारात्मकं ज्ञानमेव तत्त्वज्ञानम्, तदेव च मोक्षहेतुरपि।

यद्विषयकं मिथ्याज्ञानं संसारहेतुस्तद्विषयकं तत्त्वज्ञानमेव मोक्षहेतुः। बन्धमोक्षयोः सामानाधिकरव्यनियमात्। अन्यथा अन्यस्य ज्ञाने अन्यस्य मोक्ष इति दशायामति प्रसंगापत्तेः अस्मादेव उदाहरणतया गौरोऽहं, श्यामोऽहमित्याकारकमिथ्या ज्ञान जन्यवासनाया नाशस्तथा आत्मविषयक शरीरादिभिन्नत्व प्रकारक–आत्मसाक्षात्कारेणैव शक्यः भिन्नविषयकत्वात्। प्रमाया आश्रयः आधारो वा प्रमाता भवति। प्रभा अर्थाज् ज्ञानं सर्वदा प्रमातृसापेक्षं भवति, प्रमातुरभावे प्रमा निराश्रया भवति न्यायकोशकृता प्रमातृत्वं प्रमासमवायित्वम् इति परिभाषितम्। वेदान्तादिदर्शनानि प्रमातारम् अधिकारीशब्देनापिनिगदन्ति। ज्ञानव्यापारः यस्मिन् विषये फलति, स विषय एव प्रमेयपदवाच्यः। घट–पटादयः पदार्थाः, निर्वाण–कैवल्य–बन्ध–प्रभृतयः पदार्थाश्च यथादर्शनं प्रमेयपदार्था भवन्ति।

प्रमाता प्रमाविषयस्य प्रमेयस्योपलब्धये यत्साधनमवलम्बते, प्रायस्तस्य प्रमाणमिति संज्ञा। गौतमेन न्यायसूत्रे षोडशपदार्थेषु आदौप्रमाणमेव पठितम्। तर्कभाषाकृता प्रमाणस्य परिनिष्ठितं स्वरूपं सम्यग्रूपेण सन्देहव्युपशमपुरःसरं निगदितम्। तद्यथा– "प्रमाकरणं प्रमाणम्। अत्र च प्रमाणं लक्ष्यम्, प्रमाकरणं लक्षणम्। ननु, प्रमायाः करणं चेत् प्रमाणं तर्हि तस्य फलं वक्तव्यम्। करणस्य फलवत्त्वनियमात्। सत्यम्। प्रमैव फलं

* शोधच्छात्रः, बौद्धदर्शनविभागः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी

साध्यमित्यर्थः। यथा छिदाकरणस्य परशोश्छिदैव फलम्। का पुनः प्रमा, यस्याः करणं प्रमाणम्। उच्यते। यथार्थानुभवः प्रमा। यथार्थ इति अयथार्थानां संशय विपर्ययतर्कज्ञानानां निरासः। अनुभव इति स्मृतेर्निरासः। ज्ञात विषयं ज्ञानं स्मृतिः। अनुभवो नाम स्मृतिव्यतिरिक्तं ज्ञानम्। किं पुनः करणम्। साधकतमं करणम्। अतिशयितं साधकं साधकतमं प्रकृष्टं कारणमित्यर्थः।"[4]

श्रीमता वात्स्यायनेन न्यायसूत्रभाष्ये प्रमाणस्यातिशयसरलं स्वरूपलक्षणमेवमावेदितम्– **"उपलब्धिसाधनानि प्रमाणानीति समाख्यानिर्वचनसामर्थ्याद् बोद्धव्यम्। प्रमीयते अनेन इति करणार्थाभिधानोहि प्रमाणशब्दः।"**[5] प्रमा अर्थाज्ज्ञानम्, तस्योपलब्धिसाधनं प्रमाकरणम्। प्रमाकरणमेव प्रमाणपदार्थः।

यदि कश्चित् शंकेत यत् प्रमाकरणस्य किं फलं भवेतु तर्हि अवश्यं फलं भवति, सर्वस्यापि करणस्य फलवत्त्वं नियमतः सिद्धमेव। प्रमाकरणस्य फलं प्रमा एव, यथा काष्ठच्छेत्तुः परशोः फलं काष्ठच्छेदनम्, तथैव प्रमायाः साधकस्य प्रमाणस्य फलं प्रमैव। एषा प्रमा च यथार्थानुभवो नाम। यथार्थानुभवो हि तज्ज्ञानं भवति, यत् संशय–विपर्यय–तर्क–ज्ञानेश्यो भिद्यते। यथार्थानु भवपदवर्ति अनुभव पदं स्मृतेर्भिन्नत्वमात्मनो द्योतयति। यतो हि ज्ञात विषयस्यैव ज्ञानं स्मृतिपदवाच्यम्भवति। अस्माद् अनुभवः स्मृतेर्भिद्यते।

प्रमायाः करणं यदुक्तं, तत्र करणपदस्याभिप्रायः साधकं भवति। अपितु न केवलं साधकमेव साधकतममपि। तमब्रहणमतिशायित्वदर्शनार्थं वेदितव्यम्। एवं विधो यो हि प्रमाणपदार्थः, स प्रत्यक्षादिनानानामरूपभेदात् अनेकविधः। प्रत्येकं दार्शनिकाः स्व–स्वप्रमेयोपलब्धये उपादेयानि प्रमाणानि उपादत्तवन्तः। प्रमाणविषये अभियुक्तैरिमाः कारिकाः पठ्यन्ते।

ता यथा–

**प्रत्यक्षमेकं चार्वाकाः कणादसुगतौ तथा।**
**अनुमानं च तच्यापि सांख्याः शब्दं च ते अपि।।**
**न्यायैक देशिनोऽप्येवमुपमानं च केचन।**
**अर्थापत्या सहैतानि चत्वार्याह प्रभाकरः।।**
**अभावषष्ठान्येतानि भाट्टा वेदान्तिन स्तथा।**
**सम्भवैतिह्ययुक्तानि तानि पौराणिका जगुः।।**[6]

चार्वाकाः केवलमेकं प्रत्यक्षप्रमाणमनुमोदयन्ति। वैशेषिका बौद्धाश्चाचार्या प्रमाणद्वयं प्रत्यक्षमनुमानं च समर्थयन्ति। सांख्याचार्या योगाचार्याश्च प्रमाणत्रयं प्रत्यक्षम्, अनुमानं, शब्दम् (आगमः) समर्थयन्ति। नैयायिकाः प्रमाणचतुष्टयं प्रत्यक्षम् अनुमानम्, उपमानं, शब्दश्चेति स्वीकुर्वन्ति।

प्रभाकटाचार्यसमर्थका मीमांसकाः प्रमाणपञ्चकं प्रत्यक्षम् अनुमानम्, उपमानं, शब्दः, अर्थापत्तिश्च स्वीकृतवन्तः। कुमारिलभट्टानुयायिनो भाहमीमांसकाः प्रमाणषट्कं प्रत्यक्षम्, अनुमानम्, उपमानं, शब्दः, अर्थापत्तिः, अभावश्चेति निरूपयन्ति। ये चेतरे मनीषिणः पौराणिकाः, साहित्यिकाः, ऐतिह्यविदः, कलाकौशलादिविज्ञास्ते अष्टौ प्रमाणानि स्वीकुर्वन्ति। तानि च प्रत्यक्षम्, अनुमानम्, उपमानम्, शब्दः (आप्तवाक्यम्, आगमो वा) अर्थायत्तिः, अभावः, सम्भवः, ऐतिह्यं च।

एतेषां प्रत्यक्षादीनां पारम्परिकं बौद्धदार्शनिकाभिमतं च स्वरूपं संक्षेपेण उपस्थाप्यते। बौद्धमते यस्मादनन्तर मध्यवसायो भवति, तस्यैव संज्ञान्तरं प्रमाणम्। समाधिगतस्यार्थस्य प्रापकं साधनं प्रमाणं भवति। समाधिगतोऽर्थ एव सम्पज्ज्ञानं, तच्च द्विविधं प्रागवीय भावनाश्रितं ज्ञानम्, प्रमाणभूता ज्ञानभावना। बौद्धन्याये प्रमाणद्वैविध्यं मन्यते– प्रत्यक्षमप्रत्यक्षं काल्पनिकं वा। प्रत्यक्षप्रमाणं बौद्धदिशा आभासरूपम्। अस्यापरोभेदः अप्रत्यक्षमिति। अप्रत्यक्षमेव कल्पना उच्यते। एवमनुमानमपि एकाधिक प्रकारकं मन्यते।

न्यायदिशा प्रत्यक्ष प्रमाणं हि– "इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नज्ञानम– व्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्।"[7] अत्र प्रत्यक्षसिद्धये बोढा सन्निकर्ष आदीयते, स च संयोगसन्निकर्षः, संयुक्तसमवायसन्निकर्षः, संयुक्तसमवेतसमवायसन्निकर्षः, समवायसन्निकर्षः, समवेतसमवायसन्निकर्षः, विशेषण–विशेष्यभावसन्निकर्षश्च। अयं सन्निकर्ष समूहो लौकिकप्रत्यक्षसाधकः। तदितरसाधनार्थं हि अलौकिकसन्निकर्षः, समान्यलक्षणा प्रत्यासत्तिः, ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्तिश्चेति त्रयोऽन्ये सन्निकर्षा अपि सन्ति।

अनुमानं हि– **'अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतो दृष्टं च।'**[8] अनुमीयते इत्यनुमानम्। अनुमितिकरणमनुमानम्। लिंगपरामर्शोऽनुमानमित्यादिरूपाः बह्व्योऽनुमानपरिभाषाः सन्ति। उपमानस्य स्वरूपमुच्यतेस्म तर्कभाषायामेवम्– अतिदेशवाक्यस्मरणसहकृतं गोसादृश्यविशिष्ट पिण्डज्ञानमुपमानम्।[9] बौद्धन्यायवार्तिके नैयायिको बौद्धो दिङ्नागाचार्यः उपमान प्रमाणं प्रत्यक्षप्रमाण एवान्तर्भावितवान्।[10] संख्या वैशेषिका अपि नेदं स्वीकुर्वन्ति।

तृतीयं प्रमाणमस्ति आप्तोवदेशाख्यः शब्दः।[11] एतत्प्रमाणं यद्यपि बौद्धैर्नांगीक्रियते, तथापि बौद्धास्त्रिपिटक वचनानिपरम्परया स्वीकुर्वन्ति। अर्थापत्तिरिति पंचमं प्रमाणम्, अस्य स्वीकारो मीमांसकैर्वेदान्तिभिश्च कृतः। बौद्धा इदं प्रमाणमनुमानेऽन्तर्भावयन्ति। अभावो ह्यनुपलब्धिर्वा षष्ठं प्रमाणं, यस्य स्वीकृतिर्मीमांसायामस्ति किन्तु बौद्धादयो नेदमंगीकुर्वन्ति। अविना भाविनोऽर्थस्य सत्ताया ग्रहणात् सत्तान्तरस्य ग्रहणं सम्भवप्रमाणम्। एतत्केवलं पौराणिका एव स्वीचक्रुः। आप्तवाक्यात्मकमेव ऐतिह्यं प्रमाणं यद्यप्यस्ति, तथापि पौराणिकैरिदं स्वतन्त्रतया गृह्यते।

---

[1]. तर्कसंग्रहः, पृ0 24
[2]. न्या0सू0वा0 भाष्यम्, 1/1/2
[3]. न्या0सू0भा0 1/1/9.
[4]. तर्कभाषा0 पृ0 11–17
[5]. न्या0सू0भा0 1/1/3
[6]. स0भा0द0 35
[7]. न्या0सू0 1/1/4
[8]. न्या0सू0 1/1/5
[9]. तर्कभाषा पृ0–119
[10]. न्यायवार्विक 1/1/9
[11]. न्या0सू0 1/17

***

# बालकों की सामाजिक समस्या के कारण : एक अध्ययन

*वृजेश कुमार पाठक* *

प्रायः हर समाज के घर–परिवार अथवा विद्यालयों में बहुधा ऐसे बालक देखने को मिल जाते हैं जो अपेक्षित सामान्य व्यवहार नहीं करते और इस प्रकार किसी न किसी समस्या के जनक होते हैं। कोई बालक घर से स्कूल जाता है और कहीं अन्यत्र बैठ जाता है, कोई स्कूल पहुँचता है पर कुछ देर बाद भाग जाता है, कोई दूसरों की वस्तुएं व पैसे चुरा लेता है, झूठ बोलता है, गालियाँ या अपशब्द बकता है अथवा सबसे लड़ता–झगड़ता रहता है, कोई बालक गृह कार्य करके नहीं लाता है तो कोई विद्रोही, अनुशासनहीन या उदासीन हो जाता। अपने इन व्यावहारिक विचलनों के कारण ये बालक अध्यापकों, स्कूल–अध्यापकों व माता–पिता सभी के समक्ष कोई न कोई समस्या खड़ी करते रहते हैं। प्रायः ऐसे बच्चे उपलब्धि हासिल करने में पिछड़ जाते हैं तथा समाज व परिवार में समायोजित नहीं हो पाते। ऐसे ही कुसमायोजित व असामान्य व्यवहार के कारण ये समस्यात्मक बालक कहलाते हैं।

सामान्यतः सभी मानव समाजों में व्यवहार के कुछ निश्चित प्रतिमान एवं सामाजिक मानदण्ड पाये जाते हैं। इन सामाजिक प्रतिमानों एवं मानदण्डों के विपरीत आचरण करने को ही सामान्यतः सामाजिक समस्याग्रस्त माना जाता है। सामाजिक समस्याग्रस्तता की अवधारणा का समाजशास्त्रीय साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान है। संयुक्त राज्य अमेरिका में समस्याग्रस्त बालकों का अध्ययन उनकी कुछ विशिष्ट समस्याओं जैसे बाल अपराध, वेश्यावृत्ति, सफेदपोश अपराध एवं नशावृत्ति आदि के संदर्भ में प्रारम्भ हुआ परन्तु यह अवधारणा अब इन्हीं समस्याओं तक सीमित नहीं है। ये समस्यायें निम्नवर्ग की ओर विशेषतः उद्योगों में काम करने वाले बाल श्रमिकों तक सीमित थीं। शिकागो विश्वविद्यालय में इस क्षेत्र में बहुत काम हुआ क्योंकि शिकागो शहर इन समस्याओं के अध्ययन के लिए व्यापक क्षेत्र प्रदान करता है। इस प्रकार के अध्ययनों के पीछे समाजशास्त्रियों में यह धारणा थी कि सामाजिक समस्याग्रस्त बालकों के लिए स्वयं समाज उत्तरदायी है न कि व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक लक्षण।

सामाजिक संरचना एवं व्यक्ति के व्यवहार के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। वस्तुतः व्यक्ति सामाजिक संरचना का ही एक अंग होता है। फलतः सामाजिक संरचना के स्वरूप एवं प्रकृति का व्यक्ति के व्यक्तित्व, विचार एवं व्यवहार आदि पर गहन प्रभाव पड़ता है। समाजशास्त्रीय अध्ययनों की मान्यता है कि यह प्रभाव अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। दरअसल, कभी–कभी ऐसा भी होता है कि इस बात की भी संभावना होती है कि व्यक्ति का व्यवहार इस प्रकार का नहीं होता, जैसी उससे आशा एवं अपेक्षा की जाती है। इस अस्वाभाविक व्यवहार जनितसमस्या को ही बालकों की सामाजिक समस्या की संज्ञा दी जाती है।

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक "The Division of labour in society" में लिखा है कि सामाजिक समस्या आदर्शहीनता की एक अवस्था है। स्वाभाविकता का अभाव है नियमों का निलंबन है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसे हम नियमविहीनता कहते हैं। दुर्खीम के अनुसार ''सामाजिक समस्या का कारण स्वयं समाज है। वस्तुतः मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज से जुड़ाबंधा रहता है और उसे यह आशा भी रहती है कि उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति में समाज या समाज के अन्य सदस्यों का सहयोग उसे मिलता रहेगा। परन्तु जब उसकी यह अपेक्षा पूरी नहीं होती तो उसमें निराशा, असंतोष तथा बदला लेने की भावना पनपती है जिससे वह समाज द्वारा

* शोध-छात्र, समाजकार्य 0189, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना, मध्य प्रदेश।

मान्य–स्थापित नियमों आदर्शों तथा मूल्यों को स्वीकार करने से इंकार कर देता है और इस प्रकार व्यवहार करता है कि उसका वह व्यवहार समाज के लिए एक समस्या बन जाता है।

आर0 के0 मर्टन ने अपनी महत्वपूर्णकृति "Social theory and social structure" में विचलित व्यवहार की विवेचना की है। उन्होंने सामाजिक संरचना एवं सांस्कृतिक संरचना में अन्तर स्पष्ट किया है और बताया है कि ''सांस्कृतिक संरचना से उन लक्ष्यों और स्वार्थों पर प्रकाश पड़ता है जिन्हें लोग हासिल करना चाहते हैं, साथ ही सामाजिक संरचना उन साधनों को प्रस्तुत करती है जिनके आधार पर संस्कृति द्वारा प्रस्तावित लक्ष्यों एवं स्वार्थों को प्राप्त किया जाता है। सांस्कृतिक व्यवस्था में व्यक्ति को लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समायोजित (Normative) व्यवहार पर बल दिया जाता है, परन्तु उल्लेखनीय है कि समाज द्वारा स्वीकृत साधनों द्वारा इन लक्ष्यों की प्राप्ति के समान अवसर सबको प्राप्त नहीं होते हैं। वस्तुतः ऐसी परिस्थिति में ही सामाजिक समस्या प्रकट होती हैं अर्थात् समस्यात्मक व्यवहार तभी उत्पन्न होता है जब सामाजिक संरचना एक व्यक्ति के इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए स्वीकृत तरीकों को सीमित कर देती है अथवा कभी–कभी उन पर पूर्णरूपेण प्रतिबन्ध लगा देती है। आशय यह है कि लक्ष्यों और साधनों में असमायोजन उत्पन्न होने से सांस्कृतिक रूप से अनुमोदित लक्ष्यों तथा संस्थागत साधनों के प्रति प्रतिबद्धता में कमी उत्पन्न होती है। दरअसल यह स्थिति ही समस्याग्रस्त व्यवहार के उत्पन्न होने का कारण है।

दरअसल, कुल मिलाकर देखा जाय तो समस्यात्मक बालक किसी वर्ग विशेष के नहीं होते। इनमें न तो जन्मजात कोई शारीरिक या मानसिक हीनता होती है और न ही ये अपराधी या समाज विरोधी प्रकृति के होते हैं। सामान्यतः जब बालक अपने सामाजिक वातावरण के साथ समायोजन नहीं कर पाता है तो वह समाज के लिए समस्या बन जाता है। असमायोजन के फलस्वरूप उसकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पाती, परिवार व समाज उन्हें उचित मार्गदर्शन नहीं देता। प्रायः ऐसे बालकों के जीवन में प्रेम व वात्सल्य का अभाव होता है, उन्हें कठोर नियंत्रण में रखा जाता है या उनकी उपेक्षा की जाती है। बालकों की समस्या का उचित समाधान न हो पाने पर वह निरन्तर मानसिक अन्तर्द्वन्द्व व तनाव की स्थिति में रहते हैं। ऐसी स्थिति ही उनके व्यवहारों को समस्यात्मक बना देती है। इन समस्यात्मक बालकों को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं–

**1. व्यक्तिगत समस्या वाले बालक**

व्यक्तिगत समस्या वाले बालकों निम्नलिखित लक्षण पाये जाते हैं–

- अत्यधिक संकोच करना
- हकलाना व तुतलाना
- स्कूल न जाना या स्कूल से भाग जाना
- निराशा की भावना से ग्रसित रहना
- दिवास्वप्न देखना
- चिन्तित रहना
- शारीरिक व मानसिक रूप से अस्वस्थ रहना
- डरे–डरे हर काम में सहमे रहना
- निराशा की भावना से ग्रसित रहना
- कक्षा में चुपचाप बैठे रहना या अन्तर्मुखी होना

**2. सामाजिक समस्या वाले बालक**

इस प्रकार के बालकों में निम्नलिखित असामाजिक व्यवहार पाये जाते हैं जैसे–

- असभ्यता से बात करना

- झूठ बोलना
- क्रोधित होना
- गालियाँ देना/ लड़ाई–झगड़ा करना
- चोरी करना
- खेलों आदि में बेईमानी करना
- तोड़फोड़ या आक्रामक व्यवहार करना
- अनुशासनहीन आचरण करना, नियमों की अवहेलना करना
- विद्यालय अथवा माता–पिता द्वारा दिये कार्य को पूर्ण न करना

**3. शारीरिक समस्याग्रस्त बालक**

अनेक प्रकार की शारीरिक दुर्बलताए तथा निर्योग्यताएं बालक को सामान्य व्यवहार करने में अक्षम बनाती हैं। इनके कारण ही वह सामान्य बालकों के समान प्रगति नहीं कर पाता है और जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए या तो अमान्य या अनैतिक तरीकों को अपनाता है या फिर अन्तर्मुखी बन जाता है जिसके फलस्वरूप उसका व्यक्तित्व कुण्ठित हो जाता है। इन अनेक शारीरिक कारणों में हैं– बहारापन, अन्धापन, गूंगापन, कम दिखाई देना, ऊंचा सुनना, अपंगता, शारीरिक कमजोरी तथा अन्य बीमारी आदि।

इस प्रकार के अनेक कारणों से वह अपना विद्यालय का तथा घर का कार्य अन्य बालकों के समान गति तथा कुशलता से नहीं कर पाता है जिसके कारण वह उनके साथ वैमनस्य मानने लगता है और उन्हें नुकसान पहुँचाने की कोशिश करता है, पलायन करता है तथा अपनी ऊर्जा को अनेक दुर्बलताओं में व्यय करता और कुसंगति अपनाता है। कुछ बालक अल्पायु से ही उचित मनोवैज्ञानिक वातावरण के न मिल पाने पर विभिन्न गलत आदतों तथा उद्वेगों से प्रभावित हो जाते हैं। ऐसा प्रायः उनकी सभी आवश्यकताओं (विशेष रूप से मनोवैज्ञानिक व संवेगात्मक) की उचित ढंग से पूर्ति न हो पाने के कारण होता है जिसके फलस्वरूप इनमें अंगूठा चूसना, बिस्तर गीला करना, अधिक चिड़चिड़ाना, अधीरता, अस्थिर व असन्तुलित व्यवहार करना आदि समस्यात्मक व्यवहार देखने को मिलते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ बालक स्वाभाविक रूप से अत्यधिक भावुक प्रवृति के होते हैं तथा थोड़ी सी ठेस पहुंचने पर अनेक समस्यात्मक व्यवहारों, जैसे–अलगाव, नैराश्य से प्रभावित हो जाते हैं। अपरिपक्व संवेगों के कारण ये मानसिक तनाव से ग्रसति रहते हैं, अच्छे–बुरे का ज्ञान भूल जाते हैं और समाज, शिक्षक व माता–पिता के लिए समस्या बन जाते हैं।

समाज तथा घर का वातावरण निस्सन्देह ही बालक की व्यक्तित्व रचना को प्रभावित करता है। बालक सभी प्रकार की बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक, आध्यात्मिक तथा आचरण सम्बन्धी बातें यही पर सीखता है तथा अच्छे फल की प्राप्ति के कार्यों को पुनरावृत्ति के द्वारा अपने स्वभाव और व्यक्तित्व की एक आदत/लक्षण के रूप में अपना लेता है। समाज तथा घर के दूषित तथा विकृत वातावरण में पलने वाला बालक अन्य सामान्य बालकों के समान अपेक्षित तथा सन्तुलित व्यवहार नहीं कर पाता ओर विभिन्न समस्याओं को जन्म देता है। निम्न सामाजिक–आर्थिक स्थिति, मनोरंजन के अपर्याप्त साधन, नीरस वातावरण, उचित देख–रेख व निर्देशन का अभाव, लाड़–प्यार की अधिकता या कमी, माता–पिता के मध्य टूटते सम्बन्ध तथा विचारों में भिन्नता, सौतली माँ की क्रूरता, अत्यधिक छोटे व घुटन वाले मकान, बड़े सदस्यों की बुरी आदतें तथा अन्य अनेक ऐसी परिस्थितियाँ है जो बालक को व्यावहारिक रूप से विचलित करने के लिए उत्तरदायी होती हैं। इनके अतिरिक्त विद्यालय का दूषित वातावरण, शिक्षकों में गुटबाजी, शिक्षकों का निम्न स्तर (सभी प्रकार से), शिक्षकों की गलत आदतें, अनुचित व अनैतिक कार्य, अरोचक शिक्षा प्रणाली, भेदभाव, अनुशासनहीनता आदि भी समस्यात्मक व्यवहार के वातावरण सम्बन्धी कारणों में हैं।

समाज में प्रचलित कुरीतियों, पास–पड़ोस का गन्दा वातावरण, कुसंगत जैसे–अश्लील बातें करने वाले, स्कूल से भागने वाले, झूठ बोलने वाले तथा चोरी की आदत वाले साथी आदि भी बालक में विभिन्न आदतों के निर्माण की अवस्था में प्रभावी होकर उसको समस्यात्मक व्यवहार के लिए प्रेरित करते हैं। प्रायः नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों में गिरावट तथा बालकों एवं अध्यापकों में नैतिक मूल्यों से युक्त एक आदर्श का अभाव भी इसका कारण हो सकता है।

**सन्दर्भ :**

1. दुर्खीम, इमाइल(1951) : 'सुसाइड' : ए स्टडी इन सोशियोलाजी ट्रेन्स, बॉय–जॉन ए स्पाउल्डींग एण्ड जार्ज सिम्पसन फ्री प्रेस, न्यूयार्क।
2. मार्टिन, जे0 एम0 एण्ड अदर्स(1970) : दी एनालिसिस आफ डेलिक्वेन्ट बिहैबियर : ए स्ट्रक्चरल एप्रोच, रैण्डम हाउस, न्यूयार्क।
3. लैण्डिस, पॉल(1959) : सोशल प्राब्लम्स, जे0 आर0 लिप्पिन कोर्ट, शिकागो।
4. लैण्डर, बी0(1954) : टूवर्ड्स अण्डरस्टैंडिंग ऑफ ज्यूबेनायल डेलिक्वेन्सी, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क।
5. भार्गव, महेश (1999); आधुनिक मनोविज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, आगरा : हरि प्रसाद भार्गव बुक कम्पनी।
6. गुप्ता एस.पी., (2006); भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक मंथन।
7. पाठक, पी. डी. (1974); भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।

***

# उच्च शिक्षा के क्षेत्र में मुक्त विश्वविद्यालय की भूमिका

*डॉ. संजय कुमार* *

राष्ट्रीय प्रगति एवं मानव विकास का मूल आधार शिक्षा है। इसके माध्यम से ही देश की वैज्ञानिक, आर्थिक, सामाजिक,सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति सम्भव है। जनसंख्या विस्फोट के कारण सभी को औपचारिक शिक्षा प्रदान कर पाना बहुत कठिन है, इस समस्या से निपटने के लिए अनौपचारिक शिक्षा जैसी पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ। अनौपचारिक शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत पत्राचार शिक्षा पद्धति, सतत् शिक्षा पद्धति तथा दूरस्थ शिक्षा प्रणाली आते हैं। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली एक नवीन प्रकार की शिक्षा पद्धति एवं शिक्षण की अवधारणा है। यह एक सार्वभौमिक परिघटना है। जो विकसित एवं विकासशील देशों में आजकल प्रचलित है। भारत में सन् 1961 ई0 में सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड आफ एजूकेशन ने पत्राचार पाठ्यक्रम प्रणाली को प्रारम्भ करने का निर्णय दिया। इसके लिए प्रख्यात शिक्षाविद् डॉ0 डी0एस0 कोठारी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति की संस्तुति के आधार पर 1962ई0 में दिल्ली विश्वविद्यालय में बी0ए0 तक साधारण उपाधि को पत्राचार द्वारा सतत् शिक्षा के रूप में प्रारम्भ किया। वर्ष 1970–80 के दशक में अनेक परम्परागत विश्वविद्यालयों ने भी पत्राचार के माध्यम से अनेक उपाधियों की परीक्षा की सुविधा प्रदान कर दी। लेकिन यह एक शिक्षा विस्तार के रूप में ही रहा और दूरस्थ शिक्षा की पूर्ण व्यापकता को प्रदान नहीं किया जा सका। अतः मुक्त विश्वविद्यालय प्रणाली के माध्यम से दूरस्थ शिक्षा को व्यापक एवं सार्थक बनाने की आवश्यकता का अनुभव किया गया। आन्ध्रप्रदेश में सर्वप्रथम 1982ई0 में आन्ध्रप्रदेश मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना की। सन् 1985ई0 में तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री राजीव गॉधी ने आकशवाणी द्वारा राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना की घोषणा की। परिणामतः सन् 1985 ई0 में संसद द्वारा इन्दिरा गॉधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना करने के अधिनियम को पारित कर दिया। इसके बाद देश के अन्य राज्यों में भी मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना की गयी।

दूरस्थ शिक्षा पद्धति उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सबसे उपयोगी माध्यम बनता जा रहा है। दूरस्थ शिक्षा एक महत् उद्देश्य की पूर्ति करती है। देश में उच्च शिक्षा की समस्याओं का समाधान दूरस्थ शिक्षा पद्धति कर सकती है, चाहे शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक न्याय प्रदान करने की बात हो या शिक्षा की अन्य समस्याओं के समाधान के साथ गुणवत्ता बनाये रखने की बात हो। दूरस्थ शिक्षा पद्धति उतनी ही उपयोगी है जितनी पारम्परिक शिक्षा। इन्दिरा गॉधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में एक अन्तर्राष्ट्रीय छवि छोड़ी है। दूरस्थ शिक्षा पद्धति एक ऐसी शिक्षा पद्धति है जिसमें एक शिक्षक एक साथ कई शिक्षार्थियों को शिक्षा प्रदान करता है। दूरस्थ शिक्षा का क्षेत्र बहुत व्यापक है। जिसके माध्यम से भारत की उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में दिनों दिन बढ़ोत्तरी तथा शिक्षा की समस्याओं का समाधान होता जा रहा है।

**मुक्त विश्वविद्यालय एक परिचय**

मुक्त विश्वविद्यालय ऐसे विश्वविद्यालय होते हैं जो दूरस्थ शिक्षा के उद्देश्य से स्थापित किये जाते हैं। इन विश्वविद्यालयों में प्रवेश/नामांकन की नीति खुली और शिथिल होती है, अर्थात् विद्यार्थियों को अधिकांश स्नातक स्तर के प्रोग्रामों में प्रवेश लेने के लिए उनके पूर्व शैक्षिक योग्यताओं की आवश्यकता का बन्धन नहीं लगाया जाता। भारत में अनेक मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना हो चुकी है। जो दूरस्थ अध्ययन कार्यक्रम चलाते हैं। मुक्त विश्वविद्यालय ऐसे लचीने पाठ्यक्रम विकल्प देते हैं, जिन्हें वे प्रवेशार्थी ले सकते हैं। जिनके पास कोई औपचारिक योग्यता नहीं है। किन्तु अपेक्षित आयु के हो चुके हैं और लिखित प्रवेश परीक्षा भी उत्तीर्ण कर चुके हैं। ये पाठ्यक्रम छात्र की सुविधा अनुसार भी लिये जा सकते हैं।

---

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर - समाजशास्त्र, स्व. चन्द्रिका किसान महाविद्यालय, सैनूपुर-आमघाट भावरकोल गाजीपुर

अधिकांश अध्यापन अध्ययन प्रक्रिया में मुद्रित अध्ययन सामग्री तथा नोडल केन्द्रों पर मल्टीमीडिया सुविधा सेट–अप या दूरदर्शन अथवा रेडियो नेटवर्क के माध्यम से अध्यापन सामिल होता है। ये विश्वविद्यालय स्नातक पाठ्यक्रम, स्नातकोत्तर पाठ्क्रम, एम0फिल0, पी–एच0डी0 तथा डिप्लोमा एवं प्रमाण पत्र पाठ्क्रम भी चलाते हैं जिसमें अधिकांश पाठ्यक्रम कैरियर उन्मुखी होते हैं।

**मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु प्रारम्भिक प्रयास**

उच्च शिक्षा के बढ़ते हुए मॉग को पूरा करने के ध्येय से कुछ भारतीय विश्वविद्यालयों द्वारा औपचारिक शिक्षा प्रणाली के साथ–साथ व्यक्तिगत परीक्षा प्रणाली का भी प्रारम्भ किया गया। इस प्रणाली के अन्तर्गत परीक्षार्थी को न्यूनतम योग्यता रखने पर व्यक्तिगत रूप से पढ़कर संस्थागत छात्रों के साथ ही परीक्षा देने की छूट होती है। किन्तु उनके अध्ययन अध्यापन के लिए विश्वविद्यालय किसी भी रूप में उत्तरदायी नहीं होता है। अतः इस प्रकार के परीक्षार्थियों को सस्ती एवं कामचलाऊ पुस्तकों एवं गाइडों पर निर्भर रहना पड़ता है। इसलिए इस प्रणाली से शिक्षा की गुणवत्ता में गिरावट आने की सम्भावना अधिक रहती है। औपचारिक शिक्षा प्रणाली की कमियों को दूर करने तथा आधुनिक सम्प्रेषण तकनीकी का शिक्षा के प्रसार में उपयोग कर सकने हेतु शिक्षा की किसी वैकल्पिक प्रणाली की तलाश की जा रही थी। इसी बीच सन् 1969 ई0 में ब्रिटेन में मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना से भारतीय शिक्षा नियोजकों एवं नीति निर्धारकों को ऐसी ही बैकल्पिक प्रणाली अपनाने हेतु बल मिला। अतः सन् 1970 ई0 में भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा देश में मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना के सम्बन्ध में एक सेमिनार का आयोजन किया गया। इस सेमिनार में सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा भी सहयोग प्रदान किया गया। इसकी अध्यक्षता तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षा मंत्री प्रोफेसर वी0के0आर0वी0राव ने की। इस सेमिनार में देश में एक मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना तथा उससे सम्बन्धित अनेक पक्षों जैसे –इसके उद्देश्यों, संगठन, वित्तीय व्यवस्था एवं कार्य पद्धति आदि के लिए सुझाव प्रस्तुत किये गये। मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने के लिए एक कार्यदल के गठन का भी सुझाव दिया गया।

श्री जी0 पार्थ सारथी की अध्यक्षता में गठित कार्यदल ने सन् 1975 ई0 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की तथा विश्वविद्यालय की प्रकृति, संगठन एवं वित्तीय व्यवस्था के बारे में अनेक सुझाव दिये। इस रिपोर्ट के आधार पर राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु भारत सरकार द्वारा एक विधेयक का प्रारूप भी तैयार किया गया किन्तु अज्ञात कारणों से यह कार्य आगे नहीं बढ़ सका।

सन् 1982 ई0 में देश की शैक्षिक आवश्कताओं की दृष्टि से केन्द्रिय विश्वविद्यालयों की कार्य शैली की जॉच हेतु डॉ0 माधुरी आर0 शाह की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी। इस समिति ने अन्य सुझाओं के साथ जोरदार शब्दों में यह भी सुझाव दिया कि देश में राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए अविलम्ब व्यावहारिक कदम उठाये जाने चाहिए।

देश में चल रहे विभिन्न पत्राचार शिक्षा संस्थानों द्वारा भी इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया गया कि देश की पत्राचार शिक्षा प्रणाली के समन्वयन हेतु राष्ट्रीय स्तर पर एक दूरवर्ती शिक्षा संस्थान अथवा मुक्त विश्वविद्यालय अवश्य स्थापित किया जाना चाहिए।

सन् 1982 ई0 में ही आन्ध्र प्रदेश सरकार ने अपने राज्य में मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना की। आन्ध्र प्रदेश की सफलता से प्रेरित होकर दूसरे राज्यों ने भी अपनें यहॉ मुक्त विश्वविद्यालय स्थापित करने के निर्णय लिये पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, केरल, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं विहार राज्यों ने इस हेतु समितियों का गठन भी किया गया। सन् 1985 ई0 में नयी दिल्ली में राज्यों के शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन में भी सभी राज्यों में मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना हेतु सहमति प्रदान की गयी।

**भारत में मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना**

भारत में दूरस्थ शिक्षा सन् 1980 ई0 तक परम्परागत विश्वविद्यालयों से ही सम्बद्ध रही तथा उन्हीं से जुड़े हुए निदेशालयों/संस्थानों द्वारा संचालित की जाती रहीं किन्तु इसके बाद के समय को दूरस्थ शिक्षा के विकास की मुहिम अवस्था कहा जा सकता है। यद्यपि 1976ई0 में भारत सरकार द्वारा

डॉ0 जी0 पार्थ सारथी के अध्यक्षता में गठित समिति की संस्तुति के आधार पर एक राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु एक विधेयक का प्रारूप तैयार किया गया था। लेकिन कुछ कारणों से उसे संसद में प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। इसी समय विभिन्न राज्यों द्वारा भी उच्च शिक्षा की बढती मॉग को पूरा करने तथा उच्च शिक्षा के लोकतंत्रीकरण हेतु मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना के सम्बन्ध में कुछ प्रयास एवं विचार विमर्श किये जा रहे थे। सन् 1969 ई0 में ब्रिटेन में स्थापित मुक्त विश्वविद्यालय की सफलता से उन्हे और बल मिल रहा था। आन्ध्र प्रदेश राज्य द्वारा भी मुक्त विश्वविद्यालय स्थापित करने हेतु सन् 1978 ई0 से ही प्रयास किया जा रहा था। जिसके परिणाम स्वरूप सन् 1982 ई0 में हैदराबाद में देश का पहला मुक्त विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। देश की उच्च शिक्षा की बढ़ती मॉग को देखते हुए प्रधान मंत्री श्री राजीव गॉधी ने नयी शिक्षा नीति के एक अंग के रूप में राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना की घोषणा की । इस घोषणा के तुरन्त बाद शिक्षा मंत्रालय द्वारा इसके लिए प्रख्यात शिक्षा विदों की एक समिति गठित की गयी। जिसने राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालयों के उद्देश्यों, पाठ्क्रमों, स्टाफ प्रणाली, संचालन, वित्तीय व्यवस्था, संचार माध्यमों आदि जैसे महत्वपूर्ण पक्षों पर अपनी विस्तृत संस्तुति प्रस्तुत की ।इन संस्तुतियों के आधार पर एक विधेयक संसद में प्रस्तुत किया गया। जिसे अगस्त 1985 में संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया गया। इस प्रकार संसद द्वारा पारित अधिनियम के अन्तर्गत 20 सितम्बर 1985 ई0 को इन्दिरा गॉधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इसके बाद देश के अन्य राज्यों में भी मुक्त विद्यालयों की स्थापना की गयी।

**राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना**

राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना के सम्बन्ध में यद्यपि श्री जी0 पार्थ सारथी समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर तैयार किये गये विधेयक के प्रारूप एवं उसकी परिणति की कोई सही जानकारी नहीं है। किन्तु सन् 1984 ई0 में इस विचार ने पुनः जन्म लिया। जनवरी 1985 ई0 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गॉधी नें राष्ट्र के नाम अपने पहले प्रसारण में नयी शिक्षा नीति के एक भाग के रूप में राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना की घोषणा की। इस घोषणा को कार्य रूप प्रदान करने के लिए शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रख्यात शिक्षा विदों की एक समिति का गठन किया गया। इस समिति नें राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना से सम्बन्धित विधेयक का प्रारूप तैयार करने के साथ–साथ विश्वविद्यालय की स्थापना के उद्देश्यों, इसके द्वारा प्रदान किये जाने वाले पाठ्यक्रमों, प्रशासनिक एवं स्टाफ की व्यवस्था, बैधानिक मान्यता, वित्तिय व्यवस्था, प्रसारण माध्यमों से सम्बन्ध आदि से सम्बन्धित एक प्रोजेक्ट रिपोर्ट प्रस्तुत की। चूँकि भारत सरकार दूरवर्ती शिक्षा प्रणाली को मजबूती प्रदान करने के लिए पहले से ही प्रतिबद्ध थी। अतः इस बार संसद में राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना सम्बन्धी विधेयक अविलम्ब प्रस्तुत किया गया। संसद के दोनों सदनों नें अगस्त 1985 ई0 में इस विधेयक को अपनी मंजूरी प्रदान कर दी तथा 20 सितम्बर 1985 ई0 को इन्दिरा गॉधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी। इस प्रकार सन् 1970 ई0 में उपजे हुए राष्ट्रीय मुक्त विश्व विद्यालय को सन् 1985 ई0 में यथार्थ रूप प्रदान किया जा सका।

**मुक्त विश्वविद्यालय की विशेषताएँ**

मुक्त विश्वविद्यालय की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :–

1. शिक्षा व्यवस्था पूर्णतया शिक्षार्थी केन्द्रित है।
2. प्रवेश के उपरान्त प्रवेश स्थल पर ही पाठ्य सामग्री विश्वविद्यालय द्वारा उपलब्ध करायी जाती है।
3. किसी भी कार्यक्रम के अन्तर्गत पाठ्यक्रम के चयन में शिक्षार्थी के लिए अनेक विकल्प उपलब्ध हैं अर्थात् पाठ्यक्रम के चयन में एक लचीलापन अन्तर्निहित है।
4. प्रत्येक शिक्षार्थी को विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित अध्ययन/सम्पर्क/कार्यक्रम केन्द्र पर उपलब्ध पाठ्क्रमों में से पाट्यक्रम चयन की सुविधा उपलब्ध है।

5. मुक्त विश्वविद्यालय के किसी कार्यक्रम के प्रवेशार्थी अन्य किसी विश्वविद्यालय में भी छात्र रह सकते हैं। परन्तु छात्र को अन्य संस्था में अध्ययनरत रहने की सम्पूर्ण सूचना विश्वविद्यालय को देना अनिवार्य है।
6. सरकारी अथवा गैर सरकारी संस्था में सेवारत रहते हुए पठन–पाठन कर सकते हैं। परन्तु उन्हें उस संस्था में सेवारत रहने की सम्पूर्ण सूचना विश्वविद्यालय को देना आवश्यक है।
7. इस प्रणाली के निर्धारित पाठ्यक्रम को एक न्यूनतम अवधि से लेकर अधिकतम अवधि के बीच में पूरा करने का प्रावधान है।
8. शिक्षार्थी को एक शैक्षिक सत्र में स्नातक पाठयक्रम के साथ एक डिप्लोमा कोर्स या एक सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम और इसी प्रकार एक डिप्लोमा पाठ्यक्रम के साथ एक सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने की सुविधा उपलब्ध है। स्नातक अथवा डिप्लोमा पाठ्यक्रम के साथ शिक्षार्थी पी0जी0 डिप्लोमा कार्यक्रम में प्रवेश नहीं ले सकते।

**मुक्त विश्वविद्यालय स्थापना का उद्देश्य**

बढ़ती हुयी जनसंख्या के अनुपात में उच्च शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों का अभाव है। माध्यमिक शिक्षा पास करने वाले छात्र/छात्राओं को उच्च शिक्षा का अवसर नहीं मिल पा रहा है। परम्परागत विश्वविद्यालय के माध्यम से सभी छात्रों को उच्च शिक्षा प्रदान करना एक कठिन कार्य हो गया है। वर्तमान परिवेश को दृष्टिगत रखते हुए राज्य एवं केन्द्र सरकार ने इस दिशा में ध्यान देना शुरू किया। किसी भी राष्ट्र का परम कर्तब्य है कि उच्च शिक्षा की अभिलाषा रखने वाले छात्रों को उच्च शिक्षा का अवसर सुलभ करायें। तमाम शिक्षा विदों ने इस समस्या को दूर करने के लिए विचार मंथन शुरू किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि परम्परागत शिक्षा प्रणाली के विकल्प को तैयार किया जाय। इस कड़ी में दूरस्थ शिक्षा परिसर की स्थापना हुई। जिसके अन्तर्गत केन्द्र एवं प्रत्येक राज्य ने एक मुक्त विश्वविद्यालय खोलने की अनुशंसा की गयी। मुक्त विश्वविद्यालय का मुख्य उद्देश्य परम्परागत शिक्षा प्रणाली में प्रवेश न पाने वाले छात्रों का प्रवेश, घरेलू महिलाओं के लिए शिक्षा का अवसर, दूर दराज के गॉवों में रहने वाले व्यक्तियों को शिक्षा का अवसर सरकारी एवं गैर सरकारी सेवारत व्यक्तियों के लिए शिक्षा का अवसर उपलब्ध कराने का प्रयास मुक्त विश्वविद्यालय कर रहा है।

**दूरस्थ शिक्षा की उत्पत्ति**

दूरस्थ शिक्षा के प्रारम्भिक रूप को लगभग सभी देशों में अनेक नाम जैसे– गृह अध्ययन, डाक शिक्षण, पत्राचार पाठ्क्रम, स्वतंत्र अध्ययन आदि से जाना जाता था। वर्तमान समय में भी इसके लिए कुछ अन्य पदों जैसे परिसर से अलग अध्ययन, वाह्य अध्ययन, अनौपचारिक शिक्षा आदि का प्रयोग जारी है। इन सब नामों में से ' पत्राचार शिक्षा ' शब्द को व्यापक स्तर का स्वीकार भी किया गया है। इन सभी नामों में बहुत अधिक समानता भी है तथा इसका सम्बन्ध गैर परम्परागत शिक्षण अधिगम कार्यक्रम से है। प्रायः ये सभी मुद्रित सामग्री अथवा इलेक्ट्रानिक माध्यम से शिक्षको का विभिन्न प्रकार के शिक्षार्थियों से जुड़े रहने के सम्प्रत्यय पर आधारित है। इनसे जुड़ी हुई संस्थाओं को 'हवाई विश्वविद्यालय' 'मुक्त विश्वविद्यालय' 'दूर विश्वविद्यालय' आदि प्रतिकात्मक नाम प्रदान किये गये।

**भारत में दूरस्थ शिक्षा का विकास**

भारत में दूरस्थ शिक्षा के सूत्रपात का श्रेय तत्कालीन शिक्षा मंत्री डॉ0 के0एल0 श्री माली को है। डॉ0 श्री माली ने देश में उच्च शिक्षा की बढ़ती मॉग तथा प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों को प्रभावशाली बनाने की आवश्यकता का अनुभव किया। किन्तु इसे पूरा करने के लिए अधिक संख्या में नये कालेजों एवं विश्व विद्यालयों को खोलने हेतु भारत आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ नहीं था। तब उनका ध्यान विदेशों में सफलता प्राप्त कर रहे शिक्षा के वैकल्पिक माध्यम 'पत्राचार माध्यम' की ओर आकृष्ट हुआ। अतः श्री माली के प्रयासों से भारत सरकार ने पत्राचार हेतु प्रोफेसर डी0एस0 कोठारी की अध्यक्षता में एक समिति गठित की। इस समिति का विचार था कि पत्राचार अनुदेशन एक लचीली प्रणाली है तथा इसे अकेले या अन्य शैक्षिक विधियों के साथ प्रयोग किया जा सकता है। चूँकि पत्राचार शिक्षा में शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य आपसी अन्तः प्रक्रिया नहीं होती है। इसके लिए समिति ने अनुभव किया कि यदि

पत्राचार शिक्षा की योजना को कुशल एवं परिश्रमी अध्यपकों एवं शैक्षिक प्रशासकों द्वारा समुचित ढंग से चलाया जाय तो इसका स्तर बना रह सकता है। अतः समिति ने पत्राचार शिक्षा प्रारम्भ करने की संस्तुति प्रारम्भ की। पत्राचार शिक्षा समिति की संस्तुति के परिणाम स्वरूप भारत में सर्वप्रथम दिल्ली विश्वविद्यालय नें एक आकस्मिक योजना के रूप में जुलाई 1962 ई0 में बी0ए0 डिग्री हेतु पत्राचार पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया। इस प्रयोग की सफलता से प्रोत्साहित होकर कुछ दूसरे विश्वविद्यालयों ने भी दूरस्थ शिक्षा तकनीक को अपनाने का विचार किया। सन् 1967 ई0 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नें दूसरे विश्वविद्यालयों में पत्राचार पाठ्यक्रमों के प्रचार हेतु निर्देश देने के लिए एक समिति का गठन किया । इस समिति ने योजना के विस्तार हेतु एक निश्चित रूप रेखा प्रस्तुत की । इसके परिणाम स्वरूप सन् 1968ई0 में पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला, सन् 1969ई0 में मैसूर विश्वविद्यालय मैसूर तथा सन् 1969ई0 में ही मेरठ विश्वविद्यालय मेरठ द्वारा पत्राचार पाठ्यक्रमों की शुरूआत इस प्रकार साठ के दशक में चार विश्वविद्यालयों द्वारा किया गया। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली सन् 1985 तक लगभग 31 विश्वविद्यालयों द्वारा अपना लिया गया। भारत में दूरस्थ शिक्षा के विकास को तीन चरण में विभक्त किया जा सकता है।

**1. प्रारम्भिक अवस्था :**

साठ की दशक में भारत वर्ष में दूरस्थ शिक्षा के विकास का प्रारम्भिक अवस्था माना जाता है। इसी दशक में यहॉ पर दूरवर्ती शिक्षा का सूत्रपात हुआ। जब चार विश्वविद्यालयों – दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली (1962), पंजाबी विश्वविद्यालय,पटियाला(1968), मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर (1969), मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ (1969) ने अपने यहॉ पत्राचार शिक्षा संस्थानों की स्थापना की। इस प्रकार साठ की दशक में भारत में दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का प्रारम्भ हुआ।

**2. गतिमान अवस्था :**

सन् 1970ई0 से सन् 1980ई0 तक दस वर्षो में उन्नीस भारतीय विश्वविद्यालयों में पत्राचार शिक्षा संस्थानों की स्थापना हुई। इनमें से कई संस्थानों द्वारा स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों एवं डिप्लोमा तथा सर्टिफिकेट पाठ्यक्रमों की भी शुरूआत की गयी।

सत्तर के दशक में दूरवर्ती शिक्षण संस्थान स्थापित करने वाले प्रमुख राज्य विश्वविद्यालय निम्नलिखित हैं–

1. पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ (1971) ।
2. हिमांचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (1971)।
3. आन्ध्र विश्वविद्यालय, विशाखापट्टनम (1972)।
4. श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरूपति (1972)।
5. केन्द्रीय आंग्ल एवं विदेशी भाषा संस्थान, हैदराबाद (1973)।
6. पटना विश्वविद्यालय, पटना (1974)।
7. भोपाल विश्वविद्यालय,भोपाल (1975)।
8. उत्कल विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर (1975)।
9. बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई (मुम्बई) (1975)।
10. मदुरई कामराज विश्वविद्यालय,मदुरई (1976)।
11. जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू (1976) ।
12. कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर (1976 )।
13. राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (1976)।
14. उस्मानियॉ विश्वविद्यालय, हैदराबाद (1977)।
15. केरल विश्वविद्यालय, त्रिवेन्द्रम (1977)।
16. इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (1978)।
17. एस0एन0डी0टी0महिला विश्वविद्यालय,बम्बई (मुम्बई) (1978)।
18. अन्ना मलाई विश्वविद्यालय,अन्ना मलाई नगर (1979)।

19. मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (1979)।

इस प्रकार सत्तर के दशक में दूरवर्ती शिक्षा को शिक्षा की एक बैकल्पिक प्रणाली के रूप में लगभग सभी राज्यों को अपनाने के प्रयास किये गये।

**3. विकास की सार्थकता अवस्था :**

प्रारम्भ में परम्परागत विश्वविद्यालयों द्वारा ही अपने एक अंक के रूप में पत्राचार शिक्षा संस्थानों की स्थापना की गयी। लगभग सन् 1980ई0 तक दूरवर्ती शिक्षा परम्परागत विश्वविद्यालयों से ही सम्बद्ध रही किन्तु आन्ध प्रदेश सरकार के एक निर्णय ने भारत में दूरवर्ती शिक्षा के इतिहास को एक नया मोड़ दिया तथा इस निर्णय के परिणाम स्वरूप सन् 982ई0 में प्रथम मुक्त विश्वविद्यालय, 'आन्ध्र प्रदेश मुक्त विश्वविद्यालय हैदराबाद' की स्थापना हुई। इस प्रकार दूरस्थ शिक्षा के विकास का प्रथम सार्थक प्रयास विश्वविद्यालय स्तर के स्वायत्त संस्थान की स्थापना के द्वारा किया गया।

यद्यपि आन्ध्र प्रदेश मुक्त विश्वविद्यालय हैदराबाद की स्थापना भारत में दूरस्थ शिक्षा के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। किन्तु राज्य स्तरीय संस्थान होने के कारण इसका विस्तार एवं अधिकार क्षेत्र सीमित था। अतः सभी राज्यों द्वारा एक ऐसे मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना पर बल दिया गया जो पूरे देश में फैले हुए पत्राचार शिक्षा संस्थानों/निदेशालयों के कार्यो में समन्वय स्थापित कर सके। साथ ही यह अनुभव किया गया कि इस प्रकार की उच्च स्तरीय संस्थान दूरवर्ती शिक्षा के विकास में पूर्णतया समर्पित होकर कार्य करे। इस मॉग के परिणाम स्वरू॰ सितम्बर 1985 ई0 में भारत सरकार ने इन्दिरा गॉधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय स्थापित करने का महत्वपूर्ण निर्णय लिया। इन्दिरा गॉधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना के पश्चात् अनेक राज्यों नें अपने यहॉ मुक्त विश्वविद्यालय स्थापित करने का सार्थक प्रयास किये। इस प्रकार सन् 1980 ई0 के पश्चात् दूरस्थ शिक्षा के विकास हेतु तेजी से प्रयास किये जा रहे हैं।

**भारत में दूरस्थ अध्ययन कार्यक्रम चलाने वाले प्रमुख मुक्त विश्वविद्यालय**

भारत में दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम चलाने वाले प्रमुख मुक्त विश्वविद्यालय निम्नलिखित है–

1. डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर मुक्त विश्वविद्यालय,हैदराबाद, आन्ध्र प्रदेश (1982)।
2. इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय,नई दिल्ली (1985)।
3. वर्धमान महाबीर मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा,राजस्थान (1987)।
4. नालंदा मुक्त विश्वविद्यालय, पटना, बिहार (1987)।
5. यशवन्तराव चौह्वाण महाराष्ट्र मुक्त विश्वविद्यालय, नासिक,महाराष्ट्र (1989)।
6. मध्य प्रदेश भोज मुक्त विश्वविद्यालय,भोपाल, मध्य प्रदेश (1991)।
7. डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकर मुक्त विश्वविद्यालय अहमदाबाद,गुजरात (1994)।
8. कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, मैसूर,कर्नाटक (1996)।
9. नेता जी सुभाष मुक्त विश्वविद्यालय,कोलकाता, पश्चिम बंगाल (1997)।
10. उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश (1999)।
11. तमिलनाडु मुक्त विश्वविद्यालय, चेन्नई, तमिलनाडु (2002)।
12. पंडित सुन्दरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय, विलासपुर, छत्तीसगढ़ (2005)।
13. उत्तरांचल मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (नैनीताल) उत्तरांचल ।
14. कृष्णकान्त हैंडिक राज्य मुक्त विश्व विद्यालय, गुवाहाटी,असम।

**निष्कर्ष**

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भारत में उच्च शिक्षा की मॉग को देखते हुए भारतीय शिक्षा आयोग ने पत्राचार शिक्षा को अपनाने की संस्तुति की थी। इसके पश्चात् सन् 1976ई0 में श्री जी0पार्थ सारथी समिति ने मुक्त शिक्षा को लागू के बारे में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। यद्यपि भारत में पत्राचार शिक्षा का आरम्भ दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा सन् 1962ई0 में ही कर दिया गया था किन्तु इस दिशा में ठोस प्रयास सन् 1982ई0 में आन्ध्र प्रदेश मुक्त विश्वविद्यालय के रूप में हुआ। सन् 1985ई0 में इन्दिरा गॉधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना से दूरवर्ती शिक्षा को

राष्ट्रीय स्तर पर अपनाने तथा इसे एक वैकल्पिक शिक्षा प्रणाली का व्यावहारिक रूप प्रदान करने का प्रयास किया गया। मुक्त विश्वविद्यालयों एवं इससे जुड़ी हुई अनेक संस्थाओं में प्रतिवर्ष इसके कार्यक्रमों में प्रवेश ले रहे शिक्षार्थियों की संख्या से भी इसके योगदान का पता चलता है। वास्तव में जिन उद्देश्यों को लेकर मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना की गयी है उन्हें न केवल पूर्ण करने बल्कि और अधिक व्यापकता प्रदान करने की ओर मुक्त विश्वविद्यालय सतत् अग्रसर हैं।

**सुझाव**

मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए की गयी मुक्त विश्वविद्यालय उस उद्देश्य की ओर सतत् अग्रसर है। फिर भी उसे और अधिक उपयोगी बनाने के लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

1. योग्य शैक्षणिक स्टाफ की व्यवस्था करना।
2. पर्याप्त संख्या में शिक्षणेत्तर कर्मचारियों की व्यवस्था करना।
3. बाहरी योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों की सेवाओं का लाभ उठाना।
4. शिक्षार्थियों की जिज्ञासाओं का समाधान करने के लिए उचित परामर्श कक्षायें की व्यवस्था करना।
5. अनुसंधान और ज्ञान के प्रसार एवं अभिवृद्धि हेतु प्रावधान की व्यवस्था करना।
6. उच्च स्तरीय पाठ्य सामग्री निर्माण की व्यवस्था करना।
7. आकाशवाणी एवं दूरदर्शन द्वारा शैक्षिक कार्यक्रमों को दिन में शिक्षार्थियों की सुविधानुसार एक से अधिक बार प्रसारित करने की व्यवस्था करना।
8. पर्याप्त संख्या में अध्ययन केन्द्रों की स्थापना एवं उनमें पुस्तकालय, प्रयोगशाला आदि सुविधाओं की व्यवस्था करना।

**संदर्भ :**


1. अग्रवाल, जे0सी0 : न्यू एजूकेशन पालिसी –1986 – देलही : प्रभात प्रकाशन, 1988.
2. आनन्द, सत्यपाल : यूनिवर्सिटी विदाउट वाल्स– देलही : विकास पब्लिसिंग हाउस प्रा0लि0,1979.
3. इग्नू : इन्दिरा गॉधी नेशनल ओपने यूनिवर्सिटी एक्ट 1985 एण्ड द स्टेटस आफ द यूनिवर्सिटी–देलही : 1985.
4. गुप्ता, एस0पी0 : भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याऍ– इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन,1998.
5. पाण्डेय , डॉ0 कल्पलता : शिक्षा के नये आयाम : दूरवर्ती शिक्षा – वाराणसी : 1991.
6. बट्स, ए0डब्लू0 : द रोल आफ टेक्नोलाजी इन डिस्टेन्स एजूकेशन– लन्दन : क्रोम हेलन, 1984.
7. शर्मा, आर0ए0 : टेक्नोलाजी आफ टीचिंग–मेरठ : आर0लाल बुक डिपार्टमेन्ट, 1988.
8. शर्मा, आर0ए0 : डिस्टेन्स एजूकेशन–मेरठ : ईगल बुक्स इंटरनेशनल, 1995.
9. शर्मा, आर0ए0 : दूरवर्ती शिक्षा – मेरठ : सूर्या पब्लिसिंग, 1995.
10. साहू, पी0के0 : ओपेन लर्निंग सिस्टम– न्यू देलही : उप्पल पब्लिकेशन्स, 1994.
11. होलमवर्ग, वोर्जी : ग्रोथ एण्ड स्ट्रक्चर आफ डिस्टेन्स एजूकेशन – लन्दन : क्रोम हेलन, 1986.


***

# भारत में आापदा एवं उसका निदानों का भौगोलिक विश्लेषण

*डॉ. मनोज कुमार सुमन* *

भारत के कुल भूक्षेत्र के लगभग 60% भूकंप और भूक्षरण से प्रभावित है एवं लगभग 4 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में बाढ़ एवं तूफान की संभावना बनी रहती है। बिहार में तो 73% भूमि बाढ़ प्रभावित है। बिहार में वार्षिक बाढ़ संपूर्ण भारत के 35% क्षेत्रों पर होता हैं तथा कुल बाढ़ प्रभावित आबादी का 22% बिहार में स्थित है।

प्राकृतिक प्रकोप अंर्तजात (पृथ्वी के अन्दर से उत्पन्न होने वाले ) एवं बर्हिजात (वायुमण्डल से उत्पन्न होने वाले) प्रक्रमों द्वारा उत्पन्न होते हैं तथा मानव समाज को आर्थिक एवं शारीरिक दृष्टियों से भारी क्षति पहुँचाते हैं। प्राकृतिक प्रकोपों को उत्पत्ति स्रोत के आधार पर दो वृहद वर्गों में विभाजित किया जाता हैं– 1. ग्रहीय प्राकृतिक प्रकोपों या पार्थिव प्राकृतिक प्रकोप तथा (2) पृथ्व्येत्तर प्राकृतिक प्रकोप। UNDRO(United Nation Disaster Relief Coordinator) की एक रपट के अनुसार विश्व में घटने वाले समस्त प्राकृतिक प्रकोपों का 90 प्रतिशत विकासशील देशों या तीसरी दुनिया के देशों में घटित होता हैं वास्तव में अधिकांश विकासशील देश उष्ण एवं उपोष्ण प्रदेशों में स्थित है। जहाँ वायुमण्डलीय प्रक्रमों द्वारा आये दिन कई प्रकार के प्राकृतिक प्रकोपों का अभिर्भाव होता रहता हैं यथा–बाढ़, सूखा, वनाग्नि आदि। मैदानी क्षेत्र प्रत्येक वर्ष बाढ़ सें ग्रासित होते है।नगरीकरण मे तेजी से वृद्धि, औद्योगिक विस्तार, कृषि में विकास, जनसंख्या में वृद्धि तथा सामाजिक विकास के कारण प्राकृतिक प्रकोपों की आवृत्ति तथा परिणामों में दिनोंदिन वृद्धि होती जा रही है। प्राकृतिक प्रकोपों के कारण विकासशील देशों में इतनी अधिक आर्थिक क्षति होती है कि विकास परियोजनाओं के अनुकूल परिणाम परिलक्षित नहीं हो पाते हैं बल्कि वे मटियामेट हो जाते हैं। क्योंकि विकाश परियाजनाओं के लिए निर्धारित धनराशि को प्रकोपों से उत्पन्न क्षति की पूर्ति के लिए लगाना पड़ता है।

ग्रहीय प्राकृतिक प्रकोपों के अन्तर्गत पृथ्वी की आपदापन्न घटनाओं को सम्मिलित किया जाता है। उत्पति के श्रोत के आधार पर ग्रहीय प्राकृतिक प्रकोपों को दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है – (1) पार्थिक या अर्न्तजात प्रकोप–जिनका आविर्भाव पृथ्वी के अन्तराल में विभाजित तापीय दशाओं के कारण उत्पन्न अर्न्तजात बलों द्वारा होता है तथा (2) वर्हिजात या वायुमण्डलीय प्रकोप–जिनका आविर्भाव वायुमण्डलीय प्रकोपों द्वारा होता है।

**पार्थिक प्राकृतिक प्रकोप–**इनके अन्तर्गत सामान्यतया ज्वालामुखी, भूकम्प, बड़े पैमाने के घटित होने वाले वृहद भूस्खलन (landsilides,) हिमस्खलन (Avanlanches) आदि को सम्मिलित किया जाता हैं। भूकम्प का आगमन पृथ्वी के आन्तरिक भाग मे तापीय दशओं में परिवर्तन एवं विर्वत्तनिक घटनाओं के कारण होता है। भारत में आए भूकम्पों भुज में का भूकम्प (जनवरी, 26, 2011)। बिहार–नेपाल के 1934 तथा 1988 के दो भूकम्पों के उदाहरण भूकम्पों के मानवकृत संरचनाओं तथा मानव जीवन पर दुष्प्रभाव का भली–भाँति इजहार कर देते हैं। उत्तरी बिहार, नेपाल के तिब्बत में 8.4 परिमाण वाले शक्तिशाली भूकम्प की घटना 15 जनवरी सन् 1934 में घटी। इस भूकम्प का अधिकेन्द्र बिहार के दरभंगा शहर ($26.6^0$30 अक्षांश तथा $86.8^0$ पूर्वी देशान्तर) के पास था। इस भूकम्प द्वारा 10,700 व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी, 250 किमी. की लम्बाई तथा 60 किमी. को चौड़ाई वाले क्षेत्र में भूमिस्खलन तथा मलवापात की घटनाएँ हुई, ज्वालामुखी प्रकोप–ज्वालामुखी का उदगार भी आपदापन्न प्राकृतिक आर्थिक प्रकोप का महत्वपूर्ण उदाहरण है–इनके अलावा मानव निर्मित आपदाएँ भी है जिनमें सड़क दुर्घटनाएँ, औद्योगिक दुर्घटनाएँ, अग्निकांड, आण्विक जौविक, रासयनिक दुर्घटनाओं जैसी आपदाएँ।

दीर्घकालिन घटनाएँ तथा प्रकोप या संचयी प्रभाव वाले प्रकोप जैसे – बाढ़, सूखा, ताप लहर, शीत लहर आदि। जैसे उड़ीसा का सुपर चक्रवात (1999)। 29 अक्टूबर, 1999 का दिन उड़ीसा वासियों

* नेट, एस.आर.एफ. (यू.जी.सी.), भूगोल विभाग, कॉलेज ऑफ कॉमर्स, पटना-२०

के लिए काल का ताण्डव नृत्य साबित हुआ जबकि भारत के चक्रवातीय इतिहास में सर्वाधिक शक्तिशाली सुपर चक्रवात ने उड़ीसा के तट पर दस्तक दिया तथा 29 से 31 अक्टूबर तक प्रान्त के एक तिहाई भाग में तबाही माचाकर एक भयानक सन्नाटा छोड़ गया।

उल्लेखनीय है कि भारत में बाढ की आवृति, तीव्रता एवं क्षेत्रीय विस्तार तथा उसके द्वारा होने वाली क्षति की मात्रा में प्रतिवर्ष वृद्धि होती जा रही है। इस स्थिति के निम्न कारण हैं–प्रमुख नदियों एवं उनकी महत्वपूर्ण सहायक नदियों के उद्‌गम क्षेत्रों एंव उपरी जलग्रहण क्षेत्रों में अंधाधुंध वन विनाश तथा उसके द्वारा मृदा का त्वरित गति से अपरदन, नदियों के अवसाद भार में वृद्धि, नदियों की तलियों में अवसादों के जमाव के कारण उभार, नदियों की घाटियों की जलधारण की क्षमता में कमी, नगरीकरण में विस्तार तथा वृद्धि, बाढ़ मैदानों तथा उथली घाटियों मे मानव बस्त्यिों का तेजी से अतिक्रमण, नदियों की घाटियों का पार्श्व भागों से लेकर जलधारा तक शरदकाल में कृषि का विस्तार, पूलों, तटबंधों, डाइक आदि का निर्माण इत्यादि। बिहार में भी 2008 में बाढ़ ने भयंकर त्रासदी मचाया। सूखा अत्याधिक घातक प्रकोप होते है, क्योंकि इनका किसी भी प्रकार के जीवन रूप के अस्तित्व के लिए आवश्यक तीन वस्तुओं (जल, वायु तथा आहार) में से एक (जल) से सीधा तथा दूसरे (आहार) से अप्रत्यक्ष रूप से गहरा सम्बन्ध है क्योंकि फसलें, पौधे तथा अन्य खाद्य जन्तु जल पर पूर्णतया आश्रित होते हैं। सूखे का अविर्भाव जल के अभाव के संचयी प्रभावों से होता है तथा इस प्राकृतिक प्रकोप के कारण कृषि तथा प्राकृतिक वनस्पति को भारी क्षति होती हैं तथा अकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। भारत के सुखा–ग्रसित प्रांतों में राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेश से लोगों का प्रायः प्रतिवर्ष प्रवजन होता ही रहता है तथा ठीक उसी प्रकार बिहार के दक्षणी भाग में भी प्रातिवर्ष सूखा होता ही रहता है। लगभग 60% धरती पर सुखे की संभावना बनी रहती है।

**भारत में आपदा प्रबंधन (Discusser Management) -** भारत के कुल भू–क्षेत्र का लगभग 60 प्रतिशत भूकम्प और भू–क्षरण से प्रभावित है। लगभग 4 करोड़ हेक्टर भू–क्षेत्र में उफान एवं बाढ़ की संभावना बनी रहती है। मैदानी क्षेत्र प्रत्येक वर्ष बाढ़ से ग्रसित होता हैं प्रत्येक अंचलों में सुखा, बाढ़, धूलभरी आँधी, बादल फटने, चट्टानों के खिसकने, लू, शीतलहरी आदि स्तरों का प्रकोप रहता है। लगभग 60 प्रतिशत धरती पर सूखे की संभावना बनी रहती है एवं इन्हें भौगोलिक, मौसम संबंधी, जलविज्ञान संबंधी, भू–उपयोग, सामाजिक–आर्थिक यादि सांख्यिकीय आंकड़ों के साथ समेकित किया जा रहा हैं।

एक व्यापक पूर्व चेतावनी प्रणाली विकसित की जा रही है। चक्रवातों की पूर्व जानकारी के लिए पूर्वी और पश्चिमी भू–तटीय भू–भाग में उन्नत डोपलर रडार प्रणाली नेटवर्क तथा बाढ़ की पूर्व सूचना के लिए नदी–बेसिनों पर 166 बाढ़ पूर्वसूचना केन्द्र स्थापित किए गए हैं। उन्नत और बहुद्देशीय सुनामी पूर्व चेतावनी पर कार्य जारी हैं। मध्यम क्षमता वाली मौसम संबंधी भविष्यवाणी की प्रणाली काम कर रही है, जो सूखे की स्थिति पर निगरानी रखती है।

गृह मंत्रालय में राष्ट्रीय आपात प्रचालन केन्द्र (Eoc) स्थापित किए गए हैं, जो उपग्रह आधारित ध्वनि–आकंड़ा–संचार तंत्र से युक्त हैं। ऐसे ई.ओ.सी. रज्यों की राजधानियों व जिला मुख्यालयों में भी स्थापित किए जा रहे हैं। भारतीय आपदा संसाधन नेटवर्क से देश के 565 जिलें ऑनलाइन जुड़े हुए हैं। एक अन्य भारतीय आपदा ज्ञान तंत्र (IDKN) नामक ऑनलाइन पोर्टल विकसित किया जा रहा है, जो तकनीकी संस्थानों और विशेषज्ञों को आपदा प्रबंधन व्यूह को विभिन्न चरणें में उपयोगी उपकरणें, प्रारूपों, दिशा–निर्देशों तथा अन्य संसाधनों की जानकारी उपलब्ध कराएगा।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) की सहायता से एक समुदाय आधारित आपदा जोखिम प्रबंधन कार्यक्रम आरंभ किया गया है। यह 17 राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों के 169 बहु–आपदा संभावित जिलों में कार्यान्वित किया जा रहा है।

आपदा प्रबंधन की शिक्षा को मुख्यधारा में लाने के लिए राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान (NIDM) की स्थापना की गयी हैं स्कूलों तथा इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम में इसे शामिल किया गया है तथा चिकित्सा व नर्सिंग पाठ्यक्रम बनाए गए हैं।

राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन बल के आठ बटालियन गठित किए गए हैं। इनमें से चार आण्विक, जैविक, रासयनिक आपदा से दो पर्वतों पर खोज एवं बचाव कायों एवं दो समुद्री खोज एवं बचाव कार्यों हेतु प्रशिक्षित होंगे।

आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 में आपदा प्रबंधन हेतु विस्तृत कानूनी एवं संस्थागत ढाँचे की अनुशंसा की गयी है। इसी के अनुरूप प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाले एक राष्ट्रीय आपदा प्रबंध प्राधिकरण का गठन किया गया है। इसमें एक उपाध्यक्ष व पाँच सदस्य होंगे। राज्यों में मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में ऐसे प्राधिकरण का गठन किया गया है। जिला स्तर पर जिलाधिकारी एवं जिलापरिषद् अध्यक्ष इसके सामूहिक अध्यक्ष होंगे।

आपदा प्रबंधन अधिनियम के तहत दो प्रकार के कोष बनाए गए हैं– राष्ट्रीय आपदा अनुक्रिया कोष एवं राष्ट्रीय आपदा निराकरण कोष में केन्द्र, राज्य व जिलास्तरीय हैं।

उम्मीद है कि इस नवीन आपदा प्रबंधन संरचना से देशभर में अल्पकालिक व दीर्घकालिक सभी प्रकार की आपदाओं के जोखिम कम करने में उल्लेखनीय सहायता मिलेगी।

**संदर्भ :**

1. Singh S. (2002): Environmental Geography, Prayag Pushtak Bhawan, pp.370414.
2. Srijan Notes
3. Singh L. (2007): New Dimension In Urban Geography, Tara Prakashan, P-191.
4. Singh J., Singh K. (2002): आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रकाशन, p-49
5. Singh S. (2001): भौतिक भूगोल, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर, pp-138-157
6. Singh P.: Environmental Pollution and Management.
7. Sivasamy. N& Srinivasan (1997): Environment Pollution and its control by trees.

***

# उपन्यास जैनेन्द्र का मानवीय धरातल

*डॉ. वन्दना त्रिपाठी* *

साहित्य का सृजन समाज और व्यक्ति के मंगलमय भविष्य के निर्माण हेतु होता रहा है। विगत अनुभवों से षिक्षण ग्रहण कर नूतनतम शुभ परिणामी लाभ देने वाले मानवीय तथ्यों का निरूपण करना प्रत्येक साहित्यकार के लिए सामाजिक जीवन की अपेक्षाओं में आवष्यक होता है। हमारे प्राच्य काव्याचार्यो की यह अभिमान्य धारणा रही है कि काव्य सृजन यष के लिए अर्थ के लिए, व्यवहार ज्ञान के लिए तथा अमंगल से रक्षा करने के लिए ही होता है।[1] कृतिकार की कृति उक्त की प्राप्ति हेतु सामाजिक जीवन को अपना आधार बनाती है, जिसमें मानवीय सुख–दुःख, त्याग, न्याय, अन्याय, सहानुभूति, परोपकार और परपीड़न जैसी सम्वेदनायें उभरते हुए साहित्यिक आधार के रूप में निष्चित होती है। यही मानवीय धरातल का स्वरूप निष्चित होता है जो प्रत्येक रचनाकार की रचना का प्राण तत्व बनता है। किस रचनाकार के ह्रदय में कितनी मानवीय सम्बेदनायें उसे लेखन हेतु प्रेरणा का कारण बनती है? यह उस कृती की अपनी निज विषिष्टता पर अवलम्बित होता है। इस दृष्टि से उपन्यास कार जैनेन्द्र के उपन्यासों में विवेचित मानवीय धरातल की गवेषणा करने पर अग्रलिखित लिखित तत्वों की उपलब्धि होती है, जैनेन्द्र की अद्वैती दृष्टि मे जहॉ एक ओर उन्हें सत्यान्वेषण और उसके निष्पक्षभाव की स्वीकृति प्रस्तुत करते हुए हम देखते  है तो वही दूसरी ओर असत्य के प्रति मानवीय अवधाराणा का घोर खण्डन करते हुए भी वे दीख पड़ते है। उनके विचार में असत्य के कीटाणु सत्य के धूप में ही मरेंगे। ऑखों से उन्हें लुकाने छिपाने की नीति में ये अॅधेरा पाकर और भी बढ़ सकते है, क्योंकि बुराई अॅधेरे में फैलती है तथा हवा और धूप लगने से वह छू होती दिखती है।[2] वस्तुतः जैनेन्द्र सत्य पर आधारित अपने भाव विचारों प्रबलता प्रदान करते हैं। मानवीय आधार की पीठिका में सत्य की स्वीकृति और स्थापना पर उनके विचार प्रथमतः उभरते दीख पड़ते है। उनके विचार में ''जिन्दगी में दो चीजें है – विचार ओर कर्म। असल में तो ये दो नही होनी चाहिए। उनमें पूर्वापर सम्बन्ध होना चाहिए। करना, विचारने का फल होना चाहिए पर प्राय' विचारक विचारते हैं और कर्म पक्ष उनमें मूर्छित हो जाता है और जो कर्मठ हैं वे विचार का कष्ट नहीं उठाते। दुनिया के  लोगों में इनका सन्तुलन और ऐक्य विरल हैं। सबमें इनकी तारतम्यता का भेद ही मिलता है।''[3] इस कथन द्वारा जैनेन्द्र जी ने मनुष्य के मानवीय गुण को इंगित करना चाहा है। मनुष्य के जीवन में उसका विचार और कर्म निष्चित रूप में उसे क्रिया युक्त करता है। जैसा मन में विचार मन्यन होगा, वैसा ही व्यक्ति अपने कर्म में प्रवृत्त होगा। क्योंकि बिना विचार किए कोई भी कार्य–अमंगलकारी ही होता है। अविवेकपूर्ण कर्म वही कहलाता है जो बिना समुचित विवेकपूर्ण रीति से सम्पन्न किय जाता है। विचार और कर्म का सम्बन्ध परस्पर अन्योन्याश्रित रूप में होने की आवष्यकता पर जैनेन्द्र जी ने बल दिया है। उनके विचार में संसार के अन्तर्गत प्रायः विचार  और कर्म के बीच सन्तुलन बनाने वाले लोग कम  हैं। दोनों में एकता और तारतक्य परभावष्यक होने की उन्होंने पूर्ण सहमति व्यक्त किया है। जिससे मनुष्य की कर्तव्य दृष्टि पूर्ण और सफल होती है।

वस्तुतः जैनेन्द्र जी ने अपनी समकालीन स्थितियों परिस्थितियों का समुचित परीक्षण और परिषीसन कर मानवीय धरातल की निष्चितता व्यक्त करने का सतत प्रयास किया है। उनके विचार में हम पाते है कि ''प्रत्येक युग की राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक अथवा आर्थिक परिस्थितियॉं बदकती रहती है। परिसिथित और परिवेष की भिन्नता के कारण जीवन के प्रति दृष्टि कोण भी प्रत्येक युग में बदलता ही रहता है। ..... ।..... । जैनेन्द्र जी ने भी अपने युग की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए समसामयिक समस्याओं का जो विवेचन अपने उपन्यास में किया है–वह महत्वपूर्ण है।''[4] उनके विचार में हम यह भी पाते है कि '' किनारे पर ही रहें, जहॉ पैर धरती से छू जाते हैं। वहीं तक रहें, जहॉ हमारा

---

* पूर्व शोधच्छात्रा, हिन्दी, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ.प्र.

लंगर धरती को पकड़ ले और हम ठहर सकें। .....।.....। जितनी झेल सकें, उतनी ही विराट की झॉकी ले लें और अपनी धरती के पास–पास किनारे –किनारे सबसे उलझते–सुलझते जिये चलें। यही उपाय है। यही मान जीवन है।[5] जैनेन्द्र के विचार में सत्य सर्वथा सभी सासारिक तत्वों एवं कार्य वयवहारों से पृथक् नहीं रहता। मनुष्य परिस्थिति जन्य है। परिथितियॉ भी मानव निर्मित ही होती हैं। उनके अनुसार ''जन्म से कोई कुछ नहीं होता, कर्म से भी होता है, कर्म सम्भावना अन्तः प्रेरणा के साथ वाह्य आवष्यकता से पुष्ट होती है।''[6] जैनेन्द्र के समग्र उपन्यासों के अन्तर्गत विवेचित मानवीय आधार अथवा धरातल भारतीय धार्मिक अवधारणाओं के अनुसरण में दीख पड़ते हैं। नारी विषयक विचार निरूपणों में जैनेन्द्र को अनेक समालोचकों में भ्रमात्मक स्थिति दिखोई देती है। आधुनिक अन्वेषण कर्त्री डॉ0 सावित्री मठपाल ने अपने अध्ययन में उल्लेख किया है कि ''उनके उपन्यासों में नारी मात्र–नारी है, भोग्या है, पत्नी है, प्रेयसी है और भी कुछ है किन्तु मातृत्वपूर्ण नारी उनमें नहीं है षिषु के किलकारी से सूनी अपने अन्तरंग के द्वन्द्व से प्रताड़ित और अपने अहं से प्रवंचित नारी ही सर्वत्र गतिमान है।''[7] लेकिन उक्त तथ्य का पारिषीलन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यासकार जैनेन्द्र अपना मन्तव्य प्रतीकों के सहारे, बिम्वों के माध्यम से, रहस्यों और मनोविष्लेषण पद्धति से वे अपना कथ्य उपस्थिति करने में सिद्ध हस्त हैं। नारी के मातृत्व पक्ष को प्रस्तुत करने में उन्होने अत्यन्त कुषलता प्राप्त किया है। स्त्री का स्वतन्त्र विचरणषीलता पर उनका कुठारा घात है मातृत्व से बचकर नारी को प्रेयसी रूप का ही अवलम्ब लेकर जीवन यापन करने वाली स्त्री का रूप छसना, माना है। अनित्य तथा क्षणिक सुख माना है। ऐसे रूप को निष्फल निरर्थक तथा निन्द्या माना है। उनके विचार में मातृत्व ही नारी जीवन की सार्थकताहै। जैनेन्द्र के उपन्यासों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि उनके मत में भारतीय को सनातन सतीत्व अपनाना होगा। वही उसका धर्म है। पति में खो जाने वाली नारी का ही आस्तित्व है। पति ही पत्नी की साधना है, पति व्यक्ति न होकर जैनेन्द्र के विचार में वह प्रतीक है। सदोषत्व की तलाष पति में पत्नी द्वारा सोचना ही नहीं चाहिए पति –पति होता है। वह देवता है। देवत्व तो पत्नी के सतीत्व की महिमा के प्रकाष से पति को प्राप्त होता है। सती ही पति को देवता बनाती है।

जैनेन्द्र के विचार में ''हिन्दू शास्त्र सच कहते हैं, स्त्रियॉ यह कह कर कि शास्त्र पुरूषों के बनाए हुए हैं, अपने को स्वधर्म पालन से नहीं बचा सकतीं। क्या वे सतीत्व की विडम्बना चाहती है।''[8] उनके विचार में ''पतिब्रत और सतीत्व दो भिन्न धर्म हैं तो उन्हें सतीत्व की परिभाषा देनी चाहिए।[9] जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों मानव जीवन के अनेकषः पक्षों में गम्भीरता से अपनी पैठ लगायी है। जो मानवीयता को सिद्ध करते है। त्याग, प्रेम, आत्मकष्ट, अहिंसा तथा अहंकारिता का नाष, दूसरों के प्रति सहिष्णु होना जैसे अनेक मानवीय गुणदोष विवेचन जैनेन्द्र के उपन्यासों में पूर्णतया विवेचित है। उनके साहित्य का श्रेष्ठ श्रेय, अखण्ड तथा अद्वैत सत्य है। चराचर जगत के प्रति प्रेमभाव, कृपाभाव रखना ही अहिंसा है। जैनेन्द्र में मानवीय चिन्ता है। मानवता वादी चिन्तन में जैनेन्द्र अपने पात्रों को उसे चरित्र में प्रयुक्त करता दीख पड़ते है। सभी जन को अपनी मान्यताओं एवं परम्पराओं में जीने तथा व्यवह्रत करने का अवसर प्रदान करने में जैनेन्द्र कहीं भी चूक नहीं करते है।[10] मानवतावादी दृष्टिकोण जैनेन्द्र की अपनी निज विषिष्टता है। उनके मत में हम पाते है कि मनुष्य मूलतः मनुष्य ही है, इसीलिए उसे सबसे प्रेम ही करना है, घृणा नहीं।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में मानवतावादी विचार का स्पष्ट उदाहरण उनके ''मुक्ति बोध'' नामक उपन्यास में देखने को मिलता है– ''क्यों समझती हो कि देष के आगे मैं सत्य को नहीं मान सकता हूॅ। 'तुम रूसी हो'। 'मैं हिन्दुस्तानी हूॅ'। पर सच में दोनों इन्सान ही हैं। देष नहीं प्रथम मनुष्य है।''[11] जैनेन्द्र के विचारों की विषेषताओं अद्वैत दृष्टि, नारी औदार्य, मानवतावाद, मानवीयगुण ग्राह्यता जीवन विषयक विविधता, रहस्यवाद, नूतन तथ्यान्वेषण का साहस, अस्तित्व की शर्त स्वीकृति, उन्नत चरित्र निरूपण तथा मानवीय जीवन विधि के निरूपण और मानव कल्याण की भावना आदि प्रमुखता से दृष्टिगत होती हैं।

पूर्वतन विवेचनों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उपन्यासकार जैनेन्द्र की सम्पूर्ण रचना मानवीय आधार पर रचित है। मानवता के पक्षधर जैनेन्द्र जी ने अपनी रचनाओं में मानव

कल्याण, मानवीय सम्वेदनायें, मानवीय गुणों, तथा मानव जीवन की वास्तविकताओं का प्रमुखता से निरूपण एवं सम्भरण करने का सफल प्रयास किया है। उनके उपन्यासों की रचना शैली इससे पूर्ण तथा प्रभावित है। मानवता के धरातल पर उपन्यासों के चरित्र चित्रित है। मानवीय धरातल पर उनके उपन्यासों का प्रस्तुत होता चरित्र जन जीवन से जहॉ एक ओर साम्य रखता है। वही दूसरी ओर वह अनोखा भी लगता है।

**सन्दर्भ :**


1. मम्मट कृत काव्य प्रकाषः – हिन्दी व्याखा आचार्य विष्वेष्वर, ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी प्रकाषन, वाराणसी, 1970 प्रथमोल्लासः – काव्यं यषसेडर्थ कृते व्यवहारविदे–षिवेतरक्षत ये ..... .
2. जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाषन, नई दिल्ली – 1993 साहित्य का श्रेय और प्रेय पृष्ठ – 326
3. तदेव – पृष्ठ – 327
4. हिन्दी केषरत् जैनेन्द्र से0–डॉ रमेष जैन, विवेक पब्लिषिंग हाउस, जयपुर 1998 – पृष्ठ –203
5. त्याग पत्र लेखक– जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाषन, नई दिल्ली, 2001 – पृष्ठ–100–101
6. कल्याणी ले0 जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाषन, नई दिल्ली – 1998 पृष्ठ–96
7. जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी ले0 – डॉ सावित्री मठपाल, साहित्य प्रकाषन नई दिल्ली – पृष्ठ 75
8. कल्याणी –पृष्ठ 68–69
9. हिन्दी के शरत – पृष्ठ 222
10. जैनेन्द्र और नैतिकता ले0 ज्योतिष् जोषी, पूर्वोदय प्रकाषन, नई दिल्ली –1998 – पृष्ठ 72
11. समाज मनोविज्ञान के सन्दर्भ में जैनेन्द्र का कथा साहित्य, ले0 – नीरजा, राज कुमार, सूर्य प्रकाषन दिल्ली, 1988 – पृष्ठ–169–70


***

# वर्तमान परिदृश्य में विनोबा भावे के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता

*विवेक कुमार सिंह**
*डॉ. छत्रसाल सिंह* **

आचार्य विनोबा भावे के शैक्षिक विचार परम्परा और आधुनिकता के संयोजन से निःसृत है। परम्परा में जो कुछ उत्तम है, उपयोगी है, आधुनिक समाज के लिए प्रासंगिक है, उसका वे समर्थन करते हैं। वे आधुनिक विचारों से भी ओत–प्रोत हैं। इसीलिए उनके शैक्षिक विचारों का प्रस्तुत अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है। विनोबा भावे लिखते हैं, ''बच्चे की शिक्षा अनजाने या सहज होनी चाहिए। बचपन में बालक अपनी मातृभाषा जिस सहज पद्धति से सीखता है उसके आगे की शिक्षा भी उसी सहज पद्धति से होनी चाहिए। नन्हा बच्चा व्याकरण का अर्थ नहीं जानता। पर वह कभी मां को आया नहीं कहता। मतलब यह कि वह व्याकरण समझता है। भले ही उसे व्याकरण शब्द न मालूम हो और व्याकरण की परिभाषा अवगत न हो पर व्याकरण का मुख्य कार्य सम्पन्न हो चुका।

आधुनिक विचारक भी शिक्षा की सहजता को स्वीकार करते हैं। इसीलिए विनोबा भावे का प्रस्तुत अध्ययन आज के समाज के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है।

यह अध्ययन केवल अकादमिक व्यायाम नहीं है, बल्कि व्यावहारिक स्तर पर भी इससे शिक्षक–शिक्षार्थी, प्रशासक, सामान्यजन सभी लाभ उठा सकते हैं।

**अध्ययन का उद्देश्य**

प्रस्तुत अध्ययन का उददेश्य है–

1 विनोबा भावे के शैक्षिक विचारों की दार्शनिक पृष्ठभूमि की प्रासंगिकता का अध्ययन।
2 विनोबा भावे की समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक विचारों का विवेचनात्मक अध्ययन।
3 विनोबा भावे की शिक्षा की अवधारणा का विश्लेषण एवं प्रासंगिकता।
4 विनोबा भावे की दृष्टि से शिक्षा के उद्देश्य की प्रासंगिकता का अध्ययन।
5 शिक्षक और शिक्षार्थी के सम्बन्ध में विनोबा भावे के विचारों की प्रासंगिकता का अध्ययन।
6 पाठयक्रम के सम्बन्ध में विनोबा भावे के विचारों की प्रासंगिकता का परीक्षण।

**अध्ययन की सीमाएं**

आचार्य विनोबा भावे के वाड्मय विचारों को जानने के लिए विनोबा वाड्मय खण्ड 1 से 21 तक में उल्लिखित साहित्य को आधार बनाया जाएगा। विनोबा के विचारों की समीक्षा में जिन लेखकों की रचनाएं उपलब्ध हैं उनका भी उपयोग किया जाएगा।

**सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण**

विनोबा भावे के सामाजिक सांस्कृतिक, दार्शनिक विचारों पर शोधकर्ताओं की दृष्टि गयी है। उनके शैक्षिक दर्शन और विचारों पर दो अध्ययन विशेष रूप से उल्लेखनीय है–

अध्ययन के विस्तृत क्षेत्र एवं इसकी उपयोगिता की जानकारी हेतु सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा अत्यन्त आवश्यक है। अतः शाधकर्ता ने अपने अध्ययन को गहराई देने हेतु निम्नलिखित शोधकार्यों की समीक्षा की हैः–

1. कालेलकर, के0 (1971) ने विनोबा पर एक किताब 'विनोबा : व्यक्तित्व और विचार' लिखी। इसमें उन्होंने विनोबा जी के जीवन के विभिन्न पहलुओं को सम्मिलित किया है। उनके जीवन दर्शन स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के रूप में कार्य, सामाजिक कार्यों, राजनैतिक सोंच आदि को इस किताब में सम्मिलित किया गया है। संक्षेप में उनके शैक्षिक विचारों का भी वर्णन किया गया है।

** शोध छात्र, जे.एल.एन. मेमो.पी.जी. कालेज, बाराबंकी (उ.प्र.)
* एसो. प्रो., शिक्षाशास्त्र विभाग, जे.एल.एन. मेमो.पी.जी. कालेज, बाराबंकी (उ.प्र.)

2. गांधी, एम0 के0 (1945), ने सम्पूर्ण गांधी वाड्मय के 14वें वाल्यूम में प्रस्तुत एक पत्र के माध्यम से कहा कि एक महाराष्ट्रीय विनोबा भावे ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया। उन्होंने लिखा कि विनोबा सच्चे रूप से सर्वोदय विचारों को मानने वाले औश्र ग्रम स्वराज्य के विचार को वास्तविकता प्रदान करने वाहे रहे। इन विचारों का शिक्षा में विशेष महत्व है।
3. चौबे एस0पी0 (1998), ने भारत के महान शिक्षाशास्त्री नामक एक किताब लिखी, जिसमें उन्होंने विनोबा भावे को भारत के महान शिक्षाशास्त्रियों में स्थान दिया है इसमें उनके शैक्षिक विचारों के अलावा, उनकी सर्वोदय फिलासफी का संक्षेप में वर्णन किया गया है।
4. पाण्डेय, आर0एस0 (1999) ने संसार के महान शिक्षाशास्त्री नामक एक किताब लिखी, जिसमें उन्होंने विनोबा भावे की गांधी जी से वार्ता का दृष्टांन्त दिया है। उन्होंने विनोबा भावे के शैक्षिक विचारों की उपयोगिता का संक्षेप में वर्णन किया है।

**अध्ययन पद्धति**

विनोबा के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता का अध्ययन करने के लिए विश्लेषणात्मक पद्धति का उपयोग किया जायेगा।

**अध्ययन के परिणाम**

आचार्य विनोबा भावे के शिक्षा सम्बन्धी विचार कोश, एवं दर्शन अत्यन्त गहन, असीम एवं अपार हैं, फिर भी उन्हें प्रस्तुत अध्य्यन में एकीकार करने का प्रयास किया गया है। शोधकर्ता ने अपने अध्य्यन के आधार पर निम्नलिखित परिणाम निकाले हैं।

- आचार्य विनोबा भावे के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकताका उद्देश्य ही मुक्ति प्राप्त करना रहा, लेकिन 'मुक्ति' से उनका अभिप्राय आसक्ति क्रोध, लालसा, भ्रम एवं अज्ञान से मुक्ति से है, इनसे मुक्त होना ही मोक्षावस्था है।
- वेदों के अतिरिक्त उपनिषदों का 'तर्तत्वमसि' भी आचार्य विनोबा जी का प्रमुख प्रेरणा स्रोत रहा है। उन्होंने स्वयं कहा है, प्रत्येक वस्तु के अन्दर ईश्वर छिपा हुआ है, केवल उसको पहचानना ही हमारा कर्तव्य है। प्रत्येक वस्तु एवं व्यक्ति में उसी की शक्ति विद्यमान है। अतः विनोबा जी के विचार प्रासंगिक हैं।
- आज की शिक्षा में कार्य को कोई महतव नहीं दिया जाता, आचार्य विनोबा भावे कर्मशून्य ज्ञान को ज्ञान ही नहीं मानते हैं। ''ज्ञान क्रिया से भिन्न हो ही नहीं सकता। जो ज्ञान क्रिया से भिन्न है, वह ज्ञान नहीं है।''
- आचार्य विनोबा जी ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आमूल–परिवर्तन के लिए ही 'आधारभूत शिक्षा' अथवा 'नयी तालीम' पर बल दिया है नयी तालीम कोई पद्धति एवं प्रणाली न होकर,एक विचार है, निर्देशक है एवं सम्पूर्ण जीवन दर्शन है।
- आचार्य विनोबा भावे ने नयी तालीम के द्वारा व्यक्ति को सम्पूर्ण विकाश पर बल दिया है, विचार स्वतंत्रय को उन्होंने महत्व दिया है शिक्षा में पुस्तकों की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान पर अधिक बल दिया है।
- आचार्य विनोबा भावे ने भारतीय प्राचीन परम्पराओं एवं मूल्यों को सामाजिक क्षेत्र में पुर्नजीवित एवं साकार करने का आजीवन प्रयास किया है। उनका उद्देश्य भी एक ऐसी अभिनव समाज–व्यवस्था का निर्माण करना रहा है, जिसके मूल में हिंसा की अपेक्षा अहिंसा, शोषण की अपेक्षा सहयोग एवं पारस्परिक विद्वेष की अपेक्षा सात्विक भ्रातृभाव का सन्निवेश हो।
- विनोबा भावे ने स्त्रियों एवं पुरूषों में थी समान शिक्षण की महत्ता पर बल दिया वे सहशिक्षण को आवश्यक मानते थे ''कम से कम चौदह वर्ष तक तो लड़के लड़कियों को एक जगह यानि सह–शिक्षण मिलना चाहिए''
- ग्राम स्वराज्य की स्थापना के लिए भी उन्होने शैक्षिक पाठ्यचर्या के द्वारा, ग्राम स्वावलम्बन, खादी, ग्रामोद्योग एवं विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था पर बल दिया। उनकी विशिष्टता यही रही कि उन्होंने इस दिशा में ठोस कदम उठाकर इन कार्यक्रमों को विकसित किया।

- भावे की दृष्टि में समाज को यदि कोई सुधारेगा तो वह पुलिस या मिलिटरी नहीं बल्कि शिक्षक ही सुधारेगा।
- आचार्य विनोबा भावे की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रभावी व्यक्तित्व के निर्माण में प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन एवं प्रवचनों को सुनना अत्यधिक प्रभावी होता है। शंकराचार्य का गीता–भाष्य विनोबा भावे का प्रमुख प्रेरणाश्रोत रहा है।
- आचार्य विनोबा भावे की दृष्टि में आज के शिक्षण का सम्बन्ध केवल दो शक्तियों के साथ आता है– स्मरणशक्ति और तर्क शक्ति। इनसे अधिक महत्व की कई शक्तियाँ बुद्धि में हैं। वर्तमान शिक्षा में इनके विकाश पर कोई ध्यान नहीं है।
- उनके अनुसार शिक्षा जीवन जीने का तरीका सिखाती है। शिक्षा वह है जो जीवन जीने का सलीका बता सके, तरीका बता सके।
- भावे शिक्षा को शिक्षण का आनुषंगिक फल मानते हैं। आनुषंगिक फल से उनका तात्पर्य परिणाम से है जो शिक्षण के उपरान्त आस पास ही मिल जाता है।
- भावे ने शिक्षा के सहज रूप को स्वीकार किया है। उनके अनुसार शिक्षा वह है जिसमें शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों बगैर किसी आडम्बर के शिक्षा देते एवं ग्रहण करते हैं।
- विनोबा आनन्द एवं उत्साह युक्त शिक्षा को प्रमुखता देते हैं। उनके अनुसार शिक्षा का अर्थ आनन्द है यह प्रकृतिक एवं उत्साहभरी भावना से पैदा होनी चाहिए।
- विनोबा भावे ऐसी शिक्षा को निरर्थक मानते है, जिसका कोई महत्व न हो। उनके अनुसार शिक्षा हमें साक्षर नहीं सार्थक बनाने वाली होनी चाहिए।
- आचार्य विनोबा भावे ने नयी समाज रचना को शिक्षा का प्रथम उद्देश्य माना है। उन्होंने ऐसे समाज के निर्माण की वकालत की है। जिसमें शरीर परिश्रम और मानसिक परिश्रम की नैतिक और आर्थिक योग्यता समान मानी जाए।
- साम्ययोग के माध्यम से वे ऐसी शिक्षा की वकालत करते हैं। जिसका उद्देश्य शारीरिक एवं बौद्धिक आधार पर विभेद न करना है।
- उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य नये मूल्यों की स्थापना होनी चाहिए। ये मूल्य समताप व समता पर आधारित होने चाहिए।
- मानवता के विकास को उन्होंने शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य माना है। नयी तालीम मानवता के सिद्धान्त पर आधारित है।
- आचार्य विनोबा भावे सामूहिक भावना के विकास को शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य मानते है, इसके अभाव में शिक्षा को उद्देश्यहीन करार देते हैं।
- भावनात्मक विकास के लिए कलात्मक आवश्यक है। उन्होंने इसके महत्व को रेखांकित किया है।
- विनोबा जी वेदों से प्रभावित हैं जिनके अनुसार सच्चा शिक्षक गलत मार्ग से सद्मार्ग की ओर पथ–संशोधक के रूप में कार्य करता है।
- विनोबा भावे के अनुसार एक सच्चा शिक्षक ज्ञान में प्रवीण होता है, जिस शिक्षक को सम्बन्धित विषय के ज्ञान में प्रवीणता नहीं, वह वास्तविक शिक्षक नहीं कहा जा सकता है।
- आचार्य विनोबा भावे आचरण शुद्धता 'शिक्षक' का एक महत्वपूर्ण गुण मानते हैं, उन्होंने शिक्षक को आचार्य कहा है जिसका अर्थ होता है आचारवान।
- उनके अनुसार एक शिक्षक को प्रेम, वात्सल्य और अनुराग की भावना से ओत प्रोत होना चाहिए। उन्होंने शिष्य देवोभव वाक्यों के द्वारा इस भावना के महत्व को इंगित किया है।

**शैक्षिक निहितार्थ**

- आचार्य विनोबा भावे के त्रिपूर्ति शिक्षा के विचारों की प्रासंगिकताको शिक्षा में लागू करना नितान्त आवश्यक।

- विनोबा भावे के साम्ययोग और स्वावलम्बन की विचारों की शिक्षा में लागू किया जा सकता है। क्योंकि उनके विचार से सही शिक्षकों की समान वेतन दिया जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है एवं विद्यार्थी स्वावलम्बी बनें।
- विनोबा भावे के जीवन दर्शन द्वारा वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आयूल परिवर्तन करना चाहिए। जिससे शिक्षा प्रणाली द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।
- आचार्य विनोबा भावे की दृष्टि में आज के शिक्षण का सम्बन्ध केवल दो शक्तियों के साथ आता हे। जब कि इनसे अधिक महत्व की कई शक्तियाँ बुद्वि में है। वर्तमान शिक्षा में इनके विकास पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

**भावी अध्ययन हेतु सुझाव**

- प्रस्तुत अध्ययन विनोबा भावे के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकतासे सम्बन्धित है, भावी अध्ययन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक विचारों पर आधारित हो सकता है।
- प्रस्तुत अध्ययन तुलनात्मक नहीं है, विनोबा भावे के शैक्षिक विचारों का इनके सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक विचारों से तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
- विनोबा भावे के विभिन्न विचारों का अन्य शैक्षिक विचारकों के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
- विनोबा भावे के शैक्षिक विचारों की वैधता की जाँच के लिए पुनः अध्ययन किया जा सकता है।

**सन्दर्भ :**

1. विनोबा भावे – शिक्षा, स्त्री शाक्ति खण्ड 17, पृष्ठ–25
2. विनोबा भावे – शिक्षा, स्त्री शाक्ति खण्ड 17, पृष्ठ–78
3. विनोबा भावे – शिक्षा, स्त्री शाक्ति खण्ड 17, पृष्ठ–83
4. विनोबा भावे – शिक्षा, स्त्री शाक्ति खण्ड 17,पृष्ठ–65
5. विनोबा भावे – शिक्षा, स्त्री शाक्ति खण्ड 17, पृष्ठ–72
6. विनोबा भावे – शिक्षा, स्त्री शाक्ति खण्ड 17, पृष्ठ–78
7. विनोबा भावे – शिक्षा, स्त्री शाक्ति खण्ड 17, पृष्ठ–35
8. विनोबा भावे – शिक्षा, स्त्री शाक्ति खण्ड 17, पृष्ठ–33
9. विनोबा भावे – शिक्षा, स्त्री शाक्ति खण्ड 17, पृष्ठ–27
10. मजूमदार धीरेन्द्र – ग्राम स्वराज्य क्यों? : सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी, मई, 1980

***

# जगदीश गुप्ताकृत 'शम्बूक' : वर्ग चेतना के संघर्ष का जीवन्त प्रतीक

*डॉ. राम कृष्ण* *

'शम्बूक' जगदीश गुप्त की 'नाव के पाँव', 'शब्द–दंश', 'हिमबिद्ध', 'युग्म' के बाद की पाँचवीं काव्य–कृति है। यह राम–कथा के माध्यम से समकालीन समस्याओं का समाधान खोजने के क्रम में जगदीश गुप्त की सशक्त प्रबन्ध–कृति है। 'शम्बूक' की सृजनात्मक प्रेरणा का मूल 'रामायण' में वर्णित शम्बूक–वध की कथा है। कवि का वक्तव्यांश एतदर्थ उद्धरणीय है कि– ''गीता–महाभारत की तरह रामायण भी मानव–जीवन की गहनतम समस्याओं का निदान प्रस्तुत करने में प्रेरक है।'' प्रकारान्तर से कवि ने सामयिक मूल्यों की ह्रासोन्मुखी स्थिति और युगीन समस्याओं के समाधान हेतु समीक्ष्य काव्य की रचना के दायित्व को स्वीकारा है।

कवि ने स्वयं कहा है– ''नया मनुष्य रूढ़िग्रस्त चेतना से मुक्त मानव–मूल्य के रूप में स्वातंत्र्य के प्रति सजग, अपने भीतर आरोपित सामाजिक दायित्व का स्वतः अनुभव करने वाला, समाज को समस्त मानवता के हित में परिवर्तित करके नया रूप देने के लिए कृत संकल्प, कुटिल, स्वार्थपूर्ण भावनाओं से इतर मानव मात्र के प्रति स्वाभाविक सह–अनुभूति से युक्त संकीर्णताओं एवं कृत्रिम विभाजनों के प्रति क्षोभ का अनुभव करने वाला, हर मनुष्य को जन्म से समान मानने वाला, मानव–व्यक्तित्व को उपेक्षित, निरर्थक और नगण्य सिद्ध करने वाली किसी भी दैविक शक्ति या राजनीतिक सत्ता के आगे अनवरत मनुष्य की अंतरंग सद्वृत्ति के प्रति आस्थावान, प्रत्येक संयुक्त, सक्रिय किन्तु उत्पीड़क, सत्यनिष्ठ तथा विवेकसम्पन्न होगा।

शम्बूक का विद्रोही स्वभाव नयी कविता–आन्दोलन–काल के नये मनुष्य के इन्हीं गहरे मानव–मूल्यों की उपज है। 'शम्बूक' हमारी लोकतान्त्रिक व्यवस्था की मान्यताओं के समक्ष जहाँ प्रश्नचिह्न खड़े करता है, वहीं सामाजिक दायित्व–बोध एवं ह्रासोन्मुख मूल्यों की स्थिति में नये मूल्यों का निर्माण कर सम्पूर्ण व्यवस्था के समक्ष एक निर्मम चुनौती भी प्रस्तुत करता है।[1]

डॉ0 जगदीश गुप्त नयी कविता के समर्थ रचनाकार और पुरोधा समीक्षक हैं। उनकी रचनात्मक दृष्टि तथा मेधा का प्रत्येक आयाम उन निर्मम वास्तविकताओं के उद्घाटन के निमित्त ही 'शम्बूक' की रचना में प्रवृत्त हुआ है, जो व्यक्ति, समूह और समाज को बाँटती, काटती और तोड़ती है। 'शम्बूक' वर्ग चेतना के संघर्ष का जीवन्त प्रतीक है। इसी परिप्रेक्ष्य में शम्बूककार की सृजनात्मक प्रेरणा के आयाम भी विचारणीय हैं।

निःसन्देह 1976 का सर्वश्रेष्ठ प्रबन्ध–काव्य है 'शम्बूक'। आधुनिक दृष्टि से राम–कथा के जिन प्रसंगों को निन्दनीय माना जाता है, उसमें एक शम्बूक–वध भी है और इस कथा से सम्बन्धित अविश्वसनीय और अतर्कसम्मत लगने वाले प्रसंगों को हरिऔध जी की पद्धति से अधिक विश्वसनीय और तर्क–सम्मत बनाया गया है। बीच–बीच में प्रकृति–चित्रण भी है। पुरानी कथा को कवि ने नये सन्दर्भ में देखा है और उसमें आज की समस्यायें व चिन्तन प्रक्षेपित किये हैं। कहीं–कहीं दार्शनिकता का पुट भी है। जैसे–

इन्द्र–नारद का हुआ जब भी जहाँ संयोग।
लोक–मानस में तभी उपजा भयानक राग।।
इन्द्र, इन्द्रिय–सुख अपरिमित / और नारद–बुद्धि!
मिलने से इनके / न होगी कभी / मन की शुद्धि।

कवि ने बड़ी स्वाभाविकता और सफलता से विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में आधुनिक विचार प्रक्षेपित किये हैं। जैसे

सभी पृथिवी–पुत्र हैं तब जन्म से

---

* एसो० प्रोफे०, हिन्दी विभाग, पं० दीनदयल उपाध्याय राजकीय बालिका, महाविद्यालय सेवापुरी वाराणसी (उ०प्र०)

क्यों भेद माना जाय?
जन्मजात समानता के तथ्य पर
क्यों खेद माना जाय?
' जन्मना जायते शूद्रः'
क्या नहीं सबके लिए यह सत्य?
और 'संस्कारात् हि द्विज उच्यते'
की घोषणा का क्यों न हो सातत्य?
जड़ समाज/ मनुष्य की रचना नहीं
गति–रहित जीवन/ कभी अपना नहीं।

डॉ0 जगदीश गुप्त द्वारा लिखित 'शम्बूक' प्रबन्ध–काव्य एक उत्कृष्ट काव्य–कृति है। प्रस्तुत काव्य की कथावस्तु मुख्यतः ''वाल्मीकि रामायण'' के उत्तरकाण्ड के एक पौराणिक प्रसंग पर आश्रित है। फादर कामिल बुल्के ने 'वाल्मीकि रामायण' के समस्त उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त घोषित किया है। फलतः शम्बूक पद्मपुराण के सृष्टि–खण्ड और उत्तरखण्ड में, महाभारत के शान्तिपर्व(अध्याय 149) रघुवंश के 15वें सर्ग में, उत्तररामचरित के द्वितीय अंक में तथा 'आनन्द रामायण' के अनेक अध्यायों में उपस्थित है जिससे इसकी परम्परागत मान्यता और पर्याप्त प्राचीनता–दोनों ही स्वतः सिद्ध हो जाती है। डॉ0 जगदीश गुप्त ने कथावस्तु के लिए यद्यपि अनेक प्राचीन स्रोतों को आधारस्वरूप अपनाया है, परन्तु ज्यों का त्यों नहीं। उन्होंने संग्रह और त्याग का विवेक अपनाते हुए आवश्यकतानुरूप उनका यथास्थान उपयोग किया है। स्रोत प्राचीन एवं पुराने हैं किन्तु कवि ने उन्हें नवीन रूप में नवीन कल्पना के साथ प्रयुक्त कर इनके द्वारा मूल पौराणिक कथा को अभिनव, आधुनिक स्वरूप प्रदान किया है। कवि प्रस्तुत कथावस्तु के माध्यम से समकालीन सन्दर्भों एवं युगीन परिवेश को अभिव्यक्ति देना चाहता है। वर्ण–व्यवस्था एवं सत्तापक्ष की अव्यवस्था के विरूद्ध प्रश्नचिह्न लगाता है।''[2]

डॉ0 गुप्त ने इतिहास के प्रतीकों एवं आधुनिक जीवन की विषम स्थिति को आधार बनाकर प्रस्तुत काव्य का निर्माण किया है। कवि मिथक तथा पौराणिक प्रसंगों का उपयोग नवीन संभावनाओं में लपेट कर करता है।[3]

कवि कथावस्तु को सर्गों में नहीं, अंशों में विभाजित करता है। कुल आठ अंश हैं– राजद्वार, पुष्पक यान, वन–देवता, दण्डकारण्य, प्रतिपक्ष, छिन्नशीश, आत्मकथा और रक्ततिलक। कथारम्भ 'राजद्वार' से होता है। राम का दरबार लगा है। ऐसे प्रशान्त संगीतमय वातावरण में एकाएक एक कर्कश वाणी सुनाई देती है–

शिखा खोले , क्षुब्ध ब्राह्मण एक
दे रहा अभिशाप, बाँहें फेंक
भूमि पर उसका तरुण प्रतिरूप
भग्न निश्चल, यज्ञ का ज्यों यूप।[4]

धीरे–धीरे ब्राह्मण–पुत्र जो सर्प–दंश से आहत है, उसका गोरा बदन अब काला हो गया है। अन्ततः वह काल की भेंट चढ़ जाता है। यह प्रसंग रामराज्य में प्रवाद का विषय बन जाता है। प्रजा आतंकित और संतप्त हो जाती है–

राम राज नहीं रहा अकलंक।
इस कमल में भी सना है पंक।।
हुआ राजा से कहीं कुछ पाप।
क्यों प्रजा पर छा रहा संताप?[5]

प्रजा राजा पर आरोप लगाती है कि वह स्वार्थी और पापी है। राम तक प्रजा का यह अभियोग पहुँचता तो है परन्तु वह घटनास्थल तक नहीं जाते। धीरे–धीरे आर्तजनों का कोलाहल बढ़ने लगता है। प्रजा में नाना प्रकार की शंकायें सिर उठाने लगती हैं। एक की मान्यता है– 'ब्राह्मण–पुत्र की अकाल

मृत्यु से बढ़कर दूसरी विपत्ति कौन–सी हो सकती थी?' दूसरे का मत है कि 'यह भावी महाविनाश की सूचना मात्र है।' तीसरे का मत है कि 'राम का क्या दोष है? जन्म–मृत्यु तो भाग्य के अधीन है। व्यर्थ की बकवास से क्या फायदा?' इस तरह ''मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना'' के अनुसार सबकी व्यथा अलग–अलग है। इसी बीच गुरु वशिष्ठ को नारद जी से ज्ञात होता है कि कोई शूद्र स्वर्ग के सुख लूटने की कामना से एक दिव्य कृपाण पाने के लिये अधोमुखासन से दण्डक वन में गहन तपस्या कर रहा है। जब राम स्वयं दण्डक वन जाकर शूद्र तपस्वी का वध करेंगे, तभी विप्र–सुत जीवित हो सकेगा। किन्तु वशिष्ठ इसे स्वीकार नहीं करते। वे राम को उचित परामर्श देते हैं। जब गुरु ने प्रस्थान किया तो उनकी भेंट नारद से हो गई। विप्र–सुत की अकाल मृत्यु का कारण शूद्र की पूजा है–

कर रहा तप शूद्र कोई
अधोमुख दण्डक गहन में।
स्वर्ग का सुख लूटने की
लालसा लिये मन में।[6]

परन्तु वशिष्ठ को यह कोई कारण नहीं लगता है। वे बतलाते हैं कि देवताओं को हम जानते हैं, वे स्वार्थ के वशीभूत हुआ करते हैं। वशिष्ठ यह कहकर चले जाते हैं। राम वशिष्ठ के दिये गये परामर्श के चलते शूद्र की खोज में निकल पड़ते हैं।

द्वितीय अंश में 'पुष्पक यान' में पुष्पक की शोभा का वर्णन है, जिसमें बैठकर राम शूद्र तपस्वी की खोज में निकलते हैं। यहाँ कवि की प्रकृति–चित्रण–प्रवृत्ति उजागर हुई है। राम के स्मृति–चित्रों में कथांश पर्याप्त विकसित हुआ है। पवन के झोंकों ने उन्हें चेतनामय किया है। अज्ञात प्रेरणा यान उतारने का कारण बनती है। प्रकृति के सुरम्य वातावरण में वन–देवता द्वारा स्वागत किया जाता है–

आयोजनों तक योजनायें
यदि पहुँच पायी नहीं
भूखें जनों तक योजनायें
ये निरक्षर वन्य पिछड़े लोग, सहते रहें कब तक यातनायें,
अधमरे कहाँ तक
सन्तोष को खायें–चबायें?[7]

यहाँ कवि द्वारा किया गया व्यंग्य सरकार की कागजी योजनाओं पर है। यही वजह है कि पिछडों को उनका लाभांश नहीं मिल पाता है। राम का गर्मजोशी के साथ स्वागत शबरी के स्मृति–शेष के माध्यम से समग्र बनवासी करते हैं। साथ ही राजसत्ता के मालिक राम से यह अपेक्षा करते हैं कि वे उनकी उपेक्षा न करें। अचानक शम्बूक की तलाश करते समय राम को सीता की याद आती है। वह सोचने लगते हैं कि सीता का अपहरण इसी वन से हुआ था। फलतः उनका क्रोध और भड़कने लगता है।

'वन–देवता' काव्य का तीसरा अंश है। इस अंश में वन–देवताओं द्वारा राम का स्वागत होता है, यही रामराज्य की सामाजिक विषमताओं की ओर संकेत हे।

कवि ने यहाँ आधुनिक योजनाओं की निरर्थकता की ओर संकेत किया है। यहाँ व्यंग्य करना ही कवि का अभिप्रेत है। यही व्यंग्य सत्ता की कागजी योजनाओं पर है जो लाभांश पहुँचने नहीं देते हैं, पिछड़े वर्ग तक वन–देवता शबरी की स्मृति–शेष के माध्यम से वनवासियों की रागात्मकता को स्पष्ट करते हैं। सत्ता व्यवस्था के प्रतीक राम से उनकी उपेक्षा न करने की प्रार्थना की जाती है। शम्बूक (शूद्र मुनि) की खोज में अग्रसर राम को उसी वन में हुए सीताहरण का स्मरण हो जाता है। वे क्रोधित हो उठते हैं। उन्हें अपना माया–जाल याद आता है।[8] राम आगे दण्डकारण्य में बढ़ते हैं। यहीं से चतुर्थ अंश आरम्भ होता है।

'दण्डकारण्य' में कवि ने दण्डक वन के अपूर्व प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रांकन आलंबन और मानवीकरण की शैली में किया है। दण्डकारण्य में पर्वत राम के समक्ष कमठ की पीठ के समान राह

रोके खड़ा है और सघन श्यामल–भूमि बादलों के समान है। इस वन में आदिवासी नर्तकी की टोलियाँ पंखों से सिर को सजाए, पशुओं के सींग बाँधे, पशु चेहरों का मुखौटा पहने नृत्य करती हुई घूम रही हैं। कुछ आदिवासी वरछे लिए आखेट के लिए जा रहे हैं। चतुर्दिक उन्मुक्त जीवन दिखायी दे रहा है। उड़ते हुए पक्षियों और आकाश में तैरते हुए बादलों का प्रतिबिम्ब गोदावरी के जल में दिखाई देता है। सम्पूर्ण दण्डाकारण्य प्राकृतिक वैभव से सुसज्जित है।

'प्रतिपक्ष' पाँचवाँ अंश है। वस्तुतः यह इस काव्य का मेरुदण्ड है।[9] इसमें राम और शम्बूक का सम्वाद है जो कि काव्य का केन्द्र–बिन्दु है। यह सम्वाद दो व्यक्तियों के बीच नहीं, शासन के व्यवस्थापक तथा प्रतिपक्ष के मध्य है। सत्ताधारी की वर्गभेद के अन्तराल पर चर्चा करते हुए शम्बूक का कथन है कि–

निर्बाध
जो व्यवस्था
वर्ग सीमित स्वार्थ से
हो ग्रस्त
वह विषम
घातक व्यवस्था
शीघ्र ही हो अस्त।[10]

राम शाशक–पक्ष और व्यवस्था–पक्ष के प्रतिनिधि हैं और शम्बूक प्रतिपक्ष का। दोनों अपनी–अपनी दलीलें देते हैं। शम्बूक राम से कहता है कि जो व्यवस्था व्यक्ति के सत्कर्मो को भी अपराध मानती है और जो वर्ग सीमित स्वार्थ से ग्रस्त है, उस विषम, घातक व्यवस्था का शीघ्र ही अन्त होना चाहिए। शम्बूक के इस कथन पर राम प्रशासक के गहन, गम्भीर स्वर में कहते हैं कि जो व्यवस्था लोक स्वीकृत राज्य से मान्य होती है, वह कल्याणकारी है। यदि कोई व्यक्ति इस व्यवस्था को भंग करना चाहता है तो उसे दण्डित करना ही पड़ता है। शम्बूक प्रतिवाद के स्वर में तर्क देता है कि वास्तविक लोकनायक वही है जो संवेदना के मर्म, धर्म–अधर्म, कर्म–अकर्म को भली–भाँति समझता है। लोकनायक वही है जो प्रत्येक व्यक्ति का विश्वास अर्जित कर सके तथा प्रजा के चित्त का प्रतीक हो। जो विधि–अविधि की बात करने से डरता है– वह दण्ड नायक राजा ही क्यों न हो, लोकनायक नहीं हो सकता। शम्बूक कर्म के औचित्य को मानता है और कहता है, ''हे राम! जन्म से सभी पृथ्वी–पुत्र समान हैं तो फिर उनमें वर्ण–व्यवस्था का आधार लेकर भेद क्यों किया जाता है?'' राम के यह कहने पर कि तप शूद्र का कर्त्तव्य नहीं है, उसे तो सेवा–कर्म ही करना चाहिए। शम्बूक उत्तर देता है कि तप तो सृष्टि का आधार है, तप से ही संसार चल रहा है, तप ही त्रिदेवों की शक्ति है, तप से ही मनुष्य सम्बल प्राप्त है तो फिर तप दुष्कर्म कैसे मान लिया गया, मेरा कृत्य अधर्म कैसे हो गया? 'सर्वभूतहिते रतः' व्रत का क्या हुआ? शम्बूक राम पर पूरी तरह हावी रहता है। उसने अपने पक्ष को राम के तर्कों से उच्च सिद्ध किया, किन्तु राम कुछ नहीं कर पाते। शम्बूक ने राम के लोकनायक और लोकमंगल वाले पक्ष पर लम्बा प्रश्नचिह्न लगा दिया है–

लोक नायक वहीं जो,
संवेदना का मर्म समझे,
धर्म और अधर्म समझे,
कर्म और अकर्म समझे
लोकनायक वहीं जो
विश्वास अर्जित कर सके
प्रत्येक का
और जो सारी प्रजा के
चित्त का प्रतिरूप हो।[11]

राम शम्बूक द्वारा वर्ण–भेद का दोष लगाये जाने पर तिलमिला जाते हैं। उसका पक्ष है कि आपका विचार शूद्र–घाती है, समतामूलक नहीं। इस पर राम क्रुद्ध हो जाते हैं और कहते हैं कि मैंने ब्राह्मण रावण का वध किया है। शम्बूक तर्क देता है कि यह लड़ाई सीता को लेकर व्यक्तिगत लड़ाई थी। यह युद्ध निजी स्वार्थों को लेकर लड़ा गया।

क्यों तुम्हारे न्याय का आधार है वध मात्र
क्या विपक्षी सब केवल तुम्हारे लिए वध के पात्र?

X X X

मारते हो और कहते हो इसे उद्धार,
चलेगा कब तक तुम्हारा यह घृणित व्यापार।[12]

शम्बूक द्वारा दिया गया तर्क राम की राज्य–व्यवस्था के लिए एक प्रमुख चुनौती है। कवि ने तत्कालीन आर्थिक शोषण तथा विघटित प्रजातांत्रिक मूल्यों पर करारा व्यंग्य किया है। राम अपनी द्विविधा से ऊपर उठकर शम्बूक का सिर धड़ से अलग कर देते हैं।

'छिन्न शीश' प्रस्तुत काव्य का छठवाँ सोपान है। शम्बूक का कटा शीश राम के मस्तिष्क पर चोट करते हुए कहता है कि शूद्र के तप से ब्राह्मण–सुत की मृत्यु होने की बात तो कल्पना ही है और शूद्र के वध से विप्र बालक का जीवित होना भी तथ्यहीन है। वह हिंसा–अहिंसा, पाप–पुण्य, न्याय–अन्याय और धर्म–अधर्म के विषय में नयी व्याख्या करता है–

मात्र हिंसा ही नहीं मानव–न्याय।
है अहिंसक और–और उपाय।।
दण्ड के हैं और बहुत विधान
शीघ्र जिनसे ले यही अनुमान
व्यक्ति अपने आप, सहित विचार।[13]

राम शान्त भाव से उसके विचारों का मंथन करते रहते हैं। शम्बूक वर्ण–व्यवस्था को जो कर्म पर नहीं जन्म पर आधृत है, अनौचित्यपूर्ण ठहराता है। वह उसे समाप्त कर मनुजता के बीच समन्वय स्थापित करने की बात कहता है–

स्वार्थ–साधन
कुछ जनों का कर्म हो।
और सेवा
दूसरों का धर्म हो।[14]

शम्बूक कहता है कि हे राम! तुम्हारी वध–नीति कायरता है। तुम खड्ग लेकर मुनि–वध को जब चले तभी स्पष्ट हो गया कि देवत्व ने पशुत्व को स्पर्श कर लिया है। किसी की बलि देने से किसी के प्रणों की रक्षा होने का विचार आदिम अन्धविश्वास है। तुम्हारे इस कृत्य से मनुष्य गौरवान्वित नहीं होगा।

सातवाँ सर्ग 'आत्मकथ्य' है। यह शम्बूक की आत्मा की आवाज है, जिससे खोखली, सामाजिक, संकीर्णताओं पर तीक्ष्ण प्रहार किये गये हैं। वह सुसंस्कृत समाज की स्थापना पर बल देता है।''[15] शम्बूक कहता है– ''संस्कृति रहित राज्य को दर्प से अधिक और कुछ नहीं कहा जा सकता। ऐसा दर्प हे राम, सर्प के समान मानव–नियति को सदा दंश देता रहेगा। कवि ने शम्बूक के माध्यम से समाज द्वारा आहत वर्ग की असहाय, पीड़ित, पददलित तथा अवमानित वाणी को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। शम्बूक मानों समस्त शूद्र जाति की मूक व्यथा का स्वर हमारे सामने प्रस्तुत करता है–

जहाँ होता व्यक्ति का सम्मान
कर सकेगा वही
मानव की समस्या का
सटीक निदान

राज्य जो संस्कृति–रहित है, दर्प है
डँसेगा मानव–नियति को सर्प हैं।[16]

काव्य का अन्तिम अंश है 'रक्ततिलक'। इस अंश में कवि ने शाखा में लटके एक शम्बूक के एकलव्य से हुए वार्तालाप को प्रस्तुत किया है। शम्बूक एकलव्य से कहता है कि एकलव्य, मुझे तुम्हारे कटे हुए अँगूठे की एवं तुम्हारी एक युग से तलाश थी क्योंकि हमारी नियति एक ही है। तुम्हारी प्रगति को भी उच्च वर्ग सह नहीं पाया था। अँगूठा काट दिया गया। इस प्रकार कवि युग–युग से हो रहे वर्गगत संकीर्ण व्यवहार का रूपांकन करता है और उसे मिटाने का संकल्प भी करता है। इसलिए शम्बूक कहता है कि हे एकलव्य! यदि तुम राजवंशीय क्षत्रिय बालक होते तो गुरुवर्य का तुम्हारे प्रति दृष्टिकोंण बदल गया होता। तभी से इस दर्पपूर्ण अपमान के कारण तुम्हारी आत्मा संतप्त है, इसलिए मैं चाहता हूँ कि ज्वाला में जलते हुए मेरे इस शरीर को तुम्हारे हाथों का स्पर्श हो जिससे वह 'रक्ततिलक' शिव के तीसरे नेत्र की तरह झूठे अहंकार को भस्मसात कर दे।

इस प्रकार शम्बूक का छिन्न शीश राम के अन्तस् पर चिन्तन और तर्क के हथौड़े से निर्मम प्रहार करता है। यह रक्ततिलक समाज के माथे पर लगा वर्ण–संकीर्णता का चिह्न है, जो निरन्तर कचोट रहा है–

मैं अपने
सदियों से ठण्डे पड़े
माथे पर
शिव के तीसरे नेत्र की तरह।
यह रक्त–तिलक
प्रज्वलित होते ही
कर देगा भस्मसात्
झूठे अहंकार को
पूरी वासना–देह
निस्सन्देह।।[17]

निस्सन्देह यह सत्ता और व्यवस्था पर एक तीखा प्रहार है। यह रक्त–तिलक वर्ण–व्यवस्था का प्रतीक है। राम के अंतस् पर इसकी चोट हो रही है। एक कचोट उनके अन्तर्मन में कसक कर रह जाती है। यह काव्य समाज और राज्य–व्यवस्था में फैली तमाम बुराइयों पर एक मिर्मम प्रहार करता दिखता हे। आज व्यवस्था के सामने इन्हीं सवालों को रखकर कवि एक नये सिरे से पुनर्मूल्यांकन करना चाहता है। इस प्रकार कवि ने 'शम्बूक' के माध्यम से प्रतिपक्ष की आवाज को बुलन्द किया है। ''व्यवस्था और प्रतिपक्ष के बीच कभी न पटने वाली खांई के पीछे व्यवस्था–पक्ष का वह मनोविज्ञान ही काम करता है, जिसके तहत व्यवस्था अपने को ब्रह्म का अवतार और प्रतिपक्ष को ओछा और 'धरा का पुत्र' मानकर चलती है। जब तक व्यवस्था अपनी सोच नहीं बदलेगी, तब तक ऊपर से लादे गए सभी उपाय असफल होते रहेंगे।[18]

कवि ने वर्ण–व्यवस्था के खिलाफ अनेक प्रश्नचिह्न उपस्थित किये हैं। शम्बूक ने दबायी जाने वाली आवाज़ जिस प्रकार उठायी है, वहीं शम्बूक की मौलिक पहचान है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि कवि ने पौराणिक कथा के माध्यम से आधुनिक युग के एक उपेक्षित पक्ष को प्रस्तुत किया है।

**सन्दर्भ :**

1. नयी कविता की प्रबन्ध चेतना, पृ0 144–145(डॉ0 कृष्णचन्द्र पांड्या के निबन्ध से उद्धृत)
2. नयी कविता के प्रबन्ध काव्य–शिल्प और जीवन–दर्शनः डॉ0 उमाकान्त गुप्त, पृ0 113.
3. डॉ0 जगदीश गुप्त : शम्बूक, पृ0 8.
4. वही, पृ0 8.

5. वही, पृ0 6.
6. वही, पृ0 11, 29.
7. वही, पृ0 45.
8. नयी कविता के प्रबन्ध काव्य–शिल्प और जीवन–दर्शनः डॉ0 उमाकान्त गुप्त, पृ0 113.
9. वही, पृ0 116.
10. शम्बूक, पृ0 45.
11. वही, पृ0 48
12. वही, पृ0 45
13. वही, पृ0 75.
14. वही, पृ0 76
15. नयी कविता के प्रबन्ध काव्य–शिल्प और जीवन–दर्शनः डॉ0 उमाकान्त गुप्त, पृ0 118.
16. शम्बूक, पृ0 97.
17. वही
18. नयी कविता की प्रबन्ध चेतना, पृ0 144 (डॉ0 कृष्णचन्द्र पांड्या के निबन्ध से उद्धृत)

***

# भारतीय कानून निर्माण में मानव-जाति विज्ञान : अध्ययन की भूमिका

*चन्दन कुमार* *

*मानव–जाति विज्ञान में मानव के व्यवहार एवं समाज का अध्ययन किया जाता है। "कानून" नियमों का येसा संग्रह होता है जिसको लोक मान्यता प्राप्त होता है। समाज में व्यवस्था को बनाये रखने के लिए कानून का निर्माण किया जाता है। इस आलेख में मुख्य प्रश्न यह है कि मानव–जाति विज्ञान अध्ययन पद्दति और कानून के बीच क्या सम्बन्ध है? इस अध्ययन पद्दति का महत्व कानून के निर्माण में होता है। मानव–जाति अध्ययन सामाजिक और व्यवहारिक दोनों संदर्भ में किया जाता है। भारत में मानव–जातिय अध्ययन ब्रिटिश औपनिवेशिक छत्र–छाया में विकसित हुआ था। इस अध्ययन से औपनिवेशिक शासकों को शासन स्थापित करने में मदद मिला था। एवं आजादी के बाद भारतीय संविधान के निर्माण में मानव–जातिय अध्ययन का अहम् भूमिका रहा है। भारत में विधमान प्रत्येक समुदाय को अलग–अलग कानूनों के माध्यम से सुरक्षा एवं अधिकार प्रदान किया गया है। यह राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय स्तर तक विद्यमान है।*

***मुख्य शब्द :*** नृवंशविज्ञान, प्रथा, कानून, शोषण, सामाजिक सुरक्षा, आरक्षण, मानव अधिकार

**परिचय**

मानव–जाति अध्ययन और कानून एक दूसरे के पूरक है। मानव–जाति अध्ययन में मानव के व्यवहार एवं सामाजिक परिवेश का अनुसरण किया जाता है। यह एक व्याख्यात्मक सिदान्त है। मानव–जाति अध्ययन समाज की संस्कृति पर प्रकाश डालता है। समाज में विद्यमान नकारात्मक और सकारात्मक दोनों परिवेश को उजागर करता है। इसका अध्ययन एक परिवेश में रहकर ही किया जाता है। मानव–जाति अध्ययन और कानून में गहरा सम्बन्ध है क्योंकि मानव–जाति अध्ययन से ही समाज में विद्यमान कानून और प्रथाओं के बारे में जानकारी मिलाता है और समाज में जब कोई समस्या हो जाता है तो उसके समाधान हेतु मानव–जाति अध्ययन के माध्यम से कानून का निर्माण किया जाता है। क्योकि कानून को एक खास संदर्भ और संस्कृति के माध्यम से ही समझ सकते है। "कानून" समाज द्वारा मान्यता प्राप्त नियमों का संग्रह होता है जो लिखित और अलिखित दोनों रूपों में होता है। कानून का समय और समाज के अनुसार परिभाषा बदलता रहा है। प्रत्येक समाज में शांति कायम रखने के लिए कानून का निर्माण किया जाता है। मानव–जातिय अध्ययन में लोगों द्वारा आपनाये गये नियम और रहन–सहन पर अध्ययन किया जाता है। भारत के संदर्भ में मानव–जातिय अध्ययन का आरम्भ औपनिवेशिक काल में हुआ था औपनिवेशिक शासकों ने भारत में शासन को सही रूप में संचालित करने के लिए यहाँ के बहुत सारे समुदायों, संस्कृति और प्रथाओं का अध्ययन किया था। मानव–जाति अध्ययन लोकप्रशासन के निर्माण में भी अहम् भूमिका निभाता है। भारत का स्वरूप बहूसंस्कृति होने के कारण आजादी के बाद भी मानव–जाति अध्ययन किया गया है। जिसमें अलग–अलग समुदाय, जाति, धर्म, लिंग अध्ययन के उपरांत भारत में विभिन्न कानूनों का निर्माण किया गया है। अंतराष्ट्रीय स्तर पर कानून निर्माण में भी मानव–जाति अध्ययन की भूमिका होती है। अंतराष्ट्रीय मानव अधिकार कानून इसका एक उदहारण है।

**मानव–जाति अध्ययन**

मानव–जाति अध्ययन को अलग शब्दों के माध्यम से भी जानते है इसको मानव नृवंशविज्ञान के नाम से भी जानते है। यह ग्रीक शब्द "Ethnos" जिसका मतलब लोक, लोगो, राष्ट्र, और "Grapho" मैं लिखना, होता है। यह लोगों और संस्कृति का व्यवस्थित अध्ययन है। मानव–जाति अध्ययन को हमेशा संदर्भ आधारित व्याख्या किया जाता है। यह विश्लेषण के आधारित तथ्यों को एक दूसरे के साथ संबंधो को उजागर करता है। जो विश्वव्यापी रूप से मान्य होता है। इतिहासिक रूप से इसमें लोगों के

* पीएच.डी., राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 110007

साथ रहकर उनसे बाते करके उनके अनुभवों को जानकर और विश्व को देखने का उनका क्या नजरिया है? ये सभी मानव जातिय अध्ययन में शामिल होता है। मानव जातिय अध्ययन संस्कृति से जुड़ा होता है। इनका अध्ययन का अपना संस्कृति होता है।

Wolf के अनुसार "इसमें अनुसरण अतीत और वर्तमान से जोड़कर किया जाता है। यह संस्कृति के अध्ययन का पद्धति है। मानव जीवन की एक बेहतर समझ को प्रस्तूत करता है। नये माध्यम से वर्तमान को देखते है। एक तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। व्यवहारवाद और व्याख्यात्मक अध्ययनों पर बल दिया जाता है। इसमें मनुष्य और उसके कार्यकलापों को विज्ञान के रूप में परिभाषित किया जाता है। यह एक विज्ञान और कला है समुदाय से लेकर व्यक्तिगत स्तर तक के कार्यकलापों का अनुसरण किया जाता है। जिसमे सम्मलेन, समारोह, रीती–रिवाजो, मतदान और विरोध का अनुसरण किया जाता है। इसमें इतिहासिक संदर्भ से ज्यादा वर्तमान के लोगो और प्रकृति के अध्ययन पर ध्यान दिया जाता है। इसमें प्रश्न पूछा जाता है और उसका स्पष्टीकरण लिया जाता है। प्रतिदिन के दिनचर्या से राजनीति और राज्य के सीमाओं, समुदाय में कैसे बदलाव हो रहा है इसको राजनीतिक प्रक्रिया से जोड़ते है। इसमें निचले स्तर से अध्ययन किया जाता है। मानव जाति अध्ययन आलोचनात्मक राजनीतिक विश्लेषण पर आधारित होता है। इसमें विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण को अपनाया जाता है। जिसको अन्य अध्ययनों में अनदेखा किया जाता है। इसमें यथार्थ को उजागर किया जाता है। इसमें भागीदारी, अनुसरण, साक्षत्कार, विषय अध्ययन, शोध समस्या को शामिल किया जाता है। यह अध्यनन व्यक्ति से व्यक्ति के सम्पर्क पर केन्द्रीत रहता है जो अन्तरंग परिपेक्ष्य और मतलब को निकालता है। मानव–जाति अध्ययन गुणात्मक पद्दति से भी जुड़ा है।

Fatterman के अनुसार मानव–जाति अध्ययन एक कला और विज्ञान है जो समूह और संस्कृति की व्याख्या करता है इसमें आन्तरिक अध्ययन पर बल दिया जाता है। आम लोगो के व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है। एक खास समय का अध्ययन शोधार्थी द्वारा किया जाता है। अरस्तु ने मानव–जाति अध्ययन को धरातल के ज्ञान और अमूर्त ज्ञान में अंतर से समझा है। इसको संदर्भ और गैर–संदर्भित ज्ञान से समझ सकते है ये सामन्य ज्ञान की अपेक्षा मूर्त ज्ञान को महत्व देते है। मानव–जाति अध्ययन कर्ता व्यक्तिगत जागरूकता को भी महत्व देते है जिसमे सही मूल्यों का पता चलता है। आन्तरिक मूल्य मानव–जाति अध्ययन से कर्ताओं की आवाज, आवाज विहीन और निम्नवर्गीय लोगों को आवाज प्रदान करता है। जो नीतियों के क्रियान्वयन में मदद करता है। बाहरी मूल्य लोगों के मूल्य पहचान, धर्म, जाति, के बारे में समझ क्या है? यह सिद्धांतिक है परन्तु व्यवहारिक तैर पर इसका महत्व कितना है। इसको पहचानने में मदद करता है। Allina & Pisano के अनुसार मानव–जाति अध्ययन में धरातल के यथार्थ के साथ साथ स्थानिय ज्ञान का भी अध्ययन करना चाहिए। वार्तलाप पर आधरित अनुभाविक प्रश्न पूछा जाता है। Dvora Yanow का मानना है कि मानव–जाति अध्ययन में सहनशीलता ज्यादा है, पद्दति कम है। इसका एक लक्ष्य होता है। Scotts के अनुसार इसमें आंतरिक तर्क के आधार पर व्याख्या करना होता है। इसमें शोध परक शोध, खोजपूर्ण शोध किया जाता है।

मानव–जाति अध्ययन में व्यक्तिगत गुणों की व्याख्या किया जाता है। जीवन के अनुभवों को सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओ के साथ जोड़ कर देखा जाता है। यह सिर्फ संसार के बारे में जानना नही है यह संसार के अन्दर वास करके जानना है। यह सिर्फ हमारे जीवन का मूल्याकन करने के लिए नही बल्कि यह देखने के लिए की कैसे, क्यों और क्या सोचते है महसूस करते है। की मानव जीवन और परिवेश में क्या सम्बन्ध है किस प्रकार से मानव जीवन परिवेश को प्रभावित करता है और मानव परिवेश में किस प्रकार से अपने आप को अनुकूल बनाता है। मानव–जाति अध्ययन पद्दति को दो भागों में विभाजित किया गया है। सामाजिक और व्यवहारिक मानव–जाति अध्ययन।

**सामाजिक मानव–जाति अध्ययन**

सामाजिक मानव–जाति अध्ययन के अंतर्गत एक निश्चित समय पर समाज और संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। सामाजिक मानव–जाति अध्ययन में परिवार और नातेदारी, राजनीतिक संगठन,

नियम, आर्थिक गति विधियों, तथा सामाजिक ताने–बाने के अन्य तथ्य सम्मलित होते है। सामजिक मानव–जाति अध्ययन में इतिहास का कोई महत्व नही होता है।

**व्यवहारिक मानव–जाति अध्ययन**

मानव–जाति अध्ययन एवं उसके विद्वानों द्वारा किये गये शोधों के माध्यम से मानव समाज की समस्यायों को दूर करने के प्रयास को ही व्यवहारिक मानव–जाति अध्ययन काहा जाता है। इसमें आकड़ों, ज्ञान, अनुभव काम आते है। किस समाधान का प्रभाव समाज पर बहुत कम नकारात्मक प्रभाव डालेगा इस पर चर्चा किया जाता है। इसमें परम्पराओं और रीतिरिवाजों को समझने के लिए एक निष्पक्ष दृष्टिकोण की आवश्कता होती है। विभिन्नताओं और समानताओं को समझने और जानने के लिए इस अध्ययन का भूमिका महत्वपूर्ण है। व्यवहारिक मानव–जाति अध्ययन का उदय मानवीय समस्याओं के समाधान ढूढने या उनके बेहतर विकल्प प्रस्तूत करने हेतु हुआ है। इसके मदद से औपनिवेशिक शासकों ने भारत में स्वदेशी कानून व्यवस्था, जमीन बंदोबस्त और समस्याग्रस्त जगहों पर शोध कार्य किया था। वर्ष 1960 ई. के बाद से कल्याणकारी अध्ययन के रूप में मानव–जाति अध्ययन समाज का मूल्यांकन करना आरम्भ किया है। समाज के साथ मानव–जाति अध्ययन कर्ता जीता है। सिद्धातों को व्यवहार से जोड़ता है और उपयोग उपरांत सिद्धांतो को उर्जा देता है। कारण और प्रभावों के प्रति हमारी समझदारी क्या है उसको उजागर करता है। वर्तमान समय में व्यवहारिक मानव–जाति अध्ययन का महत्व बढ़ता जा रहा है।

आज के समय में शोध कार्यों में इस अध्ययन पद्दति की भूमिका बढ़ती जा रही है। जिसमे नये हित, संस्कृति, शक्ति के नये तकनीक को शामिल किया गया है। जॉर्ज मार्कस इसको बहुदृश्य काल्पनिक अध्ययन मानते है। क्योंकि आज का समाज अपने मूल्यों, हितों, पहचान और संस्कृति को नये जगहों पर स्वीकार कर रहा है। आज राज्य का स्वरूप दिन प्रतिदिन बदलता जा रहा है। जिससे नये–नये हित और समूह उभर कर आ रहे है। जो राष्ट्रीय हित और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को भी प्रभावित कर रहे है।

**भारत में मानव–जाति अध्ययन**

भारत में मानव–जाति अध्ययन ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में आरम्भ होता है। औपनिवेशिक सता इस बात से सहमत थी कि सफल प्रशासन के लिए स्थानिय लोगों, समाज और संस्कृति की गहन समझ जरूरी है। उस समय औपनिवेशिक मानव–जाति अध्ययन कर्ताओं ने आदिवासिओं और सामाजिक परिस्थितियों की आलोचनात्मक अध्ययन किया जो सुचारू तथा प्रभावी औपनिवेशिक प्रशासन चलाने के लिए उतम साबित हुआ। आदिवासियों को स्वशासन प्रदान किया गया। बाद में भारतीय विद्वानों ने भी आदिवासियों का अध्ययन किया और उनके समस्याओं का स्वर बनकर उभरे। आजादी के बाद भी सरकार द्वारा आदिवासी विकास अध्ययन कार्यक्रम आरम्भ किया गया है। इसको व्यवहारिक मानव शास्त्र से जोड़ा गया है। जैसे आदिवासीओं के कल्याण के लिए आदिवासी आयोग का निर्माण किया गया।

भारत में मानव जाति सम्बंधित शोध कार्य का प्रारम्भ वर्ष 1784 ई. में विलियम जोन्स द्वारा एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल की स्थापना के वर्ष माना जाता है। इसका उदेश्य प्रकृति और मानव का अध्ययन करना था मानव–जाति अध्ययन मानव जाति के समक्ष एक येसा दर्पण प्रस्तूत करता है जिसमे वह अपनी अनंत विभिन्नताओं को देख सके। और मानव जाति के महत्व को प्रस्तूत कर सके। भारत में मानव–जाति अध्ययन का दायरा बढ़ता जा रहा है। आज यह आदिवासियों के समस्याओं को सुलझाने तक ही सीमित नही है। बल्कि यह कृषि विकास, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, शिक्षा और राजनीति आदि के क्षेत्र में प्रवेश कर चूका है। व्यवहारिक मानव शास्त्र का भारत में भूमिका बढ़ता जा रहा है। राजनीतिक पार्टियों का निर्माण जाति आधारित हो रहा है। जिसको अध्ययन करने के लिए मानव–जाति अध्ययन का अहम भूमिका होता है। इस प्रकार से मानव–जाति अध्ययन के माध्यम से ही भारत में अलग–अलग जाति और समूहों के लिए योजनाओं और कानूनों का निर्माण किया गया है।

**कानून**

कानून को मानव–जाति अध्ययन के संदर्भ में समझे तो कानून एक धर्म, प्रथा, परम्पराओं, और संस्कृति के रूप में समझ सकते है जिसको एक खास समुदायों के द्वारा मान्यता प्राप्त होता है।

जिसका लोग पालन करते है और पालन नही करने पर दंड दिया जाता है। कानून का स्वरूप समाज में लिखित और अलिखित दोनों रूपों में विद्यमान है। कानून व्यक्तिगत, आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्तर पर अलग–अलग प्रभाव को कायम करता है। कानून का प्रभाव सामाजिक स्तर पर विद्यमान असमानताओं को कम करने में अहम भूमिका निभाता है। सामज में व्याप्त भेदभाव को खत्म करने के लिए कानून का निर्माण किया जाता है। कानून मानव जाति के कल्याण में अहम भूमिका निभाता है। कानून असामनता के विरोध खड़े होने में मदद करता है। जो सामजिक और राजनीतिक स्तर पर विद्यमान है। कानून के निर्माण के समय प्रत्येक पहलुओं पर ध्यान दिया जाता है।

कानून समय और परिवेश के हिसाब से बदलता रहता है। राज्य में कानून का निर्माण कल्याण और जनमानस की सुरक्षा हेतु किया जाता है। भारत में कानून का निर्माण अलग–अलग समुदायों को ध्यान में रखकर किया गया है। जिससे अधिकार, विकास, शासन और न्याय को स्थापित किया जा सके। कानून अधिकार को सुनिश्चित करता है जिसके कारण मानव अपना विकास करता है। कानून के माध्यम से ही शासन को स्थापित किया जाता है। जिसको जनता द्वारा मान्यता प्राप्त होता है। सामाजिक न्याय और समानता को स्थापित करने हेतु कानून का निर्माण किया जाता है। कानून का निर्माण मानवीय मूल्यों को सुरक्षित करने हेतु अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भी किया जाता है। जिसका प्रभाव विश्व पर पड़ता है।

**मानव–जाति अध्ययन और कानून**

कानून और मानव–जाति अध्ययन एक दूसरे को प्रभावित करते रहे है। जिस प्रकार से समजा के स्वरूपों में बदलाव आता है कानून का स्वरूप भी बदलता है। कानून के माध्यम से ही समाज में नैतिकता, राजनीति और पारम्परिक नियम आते है। कानून सांस्कृतिक और घरेलू स्तर पर समाज में विधमान होता है। मानव–जाति अध्ययन से समाज में विद्यमान प्राचीन कानूनों का पता चलता है और नये कानून का निर्माण होता है। 18 वीं सदी के मध्य में मानव–जाति आधारित कानून का अध्ययन आरम्भ होता है। इसके माध्यम से ही प्रथाओं और कानूनों का अध्ययन किया गया। इसके माध्यम से यह अध्ययन किया गया कि क्यों कुछ लोग दास और कुछ लोग आजाद है? इसको जानने के लिए विभिन्न संदर्भ, प्रकृति, सामाजिक संदर्भ, सामजिक कानूनी प्रणाली और कानूनी संस्कृति का भी अध्ययन किया गया है।

19 वी सदी के मध्य में यूरोपियन विद्वानों ने मानव–जाति अध्ययन के आधार पर सभ्य और असभ्य की परिभाषा दिया। और इसके माध्यम से ही शासन किया है। इस प्रकार से संस्थाओं के माध्यम से कुछ खास लक्ष्यों को निर्धारित करके समाज में व्यवस्था को कायम रखते है और सामूहिक और व्यक्तिगत स्तर पर संबंधो को सुनिश्चित किया जाता है। इस संदर्भ में औपनिवेशवाद के समय कानून का निर्माण व्यक्तियों को सभ्य बनाने के लिए किया गया था कंअपक म्दहमस के अनुसार यह स्थानिय जागरूकता के आधार पर संचालित होता है। Richard Ford के अनुसार कानून का निर्धारण और व्याख्या उसके सीमा के माध्यम से होता है। कानून के निर्माण में जगह और समय दोनों का महत्व होता है। कानून के निर्माण में तार्किकता का महत्व होता है। मानव–जाति अध्ययन में कानून निर्माण से सामाजिक नियंत्रण के लिए औपचारिक प्रक्रिया से विवादों को सुलझाना है। इसमें लोक मान्यता को शामिल किया जाता है। इसमें लोकमत और प्रथाओं के माध्यम से मानव–जाति अध्ययन करके विवादों को निपटाने का व्यवस्था किया जाता है। विभिन्न समुदायों के अपने अलग–अलग परम्पराओं और प्रथाओं के माध्यम से विवादों को सुलझाना होता है। पुत्र–पिता के विवादों को घरेलू स्तर पर सुलझाया जाता है। गॉवों का विवाद, पड़ोसीओं के विवाद, सैदेबजी और धार्मिक विवादों को अलग तरीके से सुलझाया जाता है।

आज के समय में मानव–जाति अध्ययन का कानून निर्माण में भूमिका बढ़ता जा रहा है। 19 वी और 20 वी सदी में इसके माध्यम से एक नये प्रकार के ज्ञान और हित का उदय हुआ है। कानून के संदर्भ में मानव–जाति अध्ययन के उपरांत बड़े–बड़े औधोगिक समाज को समाप्त कर दिया गया है। और छोटे–छोटे सामाजिक आंदोलनों उभर कर आये है। कानून का प्रभाव वैश्विक और स्थानिय स्तर पर अलग–अलग पड़ता है। भूमंडलीकरण का व्यापक प्रभाव होने के बावजूद भी आज व्यक्तिगत एवं सैध्दांतिक रूप से ही इसका अध्ययन किया जाता है। मानव–जाति अध्ययन आधारित कानून के संदर्भ में देखा जाता है कि कानून किसको प्रभावित कर रहा है और किसके हित हो सुरक्षित कर रहा है। वर्तमान समय में कानून को समझने के लिए धर्म, कला, चिन्ह, रीति–रिवाज, भाषा, आन्दोलन, नेतृत्व,

घरेलू संगठन और सामाजिक और सांस्कृतिक इरादों को शामिल किया जा रहा है। आज कानून जैव विज्ञान, आतकंवादी हिंसा, निगरानी और नियंत्रण के नये पद्दति, नये घर और बेघर, एकल जाति और वैधानिक पहचान से जुड़ गया है। भारत में सामाजिक सुरक्षा एवं शांति हेतु कानून को लिखित रूप प्रदान किया गया है।

**भारत में मानव–जाति आधारित कानून**

भारत में कानून का स्वरूप शासन एवं समय के हिसाब से बदलता रहा है मानव–जाति आधारित कानून का निर्माण औपनिवेशिक काल से माना जाता है। परन्तु यह पूर्व से आदिवासी समाज में विद्यमान रहा है भारत में आदिवासी समुदाय में जो मुखिया होता है उसका आदेश सर्वमान्य होता है। आधुनिक भारतीय पहचान में जातिय और नस्ल आधार पर पहचान को कायम रखा गया है। इसी कारण से इनका अनोखा पहचान स्थापित होता है। जो स्वशासित जनजाति कहलाते है। जन–जाति अपने सदस्य की पहचान और चुनाव करते है। आदिवासियों को सम्पति का अधिकार और उनके लिए बनाये गये परिषद के माध्यम से ही उनकी समुदायों की समस्याओं की जन सुनवाई होती है। जो उस क्षेत्र तक ही सीमित रहता है। इनके लिए भारत में आयोग, और समिति का गठन किया गया है।

इसके अलवा भारत में अपराध एवं शोषण को कम करने हेतु मानव–जाति अध्ययन आधारित कानून का निर्माण दलितों और आदिवासियों के हित में किया गया है जो दलितों को अन्याय और हिंसा से बचाता है। Civil Right Act 1955 के माध्यम से असामनता को समाप्त करके समाज में समानता को लाने का प्रयास किया गया है। दलितों के साथ हो रहे हिंसा को खत्म करने के लिए SC/ST कानून 1989 में बनाया गया है। इनसे सम्बंधित सुनवाई के लिए अलग से न्यायालय की व्यवस्था किया गया है। जिसपर मानव–जाति अध्ययन कानून का प्रभाव दिखता है इसमें समय और समाज के व्यवहारों के साथ–साथ बदलाव होता रहा है। भारत में महिलाओं के लिए भी अलग से कानून का निर्माण किया गया है। जिसमे शारीरिक हिंसा के साथ–साथ घरेलू हिंसा को भी आपराध माना गया है। घरेलू हिंसा के विरोध वर्ष 2005 ई. में अलग से कानून का निर्माण किया गया है। बहुत सारे कानूनों का निर्माण समाज में व्याप्त समस्याओं से निजात पाने के लिए बनाया गया है।

इस प्रकार से मानव–जाति अध्ययन समाज में विधमान भेदभाव, असमानता को उजागर करता है। फिर उसके अनुसार कानून का निर्माण किया जाता है। अपराधों को एक प्रकिर्या के माध्यम से समझा जाता है उसके बाद दोषी या निर्दोष साबित किया जाता है। जिसमे अपराध के हर पहलू का अध्ययन किया जाता है। व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। कभी कभी कुछ व्यक्तिओं को जगह के कारण दोषी मान लिया जाता है। मानव–जाति अध्ययन कानून के साथ सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों के साथ जुड़ा हुआ है। कुछ कानूनों का निर्माण वैश्विक स्तर पर किया गया है। जो प्रत्येक राष्ट्र को प्रभावित करता है। मानव अधिकार कानून मानवता की रक्षा के लिए वैश्विक स्तर पर बनाया गया है। जिसमे एक मानव–जाति अध्ययन का अहम् भूमिका माना गया है। अगर कोई राज्य मानव अधिकारों का हनन करता है तो उसके ऊपर वैश्विक संस्थाएं प्रतिबंध लगा देती है। वैश्विक स्तर पर सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक संदर्भ में कानून का निर्माण किया गया है। कानून और मानव–जाति अध्ययन स्थानिय स्तर से लेकर वैश्विक स्तर तक एक दूसरे को प्रभावित करते रहे है।

**निष्कर्ष**

मानव–जाति अध्ययन का महत्व आज के समय में बढ़ता जा रहा है। इसका समस्याओं के समाधान हेतु महत्वपूर्ण योगदान है। इस अध्ययन में मानव जाति के प्रत्येक पहलुओं का अध्ययन किया जाता है फिर उस समाज का व्याख्या किया जाता है। जिस लक्ष्य के साथ उस समाज या समुदाय का अध्ययन किया जाता है उससे सम्बंधित सभी संदर्भो को धयान में रखा जाता है। इस प्रकार से मानव–जाति अध्ययन कानून के साथ जुड़ा हुआ है। यह आज के समाज में सभी समुदायों के लिए अधिकार, न्याय, सुरक्षा, और समानता स्थापित करने के लिए सफल पद्दति बन गया है। आज आरक्षण जैसी कानून के निर्माण करने से पहले उस जाति, समुदाय का अध्ययन किया जा रहा है कि इसका प्रभाव उस समाज पर किस प्रकार से पड़ेगा। उसके परिवेश का अध्ययन किया जाता है। इसके कारण से सामाजिक व्यवस्था में भी बदलाव आ रहा है। मानव अध्ययन के बिना बनाये गये कानून बहुत हद तक सफल नही होता है। क्योंकि इसको लोक मान्यता नही मिल पता है। शिक्षा और तकनीक के माध्यम से प्रत्येक तबके के लोग जागरूक हो गये है जिसके कारण कानून और मानव–जाति अध्ययन का सम्बन्ध बढ़ता चला जा रहा है। समय के साथ–साथ कानूनों में बदलाव भी इसी कारण से ही हो

रहा है। भारत में आन्तरिक सुरक्षा को कायम करने के लिए अलग–अलग कानूनों का निर्माण किया गया है। जिसका निर्माण भारत के संस्कृति और अखंडता को कयाम रखने के लिए बनाया गया है। इस प्रकार से मानव–जाति अध्ययन संस्थाएं और सरकार स्थानिय स्तर से लेकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक करा रही है और उससे सम्बंधित कानून का निर्माण किया जाता है। जिससे कानून का समाज पर ज्यादा सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आज मानव–जाति अध्ययन इतना व्यापक हो गया कि इस पद्दति से निर्मित कानूनों से व्यक्तिगत हित, सामाजिक हित और राष्ट्र हित को सुरक्षा प्रदान किया जा रहा है।

**संदर्भ :**

Baxi, Upendra. (2007). The Rule of Law In India. *Sur* Vol.3 No. Se São Paulo, P. 1.

Custer, Dwayne. (2014) Autoethnography as A Transformative Research Method. *The Qualitative Report*, Vol. 19, How To. 21, Pp.1-23.

Eisenhart, Margaret. (2001). Educational Ethnography, Present,And Future: Ideas To Think With. *American Educational Research Association*, Vol. 30, No.8, Pp.16-27. Http://Www.Jstor.Org/Stable/3594346

Harmon, Alexandra. (2001). Tribal Enrollment Councils: Lessons On Law And Indian Identity. *Western Historical Quarterly*, Vol. 32, No. 2, Pp.175-200. Http://Www.Jstor.Org/Stable/3650772.

Koch, Klaus-Friedrich. , Soraya Altorki. , Andrew Arno. , & Letitia Hickson. (1977). Ritual Reconciliation and The Obviation of Grievances: A Comparative Study In The Ethnography Of Law. *Ethnology*, Vol. 16, No. 3, P.269. Http://Www.Jstor.Org/Stable/3773312

Kumari, Ved.(2008). Offence Against Women. In Kamala Sankaran and Ujjwal Kumar Singh (Ed.), From *Towards Legal Literacy*, Oxford University Press, Delhi.

Nader, Laura.(2011). Ethnography as Theory. *Hau: Journal of Ethnographic Theory*, Vol.1 (1), Pp-211-219.

Pande, B.B. (2008). Law Relating To Criminal Justice Administration. In Kamala Sankaran And Ujjwal Kumar Singh (Ed.),From *Towards Legal Literacy*, Oxford University Press, Delhi.

Retrieved feb 11, 2016 from ; https://en.wikipedia.org/wiki/Ethnography.

Roy, Anupama. (2008). Preventing Atrocities against the Scheduled Castes and Scheduled Tribes. In Kamala Sankaran And Ujjwal Kumar Singh (Ed.), From *Towards Legal Literacy*, Oxford University Press, Delhi.

Schatz, Edward. (2006). The Problem With The Toolbox Metaphor: Ethnography and The Limits To Multiple-Methods Research. *American Political Science Association Philadelphia.*

Smith, Eve Darian. (2004). Ethnographies of Law. In Austin Sarat (Ed.), *The Blackwell Companion to Law and Society* (546-568). UK: Blackwell Publishing.

Volo, Lorraine Bayard De., & Edward Schtaz. (2004). From The Inside Out: Ethnographic Methods In Political Research. *PS: Political Science and Politics*, Vol.37, No.2, Pp.267-271.

***

# वालमिकि कृत रामायण में वर्णित सारगर्भित महातम्य एवं जीवकोपार्जन के आर्थिक संसाधन

*राकेश कुमार* *
*डॉ. श्याम नारायण सिंह* **

रामायण एक कल्पवृक्ष के समान है जिस प्रकार कल्प वृक्ष मानव की सभी कल्पनाओ को पूरा कर देता है। उसी प्रकार रामायण भी व्यक्ति के सभी बुराई को दूर कर देता है। वेद रामायण का बीज है ब्रह्म ही उसके अंकुर है। सात काण्ड ही उसके सात तने है। महाकवि वाल्मीकि इसके थाल्हे है। चौबीस हजार श्लोक इसके पत्ते और पाँच सौ से अधिक सर्ग शाखाएँ है। आत्मसाक्षात्कार इसके फल हैं तथा त्रिपथगामिनी भागीरथी की भाँति यह तीनों लोको को पवित्र करने वाली है।
रामायण का बडी महीमा है इसकी महानता को बतानेवाले शब्द स्वयं रामायण में तथा अन्य भी जगह मिलते हैं जैसे पुराण के उत्तर काण्ड में वर्णित है–

**रामायणं नाम परन्तु काव्यं सुपुण्यपदं वै श्रृणुत द्विजेन्द्रः।यास्मि च्छुते जन्मजरादिनाशो भमत्वदोषः सनरोऽच्युतः स्यात।।वर वरेण्यं वरदं तु काव्यं संतारयत्याशु च सर्वलोकम् संकाल्पितार्थ प्रदमादिकाव्यं श्रृत्वा च रामस्य पद प्रयाति नास्ति रामायणात् परम्।।**[1]

रामायण नामक काव्य सर्वेश्रेष्ठ है यह उत्तम पुण्य फल प्रदान करने वाला है। द्विजेन्द्रो! आप लोग इसका श्रवण करो । इसे सुनने से जन्म और बुढापा आदि आवस्थाओं का नाश होता है तथा श्रवण करने वाला पुरूष सब प्रकार के दोषें से रहित हो नर से नारायण बन जाता है। आदिकाव्य रामायण श्रेष्ठ होने के साथ ही वर देने वाला भी है यह अपने आश्रय में आये हुए सम्पूर्ण जगत का शीघ्र कल्याण कर देता है। इससे मन की सारी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती है। तथा इसको सुनने वाला पुरूष भगवान श्रीराम के परमधाम को प्राप्त हो जाता है। रामायण से बढकर कोई उत्तम ग्रन्थ नहीं है।

रामायण समस्त पापो को हरने वाला सभी वेदार्थो के अनुकूल व पुण्य प्रदान करने वाला है। इसके पाठ से प्रकार के दुःख दूर हो जाते हैं। यथा–।

**रामायणमादिकाव्य सर्ववेदार्थ सम्मतम्।**
**सर्वपाप हरं पुण्य सर्व दुःख निवर्हणम्।।**

रामायण की महात्म्य का वर्णन उत्तर काण्ड के 111 सर्ग और युध्दकाण्ड के 128 सर्ग में इस प्रकार वर्णित है–

**अपुत्रो लभते मुत्रधनो लभते धनम्।**
**सर्वपापैः प्रमुच्येत् पादमप्यस्य यः पठेत्।।**[2]

रामायण के पाठ से पुत्रहीन को पुत्र और धनहीन को धन मिलता है। जो प्रतिदिन इसके श्लोक के एक चरण को भी पाठ करता है वह सब पापो से छुटकारा पा जाता है।

**"पापान्यपि च यः कुर्यादहन्यहनि मानवः।**
**पठत्येकमपि श्लोक पापात् स परिमुच्यते।।**

जो मनुष्य प्रतिदिन पाप करता वह भी यदी इसके एक श्लोक का भी नित्य पाठ करे तो वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है।

**एतदाख्यानमायुष्यं पठन् रामायणं नरः।**
**सपुत्र पौत्रो लोकेऽस्मिन् प्रेत्य चेहमहीयते ।।**[2]

---

* शोध छात्र, सहकारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मिहरावाँ, जौनपुर (समबद्ध पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर)
** शोध निर्देशक, सहकारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मिहरावाँ, जौनपुर (समबद्ध पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर)

यह रामायण नामक प्रबन्धकाव्य आयु की वृद्धि करने वाला है। जो मनुष्य प्रतिदिन इसका पाठ करता है उसे इस लोक में पुत्र पौत्र की प्राप्ति होती है और मरने के बाद परलोक में भी बड़ा सम्मान मिलता है।

**रामायणं गोविसर्गे मध्याहे वा समाहितः।**
**समाह्वे वापराह्वे च वाचयन नावसीदति ।।[2]**

जो प्रतिदिन एकाग्रचित हो प्रातः काल मध्याह्न या सायंकाल में रामायण का पाठ करता है उसे कभी कोई दुःख नही होता है

**आदिकाव्यमिदंत्वर्ष पुरा वाल्मीकिना कृतम ।**
**यः शृणोति सदा भक्त्या स गच्छेद् वैष्णवी तनुम् ।।[2]**

जो पूर्वकाल में वाल्मीकि द्वारा रचित इस आर्षरामायण आदिकाव्य का सदाभक्तिभाव से श्रवण करता है वह भगवान् विष्णु का सारूप्य प्राप्त कर लेता है ।

**पुत्रदाराश्च वर्धन्ते सम्पदः संततिस्तथा ।**
**सत्यमेतद् विदित्वा तु श्रोतव्यं नियतात्मभिः।**
**गायत्र्याश्च स्वरूपं तद् रामायणनुत्तमम् ।।[2]**

रामायण के सुनने से स्त्री–पुत्रों की प्राप्ति होती है धन और संतति बढ़ती है। इसे पुर्णतः सत्य समझकर मन को बस में रखते हुए इसका श्रवण करना चाहिए यह परम उत्तम काव्य गायत्री का स्वरूप है। रामायण श्रवण से चारों वर्ग की प्राप्ति होती है जैसा कि कहा गया है।

**चतुर्वर्गप्रदं नित्यंचरितम् राघवस्य तु।**
**तस्माम् यत्रवता नित्यम् श्रोतव्य परमंसदा।।[2]**

श्री राघवेन्द्र का यह चरित्र सदा धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पुरूषार्थों को देने वाला है। इसी लिए प्रतिदिन यत्नपूर्वक निरन्तर इस उत्तम काव्य का श्रवण करना चाहिए।

**शृण्वन् रातायणं भाक्त्या यः पादं पदमेव वा।**
**सः याति ब्रहमणः स्थानं ब्रहाणा पुज्यतेसदा।।[2]**

जो रामायण काव्य के श्लोक के एक चरण का भक्ति भाव से श्रवण करता है। ब्रह्म के धाम में जाता है और सदा उनके द्वारा पुजित होता है।

**श्रुत्वा रामायणमिंद दीर्घमायुश्च विदन्ति।**
**श्रद्वधानो जितक्रामधो दर्गाण्यतितरत्ययौ।।[3]**

सम्पुर्ण रामायण काव्य को सुनकर मनुष्य दीर्घ काल तक स्थिर रहने वाली आयु पाता है और जो क्रोध को जीतकर श्रद्धा पूर्वक इसे सुनता है वह बड़े से बड़े संकट़ो से पार कर जाता है।

**पूजयंश्च पठश्चैनमितिहासं पुरातपम्र ।**
**सर्वपैः प्रमुच्येत दीर्धमायुरवानप्रुयात ।।[3]**

जो इस प्राचीन इतिहास का पूजन और पाठ करता है। वह सब पापों से मुक्त होता **है** और बडी आयु प्राप्त करता है।

**देवाश्च सर्वे तुष्याति ग्रहणात् तथा ।**
**रामाणस्य श्रवणे तृव्यन्ति पितर : सदा ।।[3]**

रामायण को हृदय में धारण करने और सुनने से सब देवता सन्तुष्ट होते हैं इसके श्रवण से पितरो को भी सदातृप्ति मिलती है।

**आयुस्मारोग्यकर' यशस्य'**
**सौभ्रतृक' बुव्दिकर' शुभ' च।**
**श्रोतव्यमेतान्नियमेन सध्दि.**

यह काव्य आयु आरोग्य यह तथा भ्रात प्रेम को बढाने वाला है । यह उतम बुद्धि प्रदान करने वाला और मंगलकारी है। अतः समृद्धि की इच्छा रखने वाले सत्पुरूषों को इस उत्साह वर्धक इतिहास का नियम पूर्वक श्रवण करना चाहिए।

**वाल्मीकि रामायण में आर्थिक जन जीवन का साधन**

वैदिक युग के भ्रमणशील आर्य रामायण काल से बहुत पहले ही एक नियमित समाज व्यवस्था के अन्तर्गत संगठित होकर अपनी जीवन चर्या को स्थायी रूप दे चुके थे। ऐसी स्थीति में यह स्वाभाविक था कि उनका आर्थिक जीवन अधिक स्थिर एवं उन्नतशील बन गया।

एक सुशासित राज्य ही आर्थिक व्यवस्था का मूलाधार हो सकता है। राष्ट्र या व्यक्ति के जीवन में अर्थ का बहुत महत्व है। जैसा कि युद्ध काण्ड में लक्ष्मण ने कहा है–

**अर्थेव धर्ममूलाः।**

अर्थातः अर्थ ही धर्म का मूल है। वित्त शास्त्र को प्राचीन भारत में वार्ता की संज्ञा दी जाती थी। वार्ता शब्द का प्रयोग वैश्यों के तीन प्रमुख धन्धों, कृषि गो–चारण और व्यापार के लिये किया जाता था। रामायण में लोगों के आर्थिक जन जीवन के निम्नलिखित मुख्य साधन थे–

**कृषि**–रामायण काल में कृषि काफी विकसित था यद्यपि वाल्मीकि ने उस समय के खेतों की प्रणाली और उत्पादन के विषय में अधिक जानकारी नहीं दी है। फिर भी रामायण में उनकी बहुलता के वर्णनों से मालुम होता है कि आर्य अनेक प्रकार के अन्न अधिक मात्रा में उत्पादित करते थे। वाल्मीकि ने पृथ्वी को सभी इच्छाओं को तृप्त करने वाली बताया है–

**तस्मिन् प्रशासति तदा सर्वकाम दुधामही।**
**रसवन्ति प्रसूनानि मूलानि च फलानि च।।**[5]

रामायण युग में कृषि आजिविका का सर्वमान्य साधन था। दशरथ की मृत्यु के बाद अयोध्या में एकत्र होने वाले वैश्यों को कृषि गोरक्ष जीवनः कहा गया है।

**'कृषिगोरक्षजीविनः'।**[6]

श्रामायण में जीविका की संपत्ति खेतों, लतागुल्मों और गावों के रूप में गिनाई गई है। यथा–

**उधानानि परित्यज्य क्षेत्राणि च गृहाणि च।**
**एक दुःख सुख राममनुगच्छाम् धार्मिकम्।।**[6]

बालकाण्ड में महाराज जनक के विषय में कहा गया है कि एक बार जनक जी हल से यज्ञ भूमि जोत रहे थे तब सीता की प्राप्ति हुई थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि रामायण काल में क्षत्रियों के लिए कृषि कार्य मना नहीं था और राजा को हल चलाना शोभा एवं पुण्य का कार्य माना जाता था। क्योकि यज्ञ शुरू करने से पहले यज्ञ भूमि का हल से शोधन करना आवश्यक था और राजा स्वयं हल से यज्ञ भूमि का शोधन करते थे। कृषि को भी गौरव का पद प्राप्त था। राज्य की ओर से अन्न से सभी सरकारी गोदान भरे रहते थे। जिन्हें धान्य कोश 1 कहा जाता था।

राजा दशरथ और राम के शासन काल में भारत कृषि की दृष्टि से बहुत समृद्ध और सुखी था। जैसे कोसल राज्य के विषय में वाल्मिकि कहते है कि वह धन–धान्य से परिपूर्ण तथा तलाबों और आम्रवनों से युक्त था। 2

**धान्य कोशश्च यः कश्चिद् धनकोशश्च मामकः।**
**तौ राममनुगच्छेतां वसन्तं निर्जने वने।।**

रामायण में वर्णित मालनी नदी हरी–भरी फसल वाले खेतो के बीच से बहती थी।

**सुक्षेत्रा सस्यमालिनी।।**[6]

रामायण काल में कृषको कें साथ उदारपूर्ण व्यवहार किया जाता था। इसका प्रमाण इससे सिद्व होता है कि कोसल राज्य के किसान बहुत सुख से जीवन जीने वाले और संपत्ति वाले थे। वे कभी भी प्राकृतिक आपदा का भी सामना नहीं किया था। और न चोरों से कभी भय उत्पन्न होता था।

**नानावृष्टिर्बभूवास्मिन् न दुर्भिक्षः सतां वरे।**
**अनरव्यो महाराजे तस्करो वापि कश्चन्।।**

**बुवाई की विधि**–खेत में बीज बोनें से पहले खेत के झाड़–झंखाडों की सफाई के बाद जुताई की जाती थी। मुट्ंठी में बीज–भरकर खेत में फेके जाते थे।

**बीजमुष्टिः प्रकीर्यते।**

खेत को क्षेत्र या केदार और खेत की पंक्ति को कूड़ या सीता कहा जाता था। 5 खेत में बुवाई का उपयुक्त समय वर्षा ऋतु था।

**वर्षास्विव च सुक्षेत्रे सर्व सर्व सम्पद्यते तव।**

चावल के खेत को कलम क्षेत्र कहते थे। यथा–

**प्रसूतं कलामक्षेत्र शतक्रतुः।**

**कृषि कार्य हेतु प्रयुक्त होनें वाले यन्त्र**–रामायण में कृषि कार्य के लिए किसान खेती में निम्नलिखित औजारों और वस्तुओं का उपयोग करते थे।

कठिन काज[3] (गेती और चमड़े को थैला) कलश[4]कुठार (कुल्हाड़ी)[5] कुद्दल[6]कुम्भ[7] (मिट्टी की गागर) क्षुर[8] (छूरा) कनित्र (फावड़ा)[9]टंक,दात्र[10] परशु'' पिटक[12](टोकरी) फाल (हल)[12] लागत[14] (एक प्रकार का हल) शूल हल[15] आदि।

**सिचाई के साधन**–रामायण कालीन कृषि मुख्यतः वर्षा के जल पर ही निर्भर थी। उस समय भी आज की तरह दो फसलें पैदा की जाती थी। एक खरीफ की फसल जो वर्षा के जल पर निर्भर रहती थी। और दूसरी रबी की जो अन्य प्रकार की सिचाई से पैदा की जाती थी। जो खेत कृत्रिम साधनो पर निर्भर थे उसे अदेवमातृका और जो वर्षा पर निर्भर थे उसे देवमातृक कहते थे।

**अदेवमातृको रम्यः श्वपादैः परिवार्जितः।**
**परित्यक्तो भयैः सर्वैः खनिभिश्चपशोभितः।।**[6]

रामायण काव्य में सिचाई के मुख्य साधन बड़े जलाशय छोटे तालाब, नदियाँ और कुए थे। कोसल राज्य में तालाबो की अधिकता थी–

**तटाकैश्चोपशोभितः।**[6]

नदियों का जल संग्रह करने के लिए उन पर बड़े–बड़े बाँध बनाकर रोका जाता था। जिनका उपयोग खेती करने में किया जाता है।

**कृषि की सुरक्षा**–वाल्मिकि रामायण में कृषि को पर्याप्त संरक्षण प्रप्त था। राजा से कृषि विषयक जानकारी की अपेक्षा की जाती थी। जिन आठ शासन सम्बन्धी विषयो से राजा को परिचित रहना पड़ता था उन्हें अष्ठांग वर्ग कहते थे।[3] और इसमें कृषि भी शामिल था।

**दशपंचचतवर्गान् सत्तवर्ग च तत्वत।**
**अष्टवर्गं त्रिवर्गं च विद्यास्तिस्त्रश्च राघवा।।**[6]

राजा का यह कर्तव्य था कि वह कृषकों के कष्टों को दूर करे तथा उनकी सुख–समृद्वि के साधन जुटायें।

**तेषां गुप्तिपरीहारैः कच्चित् ते भरणं कृतम्।**[6]

रामायण कालीन कृषि को देखते हुए यह कह सकते है कि उस समय मनुष्यों की जीवनचर्या कृषि पर आश्रित थी जिससे उनका आर्थिक जीवन ऊँचा और स्थिर था। कृषि कार्य का राज्य में अधिक महत्व था। राजा से लेकर शूद्र पुजा तक सभी खेती करते थे।

**पशुपालन**–रामायण काल में पशु प्रधान गाँव को घोष कहा जाता था। ग्राम घोषों का रामायण में उल्लेख मिलता है। जिसमें इन दोनों प्रकार की बस्तियों की निकटता दिखती है। जिससे कृषि और पशु पालन की पारस्परिक निर्भरता का संकेत मिलता है।[5]

पशु पालन में सबसे अधिक महत्व गो पालन को दिया जाता था गायो का पालन देहात ही नहीं बल्कि शहरों में भी की जाती थी रामायण में ऐसा बहुत सा वर्णन मिलता जिसमें ब्राह्मण याचकों को असंख्य गौए दान में दी गई है इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय गायों का बहुत महत्व था। राजा स्वयं गो–पालन एवं गोसंवर्धन स्वयं करता था। राजा ने भरत से चित्रकूट पर पूछा था कि तुम्हारे पास विपुल गो–धन है

**कच्चिन्ते सान्ति धेनुकाः वा0रा0 ।**[6]

उस समय गो–शालाओं को प्रत्यागार तथा गायो के समुह को गोकुल, गोयुत, या गोव्रज कहा जाता था। ग्वालों को गोपाल और चारागार को शद्वल कहते है।–2

बैलों को हल चलाने के काम लिया जाता था। गौएँ पारिवारिक एवं धार्मिक क्रियाओ को पूरा करने के लिए दूध,दही,घी सुलभ करती थी। आज की तरह उस समय भी गायों के गोबर ईधन के रूप में प्रयोग किया जाता था।

भरत ने चित्रकूट स्थित राम की कुटिया में 3 पन्नो का ढेर लगे देखे थे । जो सर्दी से बचने के लिए जलाये जाते थे। यथा–

**छदर्श भवने महतः संचयान् कृतान।**
**मृगाणां महिषाणां च करीषैः शीत करणात्।।[6]**

पशुओ से प्राप्त होने वाले पदार्थो से अनेक प्रकार के कुटीर उद्योग चलाये जाते थे। दुग्ध पदार्थ बनाने का उद्योग देहातो में चलता था ।[6] उस समय शाकाहार भोजन काफी प्रचलन में था। जिसके कारण दूध और दूध से बने पदार्थो की बड़ी माँग थी। उस समय पशुओं के चर्म और बालों का अनेक प्रकार से उपयोग किया जाता था।

**खनिज पदार्थ–**वाल्मिकि ने अनेक खनिज पदार्थो की ओर संकेत किया है। राम ने स्वयं कोशल राज्य को खानो से सुशोभित बनाया है।5

**खनिभिश्चोपशोभितः।[6]**

हिमालय और विंध्य–पर्वत,चित्रकूट,कैलाश,प्रस्रवण सहस्य मलय उदय आदि पर्वतो को भी धातु मण्डित बनाया गया है।[6]

जिस पर्वत से हनुमान ने लंका की ओर उड़ान भरी थी वह,नीले,लाल,मजीठ और सफेद काले रंग था धातुओं से भूषित है। नदी तल से भी धातु निकाला जाता था जिसे जाम्बूनाद कहा जाता था।[8]

**स्वभाव सिद्धैर्विमलैर्धातुभिः समलंकृतम्।[7]**
**ततः प्रसर्षकेभ्यस्तु हिरण्य सुसमाहितः।**
**जाम्बूनंदकोटिसंख्य ब्राह्मणेभ्यो ददौतदा।।[7]**

उस समय धातुओ के परिशोधन तथा मिश्रित धातुओ के उत्पादन की कला लोगो को मालुम था।

**सुवर्णप्रतिरूपेण तप्तेव कुशाग्निना।[7]**

उस समय सोने को तपाकर उसकी अशुद्धिया अलग कर दी जाती थी। इस्पात बनाने के लिए लोहा ढाला जाता था। सूई तथा तेजधार क्षुरे आदि बनाये जाते थे।

**अक्षि सूच्यामृजसि जिध्वयालेढि च क्षुरम्।[7]**

वाल्मीकि ने निम्नलिखित धातुओं का उल्लेख किया है आयस[4] कालायस[5] पीतल[6] कर्णायस्[7] लोह[8] कास्य[9] रजत[10] हिख्य[11] चाँदी[12] सुवर्ण[13] काचन[14] जातरूप[15] जाम्बूनद[16] हैम[17] सीसा[18] ताबा[19] त्रपु[20]

**वस्त्र उद्योग–**वाल्मीकि रामायण में वस्त्र उद्योग भी काफी किकसित था। उस समय कुशल बुनकर सूत्र कर्म विशारद कहलाते थे।

**सूत्रकर्मविशारदाः।[7]**

कई प्रकार के तन्तुओ से वस्त्र बनाये जाते थे। कपडो की रंगाई–धुलाई भी की जीती थी इस काम में लगे कारीगरो को रजक कहा जाता था। उस समय नील पीत रक्त, शुक्ल शुकप्रभ तथा कषाय रंगो का अधिक प्रचलन था।[23]

**यातायात के साधन–**रामायण में ऐसे व्यापारियों का उल्लेख मिलता है जो समुद्र पाद देशो से व्यापार करते थे और अयोध्या के राजाओं को रत्नो के उपहार लाकर देते थे।

**कोट्यापरान्ताः रामुद्रारत्नोन्युपहरन्तु ते।[7]**

उनदिनों महासागरों में बड़े–बड़े जहाजो का पर्याप्त आना जाना था। उस समय समुद्रि यातायात के अतिरिक्त स्थल मार्ग भी अधिक प्रयोग किया जाता था नगरों में चौड़े और व्यवस्थित मार्ग वने होते थे जिससे अनुमान लगता है कि सड़के पक्की नहीं थी लेकिन रथादि सवारीयों के चलने योग्य होती थी उत्तरी भारत के भाग के में पर्याप्त सड़क था। जिन पर खुब यातायात और वाणिज्य होता था। वर्षा ऋतु में ये मार्ग आवागमन के लिए सही नहीं रह जाते थे।

**अभीक्ष्णवाषोर्दकविक्षतेषुयानानिमार्गेषु न सम्पतन्ति।**

रामायण में यातायात के साधन 'यान' कहलाते थे। जो मनुष्यो, पशुओं और धन धान्य को ढोने के काम आते थे। समान में उसका उच्च स्थान था। नागरिकों के दैनिक क्रिया–कलाप रथ के द्वारा ही होते थे नगरों के मार्ग रथों की गड़गड़ाहट से गूँजते रहते थे।

माल ढोने वाली गाड़िया शकट कीलाती थी।[8] बैलों से खीची जानें के कारण उन्हे गोरथ भी कहते थे।[9] देश के अन्दर यातायात के लिए नावें भी प्रयोग में लाई जाती थी। स्थल मार्ग के बीच खोरी नदी कहलाती थी। जो नाव द्वारा पार की जाती थी। जैसे विश्वामित्र जी ने राम और लक्ष्मण को गंगा नदी नौका पर बैठाकर पार की थी नाव के अतिरिक्त बेड़ों और घोडों द्वारा भी नदियाँ पार की जाती थी।[3] रामायण में हवाई यात्रा की भी सुचना मिलती है। जिसे विमान या खग कहते थे।[4] जैसे रावण के पास उस समय भी एक पुष्पक विमान था।[5] जो काफी महाघोष करता था।

**महानादमुत्पात विहायसम् ।[9]**

अन्त में यह स्पष्ट होता है कि रामायण काल में ये सभी लोगों के आर्थिक जन जीवन के साधन थे।

**संदर्भ :**


1. *पुराण का उत्तरकाण्ड*
2. *वा0 रा0 उ0 काण्ड– 111 6 श्लोक 8,9,16,17,18,23,24*
3. *युद्धकाण्ड– 128 सर्ग श्लोक– 111,112*
4. *उत्तरकाण्ड–128 सर्ग 117,122,125*
5. *वा0 रा0 राप्तकाण्ड– 84 सर्ग 7 श्लोक*
6. *वा0 रा0– 2– 67, 18, 2 – 3च3– 17, 2, 36 7 1–32–10 2–110–10, 4–4 –20–4–14–16,2–100–45,2–100–68,2–100–48,2–100–50,2–99–7 22–100–45*
7. *वा0 रा0 5–1–5, 1–14–53,3–29 20 4–47–41, 2–80–1, 2–82–8,4–28*
8. *वा0 रा0 2–40–23, 2–41–12, 2–29–20 –20, 1–37–41, 3–47–46, 2–34–14, 1–53–21,4–40–23, 2–32–14, 1–37–22, 1–14–54–50–34*
9. *वा0 रा0 4–123–10*


***

# भारत और श्रीलंका चिंताएँ एवं प्रतिक्रियाएँः चीन के संदर्भ में

*डॉ. राम विजय सिंह* *

**श्रीलंका की रणनीतिक स्थिति :**

जब से भूमंडलीय राजनीति में सागरों की सामयिकता एवं उपयोगिता बढ़ी है, तब से भारतीय सागर पूरे विश्व में तीसरा सबसे बड़ा जलाशय है, जहॉ 60 प्रतिशत व्यापारिक जहाजों का आवागमन होता है। उल्लेखनीय है कि पूरे धरती का 20 प्रतिशत जल भारतीय सागर परिक्षत्र में ही है। चूँकि शक्तियों के मध्य प्रतिस्पर्धा होती रही है, युद्ध भी गाहे बगाहे घटित होंते ही रहे हैं, लेकिन अगर यह कहॉ जाय कि सागर भी उभरती हुई ताकतों के मध्य द्वंद का उदाहरण भी है, यथा सुएज कैनाल, होरमुज का जलडमरू मध्य, दक्षिण चीन सागर विवाद, भारतीय सागर, समुद्री डकैतियॉ एवं आतंकवादी गतिविधियॉ इत्यादि। श्रीलंका भारतीय सागर का एक छोटा सा द्वीप है, जो समुद्र होने वाले दूरसंचार रेखा के अत्यंत महत्वपूर्ण कोने में स्थित है, जो रणनीति के लिहाज से काफी मायने रखता है। यू0 एस0 सीनेट के 'फॉरेन रिलेशन कमेटी' श्रीलंका के बारे में अपना राय रखती है कि ''श्रीलंका की जो भी रणनीतिक महत्ता अमेरिका के लिए है और साथ ही साथ चीन और भारत के लिए भी है, इसको व्यापक भू–राजनीतिक गतिकी के संदर्भ में देखा जा सकता है।''[1]

वर्मन मेंडिस के अनुसार ''श्रीलंका की जो भी रणनीतिक स्थिति अद्भुत है क्योंकि इसकी भौगोलिक स्थिति तीन भू–राजनीतिक विमाओं का एक संयोग है।

इसकी पूर्वी एशिया एवं पूर्वी अफ्रीका के बीचों–बीच स्थिति है जिसने इन क्षेत्र पर आधिपत्य स्थापित किया है। इसकी स्थिति समुद्र के आर–पार विस्तीर्ण है जो पूरब को पश्चिम से जोड़ती है और पूरब से पश्चिम को जोड़कर एक विस्तृत धरातल तैयार किया है। इससे जो वातावरण बनकर तैयार होता है, वो श्रीलंका के प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि कर देता है।[2]

इसके अतिरिक्त श्रीलंका की स्थिति एक वायुयान वाहक सरीखी है जो सात पूर्वी पश्चिमी प्रवेश द्वार की रक्षा करती है जो भारतीय सागर की तरफ जाते है। भारतीय सागर के मध्य से ही समुद्री दूरसंचार की रेखा जाती है जो देश के दक्षिणी तट से 10 से 12 नॉटिकल मील दूर है। इस मार्ग से हर साल 10,0000 जलपोत गुजरते हैं, जिसमें दो तिहाई विश्व के तेल टैंकर हैं, एक तिहाई विशालकार मालवाहक पोत हैं। इसके अलावे विश्व के आधे से अधिक ट्रिलियन यू0 एस0 डालर का व्यापार होता है जो मलक्का जलडमरू मध्य से होते हुए दक्षिण चीन सागर तक जाता है।[3]

अतः श्रीलंका की भारतीय सागर परिक्षेत्र में स्थिति रणनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। महाशक्तियों के दृष्टि में इसके काफी मायने हैं। अगर इसके पहले के इतिहास पर गौर करें तो श्रीलंका पुर्तगालियों के द्वारा बसाया गया उपनिवेश था, जिसका पुर्तगाली, डच और अंग्रजों ने एक आवागमन स्थल या अस्थाई ठहराव के लिए किया था ताकि सुगम तरीके से व्यापार हो सकें। इन औपनिवेशिक ताकतों ने श्रीलंका के बंदरगाहों का इस्तेमाल किया ताकि यहॉ के समुद्र तटों पर ठहरा जा सकें और जहाजों को तेल भराया जा सकें। इसके कुछ उदाहरण भी है जो श्रीलंका की रणनीतिक या सामरिक स्थिति का उन संदर्भों में हवाला देते हैं, जब पश्चिमी ताकतों ने यहॉ रूचि लेना शुरू किया था। इस संदर्भ में ब्रिटिश रखा एवं विदेशी मामलों की सहमति, 1948 एवं सोवियत संघ के साथ समुद्रीय समझौता, 1962 विशेष अर्थ रखते हैं, जब भंडारनायके प्रशासन, जे0 आर0 जयवर्धने (1978–1989) और राणा सिंधे प्रेमदास (1989–1993) के शासनकाल के दौरान ये सारे समझौते अस्तित्व में आए। श्रीलंका एक प्रकार से अमेरिका दूरसंचार स्टेशन की आवाज बन चुका था।[4]

इसी समय महिन्द्रा राजपक्षे की सरकार भी अस्तित्व में आई और चीन व्यापक रूप से श्रीलंका सरकार के माध्यम से भारतीय सागर में शामिल हो गया। जिससे कुछ विवाद भी प्रकाश में आए जो

---

* एसो० प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा।

चर्चा का विषय बने। इस समय ऐसी चर्चा चली कि ''चीन विशालकाय तरीके से आधुनिक बंदरगाह बनाने में लगा है, जो भारतीय सागर के दक्षिण में स्थित ग्वाडर (पाकिस्तान), चित्तगांग (बंगलादेश), क्योकफ्रू (बर्मा) और हंबन टोटा (श्रीलंका) में स्थित हैं।[5]

यही कारण है कि चीन लंबे समय से भारतीय सागर क्षेत्र में अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति करने में लगा है। श्रीलंका बीजिंग के मुख्य निशाने पर है ताकि वहॉ पर पट्टे पर ही सही लेकिन भूमि अधिगृहीत किया जा सकें। बीजिंग ने सेशेल्स, मालदीव, बंगलादेश और म्यॉमार को आकर्षण ऋण के प्रलोभन से आकर्षित करके अपना मंसूबा साधा है। लेकिन ये ऋण अत्यल्प समय में ही विशालकाय रूप धारण कर लिए और इनसे संत्रस्त देश सूदखोर देश या ऋण प्रदाता देशों के द्वारा निगल लिए गए। इसके बाद बीजिंग ने ह्दय तरीके से कूटनीति का सहारा लिया ताकि भारतीय सागर के क्षेत्रों में उसके पॉव कम से कम 30 से 40 वर्षों तक जम जायें। इसके बाद फिर 99 वर्षों के लिए इन द्वीप समूहों के राष्ट्रों की भूमि पर 99 वर्षों के लिए अधिग्रहण किये जाय। इस पूरी प्रक्रिया में 5 वर्षों से कम ही समय लगे।

**भारत और श्रीलंका :**

भारत की सुरक्षा के लिहाज से और व्यापार के दृष्टिकोण से भी श्रीलंका भारत के लिए मायने रखता है। भारत के दक्षिण पूर्वी समुद्र पर 1,340 किमी0 के विस्तार में बसे श्रीलंका के भारत के साथ बहुत ही पुराने संबंध रहे हैं, जिनका इतिहास उल्लेख किया जाना संभव नहीं है। यह कभी ब्रिटेन और भारत का हिस्सा रहा और आदिकाल से इनके साथ जनांकिकीय, धार्मिक एवं सांस्कृतिक संबंध रहे हैं। यह भारतीय समुद्रीय गलियारे के पास रणनीतिक रूप से स्थित है। चीन के द्वारा हंबनटोटा बंदरगाह को निर्माण किया गया जिससे भारत भी सजग हुआ क्योंकि कोलंबो के 70 प्रतिशत जलपरिवहन के मार्ग भारत से होकर गुजरते हैं। 'स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्स' चीन की भू–भाग सूडान तक जाता है जिसके बीच में मनडेब के जलडमरूमध्य, मलक्का, होरभुज, लोम्बोक और रणनीतिक सामुद्रिक केंद्र (जो पाकिस्तान के भू–भाग में हैं) पड़ते है। चीन की इस रणनीति का एक मुख्य उद्देश्य यह भी है कि इन देशों के साथ रिश्तों को पक्का किए जाय।

चीन के जो भी बंदरगाह कोलंबो में बने हुए है, वहॉ पर केवल सैन्य गतिविधियॉ चलती रहती हैं, जिससे राष्ट्रकी संप्रभुता को चोट पहुॅचाती है। वैसे श्रीलंका ने इससे अनभिज्ञता जाहिर की। लेकिन फिर भी यह मुद्दा चर्चा का विषय तब हुआ, जब सिरिसेना ने राष्ट्रपति के रूप में कार्यभार सॅभाला। इन्होंने घोषणा की कि ''श्रीलंका कभी भी किसी भी राष्ट्र के सुरक्षा तंत्र में घुसपैठ को पसंद नहीं करता है।'' भारत ने श्रीलंका में आए इस राजनीतिक बदलाव का स्वागत किया। श्रीलंका के राष्ट्रपति के भारत की यात्रा एवं भारतीय प्रधानमंत्री की श्रीलंका यात्रा दोनों देशों के संबंधों का 28 वर्षों के लंबे अंतराल के बाद इसका परिणाम यह हुआ कि श्रीलंका ने चीन के साथ फाईटर जेट की सौदेबाजी को निरस्त कर दिया और इसके प्रस्तावित 'कोलंबो पोर्ट सिटी' की परियोजना को भी अधर में लटका दिया। श्रीलंका के ऊपर चीन की आर्थिक सहायता ऋण के रूप में रही, जिसका भुगतान यह देश प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद भी करता रहा। श्रीलंका के नवागत राष्ट्रपति सिरिसेना ने चीन से ऋण समायोजन की चर्चा भी की। श्रीलंका के विशेषज्ञ ने अपना विचार व्यक्त किया कि ''कोलंबो की विदेशनीति हमेशा तालमेल की नीति पर चलती रही।''[6]

श्रीलंका की राजनीति को बाहरी घटक तय किया करती हैं। श्रीलंका में राजनीति के जो भी हलचल या कोलाहल हुए हैं, उसमें इनकी अंह भूमिका हैं। श्रीलंका की राजनीति में हलचल की शुरूआत प्रधानमंत्री की बर्खास्तगी से शुरू हुई और फिर बाद में संसद भंग और चुनाव की घोषणा से होते हुए अविश्वास प्रस्ताव तक आकर खत्म हुई। इस राजनीतिक उठापटक ने यह साबित किया कि प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के बीच द्वंद चले आ रहे थे जो केवल इस बात पर केंद्रित रहे कि चीन के द्वारा निवेश कहॉ तक उचित है।[7] प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के मध्य द्वंद का ही परिणाम रहा कि परियोजनाओं के कार्यान्वयन में विलंब हुआ, जो कि भारत और श्रीलंका के मध्य तय हुए थे क्योंकि श्रीलंका के राष्ट्रपति इसके कत्तई समर्थन में नहीं थे।[8] श्रीलंका के राष्ट्रपति के भारत विरोधी

गतिविधियों से उनके रूख का आसानी से अनुमान लग सकता था। ऐसी भी रिपोर्ट प्रकाश में आई कि भारत की रॉ (रिसर्च एण्ड एनालिसिस विंग) ने कुछ ताकतों के साथ मिलकर श्रीलंका को राष्ट्रपति को माने की साजिश की थी।[9] कई तरह की कानूनी अड़चनों को बाद भी श्रीलंका के प्रधानमंत्री को निष्कासित करने के पीछे मुख्य कारण यही था कि वहॉ फरवरी, 2018 में चुनाव संपन्न हुए थे और सत्ताधारी पार्टी ने इस चुनाव में हिस्सा नहीं लिया था।[10] बहरहाल भारत और श्रीलंका के बीच परियोजनाओं के कार्यान्वयन के विलंब और कोलंबो पोर्ट को चीन को सौंपना महत्वपूर्ण कारणों में से एक था। श्रीलंका का चीन के प्रति झुकाव बढ़ता गया क्योंकि इसकी चीन के साथ सौदेबाजी थी ताकि सैन्य परिवहन विमान खरीदे जाय। सिरिसेना की सरकार ने रूके पड़े चीनी वित्त पोषित कोलंबो पोर्ट परियोजना को एक नये सिरे से शुरू करने की सोची। और भारत के द्वारा वित्त पोषित परियोजनाएँ कार्यान्वित नहीं हो पाई। भारत ने सजगता भरा कदम उठाया है ताकि श्री लंका को निर्बाध गति से सहायता पहुॅचती रहे।

**भारत की चिंताएँ एवं प्रतिक्रियाएँ :**

यह स्पष्ट है कि चीन ने लगभग सभी दिशाआं मे अपने संजाल फैलाए हैं। ये महज आर्थिक एवं राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नहीं, वरन् बल्कि इसके पीछे की रणनीति यह है कि भारत को हर तरह से घेरा जायॅ क्योंकि नई दिल्ली लगातार सतत् ढ़ंग से पूरे विश्व में शांतिपूर्ण एवं अहिंसक देश की छवि बनाए हुए है जिसकी कोई मिसाल नहीं है। भारत की छवि के साथ मुकाबला करना भी कोई आसान काम नहीं है। इसीलिए ईर्द–गिर्द बंदरगाहों को बनाकर इसकी अस्मिता को चुनौती दी जायॅ। अपनी योजनाओं एवं रणनीतियों को कार्यान्वित करते हुए बीजिंग ने पाकिस्तान से घनिष्ठ संबंध बनाए और इसको मिसाईल एवं हथियार उपलब्ध कराए ताकि यह दक्षिण एशिया के भीरत भारत के खिलाफ एक ताकत के रूप में खड़ा हो सकें। पाकिस्तान ने पहले ही अपना ग्वाडर बंदरगाह चीन को सौंपकर उसको घुसपैठ को मौका दिया है। इसी तरह चीन–पाकिस्तान इकोनॉमिक कोरिडोर (CEPC) भी एक दूसरी रणनीति है जिससे बीजिंग अपने प्रभाव एवं वर्चस्व में वृद्धि कर सकता है। चीन का यह सोचना है कि पाकिस्तान श्रीलंका एवं मालदीव के माध्यम से भारत को घेराबंदी करने से भारत दबाव में आ जाएगा। भारत इन सारी चीजों से पहिले ही वाकिफ है और उसने अपनी चिंता को कई अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर प्रकट भी कर चुका है। क्योंकि चीन और पाकिस्तान के मिलने से भारत के खिलाफ माहौल तैयार हुआ है। भारत ने भी उपयुक्त रणनीति तैयार कर रखी है ताकि राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा हो सकें। लेकिन यह अभी पूरी तरह से आम नहीं है। इसकी किसी भी तरह से सार्वजनिक चर्चा नहीं है। भारत ने किस तरह से भारतीय सागर के अपने हितों के लिए संघर्ष किया है, यह बताने की कोई आवश्यकता नहीं है। भारतीय सागर परिक्षेत्र के पास मॉरीशस, मालदीव और मैडागास्कर जैसे द्वीपों वाले देश हैं। इसमें भी मॉरीशस के साथ दोहरे कर की छूट तो है ही, लेकिन समूचे दक्षिण एशियाई क्षेत्र में सैन्य पहुॅच का मार्ग हैं। भारतीय नौ सेना ने पहले ही नौ सैनिक गश्ती से संबंधित सामग्रियॉ, कार्मिक एव प्रशिक्षण एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण जल सर्वेक्षण के लिए उचित सहयोग (जो भारतीय सागर परिक्षेत्र के देशों के लिए आवश्यक है), पहले ही मुहैया कर दी है। एक मौन रणनीति के तहत, भारतीय नौ सेना की जल सर्वेक्षण शाखा ने उल्लेखनीय तरीके से भारतीय सागर क्षेत्र के आस–पास तकरीबन 1000 सर्वेक्षण अधिन्यास का जिम्मा अपने सिर पर ले लिया है। अभी हाल ही में ओमान में सर्वेक्षण का कार्य चला और सऊदी अरब में भी इसी तरह के कार्य किए गए। इसी के लिए स्मारक ज्ञापन भी हस्ताक्षर किए गए। इन क्रमागत समलताओं ने अतयाधुनिक पश्चिमी नौ सेनाओं का रास्ता रोक दिया। भारत की जो भी जल सर्वेक्षण संबंधी नीति है वो भविष्य में सुनहरा लाभ देगी जिससे संभवतः क्षेत्र में चीन के बढ़ते वर्चस्व को रोका जा सकता है। इसके अलावे जिस तरह से ग्वाडर (पाकिस्तान) चितागांग (बंगलादेश), हंबनटोटा (श्री लंका) और सित्तवे (म्यॉमार) में बंदरगाहों को बनाने में चीन ने अपना निवेश किया है, उसको रोका और हतोत्साहित किया जा सकता है।

**निष्कर्ष :**

भारत की क्षेत्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर जो स्थिति है, उसकी तुलना चीन, जापान एवं अन्य एशियन देशों से कत्तई नहीं हो सकती हैं। उपनिवेशवाद के समाप्त हो जाने के बाद भारत ही एक ऐसा देशा रहा जिसकी आवाज तमाम क्षेत्रीय संगठनों में सुनी जाती रही जिसमें एशिया और अफ्रीका भी शामिल रहे। लेकिन सन् 1960 के बाद जो नीतियॉ अपनाई गई, उसकी वजह से भारत गुमनामी के रास्ते पर चला गया जो उदारीकरण के बाद भी मुश्किल से ही उबर पाया। इसे अमेरिका के साथ भी तालमेल बनाने में मुश्किलें आई। एशियन देशों के साथ अग्रणी पंक्तियों में शामिल होना तो संभव नहीं दिखाई देता और ना ही एपेक (APEC) देशों के साथ लाभबंद ही हुआ जा सकता है। दूसरी तरफ चीन ने एशिया और अफ्रीका के गरीब देशों को बहुत अच्छी तरह से अपने मतलब के लिए साधा है। यहॉ इसने भारी भरकम निवेश किए हैं। यहॉ तक कि चीन का ढ़ेर सारा निवेश भारत में भी है। दक्षिण एशिया देश भारत और चीन के साथ अपने रिश्तों को सॅभालने में लगे हुए हैं क्योंकि इनके अपने राष्ट्रीय हित शामिल हैं। दूसरी तरफ चीन ने भी भारत से कहीं बेहतर ढ़ंग से आर्थिक सहायता प्रदान की है, लेकिन इन सबके पीछे सूदखोरी की नीयत भी शामिल रही।

**संदर्भ :**

[1] http://blogs.lse.ac.uk/southasia/2018/08/06/can-sri-lanka-capitalise-out-of-its-strategic-location-in-the-indian-ocean-region/

[2] http://www.mfa.gov.lk/brief-overview-of-sri-lankas-foreign-relations-to-post-independence/

[3] http://www.thequint.com/voice/opinion/india-sri-lanka-china-maritime-dynamics

[4] http://blogs.Ise.ac.uk/southasia/2018/08/06can-sri-lanka-capitalise-out-of-its-strategic-location-in-the-indian-ocean-region/

[5] http://blogs.Ise.ac.uk/southasia/2018/08/06can-sri-lanka-capitalise-out-of-its-strategic-location-in-the-indian-ocean-region/

[6] http://www.foreignaffairs.com/.../chinas-investments-sri-lanka

[7] http://thediplomat.com/2018/10/sri-lankas-constitutional-crisis-the-geopolitical-dimenasion/

[8]The Sri Lankan parliament has passed a no confidence motion against Rajpakse, Earlier the Supreme Court of Sri Lanka over turned the presidential decree to dissolve the House and hold snap polls in January, 2019., the Economic Times, 15 Nov, 2018

[9] Sri Lanka's foreign ministry issued a statement that media report was baseless and false https://www.hindustantimes.com/india-news/sri-lankan-president-maithripala-sirisena-rejects-reports-on-india-role-in-assassination-bid/story-C4yigSmVbeJICQVj98loyM.html

[10]19th amendment to the constitution of Sri Lanka

***

# वैशेषिकसूत्रोपस्कार के सन्दर्भ में आत्मप्रत्यक्ष के साधन योग

*रमेश चन्द्र* *

न्यायवैशेषिक दर्शन में किसी भी वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए आत्मनः संयोग कारण है। आत्मा, एवं मन के संयोग के अभाव में प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं उत्पन्न हो सकता है। आत्मा, मन से संयुक्त होता है, मन चक्षु आदि इन्द्रियों के साथ संयुक्त होता है, साथ ही ज्ञानेन्द्रिय जिस विषय में सम्बन्धित होता है उसी विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान आत्मा में उत्पन्न होता है।

**दृष्टान्त के लिए –** आत्मा से संयुक्त मन जब चक्षु आदि इन्द्रियों की ओर उन्मुख है और चक्षु पुष्प से सम्बन्धित है उस दौरान आत्मा में ''इदम, पुष्पम्'' इस प्रकार प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है। वस्तुतः आत्ममनःसंयोग सिर्फ प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए ही हेतु है ऐसी बात नहीं वह सभी ज्ञान के लिए कारण है। आत्ममनः संयोग के बिना अनुमिति आदि ज्ञान भी नहीं होता हैं, आत्ममनः संयोग की कारणता का समर्थन आचार्य केशवमिश्र अपने न्यायग्रन्थ ''तर्कभाषा में इस प्रकार करते हैं–

**''आत्मा मनसा संयुज्यते। मन इन्द्रियेण इन्द्रियमर्थेन इन्द्रियाणां वस्तुप्राप्तकारित्वनियमात्। ततोऽर्थसन्निकृष्टेनेन्द्रियेण–ज्ञानं जायते।**[1]

अर्थात् जब आत्मा मन से संयुक्त होता है तथा मन इन्द्रिय से एवं इन्द्रिय का अर्थ के साथ संयोग होता है तब इन्द्रिय से ''इदम पुष्पम्'' इस प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार ''आत्ममनःसंयोग'' से उत्पन्न होने वाला प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का होता है।

1. **वाह्यवस्तुविषयक प्रत्यक्ष ज्ञान।**
2. **आत्मविषयक प्रत्यक्ष ज्ञान।**

आत्म–विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान का कारण ''आत्ममनःसंयोग'' का प्रतिपादन तर्कभाषा के कर्ता आचार्य केशवमिश्र ने अपने ग्रन्थ में इस प्रकार किया है–

**''एवं मनसान्तरेणेन्द्रिरेण यदात्मविषयं ज्ञानं जन्यतेऽहमिति तदा मन इन्द्रियम् आत्मा अर्थः। अनयोसन्निकर्ष संयोग एवं।**[2]

अर्थात् अन्तरिन्द्रिय मन से जब ''अहम'' इस प्रकार आत्मविषयक ज्ञान उत्पन्न होता हैं, तब मन इन्द्रिय है एवं आत्मा अर्थ है, उनका सन्निकर्ष संयोग है। आत्मप्रत्यक्ष के लिए भी आत्ममनःसंयोग कारण है इस प्रकार सिद्ध होने पर जब ''इदम पुष्पम'' इस प्रकार पुष्प विषयक बाह्य प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है, तो उस समय भी आत्ममनःसंयोग विद्यमान है, तो उस समय अहम इस प्रकार आत्मविषयक प्रत्यक्ष ज्ञान क्यों नहीं उत्पन्न होता है? क्योंकि आत्मविषयक प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए भी आत्ममनःसंयोग कारण है।

इसका समाधान वैशेषिक दर्शन के आचार्य इस प्रकार करते हैं कि ''जब आत्मा के साथ संयुक्त होता हुआ मन जब चक्षु आदि इन्द्रियों के माध्यम से किसी बाह्य वस्तु पुष्पादि की ओर उन्मुख होता है तब उस समय जो आत्ममनःसंयोग होता है वह ''इदम पुष्पम'' इस प्रकार बाह्य विषयों को ही प्रकाशित करने वाला ज्ञान उत्पन्न होता है, आत्मविषयक नहीं।

पक्षान्तर में जब मन चक्षु आदि इन्द्रियों की ओर उन्मुख न होता हुआ आत्मा की ओर ही उन्मुख होता है तो उस दौरान जो आत्ममनःसंयोग होता है, उससे आत्मा में यह ''अहम्'' इस प्रकार आत्मविषयक ज्ञान ही उत्पन्न होता है, अहम इस आत्मानुभूति ''अहम् मनुष्य'' ''अहम् पुत्र'', इत्यादि प्रकार से ज्ञान होता है। आत्मा की तरफ उन्मुख हुआ मन से जो आत्ममनःसंयोग होता है, उससे उत्पन्न 'अहम्' इस प्रकार आत्मविषयक प्रत्यक्ष का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि अहम् यह आत्मानुभूति शरीर, इन्द्रिय एवं मन आदि से मिलित स्वरूप को ही प्रकाशित करता है, न कि शुद्ध आत्मा को प्रकाशित करता है, ज्ञान का आकार होता है, अहम् मनुष्यः अहम् पुत्रः इत्यादि।

---

* शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221005

पुनः जिज्ञासा होती है कि आत्ममनःसंयोग से आत्मा में जो आत्मविषयक अनुभूति होती है, वह शुद्ध रूप से अर्थात् शरीर, मन एवं इन्द्रिय आदि से भिन्न नित्य, सर्वत्रव्याप्त इत्यादि रूप से आत्मा क्यों नहीं प्रकाशित होता है?

इसका समाधान वैशेषिक दर्शन के आचार्य इस प्रकार करते हैं कि आत्मा में पूर्वानुभव जनित संस्कार (चाहे वह पुर्वानुभव इस जन्म का हो या पूर्वजन्म का) वासना, राग, द्वेष इत्यादि के रूप में विद्यमान है, जिसके कारण आत्ममनःसंयोग होने पर भी आत्मा के शुद्धस्वरूप का प्रकाशन न होते हुए शरीर, इन्द्रिय एवं मन आदि से मिलित ''अहम् मनुष्यः, अहम् पुत्रः'' इस प्रकार से ही आत्मा के स्वरूप का ज्ञान उत्पन्न होता है। तात्पर्य यह है कि जब तक वासना, राग द्वेष आदि दोषों की निवृत्ति नहीं होगी तब तक आत्मा के शुद्धस्वरूप को प्रकाशित करने वाला ज्ञान आत्ममनःसंयोग से उत्पन्न नहीं होगा।

अब पुनः प्रश्न उठता है कि आत्मा में विद्यमान वासना, राग–द्वेष आदि की निवृत्ति कैसे हो? समाधान के लिए वैशेषिक दर्शन के आचार्यों ने येाग को साधन के रूप में उपदेश किया है। यथा–

**आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम्।**[3]

अर्थात् आत्मा में आत्मा तथा मन के संयोग विशेष से आत्मा के शुद्धस्वरूप का ज्ञान होता है अर्थात् आत्मा की तरफ उन्मुख मन के साथ आत्मा का संयोग भी सामान्य आत्ममनःसंयोग ही है, और सामान्य आत्ममनःसंयोग से शुद्ध आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव नहीं है। इसके लिए विशेष आत्ममनःसंयोग अपेक्षित है। वह विशेष आत्ममनःसंयोग कैसे होगा? इस प्रश्न के समाधान के लिए वैशेषिक सूत्र की व्याख्या करते हुए आचार्य शंकर मिश्र कहते है कि –

**''यद्यप्यस्मदादीनामपि कदाचिदात्मज्ञानमस्ति तथाप्यविद्यातिरस्कृतत्वात् तदसत्कल्पमित्युक्तमात्ममनसोःसन्निकर्षविशेषादिति। योगजधर्मानुग्रह आत्ममनसोंः सन्निकर्ष विशेषस्तस्मादित्यर्थः।।**[4]

अर्थात् यद्यपि हमें भी कभी–कभी सामान्य आत्ममनःसंयोग से आत्मप्रत्यक्ष होता है, 'अहम मनुष्यः, अहम पुत्रः' इत्यादि, किन्तु वह अविद्या से तिरस्कृत होने के कारण असत् के समान ही है। आत्मा के शुद्धस्वरूप के प्रत्यक्ष के लिए सामान्य आत्ममनःसंयोग सन्निकर्ष नहीं अपितु विशेष आत्ममनःसन्निकर्ष की आवश्यकता होती है।

सामान्य आत्ममनःसंयोग से शुद्ध आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं उत्पन्न होता है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार तो विशेष आत्ममनःसंयोग के द्वारा यह ज्ञात हुआ है। पुनः जिज्ञासा होती है कि यह विशेष आत्ममनःसंयोग क्या है? और विशेष आत्ममनःसंयसोग कैसे होता है? समाधान करते हुए वैशेषिक दर्शन के आचार्य कहते हैं कि वह साधन योग नामक समाधि के अभ्यास से विशेष आत्ममनःसंयोग होता है। अब पुनः प्रश्न उठता है कि वह योग नामक समाधि क्या है? वस्तुतः यम, नियम, आसन प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि नामक योग के अष्टांगो का अभ्यास करना पड़ता है। यथा आत्मा के शुद्धस्वरूप के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए योगी को अपनी आत्मा में विद्यमान संस्कार (चाहे वह पूर्वानुभव जनित हो या इस जन्म का) वासना, राग, द्वेष आदि की निवृत्ति एवं मन की शुद्धि के लिए यम नामक योग का अभ्यास करना पड़ता है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह का पालन एवं आचरण पूर्वक शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर भक्ति रूप नियम के अभ्यास के द्वारा तन एवं मन की शुद्धि करके मन को एकाग्र करने के लिए आसन का अभ्यास, तदनन्तर प्राणायाम एवं प्रत्याहार नामक योगाभ्यास के द्वारा मन को बाह्य विषयों से हटाकर आत्मा में केन्द्रित करना पड़ता है। उसके बाद धारणा ध्यान एवं समाधि योग का अभ्यास करना पड़ता है। इससे आत्मा में विद्यमान सम्पूर्ण वासना राग, द्वेष आदि निवृत्त हो जाते हैं, उस समय आत्मा और मन के विशेष संयोग से आत्मा के शुद्ध स्वरूप का प्रत्यक्ष होता है। वह अनुभूति इस प्रकार होती है, आत्मा नित्य, सर्वत्रव्याप्त, इत्यादि। यही विशेष आत्ममनःसंयोग से होने वाला शुद्ध आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान है।

आत्मा के शुद्धस्वरूप के ज्ञान के लिए हेतुविशेष आत्ममनःसंयोग के लिए योगाभ्यास का प्रतिपादन वैशेषिकसूत्रोंपस्कार आचार्य शंकर मिश्र ने इस प्रकार किया हैं–

**साक्षात्कर्तव्ये वस्तुन्यादरेण मनो निधाय निदिध्यासनवन्तः। तेषामात्मनि स्वात्मनि परमात्मनि च ज्ञानमुत्पद्यते।**[5]

अर्थात् आत्मतत्व के शुद्धस्वरूप के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए योगी को श्रद्धा, भक्ति तथा आदर पूर्वक वेद, उपनिषद् शास्त्रादि एवं गुरूमुख से श्रवण करना होता है। श्रवण के पश्चात् आत्मतत्त्व का मन से आदरपूर्वक मनन–चिन्तन कर उसके शुद्धस्वरूप का निदिध्यासन करने के परिणाम स्वरूप जिस आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है वह आत्मा के शुद्धस्वरूप नित्य, शुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वत्रव्याप्त इत्यादि स्वरूप है। इस शुद्ध आत्मा के साक्षात्कार ही मोक्ष के लिए कारण है।

---

[1] आत्मा मनसा संयुज्यते ..... ज्ञान जायते। तर्कभाषा आचार्य केशव मिश्र पृ0 सं0–35 चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण–2017

[2] एवंमनसान्तरेणेन्द्रियेण ..... सन्निकर्ष संयोग एवं। आचार्य केशवमिश्र, तर्कभाषा, पृ0 सं0–35 चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण–2017

[3] महर्षि कणाद, वैशेषिकसूत्र, सू0 सं0 – 9/1/11 चौखम्भा संस्कृत संस्थान तृतीय संस्करण–2007

[4] आचार्य शंकर मिश्र, वैशेषिकसूत्रोपस्कार, पृ0 सं0 – 481 चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी, तृतीय संस्करण–2007

[5] आचार्य शंकर मिश्र, वैशेषिकसूत्रोपस्कार, पृ0 सं0–480 चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी, तृतीय सं0–2007

***

# बौद्धदर्शने निर्वाणस्वरूपविमर्शः

*रम्बुक्कन अमितानन्द थेरो* *

दृश्यते ज्ञायतेऽनेनेति दर्शनं, ज्ञानसाधनदर्शनं, ज्ञप्तिज्ञनिमेव वा दर्शनं बोधदर्शनं येन तत्त्वविज्ञानं भवति तद्दर्शनमिति फलितार्थः।

सर्वेषां दर्शनानां प्रयोजनं प्रमाणेन प्रमेयस्य प्रमेयत्वं प्रमाय संशयश्रमाऽहार्यादिनिवृत्तिपूर्वकं यथार्थपदार्थस्वाभिमत्सम्पादनमिति। ' प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते।' इति शिष्टोकत्या प्रयोजनमूलकानि निखिलानि दार्शनिकदृष्टानि दर्शनानि, तत्र विपश्चिता सत्सुविपुलगौणप्रयोजनेषु मुख्यं किमिति विजिज्ञासितं भवति।

सर्वेषां मानवमात्रहितससाधकानामार्षनिबन्धानां मुख्यप्रयोजनं पुरुषार्थचतुष्टयम्। तथा हि दर्शनागमानां परमप्रयोजनं मोक्षः शाश्वतस्वरूपत्वाद्, दुःखानुषङ्गित्वशून्यत्वाच्च न स पुनरावर्तते।

**मां हि प्राप्य तु कौन्तेय! दुःखालयमशाश्वतम्।**
**नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।**[1]

अत्र सर्वदर्शनानां परमपुरुषार्थाख्यपरममुख्यप्रयोजनस्वरूप-निःश्रेयसमोक्षमुक्तिकैवल्यनिर्वाणपवर्गपर्याय आत्यन्तिक दुःखध्वंसः शाश्वतसुखानन्दमहामोदमानन्दस्वरूपो वेति विचिन्तनीयः।

तत्र तावद् भारतीयास्तिकनास्तिकोभयदर्शनेषु आत्यन्तिकदुःखनिवृत्तिरूपिणोऽस्य मोक्षस्य स्वरूपविषये महति विप्रतिपत्तिर्विद्यते। केनचिदयं मरणमेव मोक्षः, केनचिद् सच्चिदानन्दावाप्तिरेव मोक्षः। केनचिच्चायं प्रकृतिपुरूषविवेकरूपेणाभिधीयते, केनचिच्चाकृतकत्वाच्छून्मेव मोक्ष इत्येवं बहुविधसमुद्भूतसिद्धान्तजन्यसमाकुलितो मदीयश्चेतो दार्शनिकानां मुक्ते सम्यक् स्वरूपमुपस्यापति।

' ' दुखक्षयः निर्गतं वानं दुःखं यत्रेति बौद्धाः।' ' तत्र बौद्धनये निर्वाणस्य किं स्वरूपमिति विचार्यते। नम निर्गतो वाणः शरीरपरम्परा यतस्तन्निर्वाणं मोक्षः। गतनिमित्ताद् वाणशब्दः स्कन्धोपलक्षकः। निष्क्रान्तो वणाद् निर्वाण इति वा अथवा निरूपसर्गकाद् वाधातोर्गतिगन्धनार्थात् कर्मणि कर्तरि वा निष्ठा तस्य नत्वं **' निर्वाणोऽवाते' '** [2] इति सूत्रेण निपात्यते निर्वाणो भिक्षुरूपशान्त इत्यर्थः प्रदीपवत्।

तत्र भगवता सुगतेन सर्वज्ञेन उषितब्रह्मचर्याणां द्विविधं निर्वाणमुपपर्णितं सोपाधिशेषं निरूपाधिशेषञ्च तत्र निरवशेषस्य अविद्यारागादिकस्य क्लेशगणस्य प्रहाणात् सोपाधिशेषं निर्वाणमिष्यते। तत्र उपधीयतेऽस्मिन्नात्मस्नेह इति उपाधिः। उपधिशब्देन आत्मप्रज्ञप्तिनिमित्तकपञ्चापादानस्कन्धा उच्यन्ते। शिष्यते इति शेषः। उपधिरेव शेषः उपधिशेषः, सह उपधिशेषेण वर्तते इति सोपाधिशेषो निर्वाणम्।

तत्र स्कन्धमात्रकमेव केवलं सत्कायदृष्ट्यादिक्लेशतस्कररहितमोऽवशिष्यते निदृताशेषचैरगणग्राममात्रावस्थानमिव। तत् सोपादिशेषनिर्वाणम्।

यत्र तु स्कन्धपञ्चकमपि नास्ति तन्निरूपधिशेषं निर्वाणम्। निर्गत उपधिशेषो यत इति। निहिताशेष चैरगणस्य ग्राममात्रस्यापि विनाश इव। उक्तञ्च-

**असंलीनेन कायेन वेदनामध्यवासयत्।**
**प्रद्योतस्येव निर्वाणं विमोक्षस्तस्य चेतसः।।**[3]

---

* वैदिकदर्शनविभागः, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसङ्.कायः, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी-221005

तदेवं निरुपाधिशेषं निर्वाणं स्कन्धानां निरोधाल्लभ्यते। एतच्च निर्वाणं क्लेशानां स्कन्धानाञ्च निरोधे सम्भवति। अत्रेदमाशङ्क्यते। यदि सर्वं शून्यम्, तदा-

**यदि शून्यमिदं सर्वमुदयो नास्ति न व्ययः।**
**प्रहाणाद् वा निरोधाद् वा कस्य निर्वाणमिष्यते।।**[4]

इति चेत् न स्वभाववादिनामयं दोषः स्यात्। स्वभावेन व्यवस्थितानां क्लेशानां स्कन्धानाञ्च स्वभावस्यापायित्वाद् निवृत्त्यभावान्निर्वाणानुपपत्तिः। न च शून्यवादिनां दोषः। न हि ते क्लेशनिवृत्तिलक्षणं स्कन्धनिवृत्तिलक्षणं वा निर्वाणमिच्छन्ति येन दोषः समापतेत, किन्तु अनुपलम्भलक्षणमेव। उच्यते हि मध्यमकशास्त्रे-

**अप्रहीणमसम्प्राप्तमनुच्छिन्नशाश्वतम्।**
**अनिरूद्धमनुत्पन्नमेतन्निर्वाणिमुच्यते।।** इति।[5]

ननु निर्वाणे सन्ति क्लेशादयः, न सन्तु, किन्तु निर्वाणात् प्राग् विद्यन्ते ते, तेषां परिक्षयाल्लभ्यते निर्वार्णमति चेत्, न, प्रागपि यदि स्वभाव तस्ते स्युस्तदा तेषां स्वभावतो विद्यमानानां न परिक्षयः कर्तुं शक्येते, स्वभावस्यानिवर्तनात्। तस्मान्निर्वाणाभिलाषिणा नैषा कल्पना युक्ता यत् पूर्वं स्कन्धाः सन्ति। तस्माद् विर्वाणे संसारे वा निःस्वभावाः शून्या एव क्लेशाः इति कल्पना युक्ता।
तदुक्तम्-

**न संसारस्य निर्वाणात् किञ्चिदस्ति विशेषणम्।**
**न निर्वाणस्य संसारात् किञ्चिदस्ति विशेषणम्।।**
**निर्वाणस्य च या कोटिः कोटिः संसरणस्य च।**
**न तयोरन्तरं किञ्चित् सुसूक्ष्ममपि विद्यते।।**[6]

अतो निर्वाणे क्लेशादीनां शून्यत्वादेव न प्रहाणं नापि निरोध इति विज्ञेयम्। तस्माद् निरवशेषपरिकल्पनाक्षस्यमेव निर्वाणम्।
उक्तञ्च आर्यरत्नावल्याम्-

**न चाभावोऽपि निर्वाणं कुत एवास्य भावना।**
**भावाभावपरामर्शक्षयो निर्वाणमुच्यते। इति।**

उक्तञ्च भगवता समाधिराजसूत्रे-

**निर्वृत्तिधर्माण न अस्ति धर्मा**
**ये नेह अस्ति न ते जातु अस्ति।**
**अस्तीति नास्तीति च कल्पनावतामेवं**
**चरन्तान् न दुःखशाम्यति।।**[7]

निर्वृत्ते निरूपाधिशेषे निर्वाणे धर्माणां क्लेशकर्मजन्मलक्षणानां स्कन्धानां वा सर्वथास्तङ्गमाद् अस्तित्त्वं नास्ति। एवञ्च सर्ववादिनामभिमतम्। ये तर्हि धर्मा इह निवृत्तौ न सन्ति प्रदीपोदयाद् अन्धकारोपलब्धरज्जुसर्पादिभयवत्, न ते जातु सन्ति कस्मिंश्चित् संसारकालेऽपि। न हि रज्जुस्तमसि स्वरूपतः सर्पोऽस्ति अनुपलम्माद् व्यवहारे। एवञ्चे निर्वाणे ये धर्मा न सन्ति, ते संसारेऽपि न चेत् स्युः कथं संसारः प्रवर्तत इति।

अतोऽस्ति क्लेशादिरिति वादिनां जैमिनीयकपिलपकणादादीनां नास्तीति वादिनां नास्तिकानामेवं भावस्वभावकल्पनावतां चरतां संसारतां च न दुःखसंसारः शाम्यतीति। अतो निर्वाणे न कस्यचित्प्रहाणं न कस्यचिन्निरोध इति विज्ञेयम्, किन्तु सर्वकल्पनाक्षयरूपमेव निर्वाणम्।

निर्वाणं च न भावरूपं नाभावरूपं नानुभयरूपमिति सर्वथा निर्वाणे चतस्रः कल्पना न सम्भवन्ति। न च संसारनिर्वाणयोः किञ्चिदन्तरमस्तीति। संसारनिर्वाणयोरूभयोरपि प्रकृतिशान्तत्वेनैकरसत्वात्। एवञ्च-

**सर्वोपलम्भोपशमः प्रपञ्चोपशमः शिवः।**
**न क्वचित्कस्यचित्कश्चिद्धर्मो बुद्धेन देशितः।।[8]**

अयं भावः- सर्वेषां प्रपञ्चानां क्लेशस्कन्धादिरूपाणां निमित्तानां य उपशमोऽप्रवृत्तिस्तन्निर्वाणम्। स एव मोक्षः प्रकृत्यैवोपशान्तत्वाच्छिवः। तत्र ज्ञानज्ञेयवाक्काच्यादिनिरवशेषविकल्पजालाप्रवृत्तिरूपोशमः शिवो निर्वाणमिति। अतो न कश्चिद् धर्मो बुद्धेन स्वभावतो देशितः। अत एवोक्तं भगवता-

**अनिर्वाणं हि निर्वाणं लोकनाथेन देशितम्।**
**आकाशेन कुतो ग्रन्थिराकाशेनैव मोचितः।। इति**

अथेदानीं विचार्यते यत्शून्यवादे को बन्धः को मोक्ष इति। यथा ब्रह्माद्वैतवादिनो वदन्ति परमार्थतो न बन्धो न मोक्षः, न चात्मा संसारेण मनागपि संसृज्यते असङ्गत्वात् तस्य नित्यमुक्तत्वाच्छुद्धत्वाच्च। व्यवहारिकावेव बन्धमोक्षौ। अहं बद्ध इत्येवं बुद्धिर्यस्य स तत्त्वज्ञानेन मुच्यते। संसारस्यैव सर्वस्य ब्रह्मनिष्ठात्यभावप्रतियोगित्वाद् मिथ्यात्वात्परमार्थतोऽभावान्न परमार्थतो बन्धो विद्यते। बन्धनाभावे मोक्षोऽपि नास्ति। नित्यमुक्तस्यैव स्वरूपावाप्तिर्मोक्षः।

तथैव शून्याद्वैतवादिनो माध्यमिका अपि वदन्ति न परमार्थनो बन्धः, बद्धः, मोक्षो मुक्तो वा कश्चिदस्ति। परमार्थतः सर्वस्य शून्यत्वावगमात्। यथोक्तम्-

**बद्धो न बध्यते तावद् अबद्धो नैव बध्यते।**
**बद्धावद्धविनिर्मुक्तो बध्यमानो न बध्यते।।[9]**

तथैव-

**बद्धो न मुच्यते तावद् अबद्धो नैव मुच्यते।**
**स्यातां बद्धे मुच्यमाने युगपद्बन्धमोक्षणे।।[10]**

ननु तर्हि किमर्थं भगवता निर्वाणाय उपदेशयामासः कृतः किमर्थानि आर्यसत्यादीन्युपदिष्टानीति चेत्, अत्रोच्यते, परमार्थत एव बन्धमोक्षौ सर्वशून्यात्मकत्वाद् अनुपपन्नौ। संवृतिसिद्धौ तु बन्धमोक्षौ लोके व्यह्रियमाणौ न निराक्रियते। तस्माद् यो ह्येव निःस्वभावेषु प्रतीत्यसमुत्पन्नेषु सर्वभावेषु मरूमारोगमाद्अहं ममेत्यभिनिविष्टः सत्कार्यदृष्टिं करोति, तथा कदा नु मे निर्वाणो भविष्यति, कदा न्वहं निरूपादानो निर्वास्यमीत्येवं धीमान् तदर्थमेवक्तोपदेशः। न च तादृश अहङ्कारममकारभावाभिनिवेशबुद्धिः क्वचिच्छान्तिमेति ऋते तत्परित्यागादिति निर्वाणं तदर्थमेव।

आचार्यचन्द्रकीर्तिनाप्युक्तम्-

अत एव आगमाद् असद्विपर्यासकल्पनामात्रलताबन्धनविच्छेदो विमोक्षो निर्वाणमित्युच्यते। स्वप्नोपलब्धदहनज्वालानिर्वाणवत् तदनिलसलिलैरिति।' ' ।[11]

तथोक्तञ्च-

**अनिर्वाण हि निर्वाणं लोकनाथेन देशितम्।**
**आकाशेन कृतो ग्रन्थिराकाशेनैव मोचितः।।**

तस्मात् परमार्थतो न कश्चिद् बद्धो मुक्तो बध्यते मुच्यते वा आत्मात्मीयस्य सर्वस्य परमार्थतः शून्यत्वादिति।

---

[1] गीता 8/15

[2] पा0सू0 8/2/50

[3] थेरगाथा- 9/6

[4] मा0का0 25/2

[5] तत्रैव 25/3

[6] म0शा0 25/19-20

[7] समाधिराजसूत्रे- 9/26

[8] मा0का0 25/24

[9] प्रसन्नपदा, पृ0 128

[10] मा0का0 17/8

[11] प्रसन्नपदा, पृ0 131

***

# पूर्वाग्रह एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया

*डॉ. संजय तिवारी* *

पूर्वाग्रह के अंतर्गत अनेक रूढियुक्तियां, उपाख्यान तथा पौराणिक कथाएं सम्मिलित रहती हैं। हम पूर्वाग्रह में प्रायः समूह.चिन्हों अथवा प्रतीकों द्वारा समूहों तथा व्यक्तियों का वर्गीकरण करके उन्हें कुछ मन.गढ़न्त लक्षण प्रदान कर देते हैं। इसके पश्चात् उन समूहों के प्रत्येक सदस्यों को उन्हीं काल्पनिक लक्षणों के दृष्टिकोण से देखने लगते हैं। वैश्य जाति का प्रत्येक व्यक्ति हमको कृपण दिखाई देने लगता है तथा प्रत्येक दूसरे धर्म का व्यक्ति एक अधर्मी। पूर्वाग्रह एक झूठी धारण होती है। पूर्वाग्रह के कारण हम जिन लक्षणों को बाह्य समूहों के सदस्यों में देखते हैं वास्तव में हमारे पास उनका कोई तार्किक तथा ठोस प्रमाण नहीं होता। हम उनको केवल कुछ काल्पनिक उपाख्यानों, पौराणिक कथाओं तथा विचारधराओं द्वारा ही प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं।

पूर्वाग्रह पारस्परिक विरोधी समूहों को एक दूसरे से पृथक् करता है। दूसरे शब्दों में हम पूर्वाग्रह को अंतः समूह तथा बाह्य समूह के मध्य विद्यमान मूल.भूत संघर्ष की अभिव्यक्ति कह सकते हैं। यह संघर्ष राष्ट्रों जातियों, वर्गों, प्रजातियों, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक अथवा अन्य किसी भी प्रकार के समूहों के मध्य हो सकता है। इन विभिन्न प्रकार के समूहों के मध्य विद्यमान मूल विरोध तथा संघर्षों के फलस्वरूप ही समाज में उनकी तथा उनके सदस्यों की स्थिति निर्धारित होती है।

पूर्वाग्रह शब्द के इतिहास का अवलोकन करने पर भी ज्ञात होता है कि आरम्भ में इसका संबंध स्थिति निर्धारण से ही था। पूर्वाग्रह शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के शब्द से हुई है। जिसका अर्थ पूर्व निर्धारण है। प्राचीन रोम के न्यायालयों में इस शब्द का प्रयोग वादी तथा प्रतिवादी की सामाजिक स्थिति निर्धारित करने के हेतु की गई न्यायिक परीक्षा के लिए किया जाता था। पूर्वाग्रह के अन्दर स्थितिनिर्धारण का यह कार्य आज तक विद्यमान है। उदाहरणतया पिछले महायुद्ध के काल में नाजी जर्मनी के न्यायालयों में यहूदियों पर विवाह, सम्पत्ति अधिकार, व्यवसाय, शिक्षा आदि के विषय में अनेक प्रतिबन्ध लगे हुए थे। इन प्रतिबन्धों के फलस्वरूप न्यायालयों में यहूदियों के प्रति पूर्वाग्रह होता था क्योंकि उनकी सामाजिक स्थिति अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा नीची समझी जाती थी। आरम्भ में अमरीका में भी हब्शियों के साथ ऐसा ही पूर्वाग्रह किया जाता था। यद्यपि आधुनिक प्रजातंत्रीय देशों के कानूनों में किसी वर्ग के व्यक्तियों के साथ ऐसे किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह की व्यवस्था नहीं है, परन्तु फिर भी प्रायः जनमत किसी विशेष वर्ग के विरुद्ध होने के कारण उसके साथ किसी न किसी प्रकार का पूर्वाग्रह तथा अन्याय हो ही जाता है। गांधी जी की हत्या के तुरन्त पश्चात् राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सदस्यों के साथ इसी प्रकार का पूर्वाग्रह हुआ था। इस जन–पवाद के कारण कि गांधी जी की हत्या इस संस्था के किसी सदस्य ने की है जनमत भयंकर रूप से उनका विरोधी हो गया और तब सरकार को उनके विरुद्ध कार्यवाही करनी पड़ी।यद्यपि इस बात का किसी के पास कोई भी प्रमाण नहीं था कि गांधी जी की हत्या में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के किसी भी सदस्य का हाथ है।

स्थिति निर्धारित करना सामाजिक पूर्वाग्रह का प्रमुख कार्य है। सामाजिक पूर्वाग्रह धार्मिक, राजनैतिक आदि किसी भी मनोवृत्ति द्वारा किसी व्यक्ति अथवा समूह की स्थित निर्धारित कर सकते है। उन समाजों में जिनमें जाति प्रथा अथवाऐसी ही किसी अन्य प्रकार की संस्था द्वारा व्यक्तियों को विभिन्न वर्गों में विभाजित करके उन्हें पृथक् किया जाता है सामाजिक पूर्वाग्रह की मात्रा न्यूनतम होती है। सामाजिक पूर्वाग्रह का सबसे स्पष्ट तथा तीव्र रूप हमको उन समाजों में दिखाई देता है जिनमें विभिन्न वर्गों की सामाजिक गतिशीलता अधिक होती है।ऐसे समाजों में विभिन्न वर्गों के बीच संघर्ष अधिक दिखाई देता है। ऐसे समाजों में निम्न वर्ग उच्च वर्ग की शक्ति तथा अधिकारों को छीनने का सदैव प्रयत्न करता रहता है तथा उच्च वर्गों को सदैव निम्न वर्गों का भय बना रहता है। वास्तव में तीव्र

* एम.ए., एल-एल.बी., पी-एच.डी., एसो. प्रो. एवं विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, डी.ए.वी. पी.जी., कालेज, लखनऊ

संघर्ष की स्थिति में पूर्वाग्रह सबसे अधिक दिखाई देता है।कुछ सामाजिक पूर्वाग्रहों की जड़ें समाज में इतनी गहरी तथा स्थायी होती हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि वे मानव प्रकृति के अन्दर ही निहित हैं। उदाहरणतयाश्वेत अमरीकियों के अन्दर हब्शियों तथा यहूदियों के प्रति इतनी व्यापक घृणा पाई जाती है कि उनके इस पूर्वाग्रह के पैतृक अथवा जन्मजात होने का भ्रम होने लगता है। पूर्वाग्रह के माध्यम से लोग श्रेष्ठता की भावनाए असफलता के लिए आधार और हिंसा और शत्रुता के लिए बहाना ढूंढ़ निकालते हैं।

**पूर्वाग्रह निर्माण की प्रक्रिया**

पूर्वाग्रह वास्तव में एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। अतः इसके निर्माण में कुछ मनोवैज्ञानिक तत्त्व क्रियाशील होते हैं जो इस प्रकार हैं –

**रूढ़ियुक्तियां–**पूर्वाग्रह विषय से कोई वास्तविक संबंध नहीं रखता। दूसरे शब्दों में किसी भी एक विषय से सम्बन्धित वास्तविकताएं पूर्वाग्रह के निर्माण में महत्त्व नहीं रखतीं और स्पष्ट रूप में उस विषय की वास्तविकताओं को ध्यान मे न रखत हुए ही पूर्वाग्रह का विकास होता है। इसीलिए यह मनुष्य या समूह की कल्पनाओं पर आधारित होता है। ऐसा भी हो सकता है कि पूर्वाग्रह को आकर्षक बनाने के लिए कुछ रूढ़ियुक्तियों को इस प्रकार विकृत ढंग से प्रस्तुत किया जाए कि एक बाह्य समूह के प्रति अंतःसमूह के ह्रदय में अवहेलनाए घृणा आदि की भावनाएं पनप जाए।

**असामान्यता–**पूर्वाग्रह के निर्माण में दूसरा मनोवैज्ञानिक तत्त्व असामान्यता है। इसका अर्थ यह है कि पूर्वाग्रह सामाजिक जीवन के स्वाभाविक पक्ष का प्रतिनिधित्व नहीं करता। मनुष्य दूसरे मनुष्यों से प्रेम, सहयोग और सहानुभूति का संबंध रक्खेगा, यही स्वाभाविक है परन्तु मनुष्य अन्य मनुष्यों को नीच समझे, उनसेघृणा करे, उनके साथ अत्याचार करे, यह अस्वाभाविक मनोभाव का ही परिचायक है। यह अस्वाभाविकता उस समय पनपती है, जब किसी एक समूह के सदस्य भी मानसिक रूप में असामान्य होते हैं।

**जटिल परिस्थिति–**कभी.कभी ऐसा भी देखा जाता है कि सामाजिक जीवन से सम्बन्धित कुछ जटिल परिस्थितियों के कारण लोग अपने को एक विशिष्ट मानसिक स्थिति में पाते हैं। यह विशिष्ट मानसिक स्थिति पूर्वाग्रह को पनपाती है। उदाहरणार्थए अनाज की कमी होने पर जब व्यक्तियों को अपना पेट भरने तक के लिए अनाज नहीं मिल पाता तो वे अत्यधिक मानसिक उलझन मेंफंस जाते हैं और मन में सरकार के प्रति एक विशेष पूर्वाग्रहपूर्ण मनोभाव को पालने लगते और सरकार को ही अनाज की कमी के लिए दोषी ठहराने लगते हैं।

**विफलता की भावना–**पूर्वाग्रह के विकास में एक और मनोवैज्ञानिक कारक यह होता है कि कभी.कभी हताश व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की तुष्टि पूर्वाग्रह के द्वारा करता है। व्यक्ति की कुछ स्वाभाविक आवश्यकताएं होती हैं।यदि इनमें से किसी भी आवश्यकता की तुष्टि निरन्तर नहीं होती तो उससे व्यक्ति में निराशा का जन्म होता है, और उसमें कुछ विरोध प्रतिक्रियाएं पनप जाती हैं, जो कालान्तर में पूर्वाग्रह का एक आवयश्क अंग बन जाती हैं। उदाहरणार्थ– पूंजीपति श्रमिकों का आर्थिक शोषण करते हैं, जिसके फलस्वरूप श्रमिक अपनी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते हैं। यह आपूर्ति श्रमिकों में विफलता का भाव जगा और बढ़ा देती है। फल यह होता है कि पूंजीपतियों के प्रति अनादर, घृणा आदि से भरपूर पूर्वाग्रहपूर्ण मनोवृत्ति पनप जाती है।

**सांस्कृतिक निषेध –**सांस्कृतिक नियमों तथा निषेधों का प्रभाव हर व्यक्ति पर ही पड़ता है। कोई भी व्यक्ति अपने को इन नियमों तथा निषेधों से पूर्णतया विमुक्त नहीं कर सकता। ये नियम या निषेध किसी भी समूह या समूह के सदस्यों के विरुद्ध हो सकते हैं। ऐसी परिस्थितियों में पूर्वाग्रह का पनप जाना स्वाभाविक ही होता है। कुछ सांस्कृतिक निषेध तो जानबूझ कर दूसरे समूह के विरुद्ध पनपाया जाता है।

**श्रेष्ठता की भावना और समाज से अनुकूलन करने की इच्छा–**ऐसा भी हो सकता है कि किसी कारणवश एक समूह अपने को दूसरे समूह से श्रेष्ठ मान बैठे। इस श्रेष्ठता की धारणा का आधार तार्किक है या नहीं, यह दूसरा प्रश्न है परन्तु यदि इस प्रकार की भावना एक बार पनप जाती है तो

समूह के सदस्य उसकी रक्षा निरन्तर करना चाहते हैं और इसलिए अन्य समूह के लोगों को निम्न कोटि का मानने लगते हैं। इसी के आधार पर पूर्वाग्रह पनप जाता है। उदाहरणार्थ–श्वेत प्रजाति के लोग नीग्रो प्रजाति के लोगों से अपने को श्रेष्ठ मानते हैं। यद्यपि इस धारणा का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, फिर भी इसी धारणा के आधार पर सफेद व काली प्रजातियों के लोगों में पूर्वाग्रह का उग्र रूप देखने को मिलता है। इसी प्रकार समाज के साथ अनुकूलन करने की इच्छा पूर्वाग्रह के विकास में सहायक सिद्ध हो सकती है। प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि वह अपने समाज के रीति. रिवाजों या आदर्श.नियमों के साथ अपना अनुकूलन कर ले ताकि वह एक सफल नागरिक के रूप में अपने को प्रतिष्ठित कर सके। ऐसी परिस्थिति में एक व्यक्ति अपने समूह के रीति.रिवाज आदि को ही नहीं अपितु पूर्वाग्रह को भी अपना लेता है। उसके मन में प्रायः यह एक गलत धारणा पनप जाती है कि उसकी संस्कृतिए प्रथाए, परम्पराए, धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है और उसकी तुलना में दूसरे लोग निम्न कोटि के हैं। यह धारणा ही पूर्वाग्रह का एक दृढ़ आधार बनती है। वास्तव में समाज से व्यक्ति का अनुकूलन तभी सम्भव होता है जबकि अपने समाज के अन्य सदस्यों की भांति वह पूर्वाग्रह करना भी सीख जाए।

**पूर्वाग्रह के स्वरूप**

सामाजिक जीवन में अनुकूल भावना ही नहीं प्रतिकूल भावनाएं भी स्वाभाविक रूप में पाई जाती हैं। समाज में रहते हुए हम कुछ लोगों से प्रेम या स्नेह करते हैं और उसी आधार पर उनके प्रति हमारे हृदय में सहयोग अथवा सहानुभूति के भाव होते हैं। परन्तु इसके विपरीत उसी समाज के कुछ व्यक्तियों या समूहों से हम घृणा करते हैं या अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं। परिणामतः उनके प्रति हमारे मन में कोई कोमल भाव नहीं होता। हम प्रत्येक विषय में उनको अपने समूह से पृथक् मानते हैं हेय समझते हैं तथा उसी के अनुसार अपने व्यवहार में अपने भावों को ढालते हैं। ऐसा करने का कोई तार्किक कारण नहीं होता फिर भी दूसरे समूह या समूहों के प्रति जो संवेगात्मक मनोभाव हमारे अन्दर पनप जाता है उसी के फलस्वरूप हम उनके प्रति विद्वेष घृणा और कभी.कभी अत्याचारपूर्ण व्यवहार करने को तत्पर होते हैं। अंतः समूह व बाह्य समूह के प्रति हमारे इन्हीं मनोभावों तथा व्यवहार.प्रतिमानों को पूर्वाग्रह कहते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पूर्वाग्रह सकारात्मक या अनुकूल भी हो सकता है और नकारात्मक या प्रतिकूल भी। सकारात्मक या अनुकूल इस रूप में कि हम दूसरे समूहों की तुलना में अपने समूह या अंतःसमूह के प्रति कुछ विशेष लगाव रखते हैं और उसे अपनी ओर से सहायता करने को तैयार रहते हैं चाहे हमारा वह काम तार्किक हो अथवान हो। हम यह मान लेते हैं कि हमारा अपना समूह दूसरे किसी भी समूह की तुलना में प्रत्येक दृष्टि से श्रेष्ठ है और इसलिए हमारे सहयोग, सहानुभूति, स्नेह, प्रेम, विशेष रुचि और विशेष व्यवहार का हकदार है। इसके विपरीत किसी बाह्य समूह के प्रति हमारे दिल में नकारात्मक मनोभाव हो सकता है। हम बिना किसी तार्किक औचित्य के पहले से ही इस प्रकार की धारणा बना सकते हैं कि उस बाह्य समूह के सदस्य हमसे हेय हैं,हमारे साथ उठने. बैठने, मेल.मिलाप रखने, वैवाहिक संबंध स्थापित करने या अन्य किसी प्रकार से निकट सामाजिक संबंधों के दायरे में सम्मिलित होने के पूर्णतया अयोग्य हैं। उन्हें हमसे और हमें उनसे सामाजिक दूरी बनाए रखनी चाहिए और हमसे उन्हें किसी भी प्रकार के सहयोग, स्नेह या सहानुभूति की आशा नहीं करनी चाहिए। इसीलिए यह कहा गया है कि अंतःसमूह या बाह्य समूह के प्रति हमारे अनुकूल या प्रतिकूल मनोभावों तथा व्यवहार.प्रतिमानों को ही ''पूर्वाग्रह' कहते हैं।

पूर्वाग्रह को विभिन्न विद्वानों ने अपने.अपने ढंग से परिभाषित किया है। श्री जेम्स ड्रीवरने लिखा है, पूर्वाग्रह एक ऐसी मनोवृत्ति है, जो सामान्यतः संवेगात्मक रंग से रंगी होती है, और जो किन्हीं क्रियाओं, वस्तुओं, व्यक्तियों और सिद्धान्तों के प्रति या तो विद्वेषपूर्ण होती है, या फिर अनुकूल पड़ने वाली होती है। इस परिभाषा से पूर्वाग्रह की कुछ विशेषताओं का पता चलता है। इनमें पहली विशेषता यह है कि पूर्वाग्रह एक मनोवृत्ति होता है पर यह मनोवृत्ति सामान्य इस अर्थ में नहीं होती कि इस पर संवेगों का रंग चढ़ा जाता है। दूसरी बात यह है कि पूर्वाग्रह केवल किसी व्यक्ति या समूह के प्रति ही नहीं अपितु किसी भी क्रिया वस्तु या सिद्धान्त के प्रति भी हो सकता है और अंतिम व तीसरी बात यह

है कि पूर्वाग्रह में मनोवृत्ति किसी भी विषय, वस्तु, व्यक्ति आदि के पक्ष में भी हो सकती है और विपक्ष में भी।

श्री ऑगबर्न का कथन है पूर्वाग्रह जल्दबाजी में किया गयाएक ऐसा निर्णय या मत है जो उपयुक्त परीक्षण के बिना ही अस्तित्व में आ सकता है।इस परिभाषा की कई आधारों पर आलोचना की जा सकती है। ऑगबर्न ने इस बात पर बल दिया है कि पूर्वाग्रह जल्दबाजी में किया गया एक निर्णय है। परन्तु इस मत से सहमत होना हमारे लिए कठिन है। इसका कारण भी स्पष्ट है।पूर्वाग्रह सामान्य रूप से एक ऐसी सामाजिक अवधारणा है जो सामाजिक अंतःक्रिया के दौरान पनपती है। कोई भी पूर्वाग्रह एक ही रात में पनप गया होऐसा कभी सुना नहीं गया। इस कारण यह कहना उचित न होगा कि पूर्वाग्रह जल्दबाजी में किया गया या लिया गया एक निर्णय है। पूर्वाग्रह एक निर्णय हो सकता है पर उस निर्णय तक पहुंचने में समय लगता है और इस दौरान उस निर्णय को सामाजिक मान्यता प्राप्त हो जाती है भले ही निर्णय अतार्किक हो। फिर उस निर्णय को पुष्ट करने के लिए प्रायः पौराणिक कथाओं आदि की भी सहायता ली जाती है।

श्री किम्बाल यंग ने लिखा है, पूर्वाग्रहरूढ़ियुक्तियों, लोकगाथाओं तथा पौराणिक कथाओं के संगठन से बनता है, जिसमें एक व्यक्ति या समग्र रूप में एक समूह का वर्गीकरण करने, उसकी विशेषता ज्ञापित करने तथा परिभाषित करने के लिए समूह.संज्ञा या प्रतीक का प्रयोग किया जाता है।

श्री एवं श्रीमती शेरिफ के अनुसार, समूहपूर्वाग्रह किसी अन्य समूह तथा उनके सदस्यों के प्रति एक समूह.विशेष के सदस्यों की, उनके अपने स्थापित आदर्श नियमों से प्राप्त की जाने वाली नकारात्मक मनोवृत्ति है। इस परिभाषा में इस बात पर बल दिया गया है कि पूर्वाग्रह एक समूह के स्थापित आदर्श.नियमों से बल प्राप्त करके पनपता है। जबएक अंतःसमूह के सदस्य अपने आदर्श.नियमों से प्राप्त नकारात्मक मनोवृत्ति को बाह्य समूह तथा उसके सदस्यों के प्रति प्रकट करते हैं तो उसे पूर्वाग्रह कहते हैं। पूर्वाग्रह की कटुता की मात्रा के आधार पर ही अंतःसमूह और बाह्य समूह के बीच सामाजिक दूरी को नापा जा सकता है। पूर्वाग्रह सामाजिक दूरी का ही द्योतक है। इस प्रकार पूर्वाग्रहों के निर्माण में निम्नलिखित पक्षों का योगदान उल्लेखनीय हैः

**पूर्वाग्रह और बाल्यकाल**– पूर्वाग्रहों का जन्म बाल्यकाल से होना प्रारम्भ हो जाता है। बालक जैसे सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण में रहेगा उसी समाज तथा संस्कृति में प्रचलित पूर्वाग्रह बालक के सामाजीकरण की प्रक्रिया के साथ.साथ उसमें आते चले जाएंगे।पूर्वाग्रह एवं प्रजातीय लक्षण पूर्वाग्रहों का एक प्रमुख आधार प्रजातीय शारीरिक विशेषताएं भी मानी जाती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि मानव जाति में मानवशास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर विभिन्न प्रकार की शारीरिक भिन्नताएं पायी जाती हैं किन्तु इन शारीरिक विभिन्नताओं के आधार पर मानव में ऊंच–नीच, छोटे–बड़े, बुद्धिमान–मूर्ख आदि होने का अंतर अवैज्ञानिक माना गया है। किन्तु इन्हीं आधारों पर विश्व के अनेक समाजों में अनेक प्रकार के पूर्वाग्रह प्रचलित हैं जिनके कारण विश्व में विभिन्न प्रकार के पारस्परिक द्वेष, तनाव, संघर्षएवं युद्ध होते रहते हैं।

**पूर्वाग्रह और सामाजिक परम्पराएं**– पूर्वाग्रहों का एक विशेष आधार समाज की प्रचलित परम्पराएंए विश्वासए रीतिरिवाजए रूढ़ियां एवं जन.अपवाद आदि भी होते हैं।

**पूर्वाग्रह और भय का वातावरण**– जब किसी एक समूह और दूसरे समूह में अथवा दो राष्ट्रों में पारस्परिक भय का वातावरण उत्पन्न हो जाता है तो इस भय के वातावरण के कारण भी अनेक प्रकार के पूर्वाग्रहों को उत्पन्न होने काझूठा.सच्चा आधार मिल जाता है। आजकल इस प्रकार का वातावरण पश्चिमीएशिया में अरब राष्ट्रों एवं यहूदी जाति के बीच बना हुआ है।

**पूर्वाग्रह एवं सामाजिक मानक**–सामाजिक मानकों का पूर्वाग्रहों की रचना एवं उनके स्थायित्व में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य रहता है। जिस समाज में सामाजिक संरचना इस प्रकार की होगी कि एक वर्ग दूसरे वर्ग से ऊंचा माना जाता है तो उस समूह में ऊंच.नीच की भावनाओं को उस समाज के लोगों में बनाए रखने के लिए उसी प्रकार के मानक एवं मूल्य भी निर्धारित हो जाते हैं।

**पूर्वाग्रह के कारण–**

पूर्वाग्रह का कारण प्रजातीय श्रेष्ठता की भावनाए धार्मिक भेदभाव, जातीय ऊंच.नीच की भावनाए भाषा का भेद, राजनैतिक सिद्धान्तों के मामले मे मत.मतान्तर, आर्थिक असमानता आदि कुछ भी हो सकता है। निम्नलिखित विवेचना से इस विषय पर और भी प्रकाश पड़ेगा

- पूर्वाग्रह के पनपने का एक महत्त्वपूर्ण कारण अपने अंतःसमूह के प्रति हमारा विशेष मनोभाव या विचार है। श्री मुज्जे ने लिखा है कि या तो हमें अपने विचार सही मालूम होते हैं या फिर वे हमारे अपने विचार होते ही नहीं। हमारे अंतःसमूह का वह सभी कुछ अच्छा है जो उन्हें स्वीकार करता है वह हमारा मित्र है, पर जो स्वीकार नहीं करता है वह हमारी दया का भी पात्र नहीं है। हम उसे शत्रु मानते हैं और उसके प्रति विशेष प्रतिकूल मनोभाव विकसित कर लेते हैं।
- अशिक्षा व कुसंस्कार के कारण पूर्वाग्रह का विकास सम्भव हो सकता है, क्योंकि इन दोनों कारणों से ही दृष्टिकोण संकुचित हो जाता है।
- धार्मिक रूढ़िवादिता भी पूर्वाग्रह को पनपाती है क्योंकि इसके आधार पर हम अपने ही धर्म को सर्वश्रेष्ठ मान लेते हैं जबकि दूसरे धर्मों के प्रति हमारे ह्रदय में अश्रद्धा, अनादर आदि के भाव होते हैं।
- जातीय या प्रजातीय भेद भी पूर्वाग्रह को पनपाता है, क्योंकि कुछ जातियों या प्रजातियों में श्रेष्ठता की भ्रान्ति पनप जाती है और वे दूसरी जातियों या प्रजातियों के प्रति पूर्वाग्रहपूर्ण व्यवहार करने लगती हैं।
- सामाजिक व आर्थिक असमानता पूर्वाग्रह को पनपाने का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। इन असमानताओं के आधार पर विभिन्न समूहों के बीच सामाजिक दूरी बढ़ती जाती है ओर वे एक. दूसरे को निकट से पहचानने का अवसर नहीं पाते हैं। फलस्वरूप गलत धारणाएं व पूर्वाग्रह पनप जाते हैं।
- सामाजिक प्रथाए नियम तथा निषेध भी पूर्वाग्रह का विकास कर सकते हैं। सामाजिक प्रथा आदि व्यक्ति से एक निश्चित ढंग से व्यवहार करने की आशा करते हैं, पर हो सकता है कि यह व्यवहार दूसरे समूह के अनुकूल न हो। उस अवस्था में पूर्वाग्रह पनप ही जाता है।
- सामाजिक रुचि एवं शिष्टाचार की भावना भी पूर्वाग्रह का विकास कर सकते हैं। यदि हम ऊंचे.स्तर की रुचियां रखते हैं और दूसरे की रुचियों को हेय दृष्टि से देखते हैं तो पूर्वाग्रह का पनपना स्वाभाविक है। इसी प्रकार वास्तविक अथवा काल्पनिक व्यवहार की भी श्रेष्ठता का विकास भी पूर्वाग्रह की वृद्धि करता है। यदि शहर के लोग गांव वालों को गंवार मानें और अपने को उनसे अधिक सुंसस्कृत तथा सुरुचिपूर्ण तो पूर्वाग्रहों का विकास अवश्य ही होगा। शहरी लोगों का व्यवहार ग्रामीणों के प्रति पूर्वाग्रहपूर्ण हो जाएगा।
- सामाजिक रूचि व्यवहार या शिष्टाचार की भावना भी पूर्वाग्रह में वृद्धि करती है। कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो ऊंचे स्तर की रुचियां रखतेहैं और दूसरे की रूचियों को हेय दृष्टि से देखते हैं। इसी प्रकार कुछ वास्तविक व काल्पनिक व्यवहार भी श्रेष्ठता की भावना को पनपा सकता है। जैसे शहर के लोग गांव वालों को गंवार कहते हैं और अपने को उनसे अधिक सुरूचिपूर्ण मानते हैं। इसी आधार पर उनका व्यवहार गांव वालों के प्रति पूर्वाग्रहपूर्ण हो जाता है।

**पूर्वाग्रह के परिणाम**

पूर्वाग्रह को कोई स्वस्थ सामाजिक व्यवहार नहीं माना जा सकता। व्यक्तिगत और सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सभी क्षेत्रों में पूर्वाग्रह की प्रवृत्ति का विकास अनेक दृष्टियों से हानिकारक है। पूर्वाग्रह वैयक्तिक महानता के मार्ग में एक बड़ा कांटा है। इससे व्यक्तित्व का निखार नहीं हो पाता। पूर्वाग्रह व्यक्तिगत संबंधों में कटुता उत्पन्न कर देते हैं और सामाजिक विघटन का एक प्रमुख कारण बन जाते हैं। अतः स्वाभाविक रूप से इनसे राष्ट्रीय कल्याण को हानि पहुंचती है। पूर्वाग्रहों के फलस्वरूप सामाजिक एकता और संगठन का विकास नहीं हो पाता, मैत्री पूर्ण सामाजिक संबंध नहीं

पनप पाते, सम्पूर्ण समाज खण्डों में विभाजित हो जाता है और सामाजिक समूह तथा उनके सदस्य एक.दूसरे के प्रतिघृणा, द्वेष आदि के शिकार बन जाते हैं। जिस समाज के सदस्यों में पूर्वाग्रह जितने अधिक और जितने प्रबल होंगे वह समाज सच्ची सभ्यता से उतना ही दूर होगा और उस समाज में मानव.मूल्य उतने ही कम होंगे या केवल प्रदर्शनात्मक होंगे। पूर्वाग्रहों के कारण आर्थिक प्रगति के मार्ग में भी बाधाएं उपस्थित होंगी। श्रमिकों और पूंजीपतियों में एक दूसरे के प्रति जो पूर्व.धारणाएं जड़ जमाएं हुए हैं, उनसे लगभग प्रत्येक देश में औद्योगिक अशान्ति का जन्म होता है, मजदूर–मालिक संघर्ष होते हैं और फलस्वरूप समाज में कटुता तथा मनोमालिन्य के क्षेत्र का विस्तार होता है। पूर्वाग्रहों से ग्रस्त सदस्यों के बीच मधुर संबंधों का विकास एक कठिन समस्या है। न केवल राष्ट्रीय क्षेत्र में बल्कि अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी पूर्वाग्रह गम्भीररूप से घातक है। इनसे राष्ट्रों के बीच तनावपूर्ण संबंध पनपते हैं। जब अफ्रीका के गोरे वहां के अश्वेत लोगों के प्रति पूर्वाग्रह के शिकार बनकर अनाचार करते हैं तो स्वाभाविक है कि भारत में तथा अन्य सभ्य राष्ट्रों में इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। पूर्वाग्रह का प्रभाव उन लोगों पर विशेष रूप से पड़ता है जो कि अल्पसंख्यक समूह के होते हैं। ऐसे लोग इस बीमारी के शिकार बड़ी आसानी से हो जाते हैं जब अल्पसंख्यक स्वयं को राष्ट्र का अभिन्न.अंग नहीं समझ पाते तोराष्ट्रीय प्रगति पर आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है। धर्म पर आधारित पूर्वाग्रहों के कारण कितने धार्मिक और साम्प्रदायिक दंगे होते रहते हैं। यह भारतीयों के लिए कोई अनजानी बात नहीं है। इंग्लैण्ड में भी प्रोटेस्टेन्ट और कैथोलिक सम्प्रदायों के संघर्ष के मूल में पूर्वाग्रहों ने कितनी जबरदस्त भूमिका निभाई है यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

पूर्वाग्रह एक सामाजिक व्यवहार है, इस कारण इसका प्रभाव भी सम्पूर्ण सामाजिक जीवन पर ही पड़ता है। इसके कारण केवल व्यक्तिगत संबंध ही नष्ट नहीं होता, बल्कि यह सामाजिक विघटन का भी एक कारण बन जाता है। इस दृष्टिकोणों से पूर्वाग्रह राष्ट्रीय कल्याण के लिय हानिकारक सिद्ध होता है।पूर्वाग्रह के आधार पर सम्पूर्ण समाज कुछ खण्डों में विभाजित हो जाता है और प्रत्येक समूह के सदस्यों के हृदय में दूसरे समूह के प्रति घृणा, द्वेष, अश्रद्धा आदि के भाव होते हैं। इसके फलस्वरूप सामाजिक एकता व संगठन पनप नहीं पाता और मित्रतापूर्ण सामाजिक संबंध दूर का सपना बन जाता है।पूर्वाग्रह के कारण देश के उद्योग.धन्धों के विकास या आर्थिक उन्नति के पथ में बाधाएं उत्पन्न हो सकती हैं। पूर्वाग्रह के कारण ही जब उत्पादन के दो मुख्य कारक.श्रमिक और पूंजीपति वर्ग एक.दूसरे से दूर हो जाते हैं तो आर्थिक प्रगति रुक जाती है।पूर्वाग्रह प्रजातंत्र के स्वस्थ विकास के पथ की एक बहुत बड़ी बाधा है। इसका प्रभाव विशेष रूप से उन लोगों पर पड़ता है जो अल्पसंख्यक समूह के होते हैं क्योंकि इस बीमारी के शिकार वे ही सबसे पहले होते हैं। इसका एक स्वाभाविक प्रभाव राष्ट्रीय प्रगति पर भी पड़ता है क्योंकि अल्पसंख्यक वर्ग के सदस्य अपने को राष्ट्र का एक अभिन्न अंग नहीं मान पाते।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि सामाजिक या राष्ट्रीय प्रगति व जनकल्याण के लिए पूर्वाग्रह को दूर करने की आवश्यकता वास्तव में है। पर इसके लिए यह जरूरी है कि शिक्षा के आधार पर लोगों के हृदय से समस्त संकीर्ण मनोभावों व अन्धविश्वासों को दूर कर दिया जाए। साथ ही यह भी जरूरी है कि विभिन्न जातियों, प्रजातियों के बीच विवाह.संबंध स्थापित करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया जाए। इससे आपसी संबंधों के बीच की कटुता कम होगी। इसक अतिरिक्त धार्मिक कुसंस्कारों व रूढिवादिताओं से लोगों कोविमुक्त किया जाऐ। स्वस्थ जनमत के निर्माण के द्वारा भी प्रजातीय श्रेष्ठता की धारणा को दूर करने की आवश्यकता है। इसके लिए प्रजातियों के संबंध में लोगों को वैज्ञानिक ज्ञान करने की अपेक्षा है। पूर्वाग्रह समाज के लिए घातक है और इसीलिए इससे दूर रहना ही उचित है।

निष्कर्ष रूप में पूर्वाग्रह एक ऐसी धारणा है जिसके प्रत्येक रूप को हतोत्साहित करना ही श्रेयस्कर है। उदार शिक्षा के प्रसार, मानव.मूल्यों के प्रति आस्था के विकास, प्रेम और अहिंसा के बल पर हृदय.परिवर्तन के प्रयत्न संकीर्ण मनोभावों और अन्धविश्वासों पर कुठाराघात आदि द्वारा पूर्वाग्रहों को दूर करने अथवा अधिकाधिक शिथिल एवं निष्प्रभावी बनाने में सफलता मिल सकती है इसमें सन्देह नहीं

है। अभिप्राय यह है कि कटुता के क्षेत्र जितने अधिक कम किए जाएंगे पूर्वाग्रहों से हम उतना ही अधिक छुटकारा पा सकेंगे। चूंकि पूर्वाग्रह एक सामाजिक व्यवहार है और समाज के सदस्यों में किसी न किसी मात्रा तथा किसी न किसी रूप में इसका बना रहना स्वभाविक है अतः इन्हें हम समूल तो नष्ट नहीं कर सकते लेकिन इनको बड़ी सीमा तक मिटाने का प्रयत्न अवश्य कर सकते हैं।

**संदर्भ :**

G.W. Allport, The Nature Of Prejudice, ISBN: 78-0201001792, Basic Books, 1979.
Richard Gross, The Psychology of Prejudice, ISBN 9780367534639, Routledge, 2020.
Todd D, Nelson, The Psychology of Prejudice, ISBN: 978-0205402250, Pearson, 2005.
Bagby, E. The psychology of personality: An analysis of common emotional disorders. New York: Holt., 1928.
अरुण कुमार सिंह व आशीष कुमार सिंह, व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, आईएसबीएन:978-8120821996, MLBD, 2017.

ओमदत्तशर्मा, आधारभूत मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें, राजीव प्रकाशन मेरठ, वर्ष 2005,

लाभ सिंहएवं गोविन्दतिवारी, असमान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,वर्ष 2001,

***

# बाल अपराध के सामाजिक एवं आर्थिक कारण

*डॉ. छोटेलाल बाजपेयी* *

संसार में कोई समाज विरोधी अथवा अवैधानिक व्यवहार जब प्रौढ़ व्यक्ति द्वारा किया जाता है तो वह अपराध कहलाता है, किन्तु जब वहीं व्यवहार निर्धारित आयु से कम व्यक्ति द्वारा किया जाता है तो वह बाल अपराध कहलाता है। बर्ट के अनुसार, उस बालक को बाल अपराधी कहते हैं जिसकी समाज विरोधी प्रवृत्तियां इतनी गंभीर हो जाती हैं कि वह उसके प्रति सरकारी कार्यवाही आवश्यक हो जाती है। बाल अपराध के अंतर्गत वे सभी आचरण आ जाते हैं जिनके लिए प्रौढ़ व्यक्तियों को दंड का भागी होना पड़ता है यथा, चोरी, बलात्कार, हत्या, आत्महत्या, किसी को चोट पहुंचाना, दूसरों की सम्पत्ति नष्ट करना आदि। इनके अतिरिक्त वे सभी समाज विरोधी तथा अनुपयुक्त व्यवहार भी बाल अपराध में सम्मिलित हैं जो साधारणतया बालकों द्वारा किए जाते हैं यथा, घर अथवा विद्यालय में बिना आज्ञा के भागना, माता–पिता की अवज्ञा, झूठ बोलना, अवांछनीय कामुक व्यवहार आदि। साधारणतया किशोरावस्था तक के अपराधों को बाल अपराध के अंतर्गत माना जाता है, किन्तु किशोरावस्था की सीमा भी सभी देशों में एक–सी नहीं है। अतः बालक अपराध की आयु सीमा की भिन्न–भिन्न देशों में अलग–अलग है। कहीं यह आयु सीमा 16 वर्ष है, कहीं 18 वर्ष तो कहीं 21 वर्ष। कानून की दृष्टि से आयु सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती, क्योंकि विकास की गति सभी बालकों में एक–सी नहीं होती। संभव है, जिस बालक की वर्षायु 15 वर्ष है उसकी मानसिक आयु 12 वर्ष ही होगी। दूसरी ओर 9 वर्ष के बालक की मानसिक आयु भी 12 वर्ष हो सकती है। संवेगात्मक परिपक्वता में भी बाल अपराध एक–दूसरे से भिन्न होते हैं। बर्ट ने 5 वर्ष से 18 वर्ष की अवस्था के बालकों के अपराध को बाल अपराध माना है। भारत में 1897 ई. में रिफारमेटरी स्कूल्स ऐक्ट बना था उसमें 15 वर्ष की आयु के नीचे के बालकों को बाल अपराधी कहा गया था।

**बाल अपराध के कारण**

बीसवीं शताब्दी में बाल अपराध के कारणों को समझने तथा उनका निराकरण करने के लिए भिन्न–भिन्न देशों में अनेक प्रयास हुए हैं। भिन्न–भिन्न विद्वानों ने अपराध के अनेक कारण बताए हैं। किसी ने वंशानुक्रम पर विशेष बल दिया है तो किसी ने वातावरण पर। किसी ने मनोवैज्ञानिक कारणों को अपराध के लिए उत्तरदायी ठहराया है तो किसी ने सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक तत्त्वों को अपराध का मूल कारण बताया हैं दूसरी और मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि, मानसिक योग्यता तथा मानसिक स्वास्थ्य पर विशेष बल दिया है। विभिन्न विद्वानों ने अपराध के कारणों का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया है। इनमें से बर्ट द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण पर्याप्त व्यापक है।

बर्ट ने निम्नांकित दशाओं को अपराध के लिए उत्तरदायी ठहराया हैः

**वंशानुक्रम से संबंधित दशाएं**

- शारीरिक
- बौद्धिक
- स्वभाव संबंधी (मानसिक रुग्णता)
- स्वभाव संबंधी (नैतिक)

**शारीरिक दशाएं**

- विकासात्मक
- शारीरिक रोग तथा दोष

**वातावरण से संबंधित दशाएं**

---

* एसो. प्रोफेसर, बी.एस.एन.वी. पी.जी. कालेज,लखनऊ

- गृह परिस्थितियां – गरीबी, दोषपूर्ण पारिवारिक संबंध, दोषपूर्ण पारिवारिक अनुशासन, दोषपूर्ण घर का वातावरण
- गृह के बाहर की परिस्थितियां

**मनोवैज्ञानिक दशाएं**

- जन्मजात – विशेष प्रवृत्तियां, सामान्य संवेगशीलता
- अर्जित – रुचियां आदि, भाव–ग्रंथियां आदि।

वंशानुक्रम तथा शारीरिक दोष अथवा अस्वस्थता अपराध के केवल अप्रत्यक्ष तथा आंशिक कारण होते हैं। अतः अपराधी मनोवृत्ति को उत्पन्न करने में इनका योगदान उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना सामाजिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक कारणों का है। वंशानुक्रम तथा शारीरिक कारणों के अतिरिक्त बर्ट के वर्गीकरण में अपराध के जो शेष कारण बतलाए गए हैं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन कारणों की निम्नांकित तीन प्रमुख वर्गों में विभक्त किया जा सकता है

- सामाजिक
- आर्थिक
- मनोवैज्ञानिक

यहां केवल सामाजिक एवं आर्थिक कारकों का उल्लेख किया गया है।

**बाल अपराध के सामाजिक कारण**

बाल अपराध के लिए उत्तरदायी सामाजिक परिस्थितियों को दो प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है

- पारिवारिक परिस्थितियां
- परिवार के बाहर की परिस्थितियां

**पारिवारिक परिस्थितियां**

परिवार एक आधारभूत सामाजिक संस्था है। इसे जीवन की पहली पाठशाला कहा जाता है। यही बालक पहली बार जीवन के आदर्शों एवं मान्यताओं के प्रति अपना दृष्टिकोण बनाता है। यदि पारिवारिक परिस्थितियां अनुकूल रहीं तो बालकएक स्वस्थ एवं कुशल नागरिक के रूप में विकसित होता है, किन्तु यदि ये प्रतिकूल हुई तो बच्चे का व्यवहार असामान्य हो जाता है तथा वह अपराधी मनोवृत्ति अपना लेता है। निम्नांकित पारिवारिक परिस्थितियां अपराधी मनोवृत्ति को जन्म देती हैं

**भग्न परिवार**

अपराधी बालकों की पारिवारिक परिस्थितियों का पता लगाने पर यह पाया गया है कि बहुधा उसके परिवार में एकता तथा संगठन का अभाव रहता है। एक स्वस्थ तथा सामान्य परिवार में माता–पिता तथा सदस्यों मेंएकता, संगठन तथा परस्पर स्नेह और सहयोग का भाव रहता है। भग्न परिवारों में परिस्थितियां सर्वथा विपरीत होती हैं। बहुधा देखा गया है कि अपराधी बालकों में से अधिकांश के माता–पिता दोनों अथवा दोनों में से किसी एक का बचपन में ही स्वर्गवास हो चुका रहता है। ऐसे बालकों को अक्सर अपने चाचा, मामा अथवा किसी अन्य रिश्तेदार के घर रहना पड़ता है। बहुत से ऐसे अपराधी बालक होते हैं जिनके घर में सौतेली माता अथवा सौतेले पिता होते हैं। इन परिस्थितियों में बच्चों को माता–पिता का सहज एवं स्वाभाविक स्नेह नहीं मिल पाता। यदि माता–पिता सौतेले हैं तो बालक के प्रति बहुधा दुर्व्यवहार किया जाता है।यदि माता–पिता जीवित हैं तो उनमें परस्पर मतभेद रहता है अथवा उनमें पृथक्करण हो गया है तो भी बालक पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में बालकों की उपेक्षा होती है। माता–पिता में से दोनों अथवा किसी एक ही लगातार दीर्घकालीन अनुपस्थिति भी बालकों के स्वाभाविक एवं स्वस्थ विकास में बाधक होती है। ऐसी स्थिति में बालक नौकरों के संरक्षण में छोड़ दिए जाते हैं जो उन्हें माता–पिता का सहज स्नेह नहीं दे सकते और कभी–कभी उन्हें बुरी आदतें सिखाते हैं।

बर्ट ने 58 प्रतिशत अपराधी बालकों को भग्न परिवारों में पाया है। सदरलैंड ने अनेक अध्ययनों के आधार पर बताया है कि बाल न्यायालयों में जाने वाले अपराधी बालकों में से लगभग 40 प्रतिशत

भग्न परिवारों से आते हैं। बर्ट के अध्ययन में साधारण बालकों की तुलना में अनेक अपराधी बालकों के भग्न परिवारों की संख्या दुगुनी पाई गई है। मेरिल का कथन है कि अपराधी बालकों की आधी संख्या भग्न परिवारों से आती है।

**परिवार का दोषपूर्ण अनुशासन**

परिवार का अनुशासन अत्यन्त कठोर हो सकता है अथवा अत्यन्त कोमल। कभी–कभी ऐसा होता है कि परिवार में अनुशासन नाम की कोई चीज ही नहीं होती।येपरिस्थितियां बालकों के स्वस्थ संवेगात्मक विकास में बाधक होती हैं।यदि माता–पिता का बालक के प्रति अत्यन्त कठोर व्यवहार है और उसे बार–बार दंड दिया जाता है, तो इससे उसमें क्रोध तथा प्रतिरोध की भावना उत्पन्न होगी। इस प्रकार की भावना की अभिव्यक्ति बालक अनेक प्रकार से कर सकता है माता–पिता से गाली–गलौज अथवा मारपीट, घर से भाग निकलना, प्रतिरोध–स्वरूप घर की वस्तुओं अथवा रुपये–पैसे की चोरी करना अथवा माता–पिता की किसी प्रिय वस्तु को तोड़–फोड़ डालना आदि। इस दिशा में लिंग भेद पाया जाता है। बहुधा बालकों को कठोर प्रताड़ना पिता से मिलती है तथा ये इसका खुलकर विरोध भी करते हैं। लड़कियों को प्रताड़ना माता की ओर से मिलती है जिनका प्रत्यक्ष रूप कठोर नहीं होता। किन्तु घर में माताएं, बहुधा लड़कियों को कोसती रहती हैं। प्रतिक्षण डांटना, दोषारोपण करना, अत्याचार–व्यवहार के लिए उनकी आलोचना करना, उनमें विद्वेष की भावना भरता रहता है जिसका विस्फोट किसी भी समय हो सकता है। संभव है, ऐसे लड़के तथा लड़कियां खुलकर अपने माता–पिता का विरोध न कर पाएं फिर भी उनमें प्रतिरोध, घृणा तथा विरोध की भावना जड़ जमा लेती है जिसकी अभिव्यक्ति वे विद्यालय में शिक्षकों के प्रति तथा समाज में अधिकारियों के प्रति करते हैं। ये बहुधा विद्रोही हो जाते हैं। बर्ट ने अपने अध्ययन में 10 प्रतिशत अपराधी बालकों के परिवार में कठोर अनुशासन पाया।

दूसरी ओर कुछ परिवारों में अनुशासन इतना शिथिल रहता है कि बालक सिर चढ़ जाते हैं। वृद्धावस्था, शारीरिक रोग तथा दोष, मानसिक दुर्बलता अथवा अज्ञानता आदि के कारण माता–पिता अपने बालकों पर उचित नियंत्रण नहीं रख पाते। उन गरीब परिवारों में जहां निर्धनता के कारण माता रोगी तथा दुर्बल है, स्थान तथा पैसे की कमी है, परिवार बड़ा है, कार्य अधिक है वह खीझ उठती है और उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। बच्चे इस स्थिति का लाभ उठाकर उसे चिढ़ाने लगते हैं तथा इस प्रकार उद्दण्ड, शरारती एवं अवज्ञापूर्ण हो जाते हैं। इस प्रकार का पारिवारिक अनुशासन बर्ट के अध्ययन में 25 प्रतिशत अपराधी बालकों के संबंध में मिलता है।

अनुशासन की दृष्टि से वह स्थिति और भी भयंकर होती है जब माता–पिताएक समय तो बालक के प्रति अत्यन्त कठोर व्यवहार करते हैं, किन्तु दूसरे समय अत्यन्त कोमल। उनके व्यवहार की अस्थिरता तथा असंगति का बालक पर बुरा प्रभाव पड़ता है और वह समझ नहीं पाता कि कैसे व्यवहार करे। ऐसी स्थिति उसके व्यवहार को असामान्य बना देती हैं यदि परिवार में किसी प्रकार का अनुशासन है ही नहीं, तो वह स्थिति सबसे अधिक भयंकर होती है, क्योंकि ऐसी दशा में बालक किसी भी प्रकार का व्यवहार कर सकता है तथा कोई भी आदत सीख सकता है। ऐसे बालक उपेक्षित होते हैं तथा उनके अपराधी हो जाने की अधिक संभावना होती है।

**परिवार का दूषित वातावरण**

परिवार के वातावरण का बालकों के संवेगात्मक तथा नैतिक विकास पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जिन परिवारों का वातावरण दूषित होता है उनके बालकों के अपराधी मनोवृत्ति अपनाने की अधिक संभावना होती है। बर्ट ने अपने अध्ययन में अपराधी बालकों के परिवार में साधारण बालकों के परिवारों की अपेक्षा मद्यपान तीन गुना अधिक पाया है। जिन परिवारों में माता–पिता अथवा परिवार के अन्य सदस्य मद्यपान करते हैं उनमें एक ऐसा वातावरण उत्पन्न हो जाता है जिसका बालकों के कोमल मन तथा चरित्र का बुरा प्रभाव पड़ता है। मद्यपान उत्तेजित अवस्था में होता है, इस स्थिति में व्यक्ति अवांछनीय भाषा का व्यवहार करता है तथा उसका आचरण अव्यवस्थित, हिंसात्मक तथा अनुपयुक्त होता है। इससे धन का अपव्यय होता है, परिवार का अनुशासन बिगड़ता है तथा घर में संवेगात्मक

तनाव उत्पन्न हो जाता है। पास–पड़ोस के लोग मद्यपान करने वाले के पूरे परिवार से घृणा करने लगते हैं। ये सारी परिस्थितियां बालक के संतुलित विकास में बाधक होती हैं तथा उसे अपराधी बनाने में सहायक होती है।

जिन परिवारों में माता–पिता तथा परिवार के सदस्यों का नैतिक पतन हो चुका है अथवा आचरण भ्रष्ट हो गया है, जहां नित्यप्रति कलह हुआ करती है, परिवार के सदस्य एक–दूसरे को शंका, ईर्ष्या, अनादर अथवा घृणा की दृष्टि से देखते हैं वहां बालक अनुकरण द्वारा इन आदतों तथा व्यवहार को सीख लेता है तथा अवांछनीय व्यवहार करने लगता है जो अंततोगत्वा उसे अपराधी बना देते हैं।यदि वह स्वयं अपमानित हुआ है तो दूसरों को भी अपमानित करता है, यदि स्वयं पीटा गया है तो अपने से छोटे बालकों को पीटता है, यदि माता–पिता को चोरी करते देखता है तो स्वयं चोरी करता है। कभी–कभी वह परिवार के दूषित वातावरण से ऊब कर घर से भाग निकलता है और चोरी अथवा अन्य अनपेक्षित साधनों से जीविकोपार्जन करता है। गंभीर परिस्थितियों में वह आत्महत्या तक करने की सोच बैठता है।

बर्ट ने अपने अध्ययन में 26 प्रतिशत अपराधी बालकों के परिवार में दूषित वातावरण पाया है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि विभिन्न प्रकार की अनुपयुक्त पारिवारिक परिस्थितियां बालकों को अपराधी बना देती हैं। इन परिस्थितियों में घर का दूषित वातावरण तथा दूषित अनुशासन सबसे अधिक घातक पाया गया है।

**परिवार के बाहर की परिस्थितियां**

परिवार के बाहर की अनुपयुक्त परिस्थितियां भी बालक को अपराधी बनने में सहायक होती हैं। बालक समाज में अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है उसकी अपनी मित्रा–मंडली होती है, वह समवयस्क साथियों के साथ खेलता है, पास–पड़ोस के लोंगों के सम्पर्क में आता है, मनोरंजन के लिए चलचित्र तथा नाटक देखता है, गाने–बजाने में भाग लेता है, अध्ययन के लिए विद्यालय जाता है। यदि इन स्थानों में उसे अच्छे लोगों का साथ मिला तो उसका स्वस्थ संवेगात्मक विकास होता है, किन्तु यदि उसे बुरे लोगों का साथ मिला, तो वह बुरी आदतें सीखता है और अपराधी होता है। परिवार के बाहर की निम्नांकित परिस्थितियां उसके व्यवहार, आदतों तथा चरित्रा को प्रभावित करती हैं।

**समवयस्क बालकों का साथ**

लगभग सभी बालकों के साथी होते हैं।यदि साथी अच्छे हुए तो बालक अच्छी आदतें सीखता है और यदि वे बुरे हुए तो बुरी आदतें। बालक अपनी आवश्यकताओं से प्रेरित होकर मंडलियां बना लेते हैं। आरम्भ में प्रायः खेलकूद की भावना से प्रेरित होकर मोहल्ले में बालकों की मंडलियां बनती हैं। यदि इनमें बुरे बालक पहुंच जाते हैं तो मंडली के और बालकों को भी बुरी बातों की ओर प्रेरित करते हैं। किशोरावस्था में इस प्रकार की मंडलियों में सम्मिलित होने की बालक में स्वाभाविक प्रवृत्ति होती हैं इनका एक नेता बन जाता है और अन्य बालक उसके अनुयायी हो जाते हैं। इनके अपने नियम होते हैं जिनका पालन करना सबके लिए आवश्यक होता है। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि ये मंडलियां अपनी सीमा का अतिक्रमण कर जाती हैं और समाज विरोधी कार्य करने लगती हैं। बाहर देर तक घूमते रहना, बागों में चोरी से फल तोड़ लेना, दूसरों की सम्पत्ति को क्षति पहुंचाना, ताश अथवा जुआ खेलना अथवा धूमपान करना आदि कार्य बालक इन मंडलियों में शीघ्र सीख लेते हैं।

बर्टके अध्ययन में 18 प्रतिशत अपराधी बालकों में अपराध का मुख्य कारण बुरे बालकों का साथ पाया गया है। हिली ने 34 प्रतिशत अपराधी बालकों में अपराध का प्रधान कारण बुरी संगति बताया है।

बर्ट ने इस बात की ओर संकेत किया है कि बुरे बालकों की संगति में पड़ने वाले बालक में कुछ दोष पहले से विद्यमान रहते हैं। संभव है, उसके घर के वातावरण में प्रेम, सहानुभूति तथा प्रोत्साहन का अभाव हो, वह विद्यालय में पिछड़ा हुआ हो, उसमें कुछ शारीरिक दोष हो अथवा वह मंद बुद्धि का हो और अपने में हीनता की भावना का अनुभव करता हो। इन दशाओं में वह स्वस्थ बालकों के सम्पर्क में आने से हिचकता है तथा बुरे बालकों के सम्पर्क में आने में उसे अपनी हीनता की भावना

से कुछ समय के लिए मुक्ति मिलती है। जो भी हो बालक को अपराध की ओर असर करने में बुरे बालकों की संगति का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

**मनोरंजन के साधनों की बहुतायत**

बालकों के व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास के लिए मनोरंजन के साधनों की परम आवश्यकता है, किन्तु ये साधन सुव्यवस्थित होने चाहिएं, बहुधा देखा जाता है कि बालक मनोरंजन केन्द्रों में अनेक बुरी बातें सीख जाते हैं। आजकल चलचित्र मनोरंजन का एक प्रधान साधन है। चलचित्र में ऐसे अनेक चित्र दिखाए जाते हैं जिनसे बालकों को कामुक व्यवहार करने की प्रेरणा मिलती है। कभी–कभी इनमें ऐसे भी चित्र दिखाए जाते हैं जिनमें चोरी करने, जेब काटने के दृश्य होते हैं। इनका बालक के कोमल मन पर तीव्र प्रभाव पड़ता है और वह स्वयं चोरी करने की इन विधियों को अपनाने का प्रयास करता है। फिर चलचित्र देखने की आदत पड़ जाने पर यदि घर से पैसा न मिला तो चोरी करके पैसा प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। बर्ट ने अपने अध्ययन में 7 प्रतिशत अपराधी बालकों को चलचित्र का आदी पाया है।

**विद्यालय की परिस्थितियों से दोषपूर्ण समाय**ोजन

विद्यालय में समयोजन ठीक न होने से भी बाल अपराध की ओर उन्मुख हो जाते हैं। मन्द बुद्धि के बालक कक्षा में पढ़ाई गई बातों को नहीं समझ पाते। ऐसी दशा में कक्षा में उनका मन नहीं लगता। शिक्षण, शिक्षक तथा विद्यालय सभी उनके लिए भार हो जाते हैं। ऐसे बालक बहुधा कक्षा छोड़कर भाग जाया करते हैं और बुरे बालकों के साथ ऐसी क्रियाओं में लग जाते हैं जो समाज विरोधी होती हैं। यही दशा विभिन्न पाठ्य–विषयों में पिछड़े हुए बालक भी होती है। अपेक्षित पूर्वज्ञान न होने से अगला पाठ उसकी समझ में नहीं आता, अतः पढ़ाई के प्रति उसकी अरुचि हो जाती है। बहुधा मंद बुद्धि वाले तथा पिछड़े बालकों को विद्यालय में असफलता का सामना करना पड़ता है। असफलता के कारण कितने ही बालकों का मानसिकसंतुलन बिगड़ जाता है। उन्हें असंतोष, निराशा तथा कुंठा का सामना करना पड़ता है। अन्य बालक भी इनको चिढ़ाते तथा व्यंग बोलते हैं। ऐसी परिस्थिति में इन बालकों का जीवन दूभर हो जाता है और वे कक्षा छोड़कर भागने लगते हैं। यदि वे बुरे बालकों की मंडली में पहुंच गए, तो शीघ्र अनेक बुरी बातें सीख जाते हैं। बर्ट का कहना है कि शिक्षा में पिछड़ना तथा अपराध दोनों साथ–साथ चलते हैं।प्रखर बुद्धि के बालक भी कक्षा की पढ़ाई से असंतुष्ट रहते हैं। अध्यापक बहुधा औसत बुद्धि वाले बालकों को दृष्टि में रखकर अध्यापन कार्य करता है। इससे तीव्र बुद्धि बालकों की शक्ति का यथोचित उपयोग नहीं हो पाता। उनकी सृजनात्मक शक्ति तथा क्षमता की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त अवसर नहीं मिलते। अतः अपनी बची हुई शक्ति को वे समाज विरोधी कार्यों में लगाने लगते हैं तथा अनुशासनहीन हो जाते हैं।

**मनोरंजन के साधनों की कमी**

मनोरंजन के साधनों का अभाव भी अपराध की मनोवृत्ति को जन्म देता है। जिन बस्तियों में खेलने के स्थान अथवा पार्क नहीं हैं, बालक सड़कों पर खेलते हैं जहां वे अधिक बुरी आदतें सीख लेते हैं। बर्ट ने अपने अध्ययन में पाया है कि सबसे अधिक अपराध सड़कों पर किए जाते हैं। उनके अध्ययन में 35 प्रतिशत अपराध सड़कों पर किए गए हैं। अपराध की संख्या उन बस्तियों में अधिक मिली है जहां मनोरंजन के साधनों का अभाव होता है। मनोरंजन के सुव्यवस्थित तथा उपयुक्त साधनों द्वारा बालकों के अवकाश के समय का सदुपयोग होता है। इनके अभाव में वे अनेक अवांछनीय क्रियाओं में लग जाते हैं।

**पास–पड़ोस**

बालक के चरित्र तथा व्यवहार पर उसके पास–पड़ोस का भी प्रभाव पड़ता है। यदि पास–पड़ोस में जुआरी, शराबी, धोखेबाज, वेश्यागामी तथा चोर लोग होते हैं, तो बालक का ध्यान भी इन कार्यों की ओर जाता है और इस बात की अधिक संभावना रहती है कि वह इन्हें अपना ले।

**प्रौढ़ व्यक्तियों का साथ**

कभी–कभी बालक ऐसे प्रौढ़ व्यक्तियों के सम्पर्क में आ जाते हैं जो उन्हें बुरी आदतें सिखाते हैं घर के नौकर, बच्चों के अक्सर मिलने वाले बाहरी आदमी कभी–कभी उन्हें नकारात्मक कार्यो की ओर प्रेरित करते हैं। बहुधा ऐसा होता है कि बच्चों के निकट संबंधी उसे विलासिता की वस्तुओं का प्रयोग करने का आदी बना देते हैं, किन्तु जब वे नहीं होते और आदीहोने के कारण बच्चा उन वस्तुओं का प्रयोग करना चाहता है, तो परिवार में ही पैसे की चोरी करने लगता है।प्रौढ़ व्यक्तियों की संगति में पड़कर बिगड़ने वाले बच्चों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है। बर्ट ने केवल 5 प्रतिशत अपराधी बालकों में अपराध का मूल कारण अनुपयुक्त प्रौढ़ व्यक्तियों का साथ पाया है।

**बाल अपराध के आर्थिक कारण**

बाल अपराध के जितने भी अध्ययन हुए हैं उनमें यह पाया गया है कि ऐसे अपराधों में आर्थिक कारणों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। कुछ प्रमुख आर्थिक कारण निम्नांकित है –

**निर्धनता**

निर्धनता के कारण जब बालक अपनी दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं को उपलब्ध नहीं कर पाते तो बहुधा चोरी करके उन्हें पाने का प्रयास करते हैं और फिर उस चोरी को छिपाने के लिए झूठ बोलते हैं। चोरी करने की आदत उन बालकों में अधिक पाई जाती है जो गरीब परिवार के होते हैं। अपराध, रोग तथा अज्ञान का निर्धनता से घनिष्ठ संबंध होता है। गरीब व्यक्ति के पास इतना धन नहीं होता कि वह अपने बच्चों की आवश्यकताओं को यथोचित पूर्ति कर सकें, उन्हें स्वस्थ तथा संतुलित भोजन दे सकें तथा उच्चकोटि की शिक्षा प्रदान कर सकें। इन कमियों के कारण इन घरों के बालकों में अपराधी मनोवृत्ति अपनाने की संभावना अधिक होती है। बर्ट ने अपने अध्ययन में आधे से अधिक अपराधी बालकों को गरीब परिवारों का पाया है।

निर्धनता के कारण कुछ असुविधाएं उत्पन्न हो जाती हैं जिनका बाल अपराध से घनिष्ठ संबंध होता है। कुछ ऐसी परिस्थितियों का नीचे उल्लेख किया जा रहा है

**अनुपयुक्त निवास स्थान**

निर्धनता के कारण व्यक्ति अच्छे स्थानों में नहीं रह पाता। उसे विवश होकर गन्दी तथा घनी बस्तियों में रहना पड़ता है। कमरे भी कम होते हैं। रात्रि में बहुधा एक ही कमरे में सभी अवस्था में स्त्रियों तथा पुरुषों को शयन करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में मर्यादापूर्ण ढंग से रहना असंभव हो जाता है, फलस्वरूप बहुधा ऐसा होता है कि बालक कामुकता संबंधीबातों में अपरिपक्वावस्था से ही रुचि लेने लगते हैं जो कभी–कभी उन्हें लैंगिक अपराधों की ओर प्रेरित करता है।ऊपर कहा गया है कि गरीब परिवार घनी बस्तियों में रहते हैं। यहां सभी वस्तुएं सदैव बच्चों के सामने रहती हैं। अतः उनमें प्रलोभन बढ़ता है और वे चोरी करना सीखते हैं। फिर इन बस्तियों में अशिक्षित आचरण भ्रष्ट तथा निम्न प्रवृत्तियों के लोग अधिक रहते हैं जिनसे अपराध को बढ़ावा मिलता है। बर्ट के अध्ययन में घनी बस्तियों का बाल अपराध से घनिष्ठ संबंध पाया गया है।

**निर्धनता पारिवारिक संघर्षों को जन्म देती है**

गरीब घर के व्यक्तियों को संतुलित भोजन नहीं मिल पाता, बहुधा आधा पेट खाकर वे दिन–दिन भर काम करते हैं। जब घर लौटते हैं तो अपने बच्चों को यथोचित स्नेह तथा संरक्षण नहीं दे पाते। अर्थाभाव के कारण बहुधा विभिन्न आवश्यक वस्तुओं के लिए घर मेंझगड़ा होता रहता है। जब व्यक्ति की आवश्यकताएं पूरी नहीं होतीं, तो मानसिक लोभ होता है तथा संवेगात्मक संतुलन बिगड़ने लगता है। ये स्थितियां अपराधों को जन्म देती हैं।

**छोटे बालकों का काम में लगना**

निर्धनता के कारण बहुधा माता–पिता दोनों को काम करना पड़ता है। किन्तु जब इतने से भी काम नहीं चलता तो घर के छोटे बालक भी काम करने लगते हैं। इनमें से कुछ कल–कारखानों, होटलों तथा चलचित्र–घरों में काम करते हैं। इन स्थानों में वे बहुधा अशिक्षत तथा चरित्र–भ्रष्ट लोगों के सम्पर्क में काम करने लगते हैं, कुछ दूसरे बालक घरेलू काम करने के लिए धनी परिवारों के नौकरी

कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में भले–बुरे सभी प्रकार के व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं और कभी–कभी दुष्चरित्रता तथा अपराधशीलता के फंदे में फंस जाते हैं।

**घर में मनोरंजन के साधनों का अभाव**

बाल्यावस्था खेल की अवस्था है। छोटे बालकों को खेलने के लिए घर में खेल की सामग्री होनी चाहिए। बड़े बच्चों को भी समय–समय पर अपने साथियों को घर पर बुलाने की इच्छा होती है। किन्तु स्थान तथा साधन के अभाव में उन्हें खेलने तथा मित्रों से मिलने के लिए सड़कों, गलियों तथा पार्कों का सहारा लेना पड़ता है। वे देर तक घर के बाहर इधर–उधर सड़कों–गलियों में घूमा करते हैं। ऐसी स्थिति में उनके आवारा होने की अधिक संभावना रहती है।

यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि निर्धनता बाल अपराध का कारण अवश्य है, किन्तु वह एकमात्र कारण नहीं है। यही सही है कि बाल अपराधी बहुत गरीब परिवार के होते हैं, किन्तु ऐसा नहीं है कि सभी गरीब बालक अपराधी ही हों। कितने ही गरीब बालक विषम परिस्थितियों के होते हुए भी उच्चकोटि का चरित्र बनाए रखते हैं।

**बेकारी**

किशोरावस्था के अंत में अनेक बालक अध्ययन समाप्त करके किसी व्यवसाय में लगना चाहते हैं। कोई कार्य न मिलने पर वे बेकार हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में भूख तथा अन्य आवश्यकताओं से प्रेरित होकर वे चोरी करना अथवा अन्य समाज विरोधी कार्य करना प्रारम्भ कर देते हैं। बर्ट ने कार्य करने की अवस्था प्राप्त अपराधी बालकों में से 16 प्रतिशत बालकों को बेकार पाया है।बेकारी की अवस्था में माता–पिता की अभिवृत्ति का बहुत महत्त्व होता है। धनी घर का युवक यदि कुछ दिन तक बेकार रहे तो उसे माता–पिता पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु जब किसी गरीब घर का युवक कुछ दिन तक बेकार रहे, तो माता–पिता उसे कोसना प्रारम्भ कर देते हैं। कभी–कभी ऐसे बेकार नवयुवकों को घर से निकल जाने की भी ताड़ना दी जाती है। हमारे देश में जब भी काफी कम अवस्था में नवयुवकों का विवाह हो जाता है। यदि बेकार नवयुवक विवाहित है तो उसकी स्थिति और भी दयनीय हो जाती है। वह अपनी मान–मर्यादा तथा पत्नी के भार को संभालने के लिए बहुधा समाज–विरोधी कार्य करने लगता है।

बेकारी की समस्या का एक दूसरा पहलू भी होता है। कहावत है कि बेकार मन में भूत का निवास होता हैं जो बेकार होते हैं उनके मन में तरह–तरह की कल्पनाएं तथा अनपेक्षित विचार–धाराएं आती रहती हैं जो अंततोगत्वा अपराधों को जन्म देती हैं।

**अनुपयुक्त व्यवसाय**

जिन नवयुवकों का व्यावसायिक समायोजन संतोषजनक नहीं होता वे बहुधा अपराधी मनोवृत्ति के हो जाते हैं। जब व्यवसाय व्यक्ति की मानसिकक्षमता, रुचि, अभिरुचि तथा स्वभाव के अनुकूल नहीं होता तो उसमें उसका मननहीं लगता, थकान शीघ्र आती है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है तथा पद–पद पर निराशा एवं कुंठा का सामना करना पड़ता है। मालिक अथवा अधिकारी के प्रति उसमें प्रतिशोध की भावना उत्पन्न होती है। ये मानसिक परिस्थितियां उसमें समाज विरोधी प्रवृत्तियों को जन्म देती हैं जो स्थिति बिगड़ने पर अपराध का रूप धारण कर लेती हैं।

बाल अपराध के अनेक कारण एक साथ पाए जाते हैं। जिनमें सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक आदि कारको का प्रभाव रहता है। इस संबंध में यह ध्यान रखने योग्य है कि अपराध की उत्पत्ति किसी एक कारण से नहीं होती है। बहुधा होता यह है कि पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक आदि अनेक कारण सम्मिलित रूप में बालक को प्रभावित करते हैं और वह समाज विरोधी क्रियाओं की ओर अग्रसर होता है। हां, यह अवश्य है कि उनमें से कोई एक कारण प्रधान होता है शेष कारण गौण होते हैं।

इस संबंध में दूसरी ध्यान रखने योग्य बात यह है कि जो परिस्थितियां अथवा कारण बाल अपराध के लिए उत्तरदायी बताए जाते हैं। वे उन बालकों में भी होते हैं जो अपराधी नहीं होते। अतः इन कारणों अथवा परिस्थितियों की बहुलता तथा उनका मिश्रित प्रभाव ही अपराध को जन्म देता है।

**संदर्भ :**

1 बेकारिया, सी., ऐसे ऑन क्राइम एण्ड पनिश्मेन्ट, न्यूयार्क : स्टीफेन गोल्ड, 1954.
2 बर्ट, रोनाल्ड एस, स्ञक्चरल होल्स : दी सोशल स्ट्रक्चर ऑफ काम्पटीशन, आईएसबीएन 978–0–674–84371–4, हारवर्ड यूनिवरसिटि प्रेस,1992.
3 शाह, गिरिराज, अपराध कारण और निवारण, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1985.
4 सदरलैण्ड, प्रिन्सिपल ऑफ क्रिमिनोलॉजी, न्यूयार्क : जे0वी0 लिपिन एण्ड कम्पनी, 1960.
5 डैरो, सी., क्राईम इट्स काजेज एण्ड पनिश्मेन्ट, न्यूयार्क : क्रोवेल, 1934.
6 टैफ्ट, डी.आर, क्रिमिनोलाजी, यूयार्क : द मैकमिलन एण्ड कम्पनी, 1959.
7 गोडार्ड, हेनरी एच., जुवेनाइल डेलिन्क्वेन्सी, न्यूयार्क : डॉड मीन एण्ड कं., 1921.
8 गैरोफैलो, क्रिमीनोलाजी, बोस्टन : लिटिल ब्राऊन पब्लिकेशन, 1914.
9 लाम्ब्रोसा, सीजर, क्राइम इट्स काजेज एण्ड रेमेडीज, बोस्टन : लिटिल ब्राउन पब्लिकेशन, 1911.
10 लेविस, आस्कर, द कल्चर ऑफ पावर्टी, न्यूर्याक : बेसिक बुक्स, 1979.
11 लेविस, आस्कर, द चिल्ड्रेन आफ सेन्चेज, न्यूर्याक : रेण्डम हाउस, 1961.

***

# हेमचन्द्र का धातुपारायणम्

*डॉ. कल्पना आर्या* *

भाषा मनुष्य के भावों की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है। जबसे मनुष्य ने भाषा का निर्माण किया तबसे निरन्तर अभिव्यक्ति के प्रकार एवं क्षमताएँ परिवर्तित एवं विकसित होती रही हैं। वाक्यपूर्ति के लिए जहाँ प्रातिपदिक, कारक, विभक्ति, उपसर्ग, प्रत्यय आदि का स्थान है, वहीं धातु भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। क्रियाओं के विविध रूपों का निर्माण धातुओं के द्वारा होता है।

**दधाति विविधं शब्दरूपं यः सः धातुः।**[1]

अर्थात् जो शब्द के विविध रूपों को धारण करने वाली है वह धातु कहलाती है। आचार्य शाकटायन के मतानुसार सारे शब्द केवल धातुओं से ही उत्पन्न होते हैं। आचार्य गार्ग्य ने शब्दों को धातुज तथा अधातुज दोनों कहा है।[2] आचार्य यास्क ने निरुक्त मं आख्यात शब्द से धातुओं का नामोल्लेख किया है।[3] पाणिनि ने लोक में प्रचलित शब्दों को भी महत्त्व दिया है।[4]

महाभाष्य में पतञ्जलि ने 'क्रियावचनो धातुः' अर्थात् क्रिया को बताने वाले शब्दों को धातु कहा है। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में कहा है-

**गुणभूतैरवयवैः समूहः क्रमजन्मनाम्।**
**बुद्ध्या प्रकल्पितो ताऽभेदः भेदः क्रियेति व्यपदिश्यते।।**[5]

क्रमशः उत्पन्न होने वाली गुणभूत क्रियाओं का वह समूह जो बुद्धि द्वारा एकाकार होकर अभिन्न सा प्रतीत होता है उसे क्रिया कहते हैं। धातुओं को प्रयोग के योग्य बनाने के लिए मुख्य रूप से जो प्रत्यय लगाये जाते हैं उन्हें तिङ् विभक्ति कहते हैं। पाणिनि ने 'विभक्तिश्च'[6] सूत्र में इसका अभिप्राय स्पष्ट किया है।

**हेमचन्द्र के धातुपाठ का परिचय**

पाणिनीय धातुपाठ की तरह हेमचन्द्र ने भी अपने धातुपाठ को गणों में विभक्त किया है। पाणिनि का धातुपाठ 10 गणों में विभक्त है लेकिन हेमचन्द्र ने 9 गणों में धातुपाठ को बाँधा है। नौ गण इस प्रकार है- 1. भ्वादिगण 2. अदादिगण 3. दिवादिगण 4. स्वादिगण 5. तुदादिगण 6. रुधादिगण 7. तनादिगण 8. क्र्यादिगण 9. चुरादिगण। जुहोत्यादिगण का पृथक् पाठ नहीं किया है।

भ्वादिगण, अदादिगण, दिवादिगण में क्रमशः परस्मैपदी, आत्मनेपदी एवं उभयपदी धातुओं का पाठ किया गया है। स्वादिगण, तुदादिगण, रुधादिगण, क्र्यादिगण में उभयपदी धातुओं का प्रथम उल्लेख करके पश्चात् परस्मैपदी एवं आत्मनेपदी धातुओं का पाठ किया है। पाणिनि की जुहोत्यादिगण में पठित धातुओं को हेमचन्द्र ने अदादिगण के अन्तर्गत समाहित कर दिया है। हेमचन्द्र ने प्रत्येक गण की पहचान के लिये धातुओं में भिन्न-भिन्न अनुबन्धों का प्रयोग किया है। भ्वादिगण की धातु को दर्शाने के लिये किसी विशेष अनुबन्ध का प्रयोग नहीं किया है।

---

* संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

अदादिगण की धातुओं के लिये 'क्' अनुबन्ध का प्रयोग किया है। यथा- √प्सांक् भक्षणे। (धातुपारायणम्, 2/2)

दिवादिगण की धातु के लिये 'च्' का प्रयोग किया है। यथा- √दिवूच् क्रीडाजयेच्छापणिद्युतिस्तुति गतिषु। (धातुपारायणम्, 3/1)

स्वादिगण के लिये 'ट्' का प्रयोग किया है। यथा- √षुंग्ट् अभिषवे। (धातुपारायणम्, 4/1)

तुदादिगण के लिये 'त्' का प्रयोग किया है। यथा- √तुदींत् व्यथने। (धातुपारायणम्, 5/1)

रुधादिगण के लिये 'प्' का प्रयोग किया है। यथा- √**रुधृंपी** आवरणे। (धातुपारायणम्, 6/1)

तनादिगण के लिये 'य्' का प्रयोग किया है। यथा- √तनूयी विस्तारे। (धातुपारायणम्, 7/1)

क्र्यादिगण के लिये 'श्' का प्रयोग किया है। यथा- √डुक्रींग्श् द्रव्यविनिमये। (धातुपारायणम्, 8/1)

चुरादिगण की धातुओं के लिए 'ण्' का प्रयोग किया है। यथा- √चुरण् स्तेये। (धातुपारायणम्, 9/1)

जहाँ दो धातुएँ एक ही अर्थ वाली क्रमशः पठित है उनमें अन्त वाली धातु के साथ गणसूचक अनुबन्ध लगाया गया है। यथा- √अदं प्सांक् भक्षणे।

हेमचन्द्र ने धातुओं को वर्णानुपूर्वी क्रम से पढ़ा है। अकारादिक्रम में पहले स्वरान्त फिर व्यञ्जनान्त का निबन्धन करने से वैज्ञानिकता एवं सरलता दृष्टिगोचर होती है। धातुओं के पाठ के साथ-साथ ही उनके अर्थों का भी निर्देश किया है। यत्र-तत्र चकार का उपयोग करके अनुवृत्ति से अर्थों का ग्रहण किया है। अनिट् धातुओं को चिह्नित करने के लिये धातु के साथ अनुस्वार का निर्देश किया है।

**हेमचन्द्र के धातुपाठ की विशेषताएँ**- व्याकरण की संपूर्णता के लिए मुख्यतः सूत्रपाठ किया जाता है एवं उसके खिल पाठों के रूप में धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ, लिंगानुशासन का पाठ किया जाता है। हेमचन्द्र ने पूर्वाचार्यों के धातुपाठ का अनुकरण करते हुए धातुओं को पढ़ा है। हेमचन्द्र ने अपने धातुपाठ को विस्तार से समझाने के लिए स्वयं उस पर वृत्ति भी लिखी है, जिसको 'धातुपारायण'[7] नाम से जाना जाता है। धातुओं से पदों का निर्माण होता है तथा पद से पदार्थ का ज्ञान होता है, पश्चात् हेयउपादेय, बुद्धि विकसित होती है और निःश्रेयस् की प्राप्ति होती है।[8] हेमचन्द्र ने शब्द प्रकृति तीन प्रकार की बतायी है- (1) नाम- राजा, (2) धातु- जयति, (3) पद- पूर्वाह्णेतराम्। इन तीनों में प्रधानतया धातु ही मूल प्रकृति है। धातु की प्रकृति दो प्रकार है- (1) शुद्धा- भू आदि, (2) प्रत्ययान्ता- गोपाय, कामि, ऋतीय, जुगुप्स, आदि।

पाणिनि ने भूवादयो धातवः[9] से शुद्ध धातुओं की धातु संज्ञा की है। सन् आदि प्रत्ययान्तो की सनाद्यन्ता धातवः[10] से धातु संज्ञा की है। हेमचन्द्र ने इन दोनों सूत्रों का कार्य क्रियार्थो धातुः[11] इस एक ही सूत्र से किया है अर्थात् क्रिया के लिए जो भी है उसकी धातु संज्ञा होती है।

**लकारों के स्थान पर हेम द्वारा प्रयुक्त संज्ञाएँ**

पाणिनि ने 'ल्' के अन्दर विभिन्न कालों में प्रयुक्त होने वाले 10 लकार ग्रहण किए हैं। लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट, लङ्, लिङ् (विधि०, आशी०), लुङ्, लृङ्, इनके स्थान पर तिबादि 18 प्रत्यय, जिनमें 9 परस्मैपद, 9 आत्मनेपद प्रत्यय पढ़े हैं। हेमचन्द्र ने लकार शब्द एवं लटादि का ग्रहण न करके वर्त्तमानादि संज्ञाएँ उल्लिखित की हैं।

हेमचन्द्र ने लट् के स्थान पर वर्तमाना, लिट्- परोक्षा, लुट्- श्वस्तनी, लृट्- भविष्यन्ती, लोट्- पञ्चमी, लङ्- अनद्यतनी, लुङ्- ह्यस्तनी, विधिलिङ्- सप्तमी, आशीर्लिङ्- सप्तमी तथा लृङ् के लिए क्रियातिपत्ति शब्दों का प्रयोग किया है। ध्यातव्य है कि हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में वैदिक शब्दों को स्थान नहीं दिया है। अतः लेट् लकार (वेद में प्रयुक्त) की भी उपेक्षा की है। इसी कारण लोट् लकार को पंचमी का नाम दिया है। यदि लेट् लकार का ग्रहण होता तब लोट् (पंचमी) यह षष्ठी कहना पड़ता। इस प्रकार हेमचन्द्र ने वेद, उपवेद, आरण्यक, उपनिषद्, प्रातिशाख्य आदि को पृथक् कर अपने व्याकरण की रचना की है।

**हमचन्द्र के धातुपाठ में प्रक्रियाओं के प्रकार**

पाणिनि ने लकारों के स्थान पर तिप्तस्झि०[12] आदि प्रत्यय रूपसिद्धि हेतु पढ़े हैं। अलग-अलग लकारों में लकार के स्थान पर अलग-अलग प्रत्यय पढ़े हैं। पाणिनि ने संपूर्ण प्रक्रिया के लिए एक नियम बनाकर आवश्यकता अनुसार तत्तत् स्थान में किंचित् परिवर्तन किया है। हेमचन्द्र ने वर्तमाना आदि प्रत्येक संज्ञा के लिए अलग-अलग प्रत्यय पढ़े हैं। अतः हेमचन्द्र को भिन्न-भिन्न क्रियावस्थाओं के लिए अनेक बार एक जैसे प्रत्यय पढ़ने पड़े हैं। जिसके कारण हेमचन्द्र की लकार प्रक्रिया सरल होते हुए दीर्घकाय हो जाती है। यह प्रक्रिया निम्न प्रकार है-

पाणिनि ने तिप् तस् झि, सिप् थस् थ, मिप् वस् मस्, त आताम् झ, थास् आथाम् ध्वम्, इट् वहि महिङ्, ये 'ल' के स्थान में 18 प्रत्यय पढ़े हैं। हेमचन्द्र ने वर्तमान काल के लिए वर्तमाना तिव् तस् अन्ति, सिव् थस् थ, मिव् वस् मस्, ते आते अन्ते, से आथे ध्वे, ए वहे महे[13] इन प्रत्ययों की वर्त्तमाना (लट्) संज्ञा की है। लिट् लकार के लिए पाणिनि ने लिटस्तझयोरेशिरेच्[14], परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः[15] ये दो सूत्र मुख्य रूप से प्रयोग किए हैं। हेमचन्द्र ने परोक्षा-णव् अतुस् उस्, थव् अथुस् अ, ण व म, ए आते इरे, से आथे ध्वे, ए वहे महे[16] इन प्रत्ययों का प्रयोग परोक्षा (लिट्) संज्ञा करके किया है।

लुट् लकार की रूपसिद्धि के लिए पाणिनि ने लुटः प्रथमस्य डारौरसः[17] व स्यतासी लृलुटोः[18] इन दो सूत्रों के द्वारा प्रत्ययों का विधान किया है। हेमचन्द्र ने श्वस्तनी ता तारौ तारस्, तासि तास्थस् तास्थ, तास्मि तास्वस् तास्मस्, ता तारौ तारस्, तासे तास्थे तारथे ताध्वे, ताहे तास्वहे तास्महे[19] इन प्रत्ययों की श्वस्तनी (लृट्) संज्ञा कर के कार्य किया है।

लृट् लकार में स्यतासी लृलुटोः[20] से पाणिनि ने स्य प्रत्यय किया है। हेमचन्द्र ने भविष्यन्ती स्यति स्यतस् स्यन्ति, स्यसि स्वथस् स्यथ, स्यामि स्यावस् स्यामस्, स्यते स्येते स्यन्ते, स्यसे स्येथे स्यध्वे, स्ये स्यावहे स्यामहे[21] प्रत्ययों की भविष्यन्ती संज्ञा की है।

लोट् के लिए पाणिनि ने लोटो लङ् वत्[22], ऐरुः[23], मेर्निः[24] आमेतः[25] सवाभ्यां वामौ[26], एत ऐ[27], नित्यं ङितः[28] तस्थस्थमिपांतांतंतामः[29] इन सूत्रों के द्वारा कार्य किया है।

हेमचन्द्र ने पञ्चमी- तुव् ताम् अन्तु, हि तम् त, आनिव आवव् आमव्, ताम् आताम् अन्ताम्, स्व आथाम् ध्वम्, ऐव् आवहैव् आमहैव्[30] इन प्रत्ययों की पंचमी संज्ञा कर के प्रयोग किया है।

लङ् लकार में पाणिनि ने नित्यं ङितः[31] तस्थस्थमिपांतांतंतामः[32] संयोगान्तस्य लोपः[33] आदि सूत्रों का प्रयोग किया है। हेमचन्द्र ने ह्यस्तनी दिव् ताम् अन्, सिव् तम् त, अम्व्, व, म, त आताम् अन्त, थास् आथाम् ध्वम्, इ वहि महि[34] इन प्रत्ययों की ह्यस्तनी संज्ञा करके कार्य किया है।

विधिलिङ् लकार के लिए पाणिनि ने लिङ:सीयुट्[35] यासुट् परस्मैपदेषूदात्तोङिच्च[36] आदि सूत्रों से कार्य किया है। हेमचन्द्र ने सप्तमी यात् याताम् युस्, यास् यातम् यात, याम् याव याम, ईत् ईयाताम् ईरन्, ईथास् ईयाथाम् ईध्वम्, ईय ईवहि ईमहि[37] इन प्रत्ययों की सप्तमी संज्ञा करके कार्य किया है।

आशीर्लिङ् लकार के लिए पाणिनि ने इतश्च[38], आशिषिलिङ्लोटौ[39] सुट् तिथो:[40] आदि सूत्रों से कार्य किया है। हेमचन्द्र ने आशी: क्यात् क्यास्ताम् क्यासुस्, क्यास् क्यास्तम् क्यास्त, क्यासम् क्यास्व क्यास्म, सीष्ट सीयास्ताम् सीरन्, सीष्ठास् सीयास्थाम् सीध्वम्, सीय सीवहि सीमहि[41] इन प्रत्ययों की आशी: संज्ञा करके कार्य किया है।

लुङ् लकार के लिए पाणिनि ने च्लि लुङि[42], च्ले: सिच्[43], गातिस्थाघुपा भूभ्य: सिच: परस्मैपदेषु[44] आदि सूत्रों का प्रयोग किया है। हेमचन्द्र ने अद्यतनी दि ताम् अन्, सि तम् त, अम् व म, त आताम् अन्त, थास् अथाम् ध्वम्, इ वहि महि[45] इन प्रत्ययों की अद्यतनी संज्ञा करके कार्य किया है।

लृङ् लकार के लिए पाणिनि न स्यतासी लृलुटो:[46] झोन्त:[47] इतश्च[48] आदि सूत्रों से कार्य किया है। हेमचन्द्र ने लृङ् के स्थान पर स्यत् स्यताम् स्यन्, स्यस् स्यतम् स्यत, स्यम् स्याव स्याम, स्यत स्येताम् स्यन्त, स्यथास् स्येथाम् स्यध्वम्, स्ये स्यावहि स्यामहि इनकी क्रियातिपत्ति संज्ञा करके कार्य किया है।[49]

इस प्रकार हेमचन्द्र ने पाणिनि के अनेक सूत्रों का कार्य एक सूत्र से कर के विषय को सरल बनाया है।

**हमचन्द्र के धातुपाठ में अनुबन्ध व्यवस्था**

प्रत्येक व्याकरण की तरह हेमचन्द्र ने भी अपने व्याकरण में अनुबन्धों को स्थान दिया है। अनुबन्धों की अप्रयोगीत्[50] सूत्र से इत् संज्ञा का विधान किया है। जिसकी इत् संज्ञा हो वह चला जाता है।[51]

हेमचन्द्र ने अपने धातुपाठ में अनेक कार्यों को सिद्ध करने हेतु विभिन्न अनुबन्धों का प्रयोग किया है। अनुबन्धों का विवरण निम्न प्रकार है-

**स्वर अनुबन्ध व्यवस्था**

**अकार अनुबन्ध**- हेमचन्द्र के धातुपाठ में 'अ अनुबन्ध' उच्चारणार्थ लगाया गया है। धातु पारायण में √फक्क नीचैर् गतौ (धातुपारायणम् 1/50) धातु की परिभाषा में हेमचन्द्र ने लिखा है- "अकार: श्रुति सुखार्थ: एवं शेषेषुदन्तेषु।"[52] चुक्कण् व्यथने (धातुपारायणम् 9/9), श्रथण् दौर्बल्ये में अकार धातुओं के अङ् के रूप में पठित है। अत: गुण, वृद्धि आदि करते समय स्थानिवद्भाव होने से गुण आदि कार्य नहीं होते।

**आकार अनुबन्ध**- हेमचन्द्र ने 'आ अनुबन्ध' आदित:[53] सूत्र से निष्ठा के परे रहते इट् निषेध के लिए किया है। आकार अनुबन्ध वाली धातुएँ- श्विताङ् वर्णे (धातुपारायणम् 1/9/4/3), श्वित्त:, श्वित्तवान्, ञिमिदाङ् स्नेहने- भिन्न: भिन्नवान्

**उकार अनुबन्ध**- टुनदु, चदु, त्रदु आदि धातुओं में उकार अनुबन्ध पढ़ा है। उदित: स्वरान्नोऽन्त:[54] उदित धातु के स्वर के परे न अन्त का अवयव हो जाता है- नन्दति, चन्दति, त्रन्दति आदि।

**इकार अनुबन्ध**- अयि, वयि, पयि, मयि, नयि, चयि, रयि गतौ धातु इदित् पढ़ी गई है। इङित: कर्त्तरि[55] सूत्र से इदित् और ङित् धातुओं से कर्त्ता अर्थ में आत्मनेपद होता है। अयते, वयते, पयते, मयते, नयते, चयते, रयते।

**ईकार अनुबन्ध**- हिक्की, लवी, चवी, छषी, त्विषी आदि धातुएँ ईकार अनुबन्ध वाली है। ईगितः[56] सूत्र से ईदित् तथा ङित् धातुओं से क्रिया का फल कर्त्ता के मिलने पर आत्मनेपद हो जाता है। हिक्कते, लषते, चषते, छषते, त्वेषते।

**ऊकार अनुबन्ध**- असूच् क्षेपणे (धातुपारायणम् 3/78), जसूच् मोक्षणे (धातुपारायणम् 3/80), तसू दसूच् उपक्षये (धातुपारायणम् 3/82) आदि धातुएँ अदादिगण में ऊकार अनुबन्ध वाली हैं। ऊदित होने के कारण त्वा प्रत्यय के परे रहते इट् का आगम विकल्प से हो जाता है। अस्त्वा असित्वा, जस्त्वा जसित्वा।

**ऋकार अनुबन्ध**- ओखृ, राखृ, लाखृ, द्राखृ, ध्राखृ शोषणाऽलमर्थयोः (धातुपारायणम् 1/55) ये धातुएँ ऋदित् कहलाती हैं। ऋदित् होने के कारण उपान्त्यस्यासमानलोपिशास्वृदितो ङे से ङ परे णि परे रहते ह्रस्व नहीं होता है।[57] अचिखत्, अरखत्, अललाखत्।

**लृकार अनुबन्ध**- गम्लृ (धातुपारायणम् 1/396) आदि धातुएँ लृदित् पढ़ी गई हैं। लृदित् होने से लृदिद्द्युतादिपुष्यादेः परस्मैं[58] धातुओं से अद्यतनी कर्त्ता अर्थ में अङ् प्रत्यय हो जाता है। अगमत्

**एकार अनुबन्ध**- रगे, लगे (धातुपारायणम् 1/1023) आदि भ्वादिगणस्थ धातुएँ एदित् पढ़ी गई हैं। एदित् होने के कारण न श्वि जागृशसक्षणह्म्येदितः[59] सूत्र से परस्मैपद सेट् सिच् परे रहते वृद्धि नहीं होती। अरगीत्, अलगीत्।

**व्यञ्जन अनुबन्ध व्यवस्था**

1) **ककार अनुबन्ध**- प्सांक् भक्षणे (धातुपारायणम् 2/2), भांक् दीप्तौ (धातुपारायणम् 2/3) इत्यादि धातुएँ अदादिगण में कित् अनुबन्ध वाली पढ़ी गई है। धातुपारायण में कित् अनुबन्ध के लिए कहा गया है- कित् करणम् अदादि ज्ञापनार्थं सर्वत्र ज्ञेयम्[60] अथात् अदादिगण में पठित धातुओं के साथ 'क्' अनुबन्ध लगाया है जिसके कारण गण की पहचान पृथक् हो जाती है।

2) **गकार अनुबन्ध**- श्रिग् सेवायाम् (धातुपारायणम् 1/883), णीग् प्रापणे (धातुपारायणम् 1/884) इत्यादि धातुएँ गित् है। ईगितः[61] इस सूत्र से गित् धातुओं से क्रिया का फल यदि कर्त्ता को मिल रहा हो तो आत्मनेपद हो जाता है।

3) **ङकार अनुबन्ध**- तिपृङ् (धातुपारायणम् 1/750), ष्टिपृङ् (धातुपारायणम् 1/751) आदि धातुएँ ङित् है। ङित् होने के कारण इङितः कर्त्तरि[62] सूत्र से ङित् धातुओं से आत्मनेपद हो जाता है।

4) **टकार अनुबन्ध**- पाँचवं गण की धातुएँ टकार अनुबन्ध वाली हैं। ट्धे पाने (धातुपारायणम् 1/28) इत्यादि धातुओं में टित् करण ङीप् के लिए किया गया है। शुनिन्धयी।

5) **टु अनुबन्ध**- टुओस्फूर्जा वज्र निघोषे (धातुपारायणम् 1/149) टुनदु (धातुपारायणम् 1/299) यहां 'टु' का इत् करण ट्वितोऽथः[63] सूत्र से अथु प्रत्यय करने के लिए किया है। स्फूर्जथुः।

6) **ञि अनुबन्ध**- ञिक्ष्विदाङ्मोचने (धातुपारायणम् 1/945) ञिमिदा, ञिमिदाङ् स्नेहने (धातुपारायणम् 1/944) धातुओं में ञित् करने से क्त[64] प्रत्यय हो जाता है।

7) **डु अनुबन्ध**- डुवपी बीजसंताने (धातुपारायणम् 1/995), डुपचींव् पाके (धातुपारायणम् 1/892), डुयाचृग् याञ्चायाम् (धातुपारायणम् 1/891), आदि धातुएँ ड्वित् पढ़ी गई हैं। ड्वित् पाठ करने का प्रयोजन ड्वितस्त्रिमक् तत्कृतम्[65] सूत्र से त्रिमक् प्रत्यय करना है। कृत्रिमम्, पक्त्रिमम्, याचित्रिमम्

8 ) **णकार अनुबन्ध**- चुरण् स्तेये (धातुपारायणम् 9/1), पृण् पूरणे (धातुपारायणम् 9/2), घृण् स्रवणे आदि (धातुपारायणम् 9/3) धातुएँ णित् पढ़ी गई हैं। धातु पारायण में णित् का प्रयोजन बताया है णित्वं चुरादित्व ज्ञापनार्थम्।[66]

9) **तकार अनुबन्ध**- तुदीत् व्यथने (धातुपारायणम् 5/1) आदि तुदादिगण में पठित धातुओं में तित् करने का प्रयोजन तुदादिगण बोध के लिए है। तित्वं तुदादित्वज्ञापनार्थ सर्वत्र ज्ञेयम्।[67]

10 ) **पकार अनुबन्ध**- रूधृंपी आवरणे (धातुपारायणम् 6/1), रिचृपी विरेचने (धातुपारायणम् 6/2) आदि धातु रूधादिगण में पठित हैं। धातुपारायण में पित् करण का प्रयाजन पित्वं रूधादित्वज्ञापनारार्थम्[68] बताया गया है।

11 ) **षकार अनुबन्ध**- घटिष् चेष्टायाम् (धातुपारायणम् 1/1000), व्यथिष् भय-चलनयोः (धातुपारायणम् 1/1002), पथिष् प्रख्याने (धातुपारायणम् 1/1003), म्रदिष् मर्दने स्खदिष खरने (धातुपारायणम् 1/1004) आदि धातुएँ षित् अनुबन्ध वाली पढ़ी गई हैं। षित् अनुबन्ध करने का प्रयोजन षितोऽङ्[69] सूत्र से षित् धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय करना है। घटा, व्यथा, प्रथा, म्रदा आदि।

12 ) **मकार अनुबन्ध**- भ्वादिगण की 7 वीं धातु √दाम् दाने मित् पठित है। यहां मित् करने का प्रयोजन श्नौतिकृवु०[70] सूत्र में दाम् धातु के ग्रहण से दाम को यच्छ आदेश करना है। यच्छति

**हेमचन्द्र के धातुपाठ में अवान्तर गण व्यवस्था**

हेमचन्द्र ने धातुपाठ को नव गणों में विभाजित किया है। इनके अंदर कुछ अन्य लघु गणों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। पाणिनि ने अपने धातुपाठ में द्युतादिगण, ज्वलादिगण, यजादिगण, घटादिगण आदि गणों के अन्तर्गत अवान्तर गण के रूप में पढ़ा है। उसी प्रकार हेमचन्द्र ने भी 9 मुख्य गणों के अन्दर अवान्तर लघु गणों का पाठ किया है। वे गण निम्न प्रकार हैं-

1 ) **द्युतादिगण**- √द्युतिदीप्तौ (धातुपारायणम् 1/937) धात् से लेकर √कृपौङ् सामर्थ्ये (धातुपारायणम् 1/959) धातु तक द्युतादिगण है। द्युतादिगण में पठित धातुओं से लृदित द्युतादिपुष्पादे परस्मै[71] कर्ता परे हो तो अङ् प्रत्यय हो जाता है। अद्युतत्

2 ) **ज्वलादिगण**- √ज्वलदीप्तौ (धातुपारायणम् 1/960) धातु से लेकर √षहि मर्षणे (धातुपारायणम् 1/990) धातु तक ज्वलादिगण है। ज्वलादिगण में पठित धातुओं से ज्वलह्वलह्मल ग्लास्नावनूवमनमोऽनुपसर्गस्य वा[72] सूत्र से णि परे रहते विकल्प से ह्रस्व हो जाता है। ज्वलयति, ज्वालयति।

3 ) **यजादिगण**- √यजीं देवपूजासंगतिकरणदानेषु (धातुपारायणम् 1/991) धातु से लेकर √वसं निवास (धातुपारायणम् 1/999) धातु तक यजादिगण है। यजादिगण में पठित धातुओं से यजादिवश्वचः०[73] सूत्र से द्वित्व करने पर पूर्व अन्तस्थः को इ उ ऋ रूप हो जाता है। इयाज

4 ) **घटादिगण**- घटिष् चेष्टायाम् (धातुपारायणम् 1/1000) धातु से लेकर ज्वलदीप्तौ च (धातुपारायणम् 1/1058) धातु पर्यन्त घटादिगण पढ़ा गया है। घटादेर्ह्रस्वो०[74] सूत्र से घटादिगण में पठित धातुओं से णि के परे रहते ह्रस्व हो जाता है। घटयति।

5 ) **पुषादिगण**- दिवादिगण में पठित पुषंच् पुष्टौ (धातुपारायणम् 3/32) धातु से लेकर ष्णिहौच् प्रीतौ (धातुपारायणम् 3/38) तक पुषादिगण है। लृदिद् द्युतादिपुष्यादेः परस्मै[75] सूत्र से अङ् हो जाता है।

हेमधातुपाठ में अन्य उपलब्ध अवान्तरण गण उनके कार्य एवं उनके उदाहरण निम्न प्रकार है-

| गण | सूत्र | कार्य | उदा. | |
|---|---|---|---|---|
| 6 ) | **शमादिगण**- | सप्तकस्य०[76] | दीर्घ | शाम्यति |
| 7 ) | **स्वादिगण**- | सूयत्याद्योदित:[77] | न आदेश | सून: सूनवान् |
| 8 ) | **मूचादिगण**- | मुचादितृफदृफगुफशुभोभ: शे[78] | न अन्त आदेश | मुञ्चति |
| 9 ) | **कुटादिगण**- | कुटोदेर्ङिद्वदञ्णित्[79] | ङित्वत् | कुटिता |
| 10 ) | **प्वादिगण**- | प्वादेर्ह्रस्व:[80] | ह्रस्व | पुनाति |
| 11 ) | **ल्वादिगण**- | ऋल्वादेरेषां तो नोऽप्र:[81] | नादेश | लून: लुनवान् |
| 12 ) | **युजादिगण**- | युजादेर्नवा[82] | णिच् प्रत्यय (विकल्प से) | योजयति, योजति |

अवान्तर गणों का पाठ करते हुए हेमचन्द्र ने पाणिनीय प्रक्रिया का अनुकरण किया है। लघु गणों के लिए समाप्ति सूचक 'वृत्'[83] शब्द का प्रयोग हेमचन्द्र ने भी किया है। धातुपारायण में स्वोपज्ञवृति लिखते हुए अवान्तर गणों की भूमिका के लिए पूर्व आचायों के अनुवर्तन को स्वीकार किया है।[84] परन्तु पाणिनि का स्पष्ट नामोल्लेख नहीं किया है।

हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण को समग्रता प्रदान करने के लिए धातुओं का संग्रह किया है। महान् शब्द भण्डार को कम शब्दों में समझने के लिए धातुएँ मुख्य साधन रही हैं। एक धातु से हजारों शब्दों के अर्थों का अवगम होना भाषा जगत् का स्वयं में एक चमत्कार है। धातुओं के प्रयोग के कारण ही प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि संस्कृत भाषा को समझने में अत्यन्त सरलता रही है। पाणिनीय धातुपाठ में 10 गणों के समायोजन के जो प्रकार उपलब्ध होते हैं; हेमचन्द्र के धातुपाठ में वह 9 गणों के रूप में प्राप्त होता है। धातु शब्द सिद्धि की प्रक्रिया दोनों आचार्यों की पृथक्-पृथक् है। पाणिनि ने जहाँ समस्त लकारों की रूपसिद्धि के लिए 'ल' के स्थान में मुख्यत: 18 प्रत्ययों का समायोजन किया है एवं अनेक सूत्रों के द्वारा स्थान्यादेश सम्बन्ध से शब्दों को सिद्ध किया है; वही हेमचन्द्र ने प्रत्येक लकार के लिए अलग-अलग दीर्घकाय सूत्रों का निर्माण कर शब्द प्रक्रिया को सम्पन्न किया है। इस कारण जहाँ पाणिनीय प्रक्रिया अनेकों सूत्रों में तथा अष्टाध्यायी में कुछ कठिनाई के साथ अनेक स्थानों पर उपलब्ध होती है; वही हेमचन्द्र की शब्दसिद्धि प्रक्रिया दीर्घ होते हुये भी अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट है तथा अधिकांशत: एक स्थान पर उपलब्ध है। पाणिनीय धातुपाठ को समझने के लिए जहाँ क्षीरतरङ्गिणी, धातुप्रदीप, माधवीयधातुवृत्ति आदि टीकाएँ साधक होती है वही हेमचन्द्र के धातुपाठ को समझने हेतु सर्वप्रमुख ग्रन्थ 'धातुपारायण' नाम से प्राप्त होता है जो कि स्वयं आचार्य हेमचन्द्र द्वारा लिखा गया है। इसमें उन्होंने प्रत्येक धातु की व्याख्या, उससे उत्पन्न होने वाले शब्द की सिद्धि की है।

दोनों आचार्यों के धातुपाठों में अनुबन्धों का समायोजन है लेकिन पाणिनीय शैली में अनुबन्धों की इत् संज्ञा करके, उनके लोप का विधान उपलब्ध होता है लेकिन हेमव्याकरण में 'अप्रयोगीत्' अर्थात् जो प्रयोग में न आये वह इत् अर्थात् अदर्शन हो जाता है। इस एक सूत्र से ही इत् संज्ञा एवं लोप का कार्य सिद्ध हो जाता है। पाणिनि की तरह ही हेमचन्द्र ने अपने धातुपाठ में लघुगणों की व्यवस्था की है जिससे अनेक कार्य मात्र कुछ सूत्रों के द्वारा पूर्ण किये हैं। पाणिनीय धातुपाठ में वर्णों को आधार बनाकर धातुओं का संग्रह कुछ छोटे समूहों में

ही दिखाई देता है लेकिन हेमचन्द्र के धातुपाठ में अकारादिक्रम से धातुओं का पाठकर पहले स्वरान्त फिर व्यञ्जनान्त धातुओं का निबन्धन किया है। प्रत्येक गण की पृथक् पहचान बनाने के लिए हेम ने भ्वादिगण को छोड़कर प्रत्येक गण में किसी विशेष अनुबन्ध का प्रयोग किया है। पाणिनि ने अपने व्याकरण में वैदिक प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से स्थान दिया है, जिसके कारण जुहोत्यादिगण में पठित कुछ धातुएँ एवं लेट् लकार की शब्द सिद्धियाँ अतिरिक्त दिखाई पड़ती है। हेमचन्द्र ने अपना व्याकरण मात्र लौकिक शब्दों को आधार बनाकर लिखा है। इसलिए लेट् लकार का विशेष अध्यवसाय नहीं किया है। हेमचन्द्र ने अपने समक्ष विद्यमान आर्ष परम्परा, जैन-बौद्ध परम्परा, पालि-प्राकृत, शौर सैनी आदि सभी का अध्ययन करके अपने धातुपाठ का सृजन किया। जिसन व्याकरण के क्षेत्र को पाणिनीय प्रक्रिया के अतिरिक्त एक अन्य पद्धति से लाभान्वित किया।

**संदर्भ :**

---

[1] महाभाष्यम् 3/3/1, पतञ्जलि, सम्पा. भार्गव शास्त्री, प्रका. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहरनगर, दिल्ली, 1988.

[2] न सर्वाणीति गार्ग्यः। निरुक्त 1/14, यास्क, व्या. विद्यामार्तण्ड पण्डित सीताराम शास्त्री, परिमल पब्लिकेशन्स, शक्ति नगर, दिल्ली, 2017.

[3] भावप्रधानम् आख्यातम्। निरुक्त 1/1

[4] पृषोदरादीनि यथोपरिष्टम्। अष्टाध्यायी 6/3/109, पाणिनि, सम्पा. श्रीमती पुष्पा दीक्षित, संस्कृतभारती, माता मन्दिर गली, झण्डेवालान, नई दिल्ली, 2010.

[5] वाक्यपदीयम् 3/8/4

[6] अष्टाध्यायी 1/4/104

[7] शाह, बाबुलाल, श्री आशापुरण पार्श्वनाथ, जैन ज्ञानभण्डार, हीराजैन सोसायटी, साबरमती, अहमदाबाद-05, 2009

[8] इह तावत् पद-पदार्थज्ञानद्वारोत्पन्नं हेयोपादेयज्ञानं निःश्रेयसहेतुः इति प्रसिद्धम्। धातुपारायणम्, हेमचन्द्र, पृ. 1

[9] अष्टाध्यायी 1/3/1

[10] अष्टाध्यायी 3/1/32

[11] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 3/3/1, हेमचन्द्र सूरि, सम्पा. मुनि जम्बूविजय, प्रका. श्रीहेमचन्द्राचार्यजैनज्ञानमन्दिरम्, पाटण, गुजरात, 1995.

[12] अष्टाध्यायी 3/4/78

[13] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 3/3/6, हेमचन्द्र सूरि, सम्पा. मुनि जम्बूविजय, प्रका. श्रीहमेचन्द्राचार्यजैनज्ञानमन्दिरम्, पाटण, गुजरात, 1994.

[14] अष्टाध्यायी 3/4/81

[15] अष्टाध्यायी 3/4/82

[16] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 3/3/12

[17] अष्टाध्यायी 2/4/85

[18] अष्टाध्यायी 3/1/33

[19] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 3/3/14

[20] अष्टाध्यायी 3/3/33

[21] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 3/3/15

[22] अष्टाध्यायी 3/4/85

[23] अष्टाध्यायी 3/4/86

[24] अष्टाध्यायी 3/4/89

[25] अष्टाध्यायी 3/4/90

[26] अष्टाध्यायी 3/4/91

[27] अष्टाध्यायी 3/4/93

[28] अष्टाध्यायी 3/4/99

[29] अष्टाध्यायी 3/4/101

[30] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 3/3/8

[31] अष्टाध्यायी 3/4/99

[32] अष्टाध्यायी 3/4/101

[33] अष्टाध्यायी 8/2/23

[34] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 3/3/9

[35] अष्टाध्यायी 3/4/102

[36] अष्टाध्यायी 3/4/103

[37] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 3/3/7

[38] अष्टाध्यायी 3/4/100

[39] अष्टाध्यायी 3/3/173

[40] अष्टाध्यायी 3/4/107

[41] अष्टाध्यायी 3/3/13

[42] अष्टाध्यायी 3/1/43

[43] अष्टाध्यायी 3/1/44

[44] अष्टाध्यायी 2/4/77

[45] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 5/2/4

[46] अष्टाध्यायी 3/1/33

[47] अष्टाध्यायी 7/1/3

[48] अष्टाध्यायी 3/4/100

[49] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 5/4/9

[50] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 1/1/37

[51] एत्यपगच्छतीति इत्संज्ञो भवति 1/1/37, हेमचन्द्रसूरी, श्रीमदविजयनेमी सूरीश्वर, भेरुलाल कन्हैयालाल रिलिजीयस ट्रस्ट, चन्दनबाला, मुम्बई-400006, वि.सं. 2042.

[52] धातुपारायणम् 1/50, हेमचन्द्रसूरि, सरस्वती पुस्तक भण्डार, हाथीखाना, रतनपाल, अहमदाबाद-380001, 1979.
[53] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 4/4/71
[54] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 4/4/58
[55] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 3/3/22
[56] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 3/3/95
[57] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 4/2/35
[58] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 3/4/64
[59] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 4/3/49
[60] धातुपारायण, पृ. 161
[61] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 3/3/95
[62] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 3/3/22
[63] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 5/3/83
[64] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 5/2/92
[65] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 5/3/84
[66] धातुपारायणम्, पृ. 308
[67] धातुपारायणम्, तुदादिगण, पृ. 247
[68] धातुपरायणम्, रुधादिगण, पृ. 278
[69] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 5/3/177
[70] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 4/2/108
[71] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 3/4/64
[72] श्रीसिद्धहमचन्द्रशब्दानुशासनम् 4/2/32
[73] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 4/1/72
[74] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 4/2/24
[75] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 4/4/64
[76] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 4/2/11
[77] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 4/2/70
[78] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 4/4/99
[79] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 4/3/17
[80] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 4/2/105
[81] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 4/2/68
[82] श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम् 3/4/18
[83] "वृत् यजादिः"। वर्त्तिताः समापिता यजादय इत्यर्थः, धातुपारायणम्, पृ. 151
[84] धातुपारायणम्, पृ. 129

***

# गाँधी के सत्याग्रह के मायने

*सतीश कुमार* *

सत्याग्रह शब्द अंग्रेजी के 'पैसिव रेजिस्टेन्स' का द्योतक नहीं है, लेकिन सत्याग्रह शब्द से इसका भाव निश्चित रूप से प्रकट होता है। पैसिव रेजिस्टेंस शब्द, इंग्लैंड में वोट चाहनेवाली औरतों के आन्दोलन का समावेशी था। इन औरतों के द्वारा मकान को जलाना भी पैसिव रेजिस्टेंस था। यह भले ही पैसिव रेजिस्टेंस था परन्तु सत्याग्रह नहीं था। गाँधी जी के शब्दों में 'पैसिव रेजिस्टेंस' दुर्बल मनुष्यों का हथियार है, सत्याग्रह तो बलिष्ठ मनुष्य ही कर सकता है। यह शक्ति 'निष्क्रिय प्रतिरोध नहीं है, इस शक्ति के प्रयोग में प्रचण्ड क्रिया की आवश्यकता है।'

सत्य पर आग्रहपूर्वक डटे रहना ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह में शारीरिक बल का प्रयोग नहीं होता है न ही सत्याग्रही शत्रु को कष्ट देता है। सत्याग्रही शत्रु का नाश नहीं चाहता। सत्याग्रह के प्रयोग में द्वेष का सर्वथा अभाव होता है। सत्याग्रह विशुद्ध आत्मिक शक्ति है, आत्मा सत्य का स्वरूप है, इसलिए इस शक्ति को सत्याग्रह कहते हैं। आत्मा ज्ञानमय है। उसमें प्रेमभाव प्रज्वलित होता है। अज्ञान से यदि कोई हमें कष्ट देगा तो हम उसको प्रेम–भाव से जीत सकते हैं।

ध्यातव्य है कि असह्य दुःख का एकमात्र इलाज सत्याग्रह है। सत्याग्रही अपने को क्रोध से प्रेरित होकर खुद को मृत्यु की भेंट नहीं चढ़ाता किन्तु अपनी दुःख सहने की शक्ति की बदौलत अपने शत्रु के अथवा अत्याचार करने वाले के सामने मस्तक नहीं झुकाता। अतः सत्याग्रही व्यक्ति में वीरता, क्षमा और दया आदि गुण अवश्य होने चाहिए। सत्याग्रह धार्मिक साधन है इस कारण धार्मिक मनोवृत्ति के लोग ही उसका प्रयोग ज्ञानपूर्वक कर सकते हैं। सत्याग्रह के वैध होने अथवा न होने का प्रश्न बेकार है, सत्याग्रही ही उसका निर्णय कर सकता है। सत्याग्रही व्यक्ति को दुनिया की अप्रसन्नता उसके मार्ग से रोक नहीं सकती। एक सत्याग्रही अपना काम हानि–लाभ का विचार किये बिना सहज भाव से करता है। सत्याग्रह रूपी फसल के लिए प्रयत्न और साहसरूपी खाद की आवश्यकता पड़ती है। सत्याग्रही सेना में किसी का बहिष्कार नहीं है, उसके द्वारा किसी पर अत्याचार नहीं हो सकता। जहाँ धर्म–ज्ञान है वहाँ सत्याग्रह सहज होता है सत्याग्रह से असत्याग्रह के रास्ते पर जाना असंभव है।

सत्य का प्रयोग वास्तविक रूप से अध्यात्मिक है, वहाँ आत्मप्रशंसा का स्थान ही नहीं होता। सत्य केवल शब्दों तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि सोच में भी सत्यता होनी चाहिए। सत्य के तलाश में व्यक्ति को अपने सबसे प्रिय वस्तु को त्याग करने में जरा भी नहीं हिचकना चाहिए।

गांधी के शब्दों में 'मैंने जबतक सम्पूर्ण सत्य को जान नहीं लिया है तब तक जिस सम्बन्धित सत्य को मैंने समझा है, मैं उसपर टिका रहूँगा, इस बीच इस ये सम्बन्धित सत्य मेरे लिए मुझे रास्ता दिखाने वाला, मेरी ढाल और शरण देने वाला होगा।'

उल्लेखनिय है कि गाँधी द्वारा दक्षिण अफ्रिका और चंपारण में किया गया सत्याग्रह निष्क्रिय प्रतिरोध नहीं था। गाँधी का उद्देश्य चम्पारण में निलहों को खिझाना नहीं था बल्कि उन्हें विनय द्वारा जीतने का प्रयत्न था। सत्याग्रह द्वारा सत्याग्रही स्वयं के दुःख की गंभीरता को प्रकट करता है और इस प्रकार वह एक प्रकार से सरकार की मदद ही करता है। 'अहिंसा परमो धर्मः' सत्याग्रह का मूल है। अगर इस लौकिक जीवन में बैर–भाव प्रधान कारण होता तो संसार कब का नष्ट हो गया होता। अहिंसा सुषुप्त अवस्था है जबकि उसका जीता जागता रूप प्रेम है। गाँधी के लिए सत्य सर्वश्रेष्ठ सिद्धांत है जिसमें सभी दूसरे सिद्धांत निहित होते हैं।

**सन्दर्भ सूची :**

1. शंकरदयाल सिंह : महात्मा गाँधी सत्य से सत्याग्रह तक, अभिरूचि प्रकाशन, दिल्ली–32

---

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

2. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, चम्पारण में महात्मा गाँधी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पाँचवा संस्करण, 2014
3. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, बापू के चरणों में, नवजीवन, अहमदाबाद।
4. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
5. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, सत्याग्रह इन चम्पारण, नवजीवन, अहमदाबाद।
6. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, महात्मा गाँधी ऐन्ड बिहार, सम रिमिनिसेंसेज, बाम्बे।
7. डी0 जी0 तेन्दुलकर, गाँधी इन चम्पारण, पब्लिकेशन डिविजन, दिल्ली, 2005
8. सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, खंड 13–14, प्रकाशन विभाग, दिल्ली।
9. मोहनदास करमचन्द गाँधी, सत्य के मेरे प्रयोग, (गुजराती से अनुवाद : सूरज प्रकाश) राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2011
10. मोहनदास करमचन्द गाँधी, दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का इतिहास (अनुवाद : सोमेश्वर पुरोहित), नवजीवन, अहमदाबाद, 2007
11. राजमोहन गाँधी, द गुड बोटमैन : एक पोट्रेट ऑफ गाँधी, पेंगुइन बुक्स इंडिया, 1997।
12. विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त, नील के धब्बे, संवाद प्रकाशन, किला मुअल्ला, बेतिया, 1986।
13. रामचन्द्र गुहा, गाँधी बिफोर इंडिया, पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2014
14. गिरिराज किशोर, पहला गिरमिटिया, ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली
15. स्पीचेज ऐंड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गाँधी, जी0 ए0 नटेसन ऐंड कम्पनी, चौथा संस्करण
16. डॉ0 गिरीश मिश्र, एग्रेरियन प्राब्लेम्स ऑफ पर्मानेंट सेटलमेंट : ए केस स्टडी ऑफ चम्पारण, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1978
17. डॉ0 बी0 बी0 मिश्र, सेलेक्ट डाक्यूमेंटस आन महात्मा गाँधीज मूवमेंट इन चम्पारण 1917–18, डायरेक्टरेट ऑफ आर्काइव्स, बिहार सरकार, 2013
18. डॉ0 के0 के0 दत्ता, बिहार में स्वातन्त्रय आन्दोलन का इतिहास, खंड–1, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2014
19. महादेव देसाई, महादेव भाई की डायरी, खंड एक, राजघाट, वाराणसी, 2015
20. श्री पुंडलीकजी कातगडे, चम्पारण सत्याग्रह के अनुभव, संपादन व संकलन जयंत दिवाण, हिन्दी अनुवाद सुशील कुमार, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–221001

***

# बौद्ध परंपरा में शिक्षा-पद्धति

*प्रवीण कमार यादव* *

प्राचीन भारत में बालकों को गुरुकुल प्रणाली एवं स्वच्छ वातावरण में गृह नगर से दूर आश्रमों में शिक्षा दी जाती थी। गुरुकुल प्रणाली का मुख्य उद्देश्य बालकों में ज्ञान और सत्याचरण का संचार करना होता था। बालकों को मानवीय मूल्यों के प्रकाश से अवलोकित किया जाता था जिससे कि वे अपने व्यक्तित्व का भली–भांति विकास कर सकें। आचार व व्यवहार की शिक्षा आध्यात्मिक व शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर दी जाती थी। बालक आध्यात्मिक ज्ञान तथा मानवीय मूल्यों से ओतप्रोत शिक्षाएं उत्तम चरित्र वाले गुरुओं की छत्रछाया में रहकर प्राप्त करते थे। वे बौद्धिक, मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक विकास पाकर आध्यात्मिकता के उत्कर्ष की प्राप्ति के लिए सर्वदा तत्पर रहते थे।

प्राचीन काल की शिक्षा पद्धति के बारे में विचार करें, तो हम यह कह सकते हैं कि छात्र गुरुकुल में केवल शिक्षा ही नहीं पाता था बल्कि संपूर्ण जीवन प्राप्त करता था। संस्कार, व्यवहार, कर्तव्य का बोध, विषय वस्तु का ज्ञान आदि जीवन का सर्वांगीण विकास, अध्ययन एवं शिक्षण गुरुकुल पद्धति का आदर्श था। शिक्षा–पद्धति के साथ–साथ यदि शिक्षा के औचित्य की बात की जाए, तो व्यक्ति और समाज के निर्माण एवं विकास के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण और सर्वश्रेष्ठ साधन रही है। शिक्षा राष्ट्र का दर्पण है, जिसमें वहां की संस्कृति का झलक देखी जा सकती है और शिक्षित व्यक्तियों के आचार विचार से किसी राष्ट्र के स्वरूप का मूल्यांकन किया जा सकता है।

बौद्ध शिक्षा–प्रणाली में अक्षर ज्ञान पर अधिक बल दिया जाता था तथा अक्षर ज्ञान कराने के लिए मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता था। प्रारंभिक शिक्षा का पाठ्यक्रम अधिक विस्तृत नहीं था। सर्वप्रथम बालक को वर्णमाला के अक्षरों का ज्ञान कराया जाता था। बालकों की शिक्षा 'सिद्धमंचग' नामक पुस्तक से आरंभ की जाती थी। बालक सर्वप्रथम इस पुस्तक का अभ्यास करते थे। 'सिद्धमंचग' का अर्थ है "पूर्णता" या 'दक्षता' इस प्रकार बालकों को वर्णमाला के ज्ञान में सिद्धमंचक पुस्तक अत्यंत सहायक थी। बौद्ध कालीन शिक्षा मुखयतः प्रत्यक्ष विषयों पर आधारित थी तथा मौखिक थी। शिक्षण विधियां सिर्फ सैद्धांतिक नहीं, व्यवहारिक ज्ञान भी देती थी।

बौद्ध परंपरा में शिक्षण पद्धतियों की बात की जाए तो बौद्ध ग्रंथों में विभिन्न शिक्षण–विधियों का उल्लेख मिलता है जिसके आधार पर उनके निम्न भेद किए गए हैं–

(१) पाठ–विधि, (२) शास्त्रार्थ–विधि, (३) उपमा–विधि, (४) प्रश्नोत्तर–विधि, (५) उपदेश–विधि, (६) प्रमाण–विधि, तथा (७) स्वाध्याय–विधि ।

**पाठ–विधि :**

पाठ–विधि के द्वारा बालक के आरंभिक शिक्षा की नींव डाली जाती थी। लेखन एवं वाचन के द्वारा अंक एवं वर्णमाला का अभ्यास करवाया जाता था। इस विधि में गुरु बालक को चंदन की पट्टिका पर लिपि अर्थात् वर्णमाला, अंक आदि लिखना सिखाते थे। 'ललितविस्तर'[१] में बोधिसत्व के चंदन की पट्टिका पर संख्या, लिपि, गणना आदि सीखने का वर्णन आया है। इत्सिंग के अनुसार वर्णमाला में चालीस अक्षर थे।[२]

---

* शोध छात्र, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**शास्त्रार्थ–विधि :**

इस विधि का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। वाद–विवाद, खंडन–मंडन इस विधि के अंग हैं। इस विधि में तथ्य एक ही होता है, परंतु उसकी प्राप्ति के लिए पूर्वपक्ष एवं उत्तरपक्ष विभिन्न तर्कों एवं युक्तियों का सहारा लेते हैं।

'विनयपिटक'[३] में चार प्रकार के अधिकरण का उल्लेख मिलता है जिससे शास्त्रार्थ–विधि का स्वरूप निर्धारित होता है–

(१) **विवादाधिकरण–** विवादित विषय के संबंध में निर्णय करनाविवादाधिकरणहै।

(२) **अनुवादाधिकरण**– शास्त्रार्थ के समय किसी विषय पर एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को नियम के उल्लंघन का दोषी ठहराना अनुवादाधिकरण है।

(३) **आपत्ताधिकरण**– भिक्षुद्वारा आचार संबंधी सिद्धांत का जान–बूझकर उल्लंघन करना आपत्ताधिकरण है।

(४) **किच्चाधिकरण**– संघ संबंधी नियम पर विचार करना किच्चाधिकरण कहलाता है।

बौद्ध ग्रंथ में किसी सिद्धांत को शास्त्रार्थ के निमित्त प्रतिपादित करने को अनुलोम तथा प्रतिपक्षी के उत्तर की संज्ञा को प्रतिकर्म (पटिकम्म) कहा गया है। इसी तरह प्रतिपक्ष के पराजय को निग्रह (निग्गह), प्रतिपक्ष के हेतु का उसी के सिद्धांत में प्रयोग करने को उपनय तथा अंतिम सिद्धांत को निगमन कहा गया है।[४]

**उपमा–विधि :**

उपमा–विधि को उदाहरण विधि भी कहा जा सकता है। इस शैली का प्रयोग कथ्य विषय को और स्पष्ट करने के लिए किया जाता था। भगवान् बुद्ध तथा उनके अनुयायियों ने इस विधि का खुलकर प्रयोग किया था। 'मिलिन्दपन्ह' में नागसेन ने राजा मिलिन्द के प्रश्नों का उत्तर विभिन्न उपमाओं के माध्यम से दिया है।[५] इस विधि के द्वारा गुरु विषय को सरलतम ढंग से हृदयंगम करने योग्य तथा कर्णप्रिय बनाते थे।[६] जिससे शिक्षार्थी आसानी से तथ्य को समझ सके।

**प्रश्नोत्तर–विधि :**

इस विधि में गुरु और शिष्य दोनों एक दूसरे से प्रश्न करते थे तथा एक– दूसरे के प्रश्नों का उत्तर देते थे। 'कथावस्तु' एवं 'मिलिन्दपन्ह' में इस विधि का विशेष रूप से प्रयोग हुआ है। बौद्ध साहित्य में चार प्रकार के प्रश्नोत्तर शैली का निरूपण है।[७]

(१) **एकांशव्याकरणीय–** जिस प्रश्न का उत्तर सरल रूप से दिया जाता है वह एकांशव्याकरणीय है, जैसे – प्रश्न– क्या प्राणी जो उत्पन्न हुआ है, वह मरेगा? उत्तर–हां।

(२) **विभज्यव्याकरणीय–** जिस प्रश्न का उत्तर विभक्त करके दिया जाता है वह विभज्यव्याकरणीय है, जैसे– क्या मृत्यु के बाद प्रत्येक प्राणी जन्म लेता है? उत्तर–क्लेश से विमुक्त प्राणी जन्म नहीं लेता और क्लेशयुक्त प्राणी जन्म लेता है।

(३) **प्रतिपृच्छाव्याकरणीय–** जिस प्रश्न का उत्तर एक दूसरा प्रश्न पूछ कर दिया जाता है वह प्रतिपृच्छाव्याकरणीय है, जैसे– क्या मनुष्य उत्तम है या अधम? इसका उत्तर देने के लिए पूछना पड़ेगा कि किस के संबंध में? यदि प्रश्न पशुओं के संबंध में है तो उसका उत्तर होगा– मनुष्य उनसे उत्तम है। यदि इस प्रश्न का संबंध देवताओं से है तो वह उनसे अधम है।

(४) **स्थापनीय–** जिस प्रश्न का उत्तर बिल्कुल छोड़ देने से ही दिया जाता है, जैसे– क्या पंचस्कंध तथा जीवित प्राणी (सत्व) एक ही है? इस प्रश्न का उत्तर छोड़ देने में ही दिया जा सकता है क्योंकि बौद्ध परंपरा के अनुसार सत्व कोई है ही नहीं।

इन चारों प्रकार को जान लेने वाला दुर्विजय, गंभीर ,अनाक्रमणीय, अर्थ–अनर्थ का जानकार और पंडित होता है।[८]

**उपदेश विधि :**

इस विधि में गुरु–शिष्य को व्याख्यान द्वारा शिक्षा प्रदान करते थे। वर्तमान में भी या विधि बहुत लोकप्रिय है। स्वयं भगवान बुद्ध ने उपदेश–विधि के द्वारा सर्वप्रथम सारनाथ में अपने पांच शिष्यों को शिक्षा दी थी। उपदेश देना कोई बंधन नहीं है। एक बार भगवान बुद्ध से शक नामक एक यक्ष ने कहा कि जिसकी सभी गांठें कट गई हों, स्मृतिमान् और विमुक्त हुए आप श्रमण को यह अच्छा नहीं लगता कि दूसरों को उपदेश देते रहें। भगवान् ने कहा–

शक! किसी तरह भी किसी का संवास हो जाता है,
तो ज्ञानी पुरुष के मन में उसके प्रति अनुकंपा हो जाती है,
प्रसन्न मन से जो दूसरे को उपदेश देता है,
उससे वह बंधन में नहीं पड़ता, अपनी अनुकंपा अपने से पैदा होती है।[९]

अर्थात् उपदेश देने से मन को शांति मिलती है तथा वह बंधन में नहीं पड़ता है। विनयपिटक में कहा गया है कि शिष्य को उपदेश ग्रहण करना चाहिए या स्वयं उपदेश करे या दूसरे से इसके लिए प्रार्थना करे।[१०]

**प्रमाण–विधि :**

अज्ञात अर्थों को प्रमाण–विधि के द्वारा प्रकाशित किया जाता था। प्रमाण को परिभाषित करते हुए 'प्रमाणवार्तिक'[११] में कहा गया है– प्रमाण वह ज्ञान है जो अज्ञात अर्थ को प्रकाशित करता है और वस्तुस्थिति के विरुद्ध कभी नहीं जाता, वह अविसंवादी होता है। प्रमाण तथा वस्तुस्थिति में किसी प्रकार विसंवाद या असामंजस्य नहीं होता। जो ज्ञान कल्पना के ऊपर अवलंबित रहता है वह विसंवादी होता है तथा जो ज्ञान अर्थ–क्रिया के ऊपर अवलंबित रहता है वह अविसंवादी होता है।[१२]

प्रमाण के दो भेद हैं– (१) स्वलक्षण अर्थात् प्रत्यक्ष, (२) सामान्यलक्षण अर्थात् अनुमान। प्रत्यक्ष एवं अनुमान दोनों ही ज्ञान अविसंवादक होने से प्रमाण हैं। अर्थक्रियासामर्थ्य से युक्त स्वलक्षण को विषय करने के कारण प्रत्यक्ष स्वतः अविसंवादक है जबकि अनुमान की अविसंवादकता उसके द्वारा स्वलक्षण की प्राप्ति कराए जाने पर निर्भर करती है। यद्यपि धर्मकीर्ति ने अनुमान को भ्रांत ज्ञान माना है[१३] तथापि सामान्यलक्षण विषयक अनुमान से अर्थक्रियासमर्थ स्वलक्षण की प्राप्ति होने से उसे अविसंवादक माना है।

**प्रत्यक्ष :**

वह ज्ञान जो कल्पना से रहित और अभ्रांत हो उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। प्रत्यक्ष के चार भेद हैं– (१) इंद्रिय प्रत्यक्ष, (२) मानस प्रत्यक्ष, (३) स्वसंवेदन प्रत्यक्ष, (४) योगजप्रत्यक्ष।

(१) **इंद्रिय प्रत्यक्ष–** इंद्रिय द्वारा जो कल्पनारहित और अभ्रांतज्ञान प्राप्त होता है वह इंद्रिय प्रत्यक्ष है। इसे परिभाषित करते हुए धर्मकीर्ति ने कहा है– सभी ओर से चिंतन अथवा विकल्प को समेटकर शांत चित्त से युक्त पुरुष चक्षु से रूप को देखता है तब इंद्रियजन्य प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।[१४]

(२) **मानस प्रत्यक्ष–** इंद्रिय ज्ञान के विषय को समनन्तर प्रत्यय बनाकर जो मन में उत्पन्न होता है वही मानस प्रत्यक्ष है।[१५] जिस कारण से पूर्व ज्ञान का उद्‌बोध होता है उस कारण को 'समनन्तरप्रत्यय' कहते हैं। इस ज्ञान के तीन स्तर होते हैं– (क) यह ज्ञान इंद्रिय ज्ञान के अनंतर उत्पन्न होता है, (ख) इंद्रिय ज्ञान के विषय क्षण के अनंतर उत्पन्न सजातीय द्वितीय क्षण

इसका विषय बनता है और (ग) इंद्रिय विज्ञान तथा द्वितीय–क्षण विषय के द्वारा एक मनोविज्ञान उत्पन्न होता है।

(३) **स्वसंवेदन प्रत्यक्ष–** समस्त चित्त तथा चैत्त पदार्थों का आत्मसंवेदन या स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है।[१६] यहां चित्त का अभिप्राय ज्ञान से है जो अर्थमात्र का ग्राहक होता है तथा चित्त में प्रकट होने वाली सुख–दुःख आदि रूप विभिन्न अवस्थाएं चैत्त हैं। चित्त और चैत्तों का ज्ञान होना स्वसंवेदन है।

(४) **योगज प्रत्यक्ष–** यथार्थ या भूतार्थ का पुनः पुनः चिंतन करने से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे योगज प्रत्यक्ष कहते हैं।[१७] दूसरे शब्दों में जब यथार्थ तत्त्वों के चिंतन का प्रकर्ष हो जाता है तब योगज प्रत्यक्ष ज्ञान प्रकट होता है।[१८]

**अनुमान :**

किसी संबंधी धर्म से धर्मी के विषय में जो परोक्ष ज्ञान होता है, वह अनुमान है।[१९] अनुमान के दो भेद हैं– (१) स्वार्थानुमान, (२) परार्थानुमान। स्वार्थानुमान का प्रयोग किसी निर्णय पर पहुंचने के लिए किया जाता है और परार्थानुमान का प्रयोग किसी दूसरे को समझाने के लिए किया जाता है।

(१) **स्वार्थानुमान–** जिस अनुमान द्वारा प्रमाता स्वयं अनुमेय अर्थ का ज्ञान करता है वह स्वार्थानुमान कहलाता है।[२०]

(२) **परार्थानुमान–** स्वार्थानुमान के द्वारा निश्चित अर्थ का जब हेतु एवं दृष्टांत के द्वारा अन्य की प्रतिपत्ति के लिए कथन किया जाता है तो वह परार्थानुमान कहलाता है।[२१]

**स्वाध्याय–विधि :**

बौद्ध शिक्षण–प्रणाली में स्वाध्याय पर विशेष बल दिया गया है। स्वाध्याय का अर्थ होता है– आत्मा के लिए हितकर शास्त्रों का अध्ययन करना। स्वाध्याय से चित्त शांत रहता है, मन को संतोष प्राप्त होता है तथा बाह्य जगत में आदर और प्रतिष्ठा मिलती है। 'संयुक्तनिकाय' में वर्णित है– 'एक समय कोई भिक्षु कौशल के वनखंड में विहार करता था। उस समय वह भिक्ष ु पहले स्वाध्याय में लगा रहता था– उत्सुकता रहित हो चुपचाप अलग बैठा रहता था। तब उस वन में रहने वाले देवता उस भिक्षु के धर्मपठन को न सुनकर भिक्षु के पास आए और बोले–

भिक्षु! क्यों आप उन धर्म पदों को,
भिक्षुओं से मिलकर नहीं पढ़ा करते हैं?
धर्म को पढ़कर मन में संतोष होता है,
बाहरी संसार में भी उसकी बड़ी बड़ाई होती है।
भिक्षुबोला–
पहले धर्म पदों को पढ़ने की ओर मन बढ़ता था,
जब तक वैराग्य नहीं हुआ,
जब पूरा वैराग्य चला आया,
तो संत लोग देखे–सुने आदि पदार्थों को
जानकर त्याग कर देना कहते हैं।'[२२]

स्वाध्याय करने से मन की शांति के साथ–साथ इस दुःखमय में संसार के प्रति वैराग्य की भावना उत्पन्न होती है। 'जातक' में एक आचार्य के बारे में वर्णन आया है कि पहले तो वे ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर वेद पढ़ते और पढ़ाते थे। प्रथम आश्रम का त्याग करके गृहस्थ आश्रम के चक्कर में फंसे। स्वाध्याय की गड़बड़ी पैदा हो गई और वेदों का तत्त्वार्थ उन्हें अरूचिकर लगने लगा। वे भगवान् बुद्ध की सेवा में अपनी व्यथा सुनाने आए। भगवान् ने उन्हें फिर से

अरण्यवासी होने की सलाह दी। गृहस्थ आश्रम में रहते हुए वे स्वस्थचित्त से वेदाध्ययन नहीं कर सकते थे और बिना स्वाध्यायहैकियेतत्त्वार्थका बोध असंभव था।[२३] अतः स्वाध्याय अपने आप में एक तप है जिसके द्वारा इंद्रियां संयमित रहती हैं तथा ज्ञान–विज्ञान का विकास होता है और शिक्षार्थी अपने कार्य पथ पर अग्रसर होते हैं।

उपरोक्त विवरणों से हमें यह विदित होता है कि बौद्ध परंपरा में शिक्षा–पद्धति अत्यंत विकसित एवं सुनियोजित थी। जिसके माध्यम से शिक्षा व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाया जाता था। जिसकी प्रासंगिकता एवं महत्ता वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी महसूस होती है। इसमें वर्णित शिक्षण–विधियां, जैसे– पाठ–विधि, उपमा–विधि, प्रश्नोत्तर–विधि, उपदेश–विधि, प्रमाण–विधि एवं स्वाध्याय विधि अलग–अलग संदर्भ में प्रयुक्त होती थी, जिनमें से अधिकांश शिक्षण विधियां आज भी प्रचलित हैं। इस प्रकार बौद्ध शिक्षण–पद्धति भारतीय समाज को एक अमूल्य देन है।

**सन्दर्भ :**


1. 'ललितविस्तर' (हि०अनु०) अ० १०,पृ०–२४६ तथा लेफमैन, 'ललितविस्तर', १२५/७.
2. 'इत्सिंग रेकर्ड', पृ० १७०–१७४.
3. 'विनयपिटक' के पंचम खण्ड(डॉ ओल्डनवर्ग संस्करण) के ६–१३ अध्याय, पाली टेक्स्ट सोसाइटी, संस्करण उद्धृत, 'बौद्धदर्शन मीमांसा', पं० बलदेव उपाध्याय।
4. 'बौद्धदर्शन मीमांसा', द्वितीय संस्करण, पं० बलदेव उपाध्याय, पृ०–३१८
5. 'मिलिन्दपन्हपालि', ओपम्मकथापन्ह, पृ०– २५६.
6. 'मिलिन्दपन्ह', बहिरकथा, गाथा ३–४.
7. बौद्धदर्शनमीमांसा', पं० बलदेव उपाध्याय, पृ० –४२.
8. 'अंगुत्तरनिकाय',उद्धृत 'जैनदर्शनऔर संस्कृति का इतिहास', पृ०– ३६६–४००.
9. 'विनयपिटक', राहुल सांकृत्यायन, पृ०–१४६.
10. 'संयुक्तनिकाय', सक्कसुत्त, पृ०– १६४.
11. 'प्रमाणवार्तिक', २/१.
12. वही०, २/४.
13. वही०,२/५४.
14. वही०,२/१२४.
15. 'न्यायविन्दु', १/६.
16. वही०,१/१०
17. Buddhist Logic-Vol-2,p-31
18. 'न्यायविन्दु', १/११.
19. 'प्रमाणवार्तिक', २/६२.
20. 'न्यायविन्दु'(टीका), २/२.
21. 'प्रमाणसमुच्चय', उद्धृत–'द्वादशारनयचक्र', भाग–१, परिशिष्ट, पृ० १२५.
22. 'संयुक्तनिकाय'(अनु०), भाग–१,पृ० १६१.
23. 'जातककालीन भारतीय संस्कृति', पृ० १००.


***

# कम्पनी-शासन में भारत में अनौद्योगीकरण एवं ग्रामीण ऋणग्रस्तता

*श्वेता कुमारी* *

1800 ई0 तक भारतीय उद्योग–धन्धे संसार में सबसे अधिक विकसित थे क्योंकि अभी उद्योग केवल कुटीर उद्योग ही थे। उसके उपरान्त देश ने एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप विदेशों में औद्योगीकरण होने लगा और उत्पादन बढ़ने लगा। भारत में औद्योगिक पतन हुआ और शनैः–शनैः उत्पादन कम और अधिक कम होता चला गया। इस युग को 1800–50 तक, हम अनौद्योगीकरण का काल कह सकते हैं। भारत के परम्परागत हस्तशिल्प उद्योग का ऐसा ह्रास हुआ कि वह मर गया। यह वही काल था, जब इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति दृढ़ पैर जमा रही थी और भारतीय अर्थव्यवस्था पर इंग्लैण्ड का नियन्त्रण सुदृढ होता जा रहा था।

मॉरिस डी० मॉरिस तथा डी० एन० थारनर जैसे विदेशी विद्वान इस पक्ष पर बल देते कभी नहीं थकते कि हस्तशिल्प उद्योगों का ह्रास औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप अपरिहार्य ही था और यह समस्त संसार में देखने को मिलता है।

भारत की इस विशेष स्थिति–जो कि यूरोपीय तथा उत्तरी अमेरिका से पूर्णतया भिन्न थी– का संक्षेप में विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है–

1. 19वीं शताब्दी में भारतीय हस्तशिल्प का अत्यधिक ह्रास हुआ एक ऐसी स्थिति जो 20वीं शताब्दी में भी चलती रही।
2. यूरोप में हस्तशिल्प का ह्रास इसलिए हुआ कि वहाँ पर उसके बदले कारखानों का विकास हुआ और उत्पादन बढ़ा जबकि भारत में यह ह्रास इसलिए हुआ कि अंग्रेज उद्योगपति अपना माल भारत में मनमाने भाव में बेचकर देश का धन्धा ठप्प कर सकते थे और अपने लिए अधिक धन कमा सकते थे।

इन दोनों कारणों के फलस्वरूप भारतीय जनसंख्या तथा उद्योगों में काम कर रही जनसंख्या का अनुपात कम होता चला गया।

19वीं शताब्दी औद्योगिक पूंजी काल था अर्थात् इस युग में उभरते हुए अंग्रेज उद्योगपतियों तथा व्यापारियों ने आक्रामक रुख अपनाया, जिसका आधार था 'स्वतंत्र व्यापार'। उनके लगातार प्रचार तथा संसद सदस्यों के प्रभाव के कारण 1813 के चार्टर एक्ट द्वारा भारतीय व्यापार पर एकाधिकार समाप्त कर दिया गया। अब भारतीय व्यापार का स्वरूप बदल गया। अब तक भारत मुख्य रूप से निर्यात करने वाला देश था परन्तु अब से आगे यह आयात करने वाला देश बन गया। बढ़िया अंग्रेजी सूती माल की भारतीय मण्डियों में बाढ़ आ गयी और देश का बुनकर उद्योग ठप्प हो गया। लॉर्ड विलियम बैटिंक की सरकार ने भी 1834 में यह कहा था, ''इस दुर्दशा का व्यापार के इतिहास में जोड़ नहीं। भारतीय बुनकरों की हड्डिया भारत के मैदानों में बिखरी पड़ी है।'' कार्ल मार्क्स ने जो एक अत्यंत दूरदर्शी प्रेक्षक थे, उन्होंने कहा, '''यह अंग्रेज घुसपैठिया था, जिसने भारतीय खड्ड़ी और चरखों को तोड़ दिया। पहले इंग्लैण्ड ने भारतीय सूती माल को यूरोपीय मण्डियों से बाहर निकाला और फिर भारत में जो सूती माल की माता थी, अंग्रेजी 'बटे' हुए माल को भेज कर सूती माल की बाढ़ ला दी।''[4]

डॉ० डी० आर० गाडगिल ने भारतीय हस्तशिल्प के हास के तीन मुख्य कारण बताये है–

1. भारतीय राजा बढ़िया हस्तशिल्प को संरक्षण देते थे और प्रायः उत्तम शिल्पियों को वेतन देकर अपने यहाँ काम में लगाये रखते थे, उनका सर्वनाश हो गया।
2. विदेशी प्रशासन की स्थापना के फलस्वरूप भारत के समाज में एक परिवर्तन आया। भारत में यूरोपीय पदाधिकारियों तथा शिक्षित वर्ग ने नया रुख अपनाया। वे विदेशी रहन–सहन अपनाने लगे और विदेशी उद्योगों को संरक्षण देने लगे। सभी भारतीय पक्षों, वस्त्र, पहनावा, रहन–सहन को हेय दृष्टि से देखने लगे।
3. अत्यधिक विकसित मशीनी माल का मुकाबला भारतीय उद्योग नहीं कर सकता था। उसे तो संरक्षण की आवश्यकता थी, न कि खुले व्यापार से मारे जाने की।

एक अन्य लेखक मेजर बी०डी० बसु ने इंग्लैण्ड द्वारा भारतीय शिल्प के हनन के लिए राजनीतिक शक्ति के प्रयोग की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है। उनके अनुसार ये ढंग निम्नलिखित थे : (1) भारत पर मुक्त व्यापार प्रणाली

* शोध छात्रा, इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

का थोपना, (2) भारतीय निर्माताओं के माल पर इंग्लैण्ड में आयात करने पर अत्यधिक शुल्क, (3) भारत के कच्चे माल का निर्यात, (4) भारतीय माल पर आते–जाते समय कर, (5) विदेशी निर्माताओं को उद्योग लगाने के लिए विशेष सुविधाएं देना, (6) भारतीय शिल्पियों को अपने रहस्य देने पर बाध्य करना, (7) व्यापार मेलों तथा प्रदर्शनियों का लगाना, (8) रेल मार्गों का विकास।

भारतीय हस्तशिल्प का हास सारी 19वीं शताब्दी में चलता रहा और 20वीं शताब्दी के मध्य तक, परन्तु यह भारतीय शिल्प की महत्ता है कि इन अनगिनत विषमताओं के होते हुए भी इसने अपने आपको जीवित रखा। ग्रामीण जनता, जो कि प्रायः बहुत निर्धन होती थी, ने अधिक सस्ते खादी कपड़े को अपनाये रखा और ग्राम में लोहे तथा लकड़ी के बने कृषक उपकरणों का प्रयोग जारी रखा। 20वीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों से स्वदेशी आन्दोलन के फलस्वरूप इन स्थानीय उद्योगों को थोड़ा बहुत संरक्षण मिलना आरम्भ हुआ। और खादी तथा ग्राम उद्योगों के लिए नगरों में दुकानें खुलीं। गांधी युग में ग्राम उद्योगों को और प्रोत्साहन मिला, तथा भारतीय हस्तशिल्प को जीवित रखने में सहायता मिली।

अनौद्योगीकरण के साथ–साथ भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि पर अधिकाधिक निर्भर होने लगी और भूमि पर दबाव बढ़ने लगा। ढाका, मुर्शिदाबाद तथा सूरत में रहने वाले लाखों की संख्या में उत्पादक वर्ग जो अब बेकार हो गए थे, ग्रामों की ओर चल पड़ा। जनसंख्या के कृषि पर अधिकाधिक निर्भर होने के फलस्वरुप भारतीय अर्थव्यवस्था को एक नया मोड़ मिला अर्थात कृषि से अधिकाधिक कच्चे माल का उत्पादन 19वीं और 20वीं शताब्दी के अंग्रेजी लेखकों ने भारत को यह याद दिलाने में बड़ा गर्व अनुभव किया कि यह एक कृषि प्रधान देश ही था।

यदि हम इस तथ्य का ध्यान से विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि भारत के प्रति अंग्रेजी आर्थिक नीति का उद्देश्य यह था कि भारतीय हस्तशिल्प उद्योग का पूरी तरह नाश कर दिया जाय और भारत में कृषि के साधनों का इस प्रकार विकास किया जाय कि भारत औद्योगिक इंग्लैण्ड के लिए कृषि का क्षेत्र बन जाय। 1769 में भी कम्पनी के डाइरेक्टरों ने भारत में कम्पनी के एजेण्टों को लिखा कि वे प्रयत्न करें कि भारत से बने हुए सिल्क के स्थान पर कच्चे रेशम का निर्यात करे उद्देश्य यह था कि सिल्क लपेटने वालों को घर में काम करने की अनुमति न हो बल्कि वे कम्पनी के गोदामों में काम करें। हाऊस ऑफ कामन्स की प्रवर समिति ने इस विवशता तथा प्रोत्साहन की नीति की प्रशंसा की और 1783 में यह सोचना आरम्भ कर दिया कि ऐसी अच्छी नीति बनायी जाय, जिससे औद्योगिक भारत का स्वरुप बदल दिया जाय और वह इंग्लैण्ड के उत्पादकों के अधीनस्थ केवल कच्चा माल का उत्पादक ही रह जाय। आर० सी० दत्त ने ठीक ही कहा है कि यह एक ऐसा प्रस्ताव था, जिसमें 1833 या उसके पश्चात् की भारत के प्रति इंग्लैंड की नीति का स्पष्टीकरण था। इससे भारत के बहुत से राष्ट्रीय उद्योगों का पूरी तरह सफाया हो गया ताकि अंग्रेजी उत्पादकों को लाभ हो। औद्योगीकरण के कारण इंग्लैण्ड के आर्थिक विकास का स्वरूप बदल गया। इसके उभरते हुए कपड़ा उद्योग को अपने कारखानों के लिए कच्चा माल और बने हुए माल के लिए मण्डियाँ चाहिए थी। इसलिए अंग्रेजों को भारत के औपनिवेशिक शोषण की पद्धति में कुछ परिवर्तन चाहिए थे। अब आवश्यक था कि वणिक पूँजीवाद के स्थान पर मुक्त व्यापार पूँजीवाद को बढ़ावा मिले। 1813 के चार्टर ऐक्ट द्वारा कम्पनी के भारतीय व्यापार पर एकाधिकार की समाप्ति और 1833 के चार्टर ऐक्ट द्वारा कम्पनी के व्यापारिक कार्य को पूर्णतः समाप्त कर देने को इन्ही विचारों के सन्दर्भ में देखना होगा।

औद्योगिक इंग्लैण्ड को भारत के कृषि साधनों के विकास करने की आवश्यकता थी परन्तु इसमें एक रुकावट यह थी कि भारत का कच्चा माल उच्च कोटि का नहीं था। इस त्रुटि को पूर्ण करने के लिए यह आवश्यक था कि अंग्रेजी नागरिकों को भारत में मुक्त रूप से जाने तथा बसने की अनुमति हो। इसलिए चार्टर ऐक्ट 1883 ने यूरोपीय लोगों के भारत में जाकर बसने तथा वहाँ सम्पत्ति मोल लेने की अनुमति दे दी। अब अंग्रेजी पूँजी भारत की चाय, काफी, नील और पटसन के बागीचों में लगायी जाने लगी। भारत सरकार ने उन्हें हर प्रकार की सुविधायें प्राप्त करायीं। आसाम, वेस्टलैण्ड रूल्स में यह प्रावधान था कि किसी भी व्यक्ति को 3000 एकड़ तक भूमि क्षेत्र एक निश्चित राशि के बदले दिया जा सकता था और इस पर उन्हें कोई भूमि कर नहीं देना होता था। आसाम के चाय बागीचा मालिकों ने अपने खेतों पर काम करने के लिए मजदूर भर्ती करने के लिए हर प्रकार के जोर–जबर और धोखाघड़ी की नीति अपनायी सरकार ने इस शोषण को वैधानिक छत्रछाया प्रदान की। 1859 के ऐक्ट ग्ग्ग् तथा इंग्लैण्ड इमीग्रेशन ऐक्ट द्वारा संविद को भंग करना एक फौजदारी जुर्म था और भागने वाले श्रमिक को चाय बागीचा मालिकों द्वारा बिना वारण्ट के पकड़े जाने की अनुमति दे दी गयी।

एलिस तथा डेनियल थार्नर ने यह ठीक ही अनुमान लगाया है कि भारत में उद्योग से कृषि की ओर प्रचलन 1815 से 1880 की बीच हुआ।[5] दुर्भाग्य से 1881 के पूर्व से आंकड़े प्राप्त नहीं है।

1931 की जनगणना रिपोर्ट में कृषि तथा अन्य कार्यों में लगी जनसंख्या की दर 611 प्रतिशत ही है। वेराएन्स्टे ने इस संख्या का कम होना केवल 'भ्रामक है' बताया है, जिसका कारण वर्गीकरण का बदलना था न कि रोजगार का बदलना।[6]

कृषि पर अधिक दबाव के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में अधिक विकृति आ गयी और कृषि क्षेत्र में गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गई। कृषि पर आधारित जनसंख्या के बढ़ने से निर्धनता बढ़ी न कि उपज बहुत से ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक कारणों से भारतीय कृषि का आधुनिकीकरण नहीं हो सका और स्वयमेव उत्पादक के रूप में काम किया।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक और परिवर्तन हुआ। वह था कृषि का वाणिज्यिकरण। इस समय तक कृषि एक जीवन–यापन का मार्ग था, न कि व्यापारिक प्रयत्न। अब कृषि पर वाणिज्यिक प्रभाव आने लगे तथा कुछ विशेष फसलों का उत्पादन ग्रामीण उपभोग के लिए नहीं अपितु राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय मण्डियों के लिए होने लगा। कपास, पटसन, मूँगफली, तेलहन, गन्ना, तम्बाकू जैसी वाणिज्यिक फसलें अब अन्न के स्थान पर अधिक लाभदायक सिद्ध होने लगीं। इसके अतिरिक्त मसालों, फलों और सब्जियों का उत्पादन बढ़ने लगा। यह वाणिज्यिकरण सबसे अधिक चाय, रबड आदि के भावों में अधिक स्पष्ट था, जिनके लिए विस्तृत मण्डियाँ होती थीं। इस वाणिज्यिकरण और विशेषीकरण के लिए कई कारण थे। यह मुद्रा अर्थव्यवस्था थी अर्थात् रूढ़ि और परम्परा के स्थान पर संविदा तथा प्रतियोगिता, देशी और विदेशी व्यापार का बढ़ना, रेलों तथा सड़क संचार साधनों से राष्ट्रीय मण्डी का विकास तथा अंग्रेजी पूँजी के आने से विदेशी व्यापार का बढ़ना। भारतीय कृषि का वाणिज्यिकरण कृषकों के लिए एक आर्थिक विवशता थी। भूमि कर अत्यधिक था, जिसे वह प्रायः दे नहीं पाता था। उसे साहूकार का सहारा लेना पड़ता था, जहाँ उसे अत्यधिक ब्याज देना पड़ता था और उसके लिए उसे अपनी फसल औने–पौने भाव बेचनी पड़ती थी। कई बार तो कृषक को अपनी ही बेची हुई उपज छः मास पश्चात् बड़े महंगे भाव पर खरीदनी पड़ती थी। अब भारतीय कृषि मूल्यों पर विदेशी उतार–चढ़ाव का प्रभाव भी होने लगा। 1880 के पश्चात् जो कपास के भाव बढ़े, उसका अधिकतर लाभ बिचौलियों को हुआ, न कि कृषकों को 1866 में जब मंदी आई तो मारा गया बेचारा कृषक, जिसके फलस्वरूप ग्रामों में ऋणग्रस्तता बढ़ी, अकाल पड़े और दक्कन में कृषि दंगे हुए। इस वाणिज्यिकरण से कृषक को कोई लाभ नहीं हुआ। न ही इस आधुनिकीकरण से कृषि के उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई। कई कारणों से यह उत्पादन बहुत थोड़ा ही बना रहा। डेनियल थार ने ठीक ही 1890 से 1947 तक के काल को 'कृषि स्थिरता का काल' बताया है।

संदर्भ :

1. डॉ0 अशोक कुमार चटर्जी, देवेश कुमार सिंह, 'भारत का आर्थिक इतिहास' जानकी प्रकाशन, 2004.
2. डॉ० वायलेकर, उद्धृत, भट्ट, बी० बी०; ऑस्पेक्ट्स ऑफ इकोनॉमिक चेन्ज एण्ड पॉलिसी इन इण्डिया.
3. मूरलैण्ड, डब्ल्यू० एच०; दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया, कैम्ब्रिज, 1929.
4. हैमिल्टन, 'प्राब्लेम्स ऑफ मिड्ल ईस्ट', लंदन 1909.
5. एफ. बर्नियर, 'ट्रैवेल्स इन द मुगल एंपायर' 'ऑक्सफोर्ड, 1934.
6. बी० बी० मिश्रा : दि इंडियन मिडिल क्लासेज–देयर ग्रोथ इन मॉडर्न टाइम्स (लंदन, 1961).

***

# सतत् आन्तरिक मूल्यांकन : आवश्यकता एवं महत्व

*डॉ.(श्रीमती)नीलिमा श्रीवास्तव**

सतत् आन्तरिक मूल्यांकन का प्रत्यय वस्तुतः परीक्षा सुधार के दो सिद्धान्तों पर आधारित है। प्रथम, जो व्यक्ति अध्यापन कार्य करे वही व्यक्ति मूल्यांकन का भी कार्य करें तथा द्वितीय, मूल्यांकन कार्य सत्रान्त में न होकर सम्पूर्ण सत्र के दौरान लगातार होता रहे। सतत् आन्तरिक मूल्यांकन प्रणाली के अन्तर्गत छात्रों की शैक्षिक प्रगति का मूल्यांकन शिक्षण कार्य कर रहे, अध्यापकों के द्वारा सत्र के बीच में लगातार थोड़े–थोड़े अन्तराल पर किया जाता रहता है तथा छात्रों को उनकी कमियों व सफलताओं की जानकारी दी जाती है। इससे छात्रों को पृष्ठ–पोषण (Feed back) मिलता है तथा वे अपनी क्षमताओं के अनुरूप सर्वोत्तम शैक्षिक प्रगति करने के लिए प्रयासरत रहते है। सतत् आन्तरिक मूल्यांकन छात्रों के साथ–साथ अध्यापकों को भी अपनी शिक्षण योजना में सुधार करने के अवसर प्रदान करता है। छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान व कौशल की जानकारी के आधार पर अध्यापकगण भी अपनी शिक्षण व्यूह रचना (Teaching Strategy) को यथा आवश्यक परिवर्तित कर सकता है। निःसंदेह सतत् आन्तरिक मूल्यांकन का यह प्रत्यय न केवल परीक्षा सुधार की दृष्टि से वरन् सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली में वांछित सुधार लाने की दिशा में एक सार्थक कदम है।

सतत् आन्तरिक मूल्यांकन प्रणाली उस प्राचीन परम्परा का ही एक अधिक व्यवस्थित व औपचारिक रूप है जिसमें अध्यापकगण दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक तथा वार्षिक परीक्षाओं के द्वारा अपने छात्रों के ज्ञान, बोध व कौशल का मापन करते थे तथा उन्हे सुधार हेतु आवश्यक पृष्ठ–पोषण (Feed back) प्रदान करते थे।

शिक्षण, अधिगम तथा मूल्यांकन शिक्षा रूपी भवन के तीन प्रमुख स्तम्भ माने जाते है। इनमें से किसी भी स्तम्भ के कमजोर होने पर शिक्षा रूपी भवन का टिके रहना असम्भव होता है। परीक्षा प्रणाली के माध्यम से शिक्षा प्रक्रिया की सफलता तथा असफलता का आकलन किया जाता है। शिक्षा अधिगम की प्रभावशीलता तथा उसमें आवश्यक सुधार मूल्यांकन के द्वारा सम्भव होता है।

**मूल्यांकन के उद्देश्य :**

मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है जो यह सुनिश्चित करता है कि शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई है तथा साथ ही साथ यह छात्रों, शिक्षकों, पाठ्यक्रम निर्माताओं एवं नीति निर्धारकों को आवश्यक सुधार का अवसर प्रदान करता है, जिससे वे अपनी कमियों को जानकर उन्हे दूर करने हेतु आवश्यक कदम उठा सके। शैक्षिक प्रक्रिया में मापन एवं मूल्यांकन कार्यक्रम का आयोजन निम्नलिखित उद्देश्यों की प्रप्ति हेतु किया जाता है –

- अधिगमकर्ता के वृद्धि एवं विकास में सहायता करना।
- अधिगम प्रक्रिया को सोद्देश्यपूर्ण बनाना तथा अवरोधों का पता लगाना।
- व्यक्तिगत भिन्नताओं के आधार पर अधिगमकर्ताओं का वर्गीकरण करना।
- प्रतियोगिता की भावना का विकास करना।
- पाठ्यक्रम, शिक्षण–विधियों एवं शिक्षण में सुधार करना।
- कक्षोन्नति एवं प्रमाण पत्र प्रदान करना।
- अभिप्रेरणा एवं प्रतिपुष्टि प्रदान करना।
- चिन्तन, सृजनशीलता, कल्पना एवं तार्किक क्षमता का विकास करना।

**सतत् आन्तरिक मूल्यांकन प्रणाली की आवश्यकता :**

वर्तमान मूल्यांकन प्रणाली अपनी कुछ सीमाओं के कारण उपरोक्त लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल नही हो पा रही है। रैले आयोग ने सन् 1902 में कहा था कि भारतीय शिक्षा में अध्यापन कार्य

* प्राचार्या, साकत गर्ल्स पी०जी० कालेज, दहिलामऊ, प्रतापगढ़

परीक्षा के अधीन है न कि परीक्षा अध्यापन कार्य के अधीन है। सन् 1929 में हर्टाग समिति ने भी प्रचलित मूल्यांकन प्रणाली का विरोध किया था। उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने हेतु सन् 1948 में राधाकृष्ण्न् आयोग ने भी परीक्षा प्रणाली पर प्रश्न चिन्ह लगाया और उसमें सुधार की आवश्यकता पर बल दिया। कोठारी आयोग 1964–66 एवं नई शिक्षा नीति 1986 के अवलोकन से वर्तमान मूल्यांकन प्रणाली के प्रमुख दोषों को निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से रेखांकित किया जा सकता है –

- पाठ्यवस्तु का पूर्ण प्रतिनिधित्व न होना।
- चयनात्मक अध्ययन को अत्यधिक प्रोत्साहन।
- सुधार के लिए आवश्यक प्रतिपुष्टि का अवसर न मिलना।
- परीक्षकों की आत्मनिष्ठता का दुष्प्रभाव।
- अधिगमकर्ता के व्यक्तित्व के सभी पक्षों का मूल्यांकन न होना।
- परीक्षा परिणामों का प्रभावशाली उपयोग न होना।
- हैलो एवं कैरी ओवर प्रभाव को प्रोत्साहन देना।

प्रचलित मूल्यांकन प्रणाली में सुधार के सन्दर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में कहा गया था कि मूल्यांकन की एक ऐसी सतत् प्रक्रिया होनी चाहिए जिनसे छात्रों को अपने उपलब्धि स्तर को उन्नत करने में सहायता मिले न कि किसी समय विशेष पर छात्रों के कार्यो की गुणवत्ता देखकर उसे प्रमाणित किया जाय।

ड्राफ्ट राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1979 में उल्लेख किया गया कि मूल्यांकन रटने की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करने वाला होना चाहिए जिसमें पाठ्य सहगामी कार्यक्रमों के सभी अधिगम अनुभव उसमें सन्निहित हो जाए तथा वाह्य परीक्षाओं के अलावा समय–समय पर आंतरिक मूल्यांकन की भी व्यवस्था होनी चाहिए। नई शिक्षा नीति 1986 के कार्यान्वयन कार्यक्रम 1992 में सतत् आंतरिक मूल्यांकन को व्यापक बनाने के उद्देश्य से उसमें शिक्षा के विद्यालयी तथा गैर विद्यालयी पक्षों का समावेश करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है इसके साथ ही साथ कोठारी आयोग 1964–66 में भी सतत् आंतरिक मूल्यांकन का समावेश वाह्य परीक्षाओं के साथ करने का सुझाव दिया था। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि वाह्य परीक्षओं के साथ ही साथ शैक्षिक संस्थाओं में एक ऐसी प्रणाली का उपयोग भी किया जाना चाहिए जिसमें निम्नांकित बातों का समावेश हो –

- चयनात्मक अध्ययन के बजाय समग्र अध्ययन को प्रोत्साहन करना। इसके लिए समस्त अनुभवों को मूल्यांकन प्रक्रिया में सम्मिलित करना।
- छात्रों की विभिन्न विषयों में निष्पादन का पता लगाकर छात्र की कमजोरी का पता लगाना, जिसके आधार पर उन्हे निदानात्मक शिक्षण दिया जा सके।
- मूल्यांकन के द्वारा सामान्य, प्रखर बुद्धि वाले तथा मन्द बुद्धि बच्चों की पहचान करके उनकी योग्यता एवं कुशलता के अनुरूप शिक्षण–अधिगम की व्यवस्था करना।
- छात्रों की मानसिक स्थिति, अभिरूचि, अभिवृत्ति, अभिक्षमता आदि का मूल्यांकन करके छात्रों की विशिष्ट योग्यता के अनुसार उचित मार्ग निर्देशन एवं परामर्श देना।
- एक निश्चित अन्तराल पर छात्रों की प्रगति का मूल्यांकन करके आवश्यक प्रतिपुष्टि प्रदान करना, जिससे अधिगम सरल हो सके तथा छात्र सीखने हेतु स्वतः प्रेरित हो सके।
- मूल्यांकन की विषय वस्तु में छात्रों के शैक्षिक गुणों के अतिरिक्त मानसिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक गुणों आदि का समावेश करना।
- परीक्षकों की आत्मनिष्ठता 'हेलो प्रभाव' एवं 'कैरी ओवर' को सीमित करना।
- मूल्यांकन प्रक्रिया में निबन्धात्मक परीक्षाओं के अतिरिक्त अन्य उपकरणों जैसे साक्षात्कार, अवलोकन, व्यक्ति अध्ययन इत्यादि का उपयोग करना।
- मूल्यांकन के माध्यम से पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों एवं शिक्षकों में अपेक्षित सुधार का अवसर उपलब्ध कराना।

- पूरे शिक्षण सत्र भर छात्रों की सक्रिय सहभागिता को सुनिश्चित करना जिससे छात्रों का सन्तुलित एवं समग्र विकास हो सके।

सतत् आन्तरिक मूल्यांकन वास्तव में वर्तमान समय में प्रचलित परम्परागत सत्रान्त वाह्य मूल्यांकन प्रणाली के दोषों का निवारण करके शिक्षा प्रणाली को शिक्षण अधिगम की ओर उन्मुख करने का एक प्रयास है। आन्तरिक मूल्यांकन के अन्तर्गत छात्रों की शैक्षिक एवं अन्य योग्यताओं का मापन विद्यालय द्वारा आयोजित साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक एवं वार्षिक परीक्षाओं द्वारा किया जाता है जिनमें विद्यालय के अध्यापक ही परीक्षक का कार्य करते है। छात्रों के परीक्षा परिणाम अध्यापक की ईमानदारी, निष्ठा एवं विश्वास पर निर्भर होता है। इस प्रणाली में छात्रों की रूचियों, योग्यताओं एवं अभिक्षमताओं आदि का मूल्यांकन विभिन्न मापन उपकरणों के माध्यम से किया जाता है। इस प्रणाली की विशेषताएं निम्नांकित है –

- सतत् आन्तरिक मूल्यांकन का प्रमुख उद्देश्य छात्रों की उपलब्धि में सुधार करने हेतु आवश्यक प्रतिपुष्टि देना होता है।
- सतत् आन्तरिक मूल्यांकन में छात्रों के शैक्षिक अनुभवों के अतिरिक्त बुद्धि, अभिवृत्ति, अभिक्षमता, मानसिक स्वास्थ्य, अध्ययन आदतों, सहगामी क्रियाओं आदि को शामिल किया जाता है।
- सतत् आन्तरिक मूल्यांकन अत्यंत अन्तराल पर विद्यालयों के शिक्षकों द्वारा आयोजित किया जाता है।
- सतत् आन्तरिक मूल्यांकन से प्राप्त परिणामों का उपयोग छात्रों की प्रगति हेतु पृष्ठ–पोषण देने, उपचारात्मक शिक्षा एवं निर्देशन व परामर्श हेतु किया जाता है।
- परीक्षार्थी एवं परीक्षक आपस में भली–भाँति परिचित होते है, जिससे परीक्षा का उचित वातावरण निर्मित होता है।

सतत् आन्तरिक मूल्यांकन प्रणाली के माध्यम से कुशाग्र बुद्धि, सामान्य, मन्द बुद्धि बालकों तथा धीमी गति से सीखने वाले बालकों का पता आसानी से लगाया जा सकता है, जिनसे उनके बौद्धिक स्तर के अनुकूल शिक्षण की व्यवस्था करने में सहायता मिलती है। इन विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सतत आन्तरिक मूल्यांकन प्रणाली एक व्यापक मूल्यांकन प्रणाली है, जिसमें नियमित अन्तराल पर छात्रों के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का सन्तुलित मूल्यांकन विभिन्न मूल्यांकन प्रविधियों के माध्यम से अध्यापकों द्वारा किया जाता है, जिसके परिणामों के आधार पर बच्चों के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करना, उचित दिशा निर्देश देना तथा उपचारात्मक शिक्षण प्रदान करना सम्भव होता है।

**सतत् आन्तरिक मूल्यांकन प्रणाली का महत्व :**

सतत् आन्तरिक मूल्यांकन, मूल्यांकन की एक व्यापक प्रणाली है जो छात्रों के व्यक्तित्व के समस्त पक्षों का मूल्यांकन करने में सक्षम है। इस प्रणाली के माध्यम से छात्रों की विशिष्ट क्षमताओं एवं अभिरूचियों का ज्ञान होता है, जिससे उनके दिशा निर्देश एवं परामर्श में सहायता मिलती है। इस प्रणाली की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि छात्रों को निराशा, हीनभावना तथा दुश्चिन्ता आदि के स्थान पर गलतियों को सुधारने का अवसर प्रदान करती है जिससे छात्रों का निष्पादन उन्नत स्तर का होता है। इस प्रणाली में छात्र सक्रिय रूप से विद्यालय के समस्त क्रियाकलापों में भाग लेता है, जिससे अनुपस्थिति की समस्या अपने आप ही समाप्त हो जाती है। मूल्यांकन कार्य सत्रपर्यन्त (वर्ष भर) चलने के कारण छात्रों में वांछित व्यवहार परिवर्तन करना सम्भव होता है। इस प्रकार से इस प्रणाली द्वारा छात्र के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित होता है। शिक्षकों की शिक्षण प्रक्रिया एवं शिक्षण विधियों में आवश्यक सुधार करने का अवसर मिलता है जिससे उपयुक्त शिक्षण विधियों के चुनाव तथा शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने में सहायता प्राप्त होती है। इस प्रकार सतत् आन्तरिक मूल्यांकन प्रणाली शिक्षा के अभीष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में आवश्यक सुधार करके अधिगमकर्ता के प्रति धारण एवं निष्पादन स्तर के साथ ही साथ शिक्षकों, प्रशासकों, शिक्षण प्रक्रिया, पाठ्यक्रम आदि के विकास में सक्रिय भूमिका अदा करती है।

निःसन्देह वाह्य परीक्षाएं विभिन्न शिक्षा संस्थाओं के परीक्षा परिणामों में एकरूपता (Uniformity) लाने की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है परन्तु विचारणीय प्रश्न है कि क्या सत्र के अन्त में ली जाने वाली इन परीक्षाओं के द्वारा छात्रों के द्वारा सम्पूर्ण सत्र में अर्जित ज्ञान, बोध व कौशल की सही जानकारी सम्भव है ? क्या मूल्याकन का एक मात्र उद्देश्य छात्रों को अगली कक्षा में भेजने अथवा नही भेजने अथवा किसी रोजगार के लिए आवश्यक योग्यता प्रमाण पत्र देने तक ही सीमित है ? क्या शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सुधार हेतु आवश्यक सुझाव/संकेत/दिशा निर्देश प्रदान करने का कार्य परीक्षा प्रणाली का नही है ? क्या सत्रान्त में ली जाने वाली परीक्षा के द्वारा छात्रों के व्यक्तित्व की बहुआयामी जानकारी करना सम्भव है ? इन प्रश्नों पर विचार करने पर उत्तर नकारात्मक ही मिलता है। वस्तुतः सत्रान्त में ली जाने वाली वाह्य परीक्षर न तो छात्रों की बहुआयामी शैक्षिक प्रगति का मापन कर पाती है तथा न ही शिक्षण अधिगम में सुघार के लिए मार्गदर्शन करती है। सतत् आन्तरिक मूल्यांकन ही छात्रों का व्यापक दृष्टि से मूल्यांकन करने में समर्थ हो सकती है। बुद्धि, रूचि, अभिवृत्ति, अभिरूचि, व्यक्तिगत व सामाजिक गुण, नैतिक चरित्र, पाठ्य–सहगामी क्रियाओं में सहभागिता जैसे व्यक्तित्व आयामों की जानकारी केवल आन्तरिक मूल्यांकन से ही सम्भव हो सकती है। सतत् मूल्यांकन सम्पूर्ण सत्र के दौरान छात्र को अध्ययन करने की ओर प्रेरित करता है। इसमें परीक्षार्थी के द्वारा परीक्षक को धोखा देने की सम्भावना नगण्य है। सतत् मूल्यांकन के द्वारा छात्रों को समय–समय पर उनकी शैक्षिक प्रगति से अवगत कराकर उन्हे आवश्यक पृष्ठ–पोषण (Feed back) देना सम्भव है। सतत् आन्तरिक मूल्याकन प्रणाली की सार्थकता अध्यापकों के ऊपर निर्भर करती है। यदि अध्यापक निष्पक्षता, कर्तव्यपरायणता, निष्ठा तथा विश्वास के साथ सतत् मूल्यांकन के कार्य को सम्पादित करेंगे तब निःसन्देह यह प्रणाली शिक्षा प्रणाली में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकेगी।

**सन्दर्भ :**

1. गुप्ता, एस0पी0, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएं, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
2. सिंह, लाल साहब, मापन मूल्यांकन एवं सांख्यिकी, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. पाठक, पी0डी0, भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएं, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. गुप्ता, एस0पी0, आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलहाबाद।
5. त्यागी, गुरूसरनदास, सामाजिक अध्ययन का शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
6. भट्टाचार्य, जी0सी0, अध्यापक शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

***

# योग दर्शन और मनोविज्ञान

*नितेश अग्निहोत्री**

विज्ञान अपने बहुआयामी रूप से सभी क्षेत्रों में अपनी छाप बनाए हुए है। यह युग विज्ञान की आर्थिक और भौतिक तरंगों का युग है, परन्तु मन की तरंगों को नियंत्रित करने का कार्य आचार्य पतंजलि के योगसूत्र से ही सम्भव है। महर्षि पतंजलि मन के निरोध की चर्चा करते हैं। वह अपने योगसूत्र में प्रथम पाद के दूसरे सूत्र में कहते हैं 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' मन की तरंगों को थाम लेना ही योगसूत्र का विज्ञान है। प्रश्न उठता है कि मन की तरंगें कैसे थमती हैं, मन क्या है, कहाँ स्थित है? ओशो के शब्दों में कहे तो हम सोचते हैं कि मन मस्तिष्क में स्थित ठोस पदार्थ है, लेकिन मन कोई ठोस तत्त्व नहीं, मन एक क्रिया है, एक गतिविधि है। जिस प्रकार चलना एक क्रिया है, एक गतिविधि है, उसी तरह मन की गतिविधि है। उसमें चिंतन होता है और फिर वह स्थिर हो जाता है। इसी प्रकार जब मन स्थिर होता है आप योग में स्थिर होते हैं और जब मन का चिंतन प्रारम्भ रहता है तो योग नहीं होता। मन अतीत में स्थित रहता है, स्मृतियों का संग्रह करता है। योग की तकनीक कई मानसिक स्वास्थ्य स्थितियों में लाभकारी सिद्ध होती है–अवसादग्रस्तता, चिंता, PTDS, मनोविकृति।[1]

वैज्ञानिकों ने योगासनों के अध्ययन से यह साबित किया है कि योग को जीवन का हिस्सा बनाने में यह **सेरिबेलम और प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स** के मध्य मार्ग को सक्रिय करती है। Cerebellum मानव मस्तिष्क के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रखता है। Prefrontal Cortex को नैतिक तर्क, निर्णय लेने की क्षमता जैसे कार्यों के लिए जाना जाता है।[2]

Heather Mason और Kelly Birch ने अपनी पुस्तक Yoga for Mental Health में योग के मनोवैज्ञानिक प्रभाव के बारे में कहा है कि–Some evidence also suggests Yogic exercise may increase release of the neurotransmitter Oxytocin, which is associated with improved inter personal function which in turn may increase the efficacy of therapeutic in intervention.[3]

आसन, प्राणायाम और शारीरिक मुद्रा के प्रभाव के अध्ययन ने योग को Parasympathetic nervous system के लिए लाभकारी माना है। योग मुद्रा धारण करने से Parasympathetic nervous system को Vagus nerve system के माध्यम से सक्रिय किया जाता है, जो Parasympathetic और Central nervous system को जोड़ने की प्रारम्भिक तांत्रिक सरंचना है। Parasympathetic तंत्रिका तंत्र के सक्रिय होने से मस्तिष्क में प्राथमिक निरोधात्मक न्यूरोट्रांसमीटर गामा–एमिनोब्यूटिक एसिड का प्रवाह बढ़ जाता है, इस प्रवाह के कम होने से खराब मानसिक स्वास्थ्य, चिंता, अवसाद, PTSD और पुराने दर्द सम्बन्धित समस्याएं होती है।[4]

सामान्यतः चेतन और अचेतन घटनाओं के साथ–साथ विचार सहित व्यवहार और मन का वैज्ञानिक अध्ययन ही मनोविज्ञान है।[5]

योग दर्शन और उसकी परम्पराओं से व्यक्ति अपने कार्य में एकीकृत रहता है और उसकी क्षमता में वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए एक चिंतित व्यक्ति को भविष्य की चिंताओं से मुक्त करने के लिए योग कई तरह से उपयोगी है। प्राणायाम के अभ्यास से, शारीरिक रूप से, स्वयं को शान्त करने के लिए किसी मुद्रा का अभ्यास, इन्द्रियों को जाग्रत करने के लिए ध्यान और मंत्र का प्रयोग ये सभी क्रियाएं नई संभावनाओं को जाग्रत करने में विशेष सहायक हैं। श्रीमद्भगवतगीता में कहा गया है कि–**'योग स्वयं की, स्वयं के माध्यम से, स्वयं की यात्रा है।'**[6]

योग ब्रह्माण्ड के साथ हमारी एकता पर केन्द्रित है और मनोविज्ञान हमारी विविधता और व्यक्तिगत मतभेदों को संबोधित करता है। प्रत्येक मनुष्य का अपना स्वभाव और व्यक्तित्व है और व्यक्तिगत जीवन और रिश्तों के अनुभव भी, योग आसन, प्राणायाम और ध्यान के माध्यम से हमें बहुत

* शोधच्छात्र-संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लाभ प्राप्त होता है, परन्तु वास्तव में यह जानना और समझना कि हम जीवन का अनुभव कैसे और क्यों करते हैं, तब मनोवैज्ञानिक अन्वेषण की आवश्यकता होती है।

अमेरिकन बुद्धिष्ट John Welwood ने कहा– Yoga and Psychology offer the opportunity to create shifls embrace self-compassion and find a path toward meaningful, purposeful lives." योग और मनोविज्ञान बदलाव लाने, आत्म करुणा को अपनाने और सार्थक उद्देश्यपूर्ण जीवन की ओर एक मार्ग खोजने का अवसर प्रदान करते हैं।[7]

योग को मन–सामान का संयम या आन्तरिक मनोवैज्ञानिक तंत्र के रूप में भी जाना जाता है।[8] साधक कई बार खुद को यह समझाने में असमर्थ होते है। कि मन पर नियंत्रण करना सभी प्रयासों में सबसे अधिक उपयोगी है। यौगिक मनोविज्ञान एक सकारात्मक और नियामक विज्ञान दोनों है। यह न केवल मानव व्यक्तित्व और उसके विकास का विश्लेषण करता है, बल्कि आदर्श निर्धारित करता है और ऐसे उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए तकनीकों को भी निर्धारित करता है।[9]

इस प्रकार चेतना का विस्तार और स्वयं को अपने मन का स्वामी बनाना योग मनोविज्ञान के व्यापक उद्देश्य हैं। फ्रायड द्वारा चेतन, अवचेतन और अचेतन स्तरों के सन्दर्भ में वर्णित मन का टोपोलॉजिकल पहलू हजारों साल पहले से योग साहित्य में उल्लिखित है। योग मनोविज्ञान में होमियोस्टैसिस या संतुलन केन्द्रीय सिद्धान्त है।

पातंजल के योगसूत्रों में–मन के बारे में, मन की सीमाओं के कारण, मन के कार्य की तकनीक, मन की शक्तियाँ, मन से परे की अवस्थाएँ और अनुभवों का समुचित विज्ञान है।[10]

महर्षि योगानन्द अपनी पुस्तक में सूक्ष्म शरीर का वर्णन करते हैं और सूक्ष्म शरीर का महत्वपूर्ण हिस्सा मन (चित्त) है और यही मन भौतिक शरीर की स्पष्ट प्रतिमूर्ति है।[11]

निष्कर्षतः योग का मनोविज्ञान मानव की नवीन पुनःसंरचना तथा चरम विकास पर बल देता है। जहाँ मानव के विभिन्न पहलुओं का विकास स्वतः ही होता है। पतंजलि अपने योगसूत्र में इसी अवधारणा को स्थापित करते हैं, जहाँ मानव अपनी उच्चतम उपलब्धि को प्राप्त है।

**सन्दर्भ :**


1. The Relationship between Yoga and Psychology-The Minded Institute.
2. Collinsdictionary.com
3. Yoga for mental Health- Heather Mason, Kelly Birch
4. Streeter, C.C.. Whitfield, et al. (2010) Effect of Yoga versus Walking on mood, anxiety and brain GABA levels.
5. Kathleen Mates-Yogiapproved.com
6. श्रीमद्भगवतगीता
7. Yoga and Psychology- John Welwood.
8. स्वामी कृष्णानन्द—Yoga as a Universal Science
9. Yoga Psychology-Dr. Kamakhya Kumar
10. Practical Yoga Psychology-Dr. Rishi Vivekananda
11. Autobiography of Yogi-Yogananda.


***

# शिक्षा द्वारा दलित महिलाओं का सामाजिक बदलाव

*कौशल कुमार झा**

दलित महिला को लेकर जितनी व्यवस्थाएँ की गयी वे सभी दोयम दर्जे का स्थान दिया गया। हमारी सामाजिक व्यवस्थाएँ पुरुष प्रधान है। सोचपूर्ण से ग्रसित सामाजिक असमानता, निरक्षरता, अंधविश्वास, दहेज, जाति प्रथा, लिंग–भेद आदि कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाती रहती है और निरंतर उठती रहती है। परन्तु इन सभी कुरीतियों से मुक्ति पाना अभी शेष है। हमारे समाज में दलित महिलाओं के मनोवैज्ञानिक संस्कार की अधीनता व्याप्त है। त्याग, सहिष्णुता और करुणा अतिवादी स्वरुप धीरे–धीरे महिलाओं को भीरु, असहाय और कमजोर बनाती चली गयी है। भारतीय संविधान ने महिला व पुरुष दोनों को समान अधिकार प्रदत्त किये हैं, परन्तु उनके विकास के लिए समान अवसरों की समुचित व्यवस्था की है। अनेकों प्रावधानों द्वारा महिला की सुरक्षा एवं संरक्षण हेतु नियम बनाए गये है। उनके विकास के लिए समान अवसरों की व्यवस्था की गई है। इन सभी नियमों के बावजूद महिलाओं की गुणवत्ता में सुधार नहीं हो पा रहा है, क्योंकि स्थानीय समाज में अभी तक बदलाव नहीं हो पा रहा है। समाज ने महिलाओं के अधिकारों पर अपना संकुचित विधारधारा का प्रभाव अब तक व्याप्त है। यही कारण है कि आने वाले दिनों में महिलाओं खासकर पिछड़ी, दलित, दमित तबके के महिलाओं पर सवर्ण, सम्पन्न समाज अपना जुल्म कर रहे हैं। दलित महिला ने बलात्कार का विरोध किया तो उसके कान काट लिये गए। ऐसी घटना पहली बार नहीं हुई है। इससे पहले भी कई बार दलित महिला पर जुल्म हो चुका है। विरोध करने पर कभी जिंदा जला देना, कभी अंग–भंग करने, कभी निर्वस्त्र कर गाँवों में घुमाना, कभी उनके परिजनों को बंधक बना लेना तो कभी उनके ऊपर तेजाब एवं पेशाब करने या मल फेंकने, खिलाने जैसे पाशविक, पैशाचिक कृत्य किये गये हैं। आश्चर्य यह कि दिनोदिन ऐसी घटनाएँ बढ़ रही है और आर्थिक, वैज्ञानिक, सांस्कृति रुप से सभ्यता की परकाष्ठा पर पहुँचने का दावा करने वाले भारतीय समाज में इन घटनाओं से कोई फर्क नहीं पड़ता है। दलित महिलाओं की स्थिति पर अक्सर मीडिया का ध्यान भी तब जाता है जब वे बलात्कार की शिकार होती है या नग्न–अर्द्धनग्न करके सड़कों पर उन्हें घुमाया जाता है। ऐसी घटनाओं पर तब तक कोई हलचल नहीं होता है, जबतक की उनका संबंध सत्ता–प्रशासन या एसे किसी प्रभावशाली तबकों को प्रभावित ना करे।

दलित महिलाओं के बीच शिक्षा का प्रचार–प्रसार भी काफी कम हुआ है। आज भी भारत के ग्रामीण महिलाओं के बीच अशिक्षा एवं निरक्षरता व्यापक रुप में फैली हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं के बीच शिक्षा के विकास के महत्वाकाँक्षी कार्यक्रमों के उपरान्त भी संतोषजनक सुधार नहीं हो पाया है। वर्त्तमान समय में भी बिहार राज्य में अनुसूचित जाति के महिलाओं में निरक्षर महिलाओं की संख्या 36 लाख से अधिक है जबकि साक्षर महिलाओं की संख्या सिर्फ 7–5 लाख के आसपास है। इस आकड़े से स्पष्ट होता है कि बिहार राज्य में प्रति सौ महिलाओं में मात्र 16 महिलायें साक्षर हैं। बिहार राज्य में कुल साक्षर दलित महिलाओं की संख्या 7 लाख 51 हजार 947 है। अनुसूचित जाति की महिलाओं के शिक्षा के मामलों में सबसे पटना जिला है, जहाँ साक्षरता दर 24.84 प्रतिशत है। परन्तु इसी अनुपात में दूसरे जिले की स्थिति भी एक जैसी नहीं है। विशेषकर मधुबनी जिले के अन्तर्गत अनुसूचित जाति के महिलाओं में इसकी स्थिति अत्यन्त दयनीय है। जहाँ तक अनुसूचित जाति की महिलाओं के बीच स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का प्रश्न है तो, यह कहना अनुचित नहीं होगा कि स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता का प्रमुख आधार शिक्षा का स्तर है। सामान्य रुप से महिलाओं में स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के अतिरिक्त प्रसूति, प्रजनन एवं कुपोषण की विशेष समस्या है। गर्भावस्था में समान्यतया बच्चे का स्वास्थ्य माता–पिता के स्वास्थ्य से जुड़ा होता है। अनुसूचित जाति की महिलाओं में व्याप्त

* (शोधार्थी), शिक्षा संकाय, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा

निर्धनता के कारण समुचित पोषाहार नहीं मिल पाता है, जिसके फलस्वरुप कुपोषण और समुचित चिकित्सा के अभाव में कई महिलाओं का निधन बच्चे के जन्म देते समय ही हो जाता है। बच्चे के जन्म के बाद भी महिलाओं को विशेष देखभाल तथा समुचित पोषाहार की अवश्यकता पड़ती है, परन्तु निर्धनता के कारण अनुसूचित जाति की महिलाएँ इस प्रकार की सुविधाओं से वंचित रह जाती हैं।

पूरे विश्व में निरक्षरों की संख्या 850 मिलियन है, जिसका 50 प्रतिशत भारत में है। साक्षरता दर दलित महिलाओं की बात करें तो स्थिति निश्चित रुप से चुनौतिपूर्ण है। विश्व के प्रत्येक तीन निरक्षरों में से दो महिला हैं। भारत में महिला के प्रति अतीव श्रद्धा और सम्मान का भाव रहा है। पूर्व से ही भारतीय समाज में महिलाओं को घर–गृहस्थी के कार्यों का निष्पादन हेतु कार्य सौंपा गया है। समाज, राजनीति, धर्म, न्याय, कानून सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ सहायक व प्रेरक के रुप में कार्य करती आ रही है। समय के बदलाव के साथ महिलाओं पर अत्याचार व शोषण होता रहा है। महिला पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन का भार उठाती हैं। महिलाएँ शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक सभी स्तरों पर उपेक्षित जीवन व्यतीत कर रही है। इन सभी समस्याओं से निजात दिलवाने के लिए मात्र एक साधन शिक्षा ही है। इसलिए परिवार एवं समाज को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृति और राजनीतिक विकास के लिए महिलाओं का शिक्षित होना आवश्यक है।

बाबा साहेब अम्बेडकर (1891–1956) का जन्म 14 अप्रैल 1891 को महाराष्ट्र में अछूत महाजाति में हुआ था। उन्हांने वाल्यावस्था और उसके बाद के अपने जीवन में छूआछूत के कारण सभी प्रकार का सामाजिक अपमान सहा। कक्षा में उन्हें शेष विद्यार्थियों के साथ बैठने नहीं दिया जाता था। विद्यालय में उन्हें अपने हाथों से पानी पीना पड़ता था और उॅची जाति के सदस्य उपर से पानी डालते थे। संस्कृत सीखना उनके लिए मना था। इन सभी वाधाओं के बावजूद उन्होंने मुम्बई विश्वविद्यालय से अपनी स्नातक की शिक्षा पूरी की और संयुक्त राज्य अमेरिका में कोलंबिया विश्वविद्यालय से स्नातकोतर और पीएच.डी पूरी करने चले गये। वे अमेरिका में कोलंबिया विश्वविद्यालय से अपनी विशेषकर फ्रांसिसी क्रान्ति के बाद उभरी विचारधारा से प्रभावित हुए। अमेरिका में जातीय भेदभाव के भारत में विद्यमान अस्पृश्यता (छूआछूत) और जाति व्यवस्था से बहुत गहरे जुड़ गए। साथ ही साथ उन्होंने भारत की अर्थव्यवस्था रानजीति और सामाजिक जीवन पर पड़ने वाले उपनिवेशवाद के प्रीााव की जॉच पड़ताल की।

कोलंबिया विश्वविद्यालय में अपनी पीएच.डी उपाधि पूरी करने के बाद, वे बड़ौदा महाराजा के प्रशासन की सेवा करने के लिए वापस आ गये जिन्होंने उन्हें अमेरिका में शिक्षा के लिए भेजा था। परन्तु विशिष्ट योग्यताओं के बाद भी उन्हें बड़ौदा प्रशासन में अस्पृश्यता का दर्द झेलना पड़ा। उन्होंने अपनी नौकरी छोड़ दी, और कुछ समय के लिए वे सिडेनहम कॉलेज आफ कामर्स एण्ड इकोनोमिक्स, मुंबई में राजनीतिक अर्थव्यवस्था के प्रोफेसर हो गए। उन्होंने 1919 के मोटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों से पहले साउथबोरो समिति के समक्ष अभिवेदन किया और दलिलत वगों जिन्हें उस समय अस्पृश्य और निम्नजातियों समझा जाता था के लिए अलग प्रतिनिधित्व का समर्थन किया, उन्होंने जनवरी 1920 मेंमराठी में एक पाक्षिक मूकनायक आरंभ किया और अग्रणी भूमिका निभाई अपनी डी.एस.सी. की उपाधि पूरी करने के लिए उन्होंने लंदन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स में प्रवेश लिया जिसे उन्होंने 1922 में पूरा कर लिया और उन्हें उसी वर्ष ग्रेज इन में 1923 में मुंबई में अपनी कानूनी प्रैक्टिस आरंभ की और अछूतों को एकत्र करने और उन्हें संगठित करने से सक्रिय भूमिका निभाई, उन्होंने 1924 में बहिस्कृत हितकारिणी सभा बनाई। 1927 में वे मुंबई विधानपरिषद में मनोनीत हो गए। उन्होंने महाद में चोवादार तालाब में प्रसिद्ध सत्यागह का नेतृत्व किया और पानी के उस साझाा तालाब से अछूतों के लिए अधिकारों की मांग की, जिससे उन्हें रोका जाता था। परिणामस्वरूप मुस्मृति को भी जलाया गया। उन्होंने मराठी में पाक्षिक पत्रिका बहिस्कृत भारत आरंभ किया और 1927 में दो संगठनों ''समाज समता संघ'' और ''समता सैनिक'' की स्थापना की जसिके माध्यम से दलित वर्ग के लिए समानता की मांग उठाई। 1928 में दलित वर्ग शिक्षा समिति (Depressed Class Education), मुम्बई की स्थापना की। उसी वर्ष पाक्षिक पत्रिका समता को भी प्रकाशित किया गया। इन वर्षो में डॉ0 अम्बेडकर कानून के

प्रोफेसर के तौर पर सक्रिय रहे। वे साइमन कमीशन के समक्ष अपना प्रतिनिधिमंडल लेकर गए तथा भारत में संवैधानिक सुधारों के मद्दे की जॉच की मॉग की। उन्होंने 1930 में कलराम मंदिर नासिक में सत्याग्रह का नेतृत्व किया और अछूतों के लिए मंदिर में प्रवेश की मॉग की। उन्होंने 1930 में नागरपुर में आयोहतत प्रथम अखिल भारतीय दलित वर्ग कांगेस की अध्यक्षता की।

दलित एक ऐसा शब्द है जो उन भूतपूर्व अछूत जातियों के महिलाओं एवं पुरूषों के लिए प्रयोग किया जाता है। जिन्हें हमारे संविधान द्वारा अनूसूचित जातियों के रूप में पहचान प्रदान की जगयी है। वे जातियों की एक बड़ी संख्या का निर्माण करता है और निचले दर्जे के व्यवसायों में लगे हुए हैं। जैसे चर्म कार्य, झाड़ू लगाना और खेतों में मजदूरी करना। भूमि सुधार उपायों ने उन्हें लाभ नहीं पहुॅचाया। तथापि, बहुत सी कल्याणकारी योजनाओं का उनपर देश के विभिन्न भागों में विभिन्न रूपों में असर हुआ है। राज्य की कल्याणकारी नीतियों से लाभ उठाने में अड़चन होने के बाबजूद उन दलित महिलाओं की दशाओं में सुधार आया है। शैक्षिक एवं राजनैतिक संस्थाओं में आरक्षण से उनके बीच एक सवाक समूह के उदगमन को बढ़ावा मिला है। यह समूह उनकी समस्याओं को स्पष्ट करता है। यह एक सामाजिक कामांतरण संबंधी प्रक्रिया की ओर भी इशारा करता है, जो कि भारत में हुआ है परन्तु सामाजिक कायांतरण ने देश में असमान प्रतिमान दर्शाये हैं। देश के बड़े इलाकों में खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में दलितजन अब भी तिरस्कार और मानमर्दन का सामना करते हैं। भारतीय संविधान में व्यापक प्रावधानों के बाबजूद, दलितों से भेदभाव के विरूद्ध लड़ाई अभी जीती जानी है। आज की तारीख तक दलितों का इस संकट से गुजरना जारी है। मार्क गैलेण्टर शोक प्रकट करते हैं। हमारा संविधान में व्यापक प्रावधनों के बाबजूद भारतीय समाज के पुनर्गठन हेतु एक आम योजना प्रस्तुत करता है। अपने दीर्घाकार होने के बाबजूद यह भारतीय समाज में जाति संस्था और वर्तमान समूह संरचना संबंधी अपने उचार में आश्चर्यजनक रूप से अविस्तृत है। संविधान के अनुच्छेद–17 ने ''अस्पृष्यता'' समाप्त कर दी थी। संविधान में दिए गए सकारात्मक कार्रवाई संबंधी प्रावधान कुछ मामलों में निरर्थन हो गए हैं। सम्पूर्ण निजी क्षेत्र पर दलितों हेतु सामाजिक न्याय करने के लिए कोई दायित्व नहीं है। निजी क्षेत्र में आरक्षण हेतु दलितों की मांग को अनेक सशक्त व सुस्पष्ट समूहों की ओर से कड़े विरोध का सामना करना पड़ रहा है।

बाबा साहेब अम्बेडकर ने भारतीय सामाजिक जीवन तथा शासन तंत्र से संस्थान के रूप में अस्पृश्यता को दूर करने के लिए आरक्षण अथवा संरक्षित विभेद की नीति तैयार की जबकि मंडल कमीशन ने जाति को महत्वपूर्ण राजनैतिक संसाधन माना है। वास्तव में जब मंडल ने जातीय अभेद की हानियों की पहचान करते हुए, इनके लाभ का दलितों को बोध कराया, तब से संघर्ष जारी है। शुद्धता तथा अशुद्धता अधिक्रम तथा विभेद पर आधारित जाति प्रथा सामाजिक गतिशीलता के बाबजूद शूद्रों और जाति बहिस्कृतों के लिए दमनकारी सिद्ध हुई है, जिन्हें अनुष्ठानिक अशुद्धता का कलंक झेलना पड़ा वे निर्धनता और निरक्षरता में जकड़े रहे तथा उन्हें राजनैतिक शक्तियॉ से वंचित रखा गया। जाति पर आधारित अभदेवाद की भारतीय समाज में दोयम भूमिका है। जिससे दलित एवं दलित महिलाओं के विकास के लिए शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा ही एकमात्र साधन है, समाज व्याप्त समानता को जड़ से खत्म कर सकती है।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची :


1. Bai Nirmala Otarijan Women indendent India, B.R. Publishing Corporation, New Delhi, 1986.
2. Bai, Thara, Social Stratification and Social Mobility, Gain Publisher's, Delhi, 1987.
3. गौतम, डॉ0 जी0पी0, 2011 दलित महिला सशक्तिकरण एवं वैश्वीकरण, कला प्रकाशन, वाराणसी
4. Pruthi, Raj Kumar, Rameshwari Devi and Romila Pruthi, 2001 Status and Position of Women : In Ancient Medieval and Modern India, Vedam Books.
5. IGNOU, Delhi.


***

# बिहार की राजनीति में अतिपिछड़ों का उभार

*कुमार मंगलम पाण्डेय* *

जाति भारत में राजनीति के लिए मुख्य आधार प्रस्तुत करती है। जाति में होने वाले बदलावों को समझने के लिए पहले श्रीनिवास के संस्कृतीकरण के सिद्धान्त को महत्त्वपूर्ण माना जाता था। लेकिन आजादी के बाद के दौर में इसकी आलोचना हुई। अब सेकुलरीकरण को ज्यादा महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा है। यद्यपि जाति और वर्ग के आपसी संबंध बहुत ही जटिल रहे हैं; फिर भी डी. एल. शेठ ने सेकुलरीकरण के माध्यम से जाति व्यवस्था में होने वाले बदलावों का विश्लेषण करते हुए यह माना है कि एक 'नये मध्य वर्ग' का उदय हुआ है और इसका लगातार विस्तार हो रहा है। 1990 के बाद बिहार में जाति की राजनीति में हुए बदलावों की पड़ताल करते हुए हम बिहार के संदर्भ में डी. एल. शेठ के 'नए मध्य वर्ग' की संकल्पना का परीक्षण करेंगे। हम इस बात का भी परीक्षण करेंगे कि बिहार में लोकतंत्र की स्थिति को लोकतंत्र के सिद्धान्त की रूपरेखा में कहाँ रखा जा सकता है। बिहार की राजनीति इस मायने में महत्त्वपूर्ण है कि यहाँ लोकतांत्रिक तरीके से सत्ता जनसंख्या की दृष्टि से कमजोर किन्तु सामाजिक–आर्थिक हैसियत से मजबूत ऊँची जातियों के हाथों से निकलकर अत्यंत पिछड़ी जातियों के हाथों में चली गई। ऊँची जातियाँ जनसंख्या के हिसाब से कमजोर हैं लेकिन इनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति बहुत ही मजबूत रही है। इसलिए यह बदलाव ऐतिहासिक है। 1990 के दशक के बाद राजनीति में महत्त्वपूर्ण बदलाव हुए। इन बदलावों में जाति की भूमिका सबसे महत्त्वपूर्ण रही। बदलाव की व्याख्या अन्य पिछडे वर्गों (ओ. बी. सी.) के उभार के रूप में भी की जाती है।

औपनिवेशिक शासन में हुए परिवर्तनों के कारण समाज में हाशिए पर पड़ी जातियाँ भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुईं। शुरूआती दौर में, राष्ट्रीय आन्दोलन के मूल्यों द्वारा 'जातिगत राजनीति' की जगह अंग्रेजों के खिलाफ समाज के सभी तबकों को मिल–जुलकर संघर्ष करने की सीख दी गई। उस समय बिहार की राजनीति पर ऊँची जातियों का बहुत ज्यादा प्रभुत्व था। लेकिन अत्यंत पिछड़ी जातियों में भी यादव, कुर्मी और कोइरी जैसी जातियाँ राजनीतिक रूप से जागरूक और गोलबंद होने लगी थीं।

जनआधारित राजनीति में भी इन श्रेणियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। लेकिन इन श्रेणियों के साथ ही इनके भीतर जातियों की जातिगत अस्मिता ने राजनीति को नई दिशा दी। ध्यान देने वाली बात यह है कि बिहार में उदारतावादी लोकतंत्र पर शुरूआत में वर्चस्वशाली जातियों (अर्थात अगड़ो) का आधिपत्य रहा। अन्य समुदायों में राजनीतिक चेतना बढ़ने के साथ ही वर्चस्वशाली जातियों के सत्ता पर अधिकार को चुनौती मिलने लगी।

लेकिन जैसे–जैसे राजनीतिक चेतना बढ़ी और अब तक राजनीतिक रूप से असंगठित समूहों ने अपने सामूहिक राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक आकांक्षाओं को संतुष्ट करने वाले यंत्र के रूप में राजनीति के महत्त्व को समझा– ऊँची जाति–समूहों के प्रभुत्व को चुनौती मिलनी शुरू हो गई।[2] स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के शुरूआती दशकों में हुए भूमि–सुधारों का फायदा यादव, कुर्मी और कोइरी जैसी जातियों को मिला। इससे कई पिछड़ी जातियाँ या कुलक उभर कर सामने आने लगे। ये कुलक अब सरकारी नौकरियों और सत्ता में अपनी मजबूत हिस्सेदारी चाहते थे। 1967 तक सत्ता में इनकी भागीदारी काफी हद तक बढ़ी भी। इसके लिए मुख्य तौर पर तीन कारण जिम्मेवार थे– पहला, ऊँची जाति के नेताओं की सत्ता के लिए आपसी प्रतियोगिता काफी तेज हो गई। ऐसे में अपना जनाधार बढ़ाने के लिए उन्होंने अत्यंत पिछड़ी जाति के नेताओं को अपने से जोड़ा। दूसरा, समाजवादियों (लोहियावादियों) ने अत्यंत पिछड़ी जातियों में राजनीतिक जागरूकता और एकता लाकर ऊँची जातियों के वर्चस्व को तोड़ने की रणनीति अपनायी। इससे अत्यंत पिछड़ी जातियों की राजनीतिक चेतना बढ़ी।

* शोधार्थी, राजनितिशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

तीसरा, अत्यंत पिछड़ी जातियों के एक हिस्से (यादव, कुर्मी, कोइरी, बनिया) को आधे–अधूरे मन से लागू किए गए भूमि–सुधारों और शिक्षा का फायदा मिला। इससे इनमें अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति चेतना बढ़ी।

1967 तक बिहार की राजनीति में अत्यंत पिछड़ों की उपस्थिति महत्त्वपूर्ण रूप से दर्ज होने लगी। अत्यंत पिछड़ी जातियों से जुड़े नेता मुख्यमंत्री भी बने। लेकिन राजनीति में ऊँची जातियों का वर्चस्व अभी भी बना रहा। इसका कारण कांग्रेस का मजबूत चुनावी–आधार था, जिसमें ऊँची जातियों सहित दलित, आदिवासी और अलपसंख्यकों और कुछ अत्यंत पिछड़ी जातियों का बड़ा तबका शामिल था। निश्चित रूप से इसका नेतृत्व ऊँची जातियों के हाथों में था। आरक्षण की राजनीति ने बिहार में अगड़ा–अत्यंत पिछड़ा राजनीतिकरण को बढ़ावा दिया। 1977 के विधानसभा चुनावों के बाद बिहार विधानसभा में अत्यंत पिछड़ी जातियों के विधायकों की संख्या बढ़ी। इस समय अत्यंत पिछड़ी जाति के नेता कर्पूरी ठाकुर राज्य के मुख्यमंत्री थे। इससे राज्य में अत्यंत पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण का मसला खुलकर सामने आ गया। 1978 में ही बिहार में कर्पूरी ठाकुर की सरकार ने अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण लागू कर दिया था। राज्य में ऊँची जाति के लोगों ने इसका खुलकर विरोध किया। इससे आरक्षण मसले पर अत्यंत पिछड़ों में एकजुटता बढ़ी। इसने अत्यंत पिछड़ों की राजनीतिक चेतना को और अधिक बढ़ाया। फिर भी, अत्यंत पिछड़ी जातियों की राजनीतिक चेतना जगाने और उन्हें ऊँची जातियों के खिलाफ गोलबंद करने के संदभ में 1990 में वी. पी. सिंह सरकार द्वारा मंडल कमीशन की सिफारिशों को लागू करने के फैसले ने सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने के बाद ऊँची जातियों के द्वारा इसका तीखा विरोध हुआ। इसने बिहार की राजनीति को अगड़े–अत्यंत पिछड़े के खानों में बाँट दिया। ध्यान देने वाली बात यह है कि मंडल आयोग की सिफारिशें लागू होने से पहले बिहार विधानसभा के चुनाव हुए थे और इसमें लालू प्रसाद के नेतृत्व में जनता दल की सरकार बनी थी। यह सरकार अपने बहुमत के लिए भाजपा और वामपंथी दलों पर निर्भर थी। मंडल परिघटना और लालू की तीखी ऊँची जाति विरोधी और अत्यंत पिछड़ों की पहचान की राजनीति ने अत्यंत पिछड़ी जातियों को लालू प्रसाद के नेतृत्व में गोलबंद कर दिया। लालू के ऊँची जातियों के वचस्व का विरोध करने और गरीब–हितैषी वक्तव्यों के कारण दलितों का बड़ा हिस्सा भी लालू के साथ जुड़ा। इस मामले में लालू कर्पूरी ठाकुर से आगे निकल गए। ठाकुर अत्यंत पिछड़ों की पहचान की राजनीति को भुनाने में लालू की तरह कामयाब नहीं हो पाए। लालू ने भाजपा के समर्थन की परवाह न करते हुए सांप्रदायिक राजनीति का विरोध किया। लालू की सांप्रदायिकता विरोधी छवि ने उन्हें मुस्लिमों का भी विश्वस्त रहनुमा बना दिया।

अ0 पि0 जा0 का उभार लोकतांत्रिक राजनीति के शुरूआत से ही चलने वाली प्रक्रिया का नतीजा था। शुरूआती दौर में, सत्ता की राजनीति में ऊँची जातियों का वर्चस्व था। जनसंख्या के स्तर पर ये जातियाँ छोटी थीं, लेकिन अपनी मजबूत सामाजिक–आर्थिक स्थिति से इन्हें फायदा मिला। इन जातियों की आपसी प्रतिद्वंद्विता और जनआधारित राजनीति की प्रकृति के कारण धीरे–धीरे अत्यंत पिछड़ी जातियाँ भी राजनीतिकरण की प्रक्रिया में शामिल हुई। 1990 में मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के बाद बनी स्थितियों ने बिहार को सामाजिक रूप से अगड़े–अत्यंत पिछड़ों के खानों में बाँट दिया। इसका फायदा उठाने के लिए राजनीतिक रूप से कुशल नेतृत्व की जरूरत थी। लालू प्रसाद ने इस कमी को पूरा किया। अपने तीखे ऊँची जाति विरोधी अंदाज से लालू ने अत्यंत पिछड़ों की अस्मिता के सवाल को मुख्य मुद्दा बना दिया। राजनीतिक सत्ता ने अत्यंत पिछड़ों में आत्म–सम्मान की भावना जगा दी, इससे लालू प्रसाद की राजनीतिक स्थिति मजबूत हुई। अत्यंत पिछड़ों की राजनीतिक चेतना और आगे बढ़ी, जब एक अन्य पिछड़ी जाति (कुर्मी) के नेता ने यादव वर्चस्व के खिलाफ विद्रोह कर दिया। अत्यंत पिछड़ों में राजनीतिक चेतना और सत्ता की आकांक्षा बढ़ने का नतीजा यह निकला कि बिहार की राजनीति में ऊँची जातियों की वर्चस्वशाली भूमिका पीछे चली गई। अब वे अत्यंत पिछड़ी जातियों की सहायक मात्र रह गई। नेतृत्व अब अत्यंत पिछड़ी जातियों के हाथों में चला गया। यह एक रूचिकर तथ्य है कि फरवरी 2005 और अक्तूबर–नवम्बर 20005– दोनों ही

विधानसभा चुनावों जो तीन प्रमुख मोर्चे चुनावी मैदान में थे, उनका नेतृत्व अत्यंत पिछड़ी जातियों या दलित नेताओं के हाथों में था। अक्तूबर–नवम्बर 2005 में नीतीश कुमार के नेतृत्व में नई सरकार का गठन–अत्यंत पिछड़ी जातियों की राजनीति के नये आयाम का प्रतीक है। यह सत्ता पर एक अत्यंत पिछड़ी जाति (यादव) के समृद्ध तबके के वर्चस्व के खिलाफ अन्य पिछड़ी जातियों का विद्रोह था। अत्यंत पिछड़ों के उभार की राजनीति के संदर्भ में एक रोचक तथ्य यह है कि इस परिघटना से सामंजस्य न बिठा पाने के कारण राज्य में कांग्रेस और वामदलों (भाकपा–माकपा) का आधार लगातार सिकुड़ता गया।

1990 के बाद की बिहार की राजनीति में अत्यंत पिछड़ी जातियों का उभार हुआ, लेकिन अतिपिछड़ी जातियाँ सत्ता के मुख्य केन्द्र में नहीं आ पाई। इसी तरह समाज के दूसरे कमजोर तबके दलित महिलाएँ, और मुस्लिम हाशिए पर ही रहे। अति या निम्न पिछड़ी जातियों ने लालू की ऊँची जाति विरोधी अत्यंत पिछड़ावादी राजनीति का समर्थन किया। लेकिन लालू–राबड़ी के शासन में न तो इन्हें पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिला और न ही उनका आर्थिक भला हुआ। सत्ता में हिस्सेदारी की इनकी चाह ने इन्हें लालू के खिलाफ नीतीश से जुड़ने को प्रेरित किया। लेकिन विभिन्न छोटी–छोटी अतिपिछड़ी जातियों को राजनीति में पर्याप्त हिस्सेदारी देना एक चुनौतीपूर्ण काम है। एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि बिहार की राजनीति में दलितों का उस तरह उभार नहीं हुआ जैसा कि 1990 के दशक में उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी के नेतृत्व में हुआ। उत्तर प्रदेश की तरह ही बिहार में भी दलितों की अधिकांश जनसंख्या गरीबों और अशिक्षा से त्रस्त है। लेकिन बिहार और उत्तर प्रदेश की स्थिति में बुनियादी फर्क है। बिहार में दलितों की राजनीति करने वाली कोई ऐसी राजनीतिक पार्टी सामने नहीं आई, जैसे कि उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी है। नब्बे के दशक में बसपा ने उत्तर प्रदेश में दलितों की पहचान की राजनीति को बढ़ावा देकर उन्हें एकजुट करने में सफलता हासिल की। बिहार में ऐसा नहीं हुआ। हालाँकि रामविलास पासवान के नेतृत्व वाली लोक जनशक्ति पार्टी ने ऐसी संभावना जगाई है।

1990 के दशक के बाद बिहार के राजनीतिक परिदृश्य में सबसे बड़ा बदलाव यह आया है कि यहाँ सत्ता की राजनीति से ऊँची जातियों के वर्चस्व की विदाई हो गई है। सामाजिक स्तर पर भी कम से कम ऊँची पिछड़ी जातियों ने अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई है।

एक प्रमुख सवाल यह है कि डी. एल. शेठ जाति में हुए परिवर्तनों की व्याख्या करते हुए जिस 'नये मध्य वर्ग के उभार की बात करते हैं, क्या उसका अस्तित्व बिहार में भी देखा जा सकता है? कुछ हद तक इस सवाल का जवाब हाँ है। 1990 के बाद बिहार के मध्य वर्ग में अत्यंत पिछड़ी जातियों की हिस्सेदारी बढ़ी है। लेकिन बिहार के संदर्भ में 'नये मध्य वर्ग' की संकल्पना के प्रयोग की कुछ सीमाएँ हैं। पहला, शेठ जिस रूप में जातियों के सेकुलरीकरण की बात करते है, वह बिहार में काफी हद तक लागू होता है अर्थात् यहाँ जातियों का राजनीतिकरण हुआ है। इससे जातियाँ कर्मकांड और पदसोपानीय या ऊँच–नीच आधारित व्यवस्था की जगह क्षैतिज या समस्तरीय रूप से प्रतियोगी समूहों में बदल गई हैं। इसके साथ ही कर्मकांडीयता भी कमजोर हुई है। लेकिन बिहार में जाति आधारित अस्मिता को मजबूती भी मिली है। 'नये मध्य वर्ग' के सदस्य अपनी जातियों की अस्मिता के प्रतीक बन चुके हैं। जाति–अस्मिता का एक महत्त्वपूर्ण आयाम जाति से जुड़े प्रतीकों को अपनाना है, जैसे–लालू और दूसरे यादव नेताओं द्वारा भैंसें पालना, कुर्मी कोइरी नेताओं द्वारा लव कुश एकता की बातें कहना आदि। गाय–भैंस पालना यादव जाति का पारंपरिक पेशा रहा है। यादव नेता भैंसों को पालकर आम यादव वोटरों को यह संदेश देने की कोशिश करते हैं कि वे उनसे जुड़े हैं। इसी तरह लव–कुश एकता कुर्मी–कोइरी एकता का पर्याय है। दोनों के मिलने से एक तगड़ा वोट बैंक बन जाता है। इसलिए इन जातियों के नेता लव–कुश एकता की बातें करते हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सिर्फ जातियों के नेता ही नहीं बल्कि आम लोग भी अपने जातिगत पहचानों से जुड़े हुए हैं। जाति–अस्मिता और जातियों के बीच संसाधनों पर अधिक से अधिक कब्जा करने की होड़ ने एक तरह के जातिगत तनाव को उत्पन्न किया है। हर जाति के समृद्ध तबके ने जाति–अस्मिता का प्रयोग अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के

लिए किया है। जातिगत तनावों ने समाज में हाशिए पर पड़े समूहों के बीच जाति के आधार पर टकराव को बढ़ाया है। दूसरा, यह सच है कि बिहार में नया मध्य वर्ग उभरा है। 1999–2000 में इंस्टीट्यूट ऑफ ह्युमन डेवलपमेंट द्वारा कराए गए सर्वेक्षण से यह बात उभरकर सामने आई है कि ग्रामीण स्तर पर बिहार के भूमि–संबंधों में बदलाव आया है। जमीन पर ऊँची जातियों का एकाधिकार टूटा है। अब यादव, कुर्मी, कोइरी जैसी ऊँची पिछड़ी जातियों में भी बड़े भूमिपतियों का तबका उभरा हैं। लेकिन इस मध्य वर्ग का क्षेत्र बहुत ही संकुचित है।

स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर 1990 के दशक तक बिहार में समाज के हाशिए पर पड़े तबके राजनीति की मुख्यधारा में शामिल होते गए। 1990 में मंडल परिघटना और लालू की आक्रामक अत्यंत पिछड़ावादी राजनीति ने अत्यंत पिछड़ों की अस्मिता को बिहार की राजनीति का मुख्य और प्रभावकारी भाग बना दिया। पर एक सीमा के बाद लालू की राजनीति भी विजयी चुनावी समीकरण कायम रखने तक सिमट गई। लालू को चुनौती भी दूसरी अत्यंत पिछड़ी जाति के नेता से ही मिली। इस तरह हम बिहार में लोकतंत्र के लगातार बढ़ते समावेशी स्वरूप को देख सकते हैं। इसकी बहुत अधिक कमियाँ भी हैं। जैसे भ्रष्टाचार, अपराधीकरण, जाति के सहारे यथास्थिति कायम रखने की प्रवृत्ति, भाई–भतीजावाद आदि। बिहार की स्थिति पर कुछ विद्वानों ने यहाँ तक टिप्पणी की है कि 'यहाँ राज्य समाप्त हो गया है। ऐसा मार्क्सवादी अर्थों में नहीं हुआ है। वास्तव में बलात्कार, आगजनी, लूट आदि बिहार की पहचान बन गए हैं। बहुत बार यह भी कहा जाता है कि जिन राजनीतिक दलों को समाज में हाशिए पर पड़े समूहों की राजनीतिक चेतना का वाहक माना जाता है, उनके पास किसी व्यापक आर्थिक या दूरगामी राजनीतिक कार्यक्रम का अभाव है। इन दलों की राजनीति सिर्फ तात्कालिक फायदों तक सीमित है।

बिहार की राजनीति में अतिपिछड़ों का उभार की बात हो रही हो और अगर उसमें रेणु देवी का नाम शामिल नहीं किया जा रहा हो, तो उस विचार मंच का बातचीत पूरी तरह से अधुरी ही रह जाती है। बिहार के अति पिछडो के जितने भी नेता हुए उन्में रेणु देवी का स्थान भी अतिपिछडों के नेता के रूप में गौरवान्वित कर्ता है। रेणु देवी बिहार की अतिपिछडे वर्ग से आने वाली जमीनी एवं कधावर नेता रही है। बिहार की मात्र एक महिला उपमुख्यमंत्री जिसने अतिपिछड़ों को सरकार की विचारधारा से जोड़ने के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया।

बिहार में नोनिया बिंद मल्लाह तुरहा आदि जाति को पार्टी की विचारधारा से जोड़ा। राष्ट्रीय स्तर पर अतिपिछड़ा की मजबूत जातियों नोनिया (चौहान), उपहारा /सागरा, लबाना (पंजाब), सदर समाज (गुजरात) के बीच जाकर अलख जगाया और पार्टी से जोड़ा। 2007 में बिहार सरकार की ओर से मॉरिशस भेजे गए डेलिगेशन में भी शामिल रहीं। रेणु देवी बेटी पढ़ाओ, बेटी बचाओं अभियान के तहत सदस्य के रूप में कार्य कर रही है। इस दौरान चम्पारण और उत्तर बिहार को कार्यक्षेत्र बना कर कई सामाजिक कार्य कीं। खासकर स्वयं सहायता समूह की महिलाओं के हक की लड़ाई लड़ी। 1988 में दुर्गा वाहिनी की जिला संयोजक बनी। इस दौरान राममंदिर आंदोलन में लगभग 500 महिला कार्यकर्ताओं के साथ गिरफ़्तारी दी। रेणु देवी ने अतिपिछड़ा जातियों को मजबूती प्रदान करने के लिए सरकार के विचारधार से जोड़ने के लिए हर समय दो कदम आगे बढ़ कर कार्य करने की कोशिश अपने इस लम्बे राजनीतिक के कार्यकाल के दौरान किया है।

बिहार के राजनीतिक बदलाव लोकतांत्रिक क्रांति के नब्बे के दशक में एक आयाम का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोकतांत्रिक क्रांति का पूर्ण आयाम हर तरह के भेदभाव, शोषण और दमन को हटाकर, समतामूलक समाज के निर्माण में निहित है। इसके लिए नेतृत्व में गहरी समझदारी, विचारधारात्मक ईमानदारी और दूर दृष्टि की जरूरत है। यह लालू के बाद उभरे अत्यंत पिछड़े नेतृत्व की मुख्य चुनौती भी है।

आजादी के बाद बिहार विधानसभा और राज्य मंत्रिमंडल की बनावट में परिवर्तन तो हुआ है, लेकिन इस परिवर्तन पर दबंग शूद्रों का एकाधिकार है। हालांकि उन्हें इसके लिए संघर्ष करना पड़ा है, पर उन्हें नैतिक समर्थन या सक्रिय समर्थन देनेवाली जातियां विधानसीाा और राज्य मंत्रिमंडल के दायरे

में दिखाई नहीं पड़ती। वस्तुतः निम्न शूद्रों की एक तिहाई आबादी को पहचान के संकट से गुजरना पड़ रहा है। 32 फीसदी आबादी का यह संकट वैसा हे, जैसा पचास या साठ के दशक में शूद्र जातियों के समक्ष था।

बिहार में अ0 पि0 जा0 की आबादी 51.3 प्रतिशत है। इनमें यादव, कुर्मी, कोइरी ओर बनिया जातियों की सम्मिलित आबादी 19.3 प्रतिशत है। शेष दो तिहाई वैसे शूद्रों की है जो निम्न शूद्र कहे जा सकते हैं। धानुक, कहार, कानू, कुम्हार, लोहार, नाई, ततमा, तेली जैसी जातियों की आबादी 16 प्रतिशत है। इसके साथ वैसी जातियां जिनकी संख्या एक प्रतिशत से कम है, उनकी आबादी भी 16 प्रतिशत है। ये जातियां कुल 32 फीसदी आबादी का निर्माण करती है। ऐसी ही छोटी–छोटी जातियां मिलकर एक बड़ी संख्या का निर्माण कर देती है, जो दबंग अत्यंत पिछड़े समुदायों से ज्यादा है। हैरी डब्ल्यू ब्लेयर के शब्दों में बिहार विधानसभा में 1962 में 30 प्रतिशत अतिपिछड़ी जातियों का कोई प्रतिनिधि नहीं था और 26 प्रतिशत आबादी का 1967 में कोई प्रतिनिधि नहीं था। लालू मंत्रिमण्डल में मंगनी लाल मंडल और विद्यासागर निषाद क्रमशः धानुक और मल्लाह थे।

बहरहाल, कांग्रेस सहित अन्य पार्टियों की पूरी योजना में अत्यंत पिछड़ी जातियों का ऊपरी हिस्सा ही केन्द्र में रहा, और इस धुरी में यादव, कुर्मी, कोइरी और बनिया ही रहे। वास्तव में बिहार विधानसभा, मंत्रिमंडल तथा अन्य निकायों की बनावट के चार पहलू हैं। 1. परंपरागत दबदबा वाली जातियों का प्रभुत्व, ब्राम्हण, भूमिहार, राजपूत, कायस्थ 1967 तक राजनीति की धुरी में रहे। 2. हरिजन आदिवासियों को संरक्षण। 3. डॉ. लोहिया के नेतृत्व में अत्यंत पिछड़ा उभार जिसकी धुरी बनी–यादव, कोइरी, कुर्मी व अन्य पिछड़ी जातियां। 4. मुसलमानों का ख्याल खासतौर से अशराफ मुसलमानों का 52–96 तक मुसलमानों मं 246 विधायक बने। इसमें 199 (81 प्रतिशत) उच्च समुदाय तथा 47 (19 प्रतिशत) अत्यंत पिछड़े समुदाय से आये थे, जबकि मुसलमानों में अत्यंत पिछड़े समुदाय ही बहुसंख्यक हैं।

विधानसभा और लोकसभा के बाद अब संगठनात्मक स्तर पर निम्न शूद्रों के प्रतिनिधित्व का जायजा लें। जनता दल के 49 जिलाध्यक्षों में एक मल्लाह और एक तुरहा जाति से हैं। भाजपा के 58 जिलाध्यक्षों की सूची में कए लोहार, कांग्रेस के 44 जिलाध्यक्षों में एक मल्लाह, भाकपा के 45 जिलाध्यक्षों की सूची में एक खरवार, समता के 41 जिलाध्यक्षों में 2 धानुक और एक पनेरी जाति से था। सन् 2000 के बाद भी पार्टियों के स्तर पर सांगठनिक ढांचे के अंदर कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है। विधानसभा के 2000 के चुनाव में राजद ने 12, भाजपा ने 4, समता ने 10, जदयू ने 4 अतिपिछड़ी जाति के प्रत्याशियों को अपना प्रत्याशी बनाया था। विधानसभा और लोकसभा मं अतिपिछड़ी जाति के सदस्यों को टिकट नहीं मिलता है।

अब जरा 2001 के पंचायत चुनाव में अतिपिछड़ी जातियों के प्रतिनिधित्व का जायजा लें। पंचायत चुनाव में निर्वाचित मुखियों में 7682 की जातिगत सूची उपलब्ध है। इसमें लगभग 32 प्रतिशत आबादी वाली अतिपिछड़ी जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या 200 से नहीं पार कर सकी। सिर्फ 179 मुखिया अतिपिछड़ी जातियों से चुने गए। अतिपिछड़ी जातियों को मुखिया के पदों पर मात्र 3.9 प्रतिशत प्रतिनिधित्व मिल सका। जिला परिषदृ के 1160 प्रतिनिधियों में अतिपिछड़ी जातियों की संख्या मात्र 38 है। गंगोता 3, धानुक 6, बढ़ई 3, लोहार 2, हजाम 1, कुम्हार 1, चनेऊ 1, बिंद 2, सुर्यापूरी 1, मंडल 1, मुल्लाह–गोड़ी 14, नागर 1 चुने जा सके।

बिहार के राजनीतिक में अतिपिछड़ों का उभार समय अनुसार बदलते रहा है दिन पर दिन अतिपिछड़ों का समाज में शिक्षा के प्रति अग्रसर हो रहा है। परिणाम स्वरूप अति पिछड़ी जातियों के अंदर राजनितिक चेतना का विकास हुआ है और दिन पर दिन इसमें बढ़ोतरी हो रही है। सामाज के हर क्षेत्र में अतिपिछडो कि भगीदारी प्रतिशाप्ता पहले कि अपेक्षा बढ़ रही है। समाज के लिए यह एक शुभ संकेत है.....।

**सन्दर्भ ग्रंथ–सूची :**


1. धीरूभाई शेठ, 'नये मध्य वर्ग का उदय : जाति व्यवस्था, वर्ग–रचना और लोकतांत्रिक राजनीति', पूर्वउद्धृत।
2. रामाश्रय राय, 'कास्ट एंड पॉलिटिकल रिक्रूटमेंट इन बिहार', 'संकलित, रजनी कोठारी, कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स, ओरियंट लागमैन, दिल्ली, 1970
3. रजनी कोठारी, सांप्रदायिकता और भारतीय राजनीति, (हिन्दी रूपान्तर–ध्रुव नारायण), रेनबो पब्लिशर्स लिमिटेड, दिल्ली, 1998
4. योगेन्द्र यादव, 'कायापलट की कहानी : नया प्रयोग, नयी संभावनाएँ, 'नए अंदेशे', पूर्वउद्धृत।
5. लालू प्रसाद ने पिछडों में आत्मसम्मान और सत्ता की चाह भरी। लेकिन वे कोई ऐसा राजनीतिक दर्शन या आर्थिक एजेंडा प्रस्तत करने में नाकाम रहे, जिससे राज्य में बुनियादी सुविधाओं का विकास होता, उद्योगीकरण होता और राज्य के लोगों को रोजगार मिलता। देखे, सुरेन्द्र किशोर, 'लालू प्रसाद जिन पर महानता थोप दी गई', सामयिक वार्त्ता, जून 2005, दिल्ली।
6. अरविंद एन. दास, द रिपब्लिक ऑफ बिहार, पेंग्विन बुक्स, नई दिल्ली, 1992
7. अरविंद एन. दास, द रिपब्लिक ऑफ बिहार, पूर्वउद्धृत
8. नीरजा गोपाल जयाल, 'इंट्रोडक्शन : सिचुएटिंग इंडियन डेमोक्रेसी', पूर्वउद्धृत,
9. राबर्ट डॉल, पॉलिआर्की : पार्टिसिपेशन एंड ऑपोजिशन, न्यू हेवेन, याले यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971,
10. लोकतंत्र के मापन के संबंध में बीथम और दूसरे सिद्धान्तकारों के विचारों की समझ के लिए देखे, नीरजा गोपाल जयाल, 'इंट्रोडक्शन : सिचुएटिंग इंडियन डेमोक्रेसी', पूर्वउद्धृत,
11. रजनी कोठरी 'काष्ट इन इंण्यिन प्लॉटिक्स'।


***

# नागार्जुन की कविता और राजनीतिक व्यंग्य

*डॉ. गोरखनाथ**

बाबा नागार्जुन का नाम उन रचनाकारों में अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है जिन्होंने अपनी जनसंवेदनशीलता, रचनात्मक प्रतिभा एवं जनआस्था के बल पर हिंदी जाति सहित समस्त भारतीय मनुष्य एवं दुनिया की दलित शोषित मानवता की जातीय सांस्कृतिक उपलब्धियों, यथार्थ जीवन स्थितियों एवं संघर्षों को अत्यंत सक्षम, प्रामाणिकता एवं आत्मीयतापूर्ण रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान किया है। हिंदी में उनका रचनात्मक लेखन 19वीं शताब्दी के चौथे दशक के आरंभ से लेकर इस शताब्दी के अंत तक फैला हुआ है। वास्तव में नागार्जुन के रचनात्मक लेखन में पूरी एक शताब्दी के हिंदी जाति सहित भारतीय मनुष्य और दुनिया की संघर्षशील जनता की धड़कन अत्यंत स्पष्टता एवं ईमानदारी के साथ सुनी जा सकती है।

बाबा नागार्जुन की लगभग 6 दशकों की लंबी रचनात्मक यात्रा की गहराई से पड़ताल करने से पता चलता है कि वे कबीर, तुलसी, भारतेंदु, निराला, प्रेमचंद, रामचन्द्र शुक्ल आदि महान रचनाकारों की प्रगतिशील एवं जनवादी परंपरा की अटूट कड़ी हैं। उनकी जनवादी पक्षधरता एवं प्रतिबद्धता आरंभ से अंत तक अविचलित रही है। मार्क्सवादी विचारधारा से अत्यंत गहराई से जुड़े होने पर भी कभी भी विचारधारा उनकी जनवादी आस्था एवं प्रतिवद्धता से ऊपर नहीं रही। वास्तविकता तो यह है कि मार्क्सवादी विचारधारा उनकी जनवादी आस्था एवं प्रतिबद्धता की आधार है, उसी से वे रोशनी प्राप्त करते हैं। इस रूप में नागार्जुन की कविताओं का कैनवस समाज, राजनीति, धर्म, प्रकृति, संस्कृति आदि जीवन के विभिन्न पहलुओं को समेटे हुए है। इतना होते हुए भी उनकी राजनीतिक कविताएँ पाठकों एवं आलोचकों का ध्यान सबसे अधिक खींचती हैं। इनमें भी नागार्जुन के राजनीतिक व्यंग्य प्रधान कविताएँ हिंदी ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की अमूल्य विरासत हैं।

नागार्जुन का राजनीतिक व्यंग्य मूलतः स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीतिक जीवन में आने वाले उतार–चढ़ावों से सम्बद्ध है। स्वतंत्रतापूर्व यद्यपि उनका लेखन आरंभ हो जाता है, लेकिन राजनीतिक व्यंग्य की शुरुआत स्वातंत्र्योत्तर दौर में ही होती है। लगभग आधी शताब्दी की इस अवधि में फैले हुए उनके राजनीतिक व्यंग्य का स्वरूप पर्याप्त व्यापक एवं वैविध्यपूर्ण है। शायद ही समकालीन भारतीय राजनीति, शासनतंत्र एवं व्यवस्था का कोई जनविरोधी, अमानवीय और अलोकतांत्रिक संदर्भ होगा जो नागार्जुन के व्यंग्य प्रहार से बच सका हो। यह बात युगीन अंतर्राष्ट्रीय विद्रूपताओं, विकृतियों और अमानवीय रूपों पर भी लागू होती है। इस रूप में नागार्जुन के राजनीतिक व्यंग्य का फलक स्वातंत्र्योत्तर कांग्रेसी शासन एवं पार्टी में आने वाले पतन, समकालीन राजनेताओं के जनविरोधी क्रियाकलापों, राजनीति एवं व्यवस्था के पतित रूपों, लोकतांत्रिक व्यवस्था में आने वाली विकृतियों, नौकरशाही के भ्रष्ट एवं निरंकुश रूपों तथा राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय पूँजीवादी–साम्राज्यवादी शोषण, दमन आदि के व्यापक संदर्भों को समेटता है। नागार्जुन के व्यंग्य की इसी ताकत को प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक डॉ0 नामवर सिंह ने स्वीकार किया है और उसे उनकी कविता की एक बड़ी ताकत बताया है। इस सम्बन्ध में डॉ0 नामवर सिंह ने नागार्जुन को कबीर के बाद हिन्दी का सबसे बड़ा व्यंग्यकार बताते हुए लिखा है ''व्यंग्य की इस विदग्धता ने ही नागार्जुन की अनेक तात्कालिक कविताओं को कालजयी बना दिया है, जिसके कारण वे कभी बासी नहीं हुईं और अब भी तात्कालिक बनी हुई हैं। अन्य कवियों की तात्कालिक कविताओं से नागार्जुन की तथाकथित तात्कालिक कविताओं की यही विशेषता है। इसीलिए यह निर्विवाद है कि कबीर के बार हिन्दी कविता में नागार्जुन से बड़ा व्यंग्यकार अभी तक कोई नहीं हुआ।''[1]

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी

नागार्जुन के राजनीतिक व्यंग्य का एक बड़ा और महत्वपूर्ण आयाम कांग्रेस पार्टी, उसकी सरकार तथा कांग्रेसी नेताओं के चरित्र में आने वाले पतन से संबंधित है। स्वतंत्रता के बाद एक लंबे समय तक देश पर शासन कांग्रेस पार्टी करती है। इसलिये देश की जनता की खुशहाली, उन्नति, विकास तथा स्वतंत्रतापूर्व पाले गये सपनों एवं किये गये संघर्षों को मूर्त एवं व्यावहारिक रूप देने की जिम्मेदारी कांग्रेस पार्टी की ही थी, लेकिन इस कसौटी पर कांग्रेस पार्टी और कांग्रेसी नेता खरे नहीं उतरे। परिणामतः नागार्जुन कांग्रेस पार्टी के जनविरोधी क्रियाकलापों, शासन की निरंकुश नीतियों तथा पं. जवाहरलाल नेहरू, इंदिरा गांधी, राजीव गांधी जैसे कांग्रेसी नेताओं पर प्रखर एवं तीव्र व्यंग्य करते हैं। महात्मा गांधी के प्रति यद्यपि उनके मन में अत्यधिक श्रद्धा थी, लेकिन बिड़ला के यहाँ आतिथ्य स्वीकार करने पर 'गाँधी' कविता में उन पर भी करारा व्यंग्य करते हैं– 'हे धनकुबेर के अतिथि.... नहीं, हे जननायक।' इसी तरह पं. जवाहरलाल नेहरू के प्रति कुछ कविताओं में प्रशंसा भाव प्रकट करते हुए भी उनके शासन के जनविरोधी चरित्र एवं निर्णयों पर नागार्जुन कई कविताओं में अत्यंत तीव्र और मारक व्यंग्य करते हैं। इस दृष्टि से 'रामराज', 'पंडित जी जाने वाले हैं रानी के दरबार में', 'आओ रानी हम ढोएंगे पालकी', 'तुम रह जाते दस साल और' आदि कविताएँ उल्लेखनीय हैं। 'रामराज' में गांधी जी के उत्तराधिकारियों द्वारा उनके मूल्यों एवं आदर्शों की अवहेलना करने पर आक्रोश व्यक्त करते हुए नेहरू के प्रति भी तीव्र व्यंग्य किया है–

**"वतन बेचकर पंडित नेहरू फूले नहीं समाते हैं**
**बेशर्मी की हद है, फिर भी बातें बड़ी बनाते हैं**
**अंग्रेजी–अमरीकी जोंको की जमात में हैं शामिल**
**फिर भी बापू की समाधि पर झुक–झुक फूल चढ़ाते हैं।"[2]**

पं. नेहरू द्वारा जनहितों की उपेक्षा करके साम्राज्यवादी इंग्लैण्ड की महारानी के दरबार में जाने पर भी इन पंक्तियों में व्यंग्य है–

**"पंडित जी जाने वाले हैं रानी के दरबार में**
**अपने हाथों ही गूंथेंगे मोती उसके हार के।"[3]**

इसी तरह रानी एलिजावेथ के भारत आगमन पर उनके स्वागत में करोड़ों रुपया खर्च होता है तो नागार्जुन 'आओ रानी, हम ढोएंगे पालकी' कहते हुए करारा व्यंग्य करते हैं और अपने जनकवि होने का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं–

**"आओ रानी हम ढोएँगे पालकी**
**यही हुई है राय जवाहर लाल की**
**रफू करेंगे फटे–पुराने जाल की**
**यही हुई है राय जवाहर लाल की**
**आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी।"[4]**

विदेशों में शांति, मैत्री और पंचशील का प्रचार करने वाले नेहरू के शासन में जब देश के भीतर पुलिस जुल्म ढाती है तब नागार्जुन प्रखर व्यंग्य करते हैं।

**"बाहर की दुनिया के लेखे तुम हो गौतम बुद्ध**
**घर में लेकिन बात बात पे क्रुद्ध**
**बाहर निभा रहे हो अपने पंचशील–दशशील**
**ठोंक रहे हो घर में तरुणों के सीने में कील**
**अजी तुम्हारे दिल–दिमाग की खूबी कौन बताए**
**हे अद्‌भुत नटराज, तुम्हारी माया कही न जाए।"[5]**

इसी तरह नेहरू के मरणोपरांत भी 'तुम रह जाते दस साल और' कहते हुए बढ़ती हुई मंहगाई के कारण रोष प्रकट करते हुए व्यंग्य प्रहार करते हैं।

नागार्जुन के राजनीतिक व्यंग्य की कई कविताएँ इंदिरा गांधी के जनविरोधी एवं तानाशाही कारगुजारियों से संबंधित हैं। 1966 ई. में ही लिखित 'चलो चलें धरना दें चलकर' कविता में वे व्यंग्य प्रहार करते हुए कहते हैं–

**''जगत–तारिणी प्रकट हुई है नेहरू के परिवार में**
**उसके कई मुखौटे, देखो, छपते हैं अखबार में।''**[6]

इसके बाद नागार्जुन इंदिरा गांधी पर लगातार व्यंग्य करते हैं। 'धूल चटाओ' कविता में राष्ट्रपति चुनाव में उनकी भूमिका की सराहना करते हुए भी 'लगता है पागल हो जायेगी', 'अब तो बंद करो हे देवि, यह चुनाव का प्रहसन', 'इन्दु जी क्या हुआ आपको', 'लाइए मैं चरण चुमूँ आपके', 'जय प्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतंत्र की', 'इसके लेखे संसद फंसद सब फिजूल है' जैसी व्यंग्य प्रधान कविताएँ लिखते हैं। 1974 में लिखित 'इन्दु जी, क्या हुआ आपको' की पंक्तियाँ हैं–

**''क्या हुआ आपको?**
**क्या हुआ आपको?**
**सत्ता की मस्ती में,**
**भूल गईं बाप को।''**[7]

यहाँ नागार्जुन व्यक्ति विशेष पर व्यंग्य न करके इंदिरा गांधी द्वारा लगाई गई इमरजेंसी, दमन एवं जनविरोधी कार्यों पर ही व्यंग्य करते हैं। इसका एक उदाहरण है–

**''देवि, अब तो कटें बन्धन पाप के**
**लाइए, मैं चरण चूसूं आपके।''**[8]

संजय गांधी एवं राजीव गांधी पर भी नागार्जुन की कुछ व्यंग्य कविताएँ मिलती हैं। 'बड़ी फिकर है हमें तुम्हारी' कविता में वे संजय गांधी को 'युवक हृदय सम्राट संभावित प्रधानमंत्री' कहते हुए व्यंग्य करते हैं तो 'नर्सरी राइम' एवं 'लोकतंत्र के मुंह पर ताला' कविताओं में राजीव गांधी के शासन काल में बोफोर्स घोटाला खुलने पर व्यंग्य है।

नागार्जुन ने केवल कांग्रेसी नेताओं पर ही व्यंग्य नहीं किया है अपितु उस समय के जिस भी नेता के कार्यों को अलोकतांत्रिक एवं जनविरोधी माना, उस पर वे व्यंग्य प्रहार करने से नहीं चूके। उदाहरण के लिये जयप्रकाश नारायण के 'संपूर्ण क्रांति' आंदोलन में एक समय तक नागार्जुन सहयोगी होते हैं, किंतु मोहभंग होने पर व्यंग्य की झड़ी लगा देते हैं। इस दृष्टि से 'वो सब क्या था आखिर' 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' आदि कविताएँ उल्लेखनीय हैं। यहाँ नागार्जुन करारा व्यंग्य करते हुए कहते हैं–

**''खिचड़ी विप्लव देखा हमने**
**भोगा हमने क्रांति विलास**
**अब भी खत्म नहीं होगा क्या**
**पूर्ण क्रांति का भ्रांतिविलास।''**[9]

इसी तरह 'आखिर इंसान हैं भाई मुरार जी', 'भाई भले मुरार जी', 'कंचनमृग' जैसी कविताओं में वित्तमंत्री के रूप में मुरार जी देसाई की आर्थिक नीतियों की व्याख्या करते हुए उनके कथित समाजवाद पर व्यंग्य करते हैं–

**''मनन तुम्हारा अर्थशास्त्र है, भोजन है शुचि–शाक**
**बात–बात में बापू की सुमिरन है दिव्य जुगली**
**निशि–दिन श्रीमंतों के सुखों की करते हो रखवाली**
**तुम्हें मुबारक टैक्सों की भरमार जी।''**[10]

इसी तरह वी.पी. मण्डल, कामराज आदि नेताओं पर भी व्यंग्य किया है। राजनेताओं पर व्यंग्य की दृष्टि से उनकी 'चिडियाखाना' कविता भी पर्याप्त महत्वपूर्ण है। नागार्जुन के राजनीतिक व्यंग्य का प्रमुख विषय स्वातंत्र्योत्तर राजनैतिक एवं व्यवस्थागत पतन तथा लोकतंत्र का विकृत रूप भी रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जहाँ एक ओर राजनेताओं का चारित्रिक पतन होता है वहीं दूसरी ओर अनेक

सामंतवादी, सांप्रदायिक, अवसरवादी एवं आपराधिक तत्व उसका संरक्षण प्राप्त कर लेते हैं। परिणामस्वरूप भारतीय राजनीति का स्वरूप पतित एवं लोकतंत्र विकृत हो जाता है। साथ ही व्यवस्था निरंकुशता एवं अमानवीयता का आचरण करने लगती है। यह स्थिति नागार्जुन के मन में अत्यंत क्षोभ एवं आक्रोश उत्पन्न करती है और वे व्यंग्य के सहारे इन पर अत्यंत निर्मम एवं तीक्ष्ण प्रहार करते हैं। देशव्यापी भ्रष्टाचार तथा राजनीतिक पतन पर 'रामराज' कविता में उनके व्यंग्य की धार प्रमुख है। नागार्जुन स्वदेशी शासकों पर व्यंग्य प्रहार करते हुए पूछते हैं कि हमने क्या इसीलिए जेलों में जिंदगी बिताई थी, खून बहाया था, फाँसी के तख्तों पर झूले थे कि स्वराज्य प्राप्ति के बाद बापू के नाम पर वोट बटोर कर सत्ता में आने पर कथनी और करनी में अंतर करते जाओ–

**"अपनी सामंती संस्कृति में**
**पश्चिम के विज्ञानवाद की छोंक मारकर**
**वायुयान से वापस आओ**
**हमें सीख दो शांति और संयत जीवन की**
**अपने खातिर करो जुगाड़ अपरिमित धन की**
**बेच–बेचकर गांधी जी का नाम**
**वोट बटोरो**
**हिलाओं शीश**
**निपोड़ों खीस**
**बैंक बैलेस बढ़ाओ**
**राजघाट पर बापू की बेदी के आगे अश्रु बहाओ।"**[11]

नागार्जुन कांग्रेसी शासन और जनता पार्टी के शासन में कोई मौलिक अंतर नहीं करते। इसीलिए वे कांग्रेसी शासन की तरह 'जनता वाले परेशान हैं', 'हो गए बारह महीने', 'नौ दिन चले अढ़ाई कोस' आदि कविताओं में जनता पार्टी के शासन पर भी तीक्ष्ण व्यंग्य करते हैं। इसी राजनीतिक पतन ने गरीबी, भुखमरी, भ्रष्टाचार जैसे दानवों को जन्म दिया है और लोकतांत्रिक स्यवस्था को भी विकृत बनाते हुए नौकरशाही को भ्रष्ट, निरंकुश एवं अमानवीय बनाया है। 'प्रेत का बयान' 'वो तो था बीमार' आदि कविताओं में भुखमरी एवं प्रशासनिक निरंकुशता की मानिक अभिव्यक्ति है। 'उम्मीदवार', 'आए दिन बहार के', 'प्रजातंत्र का होम' कविताएँ चुनावी व्यवस्था की विकृतियों पर करारा व्यंग्य है। 'सच न बोलना', 'नया तरीका', 'बाढ़–67 पटना' जैसी कविताएँ सरकारी संरक्षण में पलने वाली निरंकुश, अमानवीय एवं हिंसक नौकरशाही पर कठोर व्यंग्य हैं।

नागार्जुन गहरी लोकसंवेदना से युक्त जनवादी रचनाकार थे। उनकी राजनीतिक कविताएँ अपने समय के विषमता बोध की गहन रचनात्मक अभिव्यक्ति है। परिणामतः उनकी निगाह स्वातंत्रयोत्तर भारतीय जीवन में तथा अतर्राष्ट्रीय स्तर पर पनपने वाली पूँजीवादी–साम्राज्यवादी शक्तियों के शोषण एवं विनाशक परिणामों पर भी रही है। वे देश के भीतर सामंतवादी–सांप्रदायिक शक्तियों के उभार को भी गहराई से लेते हैं और उन पर करारा व्यंग्य करते हैं। गांधी जी की हत्या के बाद लिखी गई शपथ' एवं 'तर्पण' जैसी कविताओं में सांप्रदायिकता पर क्षोभपूर्ण आक्रोश की अभिव्यक्ति है। यह परम्परा आगे 'बर्वरता की ढाल ठाकरे' तथा 'अब तक छिपे हुए थे उनके दाँत' जैसी कविताओं में भी मिलती है। 'शपथ' कविता में उनके मन का क्षोभ इस प्रकार प्रकट हुआ है–

**"सांप्रदायिक दैत्यों के विकट खोट**
**जब तक खंडहर न बनेंगे**
**तब तक मैं इनके ख़िलाफ लिखता जाऊँगा**
**लौह–लेखनी कभी विराम न लेगी।"**[12]

इसी तरह वे देश के भीतर एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चलने वाले पूँजीवादी– साम्राज्यवादी शोषण के अमानवीय एवं घिनौने रूपों पर निर्मम व्यंग्य प्रहार करते हुए उन शक्तियों का असली चेहरा दुनिया के

सामने लाते हैं। 'ताशो में ही बचे रहेंगे' कविता सामंतवादी अवशेषों पर व्यंग्य है। देशी पूँजीपतियों पर भीतर तक तिलमिला देने वाला व्यंग्य यहाँ द्रष्टव्य है–

**''बताऊँ?**
**कैसे लगते हैं–**
**दरिद्र देश के धनिक**
**कोढ़ी–कुढ़व तन पर मणिमय आभूषण।''**[13]

अन्तर्राष्ट्रीय जगत में सक्रिय पूँजीवादी–साम्राजवादी ताकतों एवं उनके अमानवीय कृत्यों पर नागार्जुन के व्यंग्य प्रहार कई कविताओं में मिलते हैं। आरंभ में चीन–मैत्री के गीत गाने वाले और सोवियत रूस की प्रशंसा करने वाले नागार्जुन अपनी जनपक्षधरता के कारण उनके साम्राज्यवादी एवं आक्रमणकारी होने पर तीखा व्यंग्य प्रहार करने से नहीं चूकते। जब 1662 ई. में चीन ने भारत पर आक्रमण किया तब नागार्जुन ने न केवल कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता छोड़ दिया, अपितु चीन विरोधी अनेक व्यंग्यात्मक कविताएँ भी लिखा। इस दृष्टि से 'तप्त लहु की धार बह चली', 'पुत्र हूँ भारत माता का और कुछ नहीं', 'आओ, इसे जिंदा ही कब्र में गाड़ दें' आदि उल्लेखनीय हैं। इसी तरह रूस ने जब चेकोस्लोवाकिया पर टैंक चढ़ा दिये तब उस पर क्रोधित होकर 'क्रांति तुम्हारी तुम्हें मुबारक' कविता लिखा। नागार्जुन ने अमेरिका की पूँजीवादी–साम्राज्यवादी नीतियों का विरोध करते हुए उस पर तीव्र व्यंग्य प्रहार किया है, चाहे अमेरिका द्वारा वियतनाम पर आक्रमण हो या शांति प्रिय नीग्रो नेता की हत्या हो, उन्होंने सब पर व्यंग्य किया है। 'देवी लिबर्टी' एक प्रखर व्यंग्य रचना है जिसमें वे कहते हैं–

**''देवी लिबर्टी, तुम्हीं बताओ**
**और कौन विष शेष बचा है।''**[14]

इसी तरह 'डालर रोया बिलख बिलख कर', 'महाप्रभु जान्सन', 'शिकागों होगा हनोई' आदि इस संदर्भ में प्रखर व्यंग्य रचनाएँ हैं। 'बजट वार्तिक' कविता में देश के भीतर फैलने वाले पूँजीवाद पर करारा व्यंग्य किया है–

**''गंगा–यमुना के कछार में**
**आ–आ कर अंडे देंगी अब**
**दुनिया भर की जोंके।''**[15]

इस तरह नागार्जुन की राजनीतिक व्यंग्य कविताओं का फलक अत्यंत व्यापक है और वे उनकी गहरी लोक संवेदना की अभिव्यक्ति करती हैं। इन कविताओं में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति, शासनतंत्र, नौकरशाही के पतित, अमानवीय एवं जनविरोधी रूपों पर तीव्र एवं आक्रामक व्यंग्य है। साथ ही देश के भीतर एवं दुनिया में चलने वाले सामंतवाद, सांप्रदायिकता, पूँजीवाद एवं साम्राज्यवाद के विकृत, घिनौने एवं शोषणकारी रूप का पर्दाफास किया गया है। ये कविताएँ निश्चय ही नागार्जुन की एक बेहतर मानवीय समाज की रचना की चिंता और उनके जन सरोकार से गहरा सम्बन्ध रखती हैं। नागार्जुन ने अपनी कविताओं में बार–बार अपने इस जन सरोकार की खुलकर अभिव्यक्ति भी किया है। वे सत्ता प्रतिष्ठानों के दमन, क्रूरता और आतंक से डरकर अपनी सोच और जनपक्षधरता से किंचित भी समझौता न करने वाले जनप्रतिबद्ध रचनाकार थे। वे अपनी जनपक्षधरता को साफ तौर से व्यक्त करते हुए कहते हैं–

**''प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ–**
**बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त–**
**संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ....**
**अविवेकी भीड़ की 'भेड़ियाधसान' के खिलाफ....**
**अंध–बधिर 'व्यक्तियों' को सही राह बतलाने के लिए....**
**अपने आपको भी 'व्यामोह' से बारम्बार उबारने की खातिर....**
**प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा प्रतिबद्ध हूँ।''**[16]

इसी जनप्रतिबद्धता से उन्हें वह ताकत मिलती है जिससे वे सच्चाई को पूरी जिम्मेदारी और नैतिक बोध के साथ जनता के सामने निर्भय होकर रखने की घोषणा करते हैं– 'जनता मुझसे पूछ रही है, क्या बतलाऊँ?/जनकवि हूँ मैं साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ?' इसीलिए नागार्जुन के राजनीतिक व्यंग्य के महत्व को स्वीकार करते हुए डॉ. विजय बहादुर सिंह ने लिखा है– 'नागार्जुन उघड़ा व्यंग्य भी करते हैं और सजा–सँवरा भी। यह बहुत कुछ उनके आवेग और विषयानुभूति पर निर्भर करता है।' इस सम्बन्ध में डॉ. प्रेमशंकर ने भी लिखा है– 'जहाँ तक कविता का प्रश्न है वे ऐसे कवि हैं, जिन्होंने व्यंग्य को सम्पूर्ण विद्या के रूप में स्वीकार किया है।'

नागार्जुन की राजनीतिक व्यंग्य से सम्बन्धित कविताओं के सम्बन्ध में आलोचकों का यह मत भी यहाँ विचारणीय है कि राजनीति से कविता भ्रष्ट होती है, उसका स्तर गिरता है, वह कालजयी नहीं रहती। इस सम्बन्ध में यही कहना अधिक उचित होगा कि जब कविता राजनीति का उपयोग मानवीय मूल्यों को स्थापित करने के लिए करती है, तब वह सामयिक वातावरण का परिचय देते हुए स्थायित्व की ओर अग्रसर होती है। सामयिक वातावरण के प्रति इस सम्बद्धता को नागार्जुन स्वीकार करते हैं। उनका कथन है– ''किसी भी राजनीतिक परिस्थिति अथवा घटना पर की गयी टिप्पणी समय के साथ व्यतीत हो जाती है, जबकि राजनीतिक कविता जो किसी परिस्थिति या घटना विशेष से उत्प्रेरित होने के बावजूद अपनी एक सख्सियत बना लेती है, घटना के बहुत बाद तक सांस्कृतिक विरासत के रूप में जीवित रहती है। ऐसा क्यों है? क्योंकि कविता अपना प्राकृतिक काव्य–मूल्य खोकर राजनीतिक कविता का मूल्य नहीं धरती, बल्कि कविता रहते हुए भी राजनीति करती है।''[17] निश्चय ही राजनीतिक दृष्टि कविता के लिए अनिवार्य है। इसीलिए नागार्जुन ने अपनी कविताओं में राजनीति का बेहतर और रचनात्मक इस्तेमाल किया है। स्वातंत्र्योत्तर जीवन के राजनैतिक अधःपतन, उसकी क्रूरताएँ, विकृतियाँ और जनविरोधी रूप जहाँ उनके कविता के संवेदनशील मन में गहरा क्षोभ एवं आक्रोश उत्पन्न करते हैं, वहाँ उसकी अभिव्यक्ति सहज ही राजनीतिक व्यंग्य के रूप में होती है। 'तरल आवेगों वाले' हृदयधर्मी नागार्जुन का यह क्षोभ एवं आक्रोश निश्चय ही जनता के प्रति उनके गहरे लगाव का परिचायक है। स्वयं उनका कथन है ''सार्थक गुस्से से फूट पड़ना बेहद रचनात्मक है। जो दो–टूक गुस्सा नहीं कर सकता वह गहरा प्रेम क्या करेगा।''[18] नागार्जुन की इन राजनीतिक व्यंग्य प्रधान कविताओं का महत्व तब और भी बढ़ जाता है जब हमारे समय के अत्यन्त महत्वपूर्ण कवि–आलोचक अशोक वाजपेयी गैर– मार्क्सवादी होते हुए भी कविता में राजनीति की उपस्थिति आवश्यक मानते हैं– ''राजनीति से अछूता काव्य–संसार कलात्मक ढंग से सार्थक हो सकता है, स्वायत्त भी पर मानवीय ढंग से समृद्ध और तात्कालिक नहीं।''19 इन समस्त स्थितियों को देखते हुए स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि नागार्जुन की राजनीतिक कविताएँ, विशेषतः राजनीतिक व्यंग्य प्रधान कविताएँ उनके प्रगतिशील जनवादी कवि व्यक्तित्व का गहरा परिचय देती हैं और सम्पूर्ण हिंदी कविता में एक गौरवमयी अध्याय रचती हैं।

**संदर्भ :**


1. नागार्जुन : प्रतिनिधि कविताएँ–संपादक नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2020, पृ0सं0 9
2. नागार्जुन रचनावली–संपादक शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2003, खण्ड–2, पृ0सं0 132
3. उपरोक्त, पृ0सं0 241
4. उपरोक्त, खण्ड–1, पृ0सं0 374
5. उपरोक्त, खण्ड–2, पृ0सं0 282
6. उपरोक्त, खण्ड–2, पृ0सं0 420
7. उपरोक्त, पृ0सं0 81
8. उपरोक्त, पृ0सं0 83

9. उपरोक्त, पृ0सं0 96
10. उपरोक्त, खण्ड–1, पृ0सं0 66
11. उपरोक्त, पृ0सं0 193–94
12. उपरोक्त, पृ0सं0 98
13. उपरोक्त, पृ0सं0 242
14. उपरोक्त, खण्ड–2, पृ0सं0 23
15. उपरोक्त, खण्ड–1, पृ0सं0 166
16. उपरोक्त, खण्ड–2, पृ0सं0 130
17. आलोचना अंक 84, पृ0सं0 37
18. हजार–हजार बाहों वाली–नागार्जुन, पृ0सं0 12
19. आलोचना अंक 6, पृ0सं0 11

***

# ऑनलाइन कक्षाएं शिक्षाा का भविष्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० के विशेष संदर्भ में

*डॉ. अशोक कुमार**

कोरोना महामारी ने पूरे विश्व को यदि किसी क्षेत्र में सब सर्वाधिक प्रभावित किया है तो वह शिक्षा का क्षेत्र है महामारी के नकारात्मक प्रभाव के रूप में ऑफलाइन शिक्षा ठप हो गई। विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में इसके लिए कई वैकल्पिक व्यवस्था की गई जिनमें ऑनलाइन क्लासेस की सुविधा गूगल मीट माइक्रोसॉफ्ट ऐप के माध्यम से विभिन्न प्रकार के मीटिंग तथा विभिन्न आयोजन किया जाने लगा। गूगल क्लासरूम तथा अन्य माध्यमों से छात्रों को गृहकार्य ई-कंटेंट अपलोड किए जाने लगे। इसके साथ ही साथ प्राइवेट कोचिंग संस्थानों और अन्य शिक्षकों ने अपने यूट्यूब चैनल तथा अन्य शिक्षण प्लेटफॉर्म के माध्यम से शिक्षण कार्य करने लगे। विभिन्न प्रकार के पेड ऐप अनअकैडमी, बाईजूस जैसे लर्निंग ऐप की बाढ़ आ गई। महामारी ने हमें यह बता दिया कि हम एक तरफा माध्यमों से ऑनलाइन शिक्षा को संचालित नहीं कर सकते हैं, हमें दो तरफा शिक्षा माध्यमिक की आवश्यकता है।

शिक्षा में तकनीकी का प्रयोग लंबे समय से चलता आ रहा था परंतु इस माध्यम का प्रयोग अत्यंत सीमित रूप से होता था परंतु पिछले 2 वर्षों में शिक्षा में तकनीकी का प्रयोग कई गुना बढ़ गया है इस संबंध में अगर आंकड़ों की बात करें तो भारत की जनसंख्या जनवरी 2021 तक 1.4 बिलियन हो गई थी जिनमें से 18 वर्ष से 34 वर्ष के बीच की जनसंख्या पूरी जनसंख्या का लगभग 29% हिस्सा शेयर कर रही है जनवरी 2021 तक भारत में 658 मिलियन इंटरनेट यूजर है जो की पूरी जनसंख्या का लगभग 45% हिस्सा है 2020 से 21 के बीच 34 मिलियन लोगों ने इंटरनेट यूज करना पहली बार प्रारंभ किया था जो कि जनसंख्या का 5% हिस्सा था। ओखला का सर्वे कहता है कि भारत में मोबाइल इंटरनेट कनेक्शन की औसतन स्पीड 14 एमबीपीएस के आस पास रहती है जबकि इंटरनेट कनेक्शन के द्वारा 47 एमबीपीएस के आसपास की स्पीड उपलब्ध होती है। ओखला का आंकड़ा यह भी कहता है कि पिछले साल की तुलना में भारत में औसतन मोबाइल इंटरनेट कनेक्शन की स्पीड 5 एमबीपीएस बढ़ गई है जो पिछले साल की तुलना में 55% अधिक है जनवरी 2021 तक भारत में 467 मिलियन लोग सोशल मीडिया का इस्तेमाल करने लगे हैं कैफियात का विश्लेषण कहता है कि सोशल मीडिया यूजर्स की संख्या भारत में 19 मिलियन 2020 से 2021 के बीच बढ़ी है जो की पूरी संख्या का लगभग 4% है भारत में 2021 तक गूगल के द्वारा जो विज्ञापन स्रोत प्रदर्शित करते हैं कि भारत में यूट्यूब यूज करने वालों की संख्या 467 मिलियन है इस प्रकार यूट्यूब पर दिखाए गए विज्ञापन जाते हैं जिनमें से 31% महिलाएं और 69% पुरुष होते हैं जीएसएम इंटेलिजेंस के आंकड़े प्रदर्शित करते कि भारत में 2021 तक 114 थे जिनमें जनसंख्या है भारत में 20 से 21 के बीच में पहुंचा जो पूरी जनसंख्या का लगभग 3% था अगर ग्लोबल स्तर पर बात करें तो हम पाते हैं कि में वर्तमान में लगभग 8 बिलियन इंटरनेट यूज करते हैं और लगभग 4.3 बिलियन लोग एक्टिव सोशल मीडिया यूजर है।

पिछले 1 साल में लगभग 1% जनसंख्या की भारत में वृद्धि हुई है और लगभग 3% लोग मोबाइल कनेक्शन से जुड़े हैं और 5% इंटरनेट यूजर बड़े हैं सोशल मीडिया में लगभग 4% और बढ़ गए हैं फरवरी 2021 तक भारत में औसतन 1 व्यक्ति 7 घंटे इंटरनेट पर व्यतीत करता है, टेलीविजन पर लगभग 3 घंटे, सोशल मीडिया पर 2 घंटे, ब्रेडिंग प्रेस मीडिया में 2 घंटे, म्यूजिक में एक घंटा 54 मिनट के आसपास और रेडियो ब्रॉडकास्टिंग में 3 मिनट, पॉडकास्ट लिसनिंग में एक घंटा और गेमिंग में 1 घंटा 21 मिनट के करीब व्यतीत करता है। भारत के कुल जनसंख्या के इंटरनेट यूजर्स में लगभग 91% मोबाइल के माध्यम से ऑनलाइन रहते हैं जनवरी 2012 में लगभग 100 लोग इंटरनेट का इस्तेमाल करते थे वर्तमान समय में यह संख्या बढ़कर 658 के आसपास पहुंच गई है फरवरी 2021 तक इंफॉर्मेशन प्राप्त करने के लिए 57%,एजुकेशन के लिए 57% लोग, वीडियो टीवी शो देखने के लिए 57%, इंस्पिरेशन के लिए 56%, फैमिली और दोस्तों के टच में रहने के लिए

* एसोसिएट प्रोफेसर एजुकेशन, डी.सी.एस.के.पी.जी. कॉलेज मऊ

लगभग 55%, न्यूज़ के लिए 48%, खाली समय के लिए 39%, लोगो से मिलने के लिए 40%, घूमने की जगह खोजने के लिए 36%,विचार व्यक्त करने के लिए36%, स्वास्थ संबंधी जानकारी के लिए36% और लगभग 35% गेमिंग के लिए इंटरनेट का इस्तेमाल करते थे।

फरवरी 2021 तक अगर मोस्ट विजिटेड वेबसाइट की बात करें तो सेमारो रैंकिंग में पहले नंबर पर google.com इसे लगभग 2 बिलियन लोगों ने विजिट करके किया, दूसरे नंबर facebook.com 875 मिलियन, youtube.com 515 मिलियन, चौथे नंबर पर महाराष्ट्र टाइम्स डॉट कॉम 315 मिलियन, पांचवें नंबर पर wikipedia.org 296 मिलियन लोगों ने इस्तेमाल किया। टॉप गूगल सर्च की बात करें तो पहले नंबर पर वीडियो के साथ लोगों ने सर्च किया लगभग हंड्रेड का इंडेक्स इंडिया सबसे पॉपुलर वर्ड सर्च में दूसरे नंबर पर था,इसे 78% लोगों ने सर्च किया है तीसरे नंबर पर सबसे ज्यादा सर्च वीडियोस है 30% लोग, चौथे नंबर पर सट्टा वर्ल्ड का यूज कर रहे हैं और 34% लोगों ने सर्च किया है, यूट्यूब को 25% लोगों ने सर्च किया, गूगल को 24% लोगों ने सर्च किया। 1 जनवरी 2020 से 31 दिसंबर 2020 तक के आंकड़े हैं और सोशल मीडिया यूजर्स की बात करें जनवरी 2014 में लगभग 90 लोग सोशल मीडिया का इस्तेमाल करते थे भारत में जनवरी 2021 तक सबसे ज्यादा व्हाट्सएप फेसबुक मैसेंजर को इस्तेमाल करने में 1 महीने में 29 घंटे फेसबुक पर, 19 घंटे इंस्टाग्राम पर 13 घंटे, टेलीग्राम पर लगभग 2 घंटे का समय एक व्यक्ति औसतन 1 महीने में औसतन 1 महीने में व्यतीत करता है।

उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि भारत में मोबाइल प्रयोग करने वालों की संख्या के साथ ही इंटरनेट प्रयोग करने वाली जनसंख्या में पिछले 2 सालों में अत्यधिक वृद्धि हुई, इसके साथ ही साथ सोशल मीडिया पर तथा ऑनलाइन शिक्षा प्राप्त करने के औसतन समय में वृद्धि हो रही है, ऐसे में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में ऑनलाइन शिक्षा और कोरोना महामारी के प्रकोप को देखते हुए बिंदु 24 में ऑनलाइन और डिजिटल शिक्षा के संबंध में अपने विचार रखे गए हैं जो शिक्षा प्रौद्योगिकी का न्याय संबंधी उपयोग सुनिश्चित करने पर बल देता है।

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अपनाए गए 2030 में परिभाषित सतत विकास लक्ष्यों की उपलब्धि में यूनेस्को के कार्यक्रम योगदान करते हैं सतत विकास लक्ष्य 2030 में कुल 17 लक्ष्य पर ध्यान किया गया जिनमें चौथा लक्ष्य था गुणवत्तापूर्ण शिक्षा भारत द्वारा 2015 में अपनाए गए सतत विकास एजेंडा 2030 के लक्ष्य पर लक्षित बेसिक शिक्षा व्यवस्था विकास एजेंडा के अनुसार विश्व में 2030 तक सभी के लिए सम्मानपूर्वक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवन पर्यंत शिक्षा के अवसरों को बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया है मशीन क्षेत्र में वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के कार्य चल रहे हैं वहीं दूसरी तरफ को ध्यान में रखते हुए इस नीति में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस को बढ़ावा दिया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के मूलभूत सिद्धांत जो बड़े स्तर पर शिक्षा प्रणाली और साथ ही व्यक्तिगत संस्थानों दोनों का मार्गदर्शन करेंगे उनमें सातवां सिद्धांत रचनात्मक और तार्किक सोच के निर्णय लेने और नवाचार को प्रोत्साहित करने के लिए तथा स्थान तकनीकी की यथासंभव प्रयोग पर जोर, अध्ययन अध्यापन कार्य में भाषा संबंधी बाधाओं को दूर करने, दिव्यांग बच्चों के लिए शिक्षा को सुलभ बनाने में और शैक्षणिक योजना पर बल दिया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का बिंदु 24 ऑनलाइन और डिजिटल शिक्षा प्रौद्योगिकी का न्याय संवाद उपयोग सुनिश्चित करने से संबंधित है बिंदु 24.1 में कहा गया है कि नई परिस्थितियों और वास्तविकताओं के लिए नई पहल अपेक्षित है, संक्रामक रोग और वैश्विक महामारीयों में हाल ही में वृद्धि को देखते हुए जरूरी हो गया है कि जल्दी हम और जहां भी शिक्षा के पारंपरिक और विशेष संशोधन संभवना हो वहां गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के वैकल्पिक साधनों के लिए तैयार रहें, इस संबंध में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 प्रौद्योगिकी संभावित चुनौतियों को स्वीकार करते हुए उनसे मिलने वाले लाभ के महत्व पर भी ध्यान केंद्रित है या निर्धारित करने के लिए ऑनलाइन डिजिटल शिक्षा की हानियों को कम करते हुए हम कैसे इससे लाभ उठा सकते हैं, सावधानीपूर्वक और उपयुक्त रूप से तैयार किया गया अध्ययन करना होगा। साथ ही सभी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने से

संबंधित वर्तमान और भावी चुनौतियों का सामना करने के लिए मौजूदा डिजिटल प्लेटफॉर्म और क्रियान्वित आईसीटी आधारित फलों को अनुकूल और विस्तारित करना होगा।

एक तरफ यह नीति ऑनलाइन शिक्षा को बढ़ावा देने और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पर बल देती है वहीं दूसरी तरफ डिजिटल शिक्षा से होने वाली हानियां और चुनौतियों के प्रति सजग है, नए पहलों की आवश्यकता पर बल देती है तथा साथ ही जो पहले से पहल चल रहे हैं उनको सुदृढ़ करने और विस्तारित करने पर जोर देती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 डिजिटल इंडिया अभियान तथा किफायती कंप्यूटर उपकरणों की उपलब्धता के माध्यम से डिजिटल उपकरणों और अंतर को समाप्त करने के प्रति अपनी चिंता व्यक्त करती है तथा ऑनलाइन और डिजिटल शिक्षा के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग समानता के सरोकारों को पर्याप्त रूप से लागू करने पर बल देती है। इसके साथ ही साथ ऑनलाइन शिक्षक बनाने की दिशा में ठोस कदम उठाने और शिक्षकों के उपयुक्त प्रशिक्षण और विकास को बढ़ावा देने के लिए बात करती है नीति का मानना है कि एक परंपरागत शिक्षक की गुणवत्ता यदि पूर्व से तैयार ना हो तो ऑनलाइन शिक्षक के रूप में अत्यंत प्रभावकारी सिद्ध नहीं हो सकता है, इसके साथ ही साथ ऑनलाइन आकलन के लिए भी बड़े पैमाने पर ऑनलाइन परीक्षा कराने की चुनौतियां आएंगे।

एनटीए जैसी संस्थाओं को मजबूत करके हम ऑनलाइन परीक्षाओं के आयोजन तथा महाविद्यालयों व संस्थानों को डिजिटल रूप से सशक्त करके ऑनलाइन परीक्षा को बढ़ावा दिया जा सकता हैं ,शिक्षा तथा ऑनलाइन परीक्षा के संबंध में आने वाले भविष्य की चुनौतियों के प्रति भी इस नीति में प्रश्न उठाया गया है कि ऑनलाइन परिवेश में पूछे जाने वाले प्रश्नों के प्रकार से संबंधित सीमाएं नेटवर्क और बिजली तथा अनैतिक प्रथाओं को रोकना आदि सम्मिलित है। इसके साथ ही कुछ पाठ्यक्रमों तथा विषयों जैसे प्रदर्शन कला और विज्ञान के व्यावहारिक ऑनलाइन रिजल्ट शिक्षा क्षेत्र की सीमाओं के तथा नवीन उपायों के साथ को दूर करने के कुछ स्तर तक दूर करने की बात कही गई है, साथ ही यह भी कहा गया है कि सीखने के सामाजिक भावात्मक और साइकोमोटर पर सीमित फोकस वाली एक स्क्रीन आधारित शिक्षा ऑनलाइन शिक्षा न बन जाए इसके लिए ऑनलाइन शिक्षा को अनुभवात्मक और गतिविधि आधारित शिक्षा के साथ मिश्रित करने पर बल दिया जाएगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का महत्व डिजिटल प्रौद्योगिकी के उद्भव और स्कूल से लेकर उच्च शिक्षा तक सभी स्तर पर शिक्षण अधिगम के लिए प्रौद्योगिकी के उभरते हुए महत्व को देखते हुए उसके द्वारा की गई प्रमुख पहलो की सिफारिश है यह नीति ऑनलाइन शिक्षा के लिए पायलट अध्ययन की बात करती है, जिससे ऑनलाइन शिक्षा की हानियों को कम किया जा सके। इसके साथ ही शिक्षा के साथ एक ही चीज करने की लाभों का मूल्यांकन करने के लिए और छात्रों को उपकरण की आदत e-content का सबसे पसंदीदा प्रारूप जैसे संबंधित विषयों का अध्ययन करने के लिए भी इसके साथ-साथ प्रमुख अद्यतन संचालित करने के लिए एनएसटीएस,ई आईआईटी, एनआईओएस, इग्नू, आईआईटी, एनआईटी आदि एजेंसियों की पहचान करने की बात कही गई है।

यह नीति भारत के क्षेत्रफल जटिलता और डिवाइस अर्थबोध को हल करने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में खुले परस्पर विकसित सार्वजनिक डिस्टेंस शिक्षा का निर्माण करने की आवश्यकता पर बल देती है, जिसका उपयोग कई प्लेटफार्म और पावर पॉइंट सलूशन द्वारा किया जा सकता है इससे यह सुनिश्चित होगा कि प्रौद्योगिकी आधारित समाधान प्रौद्योगिकी में तेजी से प्रगति के साथ पुराने ना हो और भारत का डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर मजबूत हो। शिक्षार्थियों की प्रगति की निगरानी के लिए शिक्षकों को सहायक उपकरण में एक संरक्षित उपयोगकर्ता अनुकूल विकसित सेट प्रदान करने के लिए स्वयं दीक्षा जैसे उपयुक्त मौजूदा ई लर्निंग प्लेटफॉर्म को विस्तारित करके दो तरफा वीडियो और एक तरफा ऑडियो इंटरफेस जैसे उपकरण के द्वारा ऑनलाइन कक्षाओं को बढ़ावा देने की योजना है। सामग्री निर्माण डिस्टल रिपोजिटरी और प्रसार के संबंध में कोर्स वर्क, लर्निंग गेम्स और सिमुलेशन वर्चुअल रियलिटी, गुणवत्ता के लिए उपयोगकर्ताओं द्वारा रेटिंग करने के लिए एक स्पष्ट सार्वजनिक प्रणाली विकसित करने की बात कही गई है।

छात्रों के लिए मनोरंजन आधारित अधिगम हेतु उपयुक्त उपकरण जैसे ऐप स्पष्ट संचालन निर्देश के साथ कई भाषाओं में भारतीय कला और संस्कृति का एकीकरण आज भी बनाए रखने की बात कही गई है ऑनलाइन शिक्षा के सहायक के रूप में वर्चुअल लैब को स्थापित करने दीक्षा स्वयं और स्वयं प्रभा जैसे मौजूदा ई लर्निंग प्लेटफॉर्म का उपयोग करने पर बल दिया गया है शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण को प्रोत्साहित करने की बात कही गई है। ऑनलाइन मूल्यांकन और परीक्षाओं सीखने के मिश्रित मॉडल तथा मांगों को पूरा करने जैसे बातों पर पहल करने के लिए इस नीति में विशेष बल दिया गया है इसके साथ ही इंफ्रास्ट्रक्चर को मजबूत करने शैक्षिक सामग्री और क्षमता का निर्माण करने के लिए एक समर्पित इकाई का सृजन शिक्षा में प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने पर यह नीति विशेष प्रभावी कदम उठाने की बात करती है। प्रौद्योगिकी बदलाव को ध्यान में रखते हुए विकसित किए गए जिसका कुछ भाग प्रत्येक बीतने वाले वर्ष के साथ पुराना हो जाता है। अतः इस केंद्र में प्रशासन शिक्षक शैक्षिक पदों की दिशा शिक्षा शास्त्र और मूल्यांकन e-governance आदि क्षेत्रों के जुड़े विशेषज्ञों को सम्मिलित करने की बात करता है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि यदि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में किए गए प्रावधानों को लागू किया जाए अथवा इस पर 80% भी हम कही गई बातों को पूरा कर पाते हैं तो भारत ऑनलाइन शिक्षा और शैक्षिक प्रौद्योगिकी के संबंध में एक महाशक्ति के रूप में उभर कर आएगा। 2030 तक इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए सरकार, नियामक संस्थाओं, विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों द्वारा बढ़-चढ़कर प्रतिभाग करने की आवश्यकता है । इस नीति को लागू करने में सहयोग करने की तथा आवश्यक इंफ्रास्ट्रक्चर और उपलब्ध संसाधनों के आधार पर हम इस नीति को सफलीभूत करने के लिए प्रयासरत हो सकते हैं। राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान इसमें एक सहयोगी की भूमिका निभा सकता है। इससे एक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का माहौल विकसित होगा, संयुक्त राष्ट्र संघ के एजेंडे को लागू करने में और भारत के प्रत्येक नागरिक तक एक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को पहुंचाने में अवश्य ही सहायता मिलेगी।

सन्दर्भ :

एनआईपी 2020 पैरा 24 ।

2020 मानव संसाधन विकास मंत्रालय , नई दिल्ली ।

https://sdgs.un.org/2030agenda.

https://www.speedtest.net/global-index

https://www.worldometers.info/world-population/india-population/

https://www.gsma.com/mobileeconomy/wp-content/uploads/2020/03/GSMA_MobileEconomy2020_Global.pdf

https://datareportal.com/reports/digital-2020-india#:~:text=Internet%20use%20in%20India%20in,percent)%20between%202021%20and%202020.

***

# ग्रामीण पटभूमि में अनुसूचित जाति की महिलाएं एंव स्वास्थ्य - एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

*अनिल कुमार यादव**
*डॉ. दुर्गेश्वरी पाण्डेय***

सारांश – विकासोन्मुख देशों में स्वास्थ्य एंव रोग से सम्बन्धित विविध प्रकार की समस्याओं का प्राबल्य होता है। इस सन्दर्भ में क्षेत्र विशेष के लोगों की निर्धनता एवं अशिक्षा उसके वृध्दि में सहायक होती है। भारत जैसे विकासोन्मुख देश में स्वास्थ्य एंव रोग से सम्बन्धित समस्याओं की जटिलता वृध्दिमान गति पर है। सम्प्रेषण के विविध साधनों से प्रचार एंव प्रसार के उपरान्त भी आज भी ग्रामीण पटभूमि में लोग झोला – छाप चिकित्सकों को प्राथमिकता प्रदान करते है। रोग की जटिलता के वृध्दि में वे आधुनिक चिकित्सा के सम्पर्क में जाते हैं। कभी–कभी अर्थोभाव के कारण वे समुचित इलाज नहीं करा पाते और काल–कलवित हो जाते हैं। ग्रामीण पटभूमि में आज भी देशज एवं लोक चिकित्सा का प्राबल्य है। झाड़–फूक, टोना, टोटका में दृढ़ आस्था है। जिसे सरलता से दूर नहीं किया जा सकता है प्रस्तुत लेख में आजमगढ़ जनपद के लालगंज तहसील के चयनित ग्रामों से अनुसूचित जाति की महिलाओं से स्वास्थ्य एवं रोग से सम्बन्धित तथ्यों को समान्वित किया गया है।

भूमिका – स्वास्थ्य व्यक्ति के जीवन के विविध पक्षों को परोक्ष या अपरोक्ष रूप में प्रभावित करता है। स्वास्थ्य के अस्तित्व से अभिप्राय सिर्फ रोगों के निदान से नहीं है वरन् स्वास्थ्य व्यक्ति के सामाजिक, सांस्कृतिक एंव मनोवैज्ञानिक पक्षों से जुड़ा एक विशिष्ट अस्तित्व का बोध कराता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने दैहिक स्वास्थ्य के साथ ही साथ आध्यात्मिक स्वास्थ्य को भी महत्व प्रदान करने की बनुशंसा की है। विकासोन्मुख देश भारत में स्वास्थ्य एवं रोग के प्रति जागरूकता का अभाव विविध कारकों के प्रभाव के परिणम स्वरू‍प दृष्टिगोचर होता है। आज भी ग्रामीण पटभूमि में विविध प्रकार के स्वास्थ्य से सम्बन्धित सुविधाओं का स्वास्थ्य– स्तर बहुत संतोषजनक नहीं है। अव्यवस्थित आवासीय स्थिति, निर्धनता का आगोश, शिक्षा का अभाव एवं पोषाहारीय भोजन का अभाव अनुसूचित विवश करता है। ऐसी स्थिति में उनके स्वास्थ्य की कैसे कल्पना की जा सकती है।

स्वस्थ ग्रामीण पर्यावरण के उपरान्त भी इन महिलाओं को परिवार के सदस्यों का भरण– पोषण करने के लिए विषम चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। परिवार के सदस्यों क पीने के पानी के लिए सार्वजनिक नलों पर भरोसा करना पड़ता है। घर में शौचालय न होने के कारण उन्हें दैनिक क्रिया से निष्ट होने के लिए अपने आस – पास के खुले क्षेत्र का उपयोग करना पड़ता हैजिसका अप्रत्यक्ष प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ता है।

अनुसूचित जाति की महिलाओं के स्वास्थ्य प्रस्थिति का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि उत्तम स्वास्थ्य के निर्धारक घटकों के अनुसार उनका स्वास्थ्य स्तर ठीक नहीं रहता। उन्हे अभाव के परिवेश में जीने के लिए विवश होना पड़ता है।

रूग्णावस्था में ये महिलाएँ सरकारी स्वास्थ्यकेन्द्रों में न जाकर अपना निदान झोला–छाप चिकित्सकों से कराना अधिक पसन्द करती है। परिवार के सदस्यों के बीमार होने पर घरेलू उपचार को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। इन महिलाओं में झाड़–फूक

* शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, मड़ियाहूँ पी.जी. कॉलेज, मड़ियाहूँ, जिला-जौनपुर
** अध्यक्ष एंव सुपरवाइजर, समाजशास्त्र विभाग, मड़ियाहूँ पी.जी. कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर

को भी अधिक मान्यता प्राप्त है।आधुनिक चिकित्सा के महत्व को मानती तो है परन्तु उस पर होने वाले अधिक खर्च के कारण उसे अपनाने से पीछे हटती है।

अनुसूचित जाति की ग्रामीण महिलाओं से रोग के सन्दर्भ में पूछने पर स्पष्ट होता है कि रोग के उद्भव एंव प्रसार में सबसे बड़ा योगदान गरीबी का है। गरीबी के कारण चाहकर भी व्यक्ति सार्थक इलाज नहीं करा पाता। इन महिलाओं ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि स्वयं के लापरवाही के कारण भी रोग को खुला आमंत्रण प्राप्त हो जाता है। महिलाओं ने यह स्वीकार किया कि रोग के लिए देवी देवताओं का अभिशाप एवं बुरी आत्माओं का प्रभाव भी उत्तरदायी कारक है।

अनुसूचित जाति की ग्रामीण महिलाएँ अच्छे स्वास्थ्य एवं रोग से छुटकारा पाने के लिए मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर, गुरुद्वारा एवं पवित्र मजार आदि पर जाकर प्रार्थना या मन्नत करने को महत्व देतो है। उनके इस प्रकार के सकारात्मक दृष्टिकोण के पीछे कोई तार्किक आधार नहीं है। चिरकालिक (क्रानिक) रोगों से दुटकारा दुआखानी, कथा आदि को बहुत महत्व प्रदान करती है। इन प्रक्रियाओं से आत्म–सन्तोष की प्राप्ति होती है। इन महिलाओं में जादू–टोना, टोटका आदि में अटूट विश्वास होता है। उनका ऐसा मत है कि इस प्रकार की गतिविधियों को करने से बुरी निगाहो का असर कमजोर हो जाता है। ये महिलाएँ धार्मिक एवं आध्यात्मिक व्यक्तियों जैसे साधू, पादरी, मौलवी आदि से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए भाग– दौड़ करती रहती है।

प्रस्तुत लख से सम्बन्धित तथ्यों को आजमगढ़ जनपद, उत्तरप्रदेश के तहसील लालगंज के विकास खण्ड लालगंज एवं ठेकमा के ग्रामों मई खरगपुर, उमरी श्री, रसूलपुर जयद्रथयती बरवाँ, गोमाडीह, रसूलपुर बाज बहादुरपुर के अनुसूचित जाति की महिलाओं से स्वास्थ्य से सम्बन्धित तथ्यों को साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से एकत्र किया गया है। तथ्यों के समाकलन में महिलाओं के शिक्षा को विशैष महत्व प्रदान करते हुए उसी आधार पर तथ्यों का वर्गीकरण किया गया है। समग्र में उत्तरदात्रियों की संख्या 300 है जिसे दैव निदर्शन के आधार पर चयनित किया गया है।

तथ्यों का प्रस्तुतीकरण – प्रस्तुत अध्ययन में उत्तरदात्रियों से स्वास्थ्य के कुछ विशेष पक्षों से सम्बन्धित तथ्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया गया है जो निम्नांकित है –

स्वास्थ्य के प्रति उत्तरदात्रियों का दृष्टिकोण –

स्मसामयिक परिवेश में भी ग्रामीण पटभूमि में स्वास्थ्य के प्रति वह जागरुकता नहीं है जिसकी अपेक्षा की जाती है। साधारणतया लोगों में यह धारणा व्याप्त है कि शारिरिक दृष्टि से हृष्ट पुष्ट दिखाई देने वाला व्यक्ति स्वस्थ होता है। शारीरिक दृष्टि से ठीक दिखाई पड़ने वाला व्यक्ति भी आन्तरिक रूप से स्वस्थ नहीं हो सकता। महिलाओं की स्थिति तो और भी दयनीय है। परिवार में उनके स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्याओं को द्वैतियक स्तर पर महत्व प्रदान किया जाता है। साधारणतया महिलाओं के रुग्णवस्था में स्थानीय झाड़–फूक , सोखा, एवं झोला छाप चिकित्सकों से काम चला लिया जाता है। गम्भीर अवस्था में अस्वस्थ होने पर ही उन्हें निकट के नगरों के चिकित्सालय में ले जाकर आधुनिक चिकित्सा कराई जाती है। मीडिया के प्रभाव के कारण अब धीरे–धीरे ग्रामों की महिलाओं में भी स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता बढ़ रही है। चयनित गाँवों की महिलाओं से यह पूछने पर कि स्वास्थ्य के प्रति आपका क्या दृष्टिकोण है? 180 (60.00 प्रतिशत) महिलाओं ने स्पष्ट किया कि शारीरिक दृष्टि से ठीक लगने वाला व्यक्ति उत्तम स्वास्थ्य से सम्पोषित माना जा सकता है। 90(30.00 प्रतिशत) उत्तरदात्रियों ने कहा कि शारिरिक एवं मानसिक रूप से सन्तुलित व्यक्ति को उत्तम स्वास्थ्यवाला कहा जा सकता है। 30(10.00 प्रतिशत) उत्तरदात्रियों ने स्वास्थ्य के सन्दर्भ में अपनी अनभिज्ञता व्यक्त की। तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अभी भी ग्रामीण पटभूमि में स्वास्थ्य के प्रति महिलाओं में विशेष जागरुकता नहीं है। उपर्युक्त तथ्यों को सारिणी संख्या 1 में प्रस्तुत किया गया है–

सारणी संख्या 1

स्वास्थ्य के प्रति दृष्टिकोण एंव उत्तरदात्रियाँ

| शैक्षिक स्तर | शारीरिक दृष्टि से ठीक लगना | शारीरिक दृष्टि एंव मानसिक दृष्टि से ठीक होना | अस्पष्ट | योग |
|---|---|---|---|---|
| अशिक्षित | 45 (15.00) | 15 (05.00) | 10 (3.33) | 70 (23.33) |
| कक्षा आठ तक शिक्षित | 88 (29.37) | 48 (16.00) | 04 (1.33) | 140 (46.66) |
| हाईस्कूल / इण्टर तक शिक्षित | 47 (15.66) | 17 (9.00) | 16 (5.34) | 90 (30.00) |
| योग | 180 (60.00) | 90 (30.00) | 30 (10.00) | 300 (100.00) |

रोग के प्रति उत्तरदात्रियों का अभिमत – रोग साधारण तथा सामान्य व्यवहार से विचलन की स्थिति है। इसे चिकित्सा विज्ञान में जैविकीय स्थिति से विचलनकारी स्थिति की संज्ञा प्रदान की जाती है। लोक औषधि विज्ञान के अन्तर्गत एंव देशज चिकित्सा व्यवस्था के सन्दर्भ में इसे बुरी आत्मा के प्रकोप या अभिशाप का प्रतिफल माना जाता है। ग्रामीण परिवेश में आज भी रुग्ण व्यक्ति के रोग को दूर करने के लिए झाड़–फूक को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है। ग्रामीण परिवेश में झोला–छाप चिकित्सकों का विशेष महत्व होता है। ग्रामीण महिलाए अशिक्षित एवं आर्थिक रूप से विपन्न होने के कारण ऐसे चिकित्सकों के सम्पर्क में निदान के लिए जाती है। ग्रामीण महिलाए मन्दिर, मस्जिद, मजार आदि पर जाकर झाड़–फूक करने वाले ओझा सोखा रोग को ठीक करने का दावा करने लगते है। इस प्रकार की धारण को महत्व प्रदान करने में ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक विपन्नता एवं अशिक्षा का बड़ा योगदान होता है। रोग के प्रति ग्रामीण महिलाओं का दृष्टिकोण तर्क परक नहीं है। ग्रामीण महिलाएँ आज भी रोग का मूल कारण 156(52.00 प्रतिशत) देवी–देवताओं एवं अदृश्य शक्तियों के अभिशाप का परिणाम मानती है। शक्षिक स्तर के दृष्टिकोण से भी सभी स्तर की महिलाए देवी–देवताओं एवं अदृश्य शक्तिओं के अभिशाप को महत्व प्रदान करती है। इन्ही उततरदात्रियों में 103(34.33 प्रतिशत) ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि रोग व्यक्ति के कुकृत्यों का परिणाम है। 41(13.67 प्रतिशत) उत्तरदात्रियों ने रोग के सन्दर्भ में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहा कि रोग व्यक्ति की जैविकीय विचलन शीलता है। इस प्रकार ग्रामीण महिलाओं में रोग को व्याधि मानते हुए उसके कारको को दैविक माना जाता है। उपर्युक्त तथ्यों को सारिणी संख्या 2 में प्रस्तुत किया गया है–

सारिणी संख्या 2

रोग से सम्बन्धित अभिमत एवं उत्तरदात्रियाँ

| शैक्षिक स्तर | देवी–देवता एवं अदृश्य शक्तियों का श्राप | व्यक्ति के कुकृत्यों का प्रतिफल | जैविकीय | योग |
|---|---|---|---|---|
| अशिक्षित | 39 (13.00) | 21 (07.00) | 10 (3.33) | 70 (23.33) |
| कक्षा आठ तक शिक्षित | 60 (20.00) | 55 (18.33) | 25 (8.33) | 140 (46.66) |
| हाईस्कूल / इंटर | 57 (19.00) | 27 | 6 | 90 (30.00) |
| योग | 156 (52.00) | 103 (34.33) | 41 (13.67) | 300 (100.00) |

रुग्णता एवं धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्रिया–कलाप –

साधारणतया आर्थिक रूप से विपन्न व्यक्ति अस्वस्थ होने पर चिकित्सक के पास निदान हेतु जाता है परन्तु निदान प्रक्रिया के साथ ही साथ कुछ धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्रिया–कलापों को प्रतिपादित भी करता है। इन क्रिया–कलापों को प्रतिपादित भी करता है। इन क्रिया–कलापों को तार्किक आधार पर विश्लेषित करने का प्रयास नहीं किया जाता। अनुसूचित जाति की ग्रामीण महिलाएँ परिवार के किसी सदस्य अथवा स्वयं के बीमार होने पर धार्मिक स्थानों जैसे निकट के मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर मजार आदि पर जा कर शीघ्र स्वस्थ होने के लिए प्रार्थना करती है और इस सन्दर्भ में मन्नत भी मानती है इस प्रकार के आस्था के पीछे कोई तर्क नहीं है। आधुनिक परिवेश में भी इस प्रकार के क्रिया – कलापों को प्रतिबन्धित नहीं किया जा सकता। ऐसी मान्यता है कि रोगों से मुक्ति दिलाने में सर्वशक्तिमान के आगे घुटना टेकना प्रत्येक दृष्टिकोण से अपेक्षित है।

पूजा–पाठ एवं सर्वशक्तिमान के आराधना के साथ ही साथ रोग से छुटकारा पाने के लिए ग्रामीण अनुसूचित एवंज न जाति की महिलाएं जादू–टोना, टोटका आदि क्रिया–कलापों को प्रतिपादित करती है। धार्मिक एवं आध्यात्मिक व्यक्तियों जैसे मौलवी, साधू, पादरी आदि से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहती है।

प्रस्तुत अध्ययन में तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि परिवार में स्वयं या किसी सदस्य के बीमार होने पर धार्मिक स्थानों मे जाकर प्रार्थना पुजा–पाठ करता माना जाता है तथा शीघ्र ठीक होने के लिए मन्नत मानना 150(50.00 प्रतिशत) 105(35.00 प्रतिशत) उत्तरदात्रियाँ रुग्ण व्यक्ति को रोग से मुक्त होने के लिए टोना, टोटका एवं झाड़–फूक कराने में विशेष रुचि लेती है। उनके अनुसार स्थानीय ओझा इस प्रकार की अवांछित शक्तिओं के प्रभाव को अपने तंत्र मंत्र से ठीक कर देते हैं। 45 (15.00 प्रतिशत) उत्तरदात्रियों ने इस सन्दर्भ में अपना कोइ स्पष्ट मत व्यक्त नहीं किया तथ्यों के विशलेषण से स्पष्ट होता है कि आधुनिक चिकित्सा व्यवस्था के प्रचार प्रसार के उपरान्त भी अनुसूचित जाति की महिलाओं में लोक एंव देशज औषधि एंव चिकित्सा व्यवस्था में झुकाव है। अशिक्षा एंव आर्थिक विपन्नता के कारण ग्रामीण अनुसूचित जाति की महिलाएं आधुनिक चिकित्सा व्यवस्था को अपनाने में असमर्थता व्यक्त करती है। उपर्युक्त तथ्यों को निम्न सारणी में प्रस्तुत किया गया है –

सारणी संख्या – 3
रोग के निदान से सम्बन्धित धार्मिक एवं आध्यात्मिक
क्रिया–कलाप एवं उत्तरदात्रियां

| शैक्षिक स्तर | मंदिर मस्जिद में जाना | टोना – टोटका झाड़ फूक कराना | अस्पष्ट | योग |
|---|---|---|---|---|
| अशिक्षित | 40<br>(13.33) | 20<br>(6.66) | 10<br>(3.34) | 70<br>(23.33) |
| कक्षा आठ तक शिक्षित | 75<br>(25.00) | 45<br>(15.00) | 20<br>(6.66) | 140<br>(46.66) |
| हाईस्कूल / इंटर | 35<br>(11.60) | 40<br>(13.33) | 15<br>(5.00) | 90<br>(30.00) |
| योग | 150<br>(50.00) | 105<br>(35.00) | 45<br>(15.00) | 300<br>(100.00) |

निष्कर्ष – महिलाओं से सम्बन्धित तथ्यगत विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि समाज के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी भागीदारी सार्थक हो सकती है। जब उनसे नकारात्मक अपेक्षाएं न की जाय। यह प्रमाणित हो रहा है कि ग्रामीण पटभूमि में महिलाओं में शैक्षिक जागरुकता उनके

जिज्ञासुमूलक दृष्टिकोण का अग्रसारित कर रहें है। इस सन्दर्भ में संचार एंव सम्प्रेषण के विविध माध्यम उनमें नवीन चेतना का सृजन कर रहे हैं। स्वास्थ्य एंव रोग से सम्बन्धित विविध प्रकार की समस्याओं के प्रति उनका देशज एंव परम्परावादी दृष्टिकोण अभी भी सुदृढ़ है। आधुनिक चिकित्सा के विविध आयामों के विकसित एंव सुलभ होने के उपरान्त भी ग्रामीण महिलाएं आधुनिक चिकित्सा पध्दति को अपनाने में सक्षम नहीं है। आर्थिक विपन्नता एंव ज्ञान के अभाव के कारण अभी भी ग्रामीण पटभूमि में 'झोला–छाप' चिकित्सकों का प्राबल्य है। गाँवो में आज भी झाड़–फूक, टोना– टोटका का प्राबल्य है जिसके कारण साधारण स्तर की बीमारी भी बाद में भयंकर स्वरूप धारण कर लेती है। अतः महिलाओं में आर्थिक विपन्नता एंव शिक्षा के प्रसार में बहुत ही जागरूक कदम उठाने की आवश्यकता है। इस दिशा में केन्द्रीय एंव प्रांतीय सरकार का प्रयास सराहनीय है

सन्दर्भ सूची :


1. ए.एल. श्रीवास्तव 1980 ह्यूमन रिलेशंस इन सोशल आर्गनाइजेशन ,छुरा पब्लिकेशन्स इलाहाबाद
2. ए.एल. श्रीवास्तव 1990 चिकित्सा समाज विज्ञान की रूपरेखा उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी लखनउ ( उत्तर प्रदेश)
3. बी0 एस0 कोहन 1961 चमार फेमिली इन नार्थ इण्डियन विपेजः ए स्ट्रक्चरल कन्टिनजेन्ट – इकोनामिक एण्ड पालिटिकल वीकली 13(27,28,29)
4. डैविड मेकैनिक 1978 मेडिकल सोशियोलाजी फ्री प्रेस, न्यूयार्क (यू0एस0ए0)


***

# अम्बेडकर और उनकी न्याय दृष्टि

*डॉ. संजय कुमार**

कुछ लोगों के लिए एक उलझा हुआ सवाल है कि न्याय की अवधारणा क्या थी। आरक्षण की व्यवस्था कर क्या वे भेदभाव नहीं कर रहे थे ? न्याय की उनकी अवधारणा का विश्लेषण कर रही हैं आथिरा अनंद दलितों के महान मुक्तिदाता और भारतीय संविधान के निर्माता डा. भीम राव आंबेडकर का निधन हुआ हालांकि 60 वर्ष हो चुके हैं, फिर भी भारतीय समाज पर उनके विचारों का गहरा प्रभाव कायम है। वे भारत के पहले कानून मंत्री बने और संविधान बनाने में में प्रमुख भूमिका निभाई। जीवन में जो कुछ भी उन्होंने प्राप्त किया और जो कुछ उन्होंने किया, उसके लिए उन्हें बहुत सारी कठिनाईयों से गुजरना पड़ा। जीवन भर जिन कठिनाइयों से वे गुजरे उसने उनके चिन्तत पर गहरा असर डाला। इस स्थिति ने उन्हें उन सिद्धांतों को पूरी तरह से बदल देने के बारे में सोचने के लिए बाध्य किया, जिन पर भारत में न्याय का विचार टिका हुआ था। भारत के राजनीतिक चिन्तन में न्याय का आदर्श भेदभावकारी होना शामिल था। उदाहरण के लिए जाति व्यवस्था के अन्तर्गत ऊँच-नीच की व्यवस्था। भारत के संविधान की प्रस्तावना का प्रारूपड़ा अम्बेडकर ने तैयार किया था। प्रस्तावना सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय दिलाने का वादा करती है। सबके लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय आम्बेडकर के न्याय के विचार के मुख्य आधार हैं।

**न्याय की अवधारणा–**

राजनीतिक दर्शन में न्याय को सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत माना जाता है। न्याय के सिद्धांत के बारे में सोचने की विभिन्न धाराएं हैं। न्याय संबंधी विभिन्न अवधारणाएं इस बात पर निर्भर करती हैं कि कब और कहां पैदा हुई है। प्राचीनकाल में पैदा हुई हैं या आधुनिक काल में, उनका जन्म पश्चिम में हुआ है या पूरब में। न्याय के संबंध में ग्रीकचित्नत सबसे पुराना और सबसे प्रभावी भी है। प्राचीन राजनीतिक चिन्तन न्याय को एक नैतिक मूल्य के रूप में चिन्हित करता है। इसी के चलते ग्रीकचिन्तन न्याय को नैतिक दर्शन का हिस्साा मानता है। राजा या राज्य को पवित्र शक्ति के रूप में चित्रित किया जाता था और माना जाता था कि इन्हीं में न्याय का वास है। प्लेटों और अरस्तू यह मानते थे कि एक 'न्यायपूर्ण समाज' ही 'अच्छा समाज' होता है। (हेवूड 2008) प्लेटो न्याय को बुद्धिमान व्यक्ति के एक नैतिक मूल्य के रूप में देखते थे। उनके अनुसार कोई भी आदर्श राज्य बिना न्याय के संभव नहीं है (श्रीवास्तव 1997)। अरस्तू न्याय को निष्पक्षता और समता के बराबर ठहराते थे। भारत में राजनीतिक चिन्तन में न्याय को क्रमशः मनु और कौटिल्य की मनुस्मृति और अर्थशास्त्र में देखा जा सकता है। इसमें भी न्याय को एक नैतिक गुण या धर्म के रूप में माना गया था। एक न्यायपूर्ण समाज की जरूरतों को पूरा करने के लिए कानून तैयार किया जाता है। कानून न्यायपूर्ण समाज बनाने के लिए एक प्रक्रिया के रूप में काम करता है। कानून को ठीक तरीके से लागू करने या उसे व्यवहार में उतारना न्यायपूर्ण समाज बनाने की अनिवार्य जरूरत है। हालांकि कानून न्याय का केवल एक पक्ष है। न्याय के अवयव अधिकार और जरूरतें हैं। राबर्टनोजिक जैसे प्राकृतिक अधिकरों के समर्थक राज्य की कम से कम भूमिका की बात करते हैं। उपयोगितावाद में 'अधिकतम लोगों की अधिकतम खुशी' को न्याय का पैमाना माना जाता है। न्याय के सिद्धांत के विकास में सबसे बड़ा परिर्वतन, जॉनरावल्स का न्याय का सिद्धांत आने के साथ आया। उनका सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि मुख्य बात यह है कि कैसे न्याय समाज में मौजूद असमानता की स्थिति का मुकाबला करता है। रावल्स का न्याय का विचार सभी व्यक्तियों का समान तरीके से ध्यान रखने की बात करता है। यहां तक कि प्लेटों भी असमानता पर विचार करते हैं, जब वे कहते हैं कि 'लोकतंत्र समान लोगों और असमान लोगों के बीच एक अलग तरह की समानता (यहां सकारात्मक भेदभाव) बांटता है'।

'निष्पक्षता के रूप में न्याय' का विचार रावल्स के लिए राजनीतिक और नैतिक धारणा दोनों है। इस बात को उन्होंने आधुनिक संवैधानिक लोकतंत्र को ध्यान में रखकर प्रस्तुत किया (रावल्स 1997) डॉ० अम्बेडकर का न्याय का विचार इस मामले में रावल्स से मेल खता है कि वे भी समाज के भीतर असमानता को ध्यान में रखकर एक

* एसोसिएट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, श्री महथ रामाश्रय दास स्ना. महाविद्यालय, भुड़कुड़ा, गाजीपुर

न्यायपूर्ण और निष्पक्ष समाज की स्थापना करना चाहते थे। उनके इस विचार ने रावल्स की 'निष्पक्षता के रूप में न्याय की अवधारणा को स्वीकार किया।

एक अधिवक्ता और अर्थशास्त्र के रूप में परिपक्वता प्राप्त करने और उत्कृष्टता हासिल करने के लिए अम्बेडकर को बहुत ही कठिन प्रयास करना पड़ा था। इसका कारण यह था कि जिस समाज में उन्होंने जन्म लिया था, उसमें सामाजिक असमानता मौजूद थी। इस चीज ने उन्हें इस बात का गहरा अहसास कराया कि राजनीतिक और आर्थिक न्याय पाखण्ड ही बना रहेगा, यदि उसके पहले सामाजिक न्याय प्राप्त न कर लिया जाए। वे अन्रू सभी प्रकार के क्रान्तिकारी बदलावों से पहले एक बुनियाद बदलाव लाने वाली सामाजिक क्रान्ति चाहते थे। अन्य प्रकार के क्रान्तिकारी बदलावों में राजनीतिक और आर्थिक बदलाव भी शामिल हैं।

वलेरियनरोड्रिग्स का एक निबंध 'अम्बेडकररएज ए पोलिटिकल फिलासफर्स' है, जिसमें वे अम्बेडकर को एक राजनीतिक दार्शनिक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। रोड्रिग्स उन मुद्दों को उजागर करते हैं, जिरके लिए जीवन भर डॉ० अम्बेडकर संघर्ष करते रहे। इन मुद्दों में न्याय, स्वतंत्रता, समानता, समुदाय, लोकतंत्र, सत्ता और वैधता है (रेड्रिग्स २०१७)। अम्बेडकर के सामाजिक न्याय का विचार अपने में राजनीतिक और आर्थिक न्याय को भी शामिल किए हुए है। अम्बेडकर सबसे वंचित लोगों के सामाजिक उत्थान को प्राथमिकता देना चाहते थे। दलितों, अल्पसंख्याकों, महिलाओं और श्रमिकों को अम्बेडकर सबसे वंचित तबकों में शामिल करते थे। उनका मानना था कि जाति व्यवसाी, सम्प्रदायिकता, पितृसत्ता ओर श्रमिकों का औद्योगिक शोषण आसमानता पैदा करते हैं और समाजिक न्याय के मार्ग मं बाधा पैदा करते हैं। असमानता के इन स्रोतों के रूढ़ हो जाने और निरंतर बने रहने के चलते डॉ० अम्बेडकर सुझााव देते हैं कि असमानता के शिकार लोगों को सशक्त बनाने के लिए राज्य को सक्रिया भूमिका निभानी चाहिए। अम्बेडकरवादी न्याय की अधारशिला स्वतंत्रता, समानता और बंधुता है।

**न्याय के सदर्भ जाति व्यवस्था**

डॉ० अम्बेडकर तीखे तरीके से जाति व्यस्था का विरोध करते हैं। इस विषय पर उनकी सबसे प्रसिद्ध कितना 'जाति का अनुच्छेद' है। हर जाति का अपना वंशानुगत पेशा होता है। किसी जाति विशेष के एक सदस्य को किसी दूसरी जाति विशेष के पेशे को अपनाने की अनुमति नहीं है। एक जाति द्वारा दूसरी जाति में शादी-विवाह करने और खान-पान पर रोक है। ब्राह्मण व्यवस्था को धर्मशास्त्रों का पुरजोर समर्थन प्राप्त कराया है। इसी के चलते अम्बेडकर ने कहा था कि 'जिन धार्मिक विचारों पर जाति व्यवस्था आधारित है, उनका उच्छेद, किए बिना जाति व्यवस्था को तोड़ना संभव नहीं है'। (अम्बेडकर 2014) जिाति व्यवस्था स्वष्ट तौर पर स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व से सिद्धांतों का उल्लंघन करती है। यह एक व्यक्ति से अपने लिए अपना स्वयं का पेशा चुनने के अधिकार को छीन लेती है। एक व्यक्ति की उसी जाति के प्रति निष्ठाा होती है, जिसमें वह जन्म लेता है या लेती है। जाति व्यवस्था के भीतर सहानुभूति और प्रेम के लिए कोई जगह नहीं होती है। जाति व्यवस्था के भीतर निष्पक्ष ढंग से व्यवहार करने के लिए कोई गुंजाइश नहीं होती है। इसी कारण से अम्बेडकर आरक्षण को सामाजिक सशक्तिकरण का एक उपय बताते हैं।

**भेदभाव आधारित धर्म न्याय में बाधक-**

अम्बेडकर धर्म के खिलाफ नहीं थे। उन्होंने धर्म का पक्ष लेते हुए एडमंडबर्क को उद्धृत किया है। एडमंडबर्क कहते हैं कि एक सच्चा धर्म समाज का आधार होता है। इस पर सभी सच्ची सम्यताएं टिकी होती हैं। लेकिन हिंदू धर्म को आम्बेडकर एक धर्म नहीं मानते थे, क्योंकि यह जाति व्यवस्था पर आधिरित है औश्र जाति व्यवस्था न्याय के तीनों तत्वों स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का निषेध करती है। अम्बेडकर मानते थे कि हिंदू धर्म बस आदेशों और निषेधों (नियमों, न कि सिद्धांतों) की संहिता है, जिसे उसने अपने अनुयायियों के लिए जारी किया है।

हिन्दू समाज का आधार इसका भेदभाव ही है। यह अन्य धर्मों को कैसे सहन कर सकता है, ज बवह किसी अन्य जाति से सम्बन्धित हिन्दू को ही सहन नहीं कर पता ? हिन्दू समुदाय केवल उसी समय एकजुअ होता दिखता है, जब दो अन्य महत्वपूर्ण धार्मिक समुदायों में से किसी एक के खिलाफ दंगा भड़क उठता है। अल्पसंख्याकों के अधिकारों के प्रति अम्बेडकर का गहरा सराकार था। अल्पसंख्यक किन समस्याओं का सामना करते हैं, इस संदर्भ में अपनी राय उन्होंने साइमन कमीशन और तीसरे गोलमेज सम्मेलन में प्रस्तुत अपने ज्ञापन में प्रकट किया है। बहुसंख्यक सम्प्रदाय बहुत इलाके में अल्पसंख्यकों को किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, वह इससे परिचित

थे। इसी कारण से उन्होंने व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और नौकरशाही में अल्पसंख्यकों के उचित प्रतिनिधित्व की मांग की थी।

**आधी आबादी को मिले समानता का अधिकार-**

जाति व्यवस्था पर चोट करते हुए डॉ० अम्बेडकर ने कभी इस बात को अपनी आँखों से ओझल नहीं होने दिया कि हिन्दू समाज व्यवस्था के भीतर महिलाओं के अधिकरों से इंकार किया गया है। वे सती प्रथा और बाल विवाह की भर्त्सना करते थे और हिन्दू परिवार व्यवस्था के पुनर्गठन की अपनी दृष्टि के अनुसार विधवाओं के पुनर्विवाह के पक्ष में तर्क देते थे। हिन्दू कोड बिल में अम्बेडकर ने सम्पत्ति का 18 जुलाई 1927 को उत्पीड़ित वर्ग की लगभग ३ हजार महिलाओं की एक सभा को संबोधित करते हुए अम्बेडकर ने कहा कि किसी समुदाय की प्रगति को उस वर्ग की महिलओं की प्रगति से मापा जा सकता है (रामाह 2017)। उन्होंने लड़कियों की शिक्षा, माहवारी के सन्दर्भ में महिलओं की गरिमा का रक्षा, तलाक भत्ता इत्यादि का समर्थन किया। अम्बेडकर पितृसत्तात्मक समाज में महिलओं के साथ होने वाले भेदभाव को गहराई से महसूस करते थे और उन्होंने न्याय के लिए आह्वान किया।

**आधी आबादी को मिले समानता का अधिकार-**

जाति व्यवस्था पर चोट करते हुए डॉ० अम्बेडकर ने कभी इस बात को अपनी आँखों से ओझल नहीं होने दिया कि हिन्दू समाज व्यवस्था के भीतर महिलाओं के अधिकरों से इंकार किया गया है। वे सती प्रथा और बाल विवाह की भर्त्सना करते थे और हिन्दू परिवार व्यवस्था के पुनर्गठन की अपनी दृष्टि के अनुसार विधवाओं के पुनर्विवाह के पक्ष में तर्क देते थे। हिन्दू कोड बिल में अम्बेडकर ने संपत्ति का अधिकार पुरूष और स्त्री दोनों उत्तराधिरियों को देने का प्रावधान किया।

18 जुलाई 1927 को उतपीड़ित वर्ग की लगभग ३ हजार महिलाओं की एक सभा को संबोधित करते हुए अम्बेडकर ने कहा कि किसी समुदाय की प्रगति को उस वर्ग की महिलाओं की प्रगति से माता जा सकता है (रामाह 2017)। उन्होंने लकड़ियों की शिक्षा, महावारी के संदर्भ में महिलओं की गरिमा की रक्षा, तलाक भत्ता इत्यादि का समर्थन किया। अम्बेडकरपितृसत्तात्मक समाज में महिलओं के साथ होने वाले भेदभाव को गहराई से महसूस करते थे और उन्होंने लैंगिक न्याय के लिए आह्वान किया।

**श्रमिकों के लिए कानून-**

अम्बेडकर ने श्रमिकों की जिंदगी को बेहतर बनाने वाले संघर्षों से भी खुद को जोड़ा। उन्होंने श्रमिकों के कल्याण के लिए 1936 में इंडिपेन्डेन्टलेबर पार्टी का गठन किया। उन्होंने श्रमिकों के जीवन स्थितियों को बेहतर बनाने के लिए एक सुधार 1944 में प्रस्तुत किया। यह बिल एक कारखाने में निश्चित समयावधि तक निरंतर काम करने वाले श्रमिक को मजदूरी सहित छुट्टी का अधिकार देता था। न्यूनतम मजदूरी, काम के बेहतर हालात, काम के घंटे काम करने इत्यादि मामले में श्रमिकों को उनके मालिकों से न्याय मिले, अम्बेडकर ने इसके लिए प्रयास किया। अम्बेडकर ने श्रमिकों के अधिकारों के संदर्भ में मूल प्रावधान क्या हो सकते हैं, इसे प्रस्तुत किया।

अम्बेडकर ने देखा कि जाति व्यवस्था न केवल श्रम विभाजन करती है, बल्कि श्रमिकों का भी विभाजन करती है। जाति व्यवस्था एक व्यक्ति के पेशे के विकल्प को सीमित करती है और निम्न श्रेणी के श्रमिकों द्वारा किए जाने वाले काम को नीच काम ठहराती है। अम्बेडकर पूंजीवाद को भी श्रमिकों के शोषण की एक व्यवस्था मानते हैं। अम्बेडकर ब्रह्मणवाद और पूंजीवाद को अपने आंदोलन के दो दुड़वां दुश्मन मानते थे (नारायण दास 2017)।

अम्बेडकर भारतीय समाज में न्याय के संदर्भ में भेदभाव के मुख्य कारक के रूप में जाति व्यवस्था को देखते थे। समाज में पैदा हुई किसी प्रकार की असमानता न्याय में भेदभाव पैदा कर सकती हैं।

अम्बेडकर भारतीय समाज में न्याय के संदर्भ में भेदभाव के मुख्य कारक के रूप में जाति व्यवस्था को देखते थे। समाज में पैदा हुई किसी प्रकार की असमानता न्याय में भेदभाव पेदा कर सकती है। अम्बेडकर न्याय की अवधारणा के मुख्य तत्व के रूप में जिस स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को पेश करते थे, जाति उन्हीं मूल सिद्धांन्तों का उल्लंघन करती है। दलितों, महिलओं, अल्पसंख्याकों और श्रमिकों के अधिकारों का जाति व्यवस्था के भीतर उल्लंघन होता है। अम्बेडकर इस बात को रेखांकित करते हैं कि न्याय की अवधारणा अधिकारों पर आधारित होती है और किसी देश का संविधान अधिकारों को संरक्षण प्रदान करता है। अम्बेडकर का वितरणात्मक न्याय का सिद्धांत जातिविहिन समाज पर आधारित था (नारायण दास, 2017)। उनके न्याय की अवधारणा इस अर्थ में समतावादी थी

कि वे चाहते थे कि सभी व्यक्तियों के साथ समान तरह से व्यवहार किया जाए। इसके विपरीत जाति व्यवस्था लोगों के साथ, उनको प्रदान किए गए सामाजिक स्तरों के आधार पर अलग-अलग व्यवहार करती है। इसमें सभी सामाजिक और आर्थिक चीजों का बंटवारा श्रेणीक्रम की व्यवस्था पर आधारित है।

**समतावादी न्याय-**

अम्बेडकर एक ऐसे न्यायपूर्ण समाज का स्वप्न देखते थे, जिसमें महत्ता और समाजिक स्तर के मामले में सभी व्यक्तियों के साथ समान रूप से व्यवहार किया जाए। वह सामाजिक असमानता और शोषण के कारकों को पूरी तरह से खारिज करते थे। वह मानते थे कि एक व्यवस्था के भीतर समतावादी न्याय सुनिश्चित करने के लिए स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को कायम करने की जरूरत होती है। चूंकि जाति व्यवस्था इन तीन बुनियादी तत्वों का उल्लंघन करती है, जिसके चलते यह भारतीय समाज में न्याय के विचार को जड़ जमाने में मुख्य अवरोध है।

हिन्दू समाज का आधार इसका भेदभाव ही है। यह अन्य धर्मों को कैसे सहन कर सकता है, जो बिवाह किसी अन्य जाति से संबंधित हिन्दू को ही सहन नहीं कर पाता ? हिन्दू समुदाय केवल उसी समय एकजुट होता दिखता है, जब दो अन्य महत्वपूर्ण धार्मिक समुदायों में से किसी एक के खिलाफ दंगा भड़क उठाता है। अल्पसंख्यकों के अधिकारों के प्रति अम्बेडकर का गहरा सरोकार था। अल्पसंख्यक किन समस्याओं का सामना करते हैं इस संदर्भ में अपनी राय उन्होंने साइमन कमीशन और तीसरे गोलमेज सम्मेलन में प्रस्तुत अपने ज्ञापन में प्रकट किया है। बहुसंख्यक सम्प्रदाय बहुत इलाके में अल्पसंख्यकों को किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, वह इससे परिचित थे। इसी कारण से उन्होंने व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और नौकरशाही में अल्पसंख्यकों के उचित प्रतिनिधित्व की मांग की थी।

अम्बेडकर के लिए कानून एक ऐसी चीज हैं, जो सबसे वंचित लोगों के अधिकारों की गारंटी देता है। अम्बेडकर ने जिस हिन्दू कोड बिल को संसद में पेश किया था, वह ब्राह्मणवादी कानूनों, हिन्दू पारिवारिक संहिता को खारिज करता है। यह बिल पुत्र और पुत्री दोनों को उनके पिता की संपत्ति में बराबर का अधिकार प्रदान करता है। इस बिल ने एकल विवाह प्रथा और तलाक के मामले में महिलओं के पक्ष में क्रान्तिकारी प्रावधान किए (ईपीडब्ल्यू 1919)।

देश के लिए आजादी प्राप्त करने के संदर्भ में अम्बेडकर का नजरिया भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से भिन्न था। इसके चलते ही वे देश की आजादी के आंदोलन से दूर रहे। वे सामाजिक न्याय को राजनीतिक न्याय की पूर्वशर्त की तरह मानते थे। उन्होंने न्याय प्राप्त करने में समानता और क्रान्ति की अवधारणा में एक वैकल्पिक आयाम प्रस्तुत किया। वे उस तरह की ''असमानता' के हिमायती थे, जिससे हाशिए के समुदायों को फायदा पहुँचता हों। इसे 'सकारात्मक भेदभाव' भी कहा जाता है। इसी कारण से उन्होंने पृथक निर्वाचन क्षेत्र का समर्थन किया, लेकिन गांधी के विरोध के चलते उन्हें इसका परित्याग करना पड़ज्ञ। उन्होंने आरक्षण के मसौदे तैयार किए थे, जिसका उद्देश्य वंचित लोगों के सामाजिक और आर्थिक हालात में क्रमिक सुधार करना था। अम्बेडकर समाज में बुनियादी परिवर्तन के प्राथमिक कदम के रूप में एक सामाजिक क्रान्ति की कल्पना करते थे। न्याय हासिल करने के लिए क्रान्ति की अम्बेडकर कल्पना करते थे, उसमें खून-खराबे के लिए कोई जगह नहीं थी। उनकी क्रान्ति की बगावत से मुक्त थीं वे राजनीतिक क्रान्ति के लिए सामाजिक क्रान्ति पसंद करते थे। वे लोकतंत्र में विश्वास करते थे और मानते थे कि हिन्दू समाजिक व्यवस्था समाज के लिए अभिशाप है। अम्बेडकर ने हिन्दू समाज के पुनर्निर्माण का विचार प्रतिपादित किया। उन्होंने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए उठाये जाने वाले कदमों को सूचीबद्ध किया, जैसे कि पुरोहितवाद का खात्मा। इसके अलावा उन्होंने पवित्र धार्मिक धर्मग्रन्थों के विनाश का आह्वान किया, जैसे कि मनुस्मृति।

अम्बेडकर की समतावादी न्याय की संकल्पना समाज के वंचित लोगों के फायदे के लिए असमान बर्ताव (सकारात्मक भेदभाव) की अनुमति देती है। जो जॉनरावल्स के 'निष्पक्षता के रूप में न्याय' से मेल खाता है। अम्बेडकर अधिकारों और कानूनों को न्याय की चाबी के रूप में स्वीकार करते है। दूसरी ओर अम्बेडकर के लिए जाति व्यवस्था, साम्प्रदायिकता, पितृसत्ता और श्रमिकों का शोषण एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना में सबसे बड़े अवरेधक थे। वे इस बात पर जोर देते हैं कि राजनीतिक और आर्थिक पुनर्निर्माण से पहले समाज का सामाजिक पुनर्निर्माण होना जरूरी है। क्योंकि उनका मानना था कि सामाजिक न्याय अन्ततोगत्वा राजनीतिक और आर्थिक न्याय

का मार्ग खोलेगा। हमारा समाज अम्बेडकर की न्याय की संकल्पना को अभी अपना नहीं पाया, क्योंकि इसने जाति और पितृसत्ता के श्रेणीक्रमों से अपने आप को मुक्त करने से इंकार कर दिया।

**संदर्भ :**


1. अम्बेडकर, बी० आर० (2014) एनिहिलेशन ऑफ दी कास्ट अनोटैडएडीशन, न्यू-दिल्ली नयाना पब्लिशिंग हाउस।
2. दास, नारायन (2017), डॉ० बी०आर० अम्बेडकर एण्डवोमेनस इम्पावरमेन्ट, न्यू-दिल्ली सेन्ट्रल प्रेस।
3. दास, नारायन (2017) थाट्स ऑफ डॉ० बी०आर० अम्बेडकर, न्यू-दिल्ल्ली सेंट्रम प्रेस।
4. हेवूड, एण्ड (2008), की कांसेप्ट इन पालिटिक्स, न्यूयार्क, एनवाई पालग्रेव
5. मैसे, जेम्स (2017) डॉ० अम्बेडकर विजन ऑफ जस्ट सोसाइटी, इन अवत्तीरामाह (संपादित) कंटेम्बररीरिलिवेन्स ऑफ अम्बेडकर्स थाट्स, जयपुर रावत बब्लिकेशन।
6. रावल्स, जॉन (1997), जिस्टिस एजफेयरनेश पोलिटिकल नॉट मेटाफिजिकल, इन स्टीफेनरिकब्रोनर (संपादित), ट्वेन्टी सेंचुरी पोलिटिकल थियरी-ए रीडर (द्वितीय संस्करण) न्यूयार्क, एनवाई राऊटजेज
7. रोड्रिग्स, वलेरियन (2017), अम्बेडकर इज पोलिटिक फिलासफर्स, इन इकोनामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, एल 11 (15), 101—107
8. सिंह, सुरेन्द्रा (1997), डॉ आम्बेडकर कान्ट्रीब्यूशन टू सोशल जस्टिस, इन मोहम्मद शब्बीर (संपादित), बी०आर० अम्बेडकर स्टडी लॉ एण्ड सोसाइटी, जयपुर रावत पब्लिकेशन्स
9. श्रीवास्तव, एस०पी० (1997), टूवार्डस एक्शप्लेनिंग दी कांसेप्ट ऑफ सोशल जस्टिस, इन मोहम्म दशब्बीर (संपादित) बी० आर० अम्बेडकर स्टडी लॉ एण्ड सोसाइटी, जयपुर रावत पब्लिकेशन्स।


***

# संगीत साधना एवं प्राणायाम

*डॉ. शशि शुक्ला**

समस्त कलाओं में संगीत को परमानंद का स्रोत मानते हैं। मनोभावों को उत्तेजित करने वाले कारकों में इच्छा व आवश्यकता प्रमुख है। वर्तमान परिस्थितियों में जीवन की चुनौतियों व कुण्ठाओं के प्रति सदैव सजग और सक्रिय रहने की इच्छा ने मानव जाति को निरन्तर तनाव चिंता के व्यवहार की ओर ढकेला है। चिन्ता समस्त रोगों का मूल है। अनेक रोगों की उत्पत्ति विकृत मानसिकता से जन्म ले लेती है। यह रोग मानसिक भी होते हैं और शारीरिक भी। मधुमेह रक्तचाप आदि रोग अधिक चिन्ता से जन्म लेते हैं अतः, संगीत इस क्षेत्र में कारगर रहते हुये मानव को ऊर्जा और चेतना प्रदान करता है। मनुष्य के मानस में उत्पन्न भावों को जब दबाया जाता है तो शरीर के जैविक सन्तुलन में बाधा उत्पन्न होती है, जिससे रक्त प्रवाह के मापदण्ड में दोष उत्पन्न हो जाता है, और जिसकी परिणिति होती है शारीरिक अव्यवस्था जिससे मस्तिष्क पर भी सीधा असर पड़ता है। अतः हमारा शास्त्रीय संगीत इन अव्यवस्थाओं को सहज रूप में व्यवस्थित बनाकर, मनुष्य को स्वस्थ जीवन, दीर्घ जीवन और विकारों का प्रतिबन्धन कर सच्चा आरोग्य बनाता है।

शास्त्रों में चार प्रकार के रोग बताये गये हैं– स्वाभाविक, आगन्तुक, मानसिक, कायिक। स्वाभाविक रोग वे हैं जो शरीर में स्वभाव से होते हैं जैसे भूख, प्यास, निद्रा आदि। इनकी औषधि भी होती है। भूख की औषधि भोजन, प्यास की औषधि पानी, निद्रा की औषधि सोना। आगन्तुक रोगों में बाहरी कारणों से अंग भंग होना आदि आता है। मानसिक रोग वह है जो मन के द्वारा शरीर को क्लेश पहुँचाते हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि। कायिक रोग वह हैं जो त्रिदोषों के न्यूनाधिक्य से होते हैं जैसे ज्वर, पाण्डुरोग आदि।

इनमें से स्वाभाविक एवं आगन्तुक रोग में मानव का वश नहीं रहता है। लेकिन समस्त मानसिक रोग या विकार एवं कुछ सीमा तक शारीरिक रोग जो उसके गलत आहार विहार से उत्पन्न होते हैं मधुमेह, रक्तचाप, हृदय एवं फेफड़ों से संबंधित आदि रोग। वह व्यक्ति के स्वयं योग, प्राणायाम आदि के निरन्तर अभ्यास द्वारा निरोगी काया प्राप्त करना असंभव नहीं है।

शरीर रूपी यन्त्र को सुचारू रूप से संचालन करने के लिये प्राणशक्ति की आवश्यकता होती है और प्राणायाम इस शक्ति को प्राप्त करने का महत्वपूर्ण साधन है। संगीत कला के 'स्वर–शास्त्र' में लगभग 72 विशिष्ट रागों का उल्लेख है जिसे कुशल वैद्यों ने अपनी चिकित्सा पद्धति में प्रयोग किया। आज ''संगीत चिकित्सा'' बहुत सुनने में आती है तरह–तरह के देश और विदेशों में प्रयोग भी किये जा रहे हैं लेकिन हमारे वेद पुराण, उपनिषदों में इस प्रकार की चर्चा बहुत मिलती है उन्होंने वर्षों पहले संगीत के स्वरों का महात्म्य जान, स्वरो के रंग, देवता, प्रकृति आदि तक की चर्चा की। नाद ब्रह्म की उपासना का भी प्राचीन इतिहास रहा जिसके माध्यम से महर्षियों ने ईश्वरीय सत्ता तक तादात्मय स्थापित किया। यही नाद आहत नाद के माध्यम से सप्त स्वर के रूप में संगीत साधक को प्राप्त होते हैं। इन स्वरों के अभ्यास से 'षड़ज साधना' आदि से अनेक प्रकार के प्राणायाम का अभ्यास प्राप्त होता है। दैनिक दिनचर्या में इन स्वरों के अभ्यास के माध्यम से अनेक प्रकार से नाड़ी शोधन, नाड़ी लय आदि का सन्तुलन बना रहता है।

विश्व की सबसे बड़ी संस्था (ण्भ्ण्व्) विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वास्थ्य की परिभाषा है– वही मनुष्य स्वस्थ है जो शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और सामाजिक रूप से विकार रहित है। संगीत वैसे तो इन चारों कसौटियों पर खरा उतरता है लेकिन यहाँ हम केवल शारीरिक और मानसिक विकारों पर संगीत की भूमिका की यदि चर्चा करें तो यह सर्वसिद्ध है कि शास्त्रीय संगीत के रागों से अनेक प्रकार की व्याधियों को ठीक होते देखा गया है और आज भी अनेक अनुसंधान भी किये जा रहे

* एसोसिएट प्रोफेसर, सा.रा.म. महाविद्यालय, बरेली

हैं। दातापीठम मैसूर के स्वामी गणपति सच्चिदानन्दम वहाँ के प्रधान पादरी हैं उनका संगीत द्वारा चिकित्सा देकर अनेक रोगों का निदान कर रहे हैं। योगाचार्य श्री आनन्द योग शिक्षा केन्द्र मुम्बई भारत के संस्थापक हैं जो योग कल्चर केन्द्र स्वीट्जरलैण्ड में संगीत द्वारा रोगों को दूर करने में प्रयासरत है। इन सबके पूर्व भी 1938 ई० में डा० जे० पाल की पुस्तक संगीत चिकित्सा प्रकाशित हुई जिसमें इस सम्बन्ध के अनेक प्रयोगों की चर्चा है। श्री महेश योगी ने भी अपने महर्षि गान्धर्व वेद विद्यापीठ (गाजियाबाद) में 1987 ई० में संगीत चिकित्सा विषय पर भारतीय सम्मेलन किया और बाद में भी अनेक प्रयोग करते रहे।

संगीत चिकित्सक डा० जैकसन पॉल व श्री घनश्याम स्वरों के प्रभाव से, जो प्रकृति के रोगों का निदान की चर्चा करते हैं– षड़ज गंधार स्वरों से पित्त प्रधान रोग, रिषभ द्वारा पित्त व कफ प्रधान रोग, मध्यम व धैवत द्वारा वात व कफ प्रधान रोग, पंचम द्वारा कफ प्रधान रोग एवं निषाद द्वारा वात प्रधान रोग नष्ट होते हैं। प्राणायाम, जिसमें ऊँ के उच्चारण से मानसिक विकारों का हनन होता है आज विज्ञान में भी सिद्ध हो गया है। प्रातःकालीन स्वर साधना में षड़ज अभ्यास में ऊँ से आरम्भ होते हुये, स्वर के ठहराव के साथ फेफड़ों में शक्ति का संचार होता है, रूधिर की शुद्धि होती है और समस्त नाड़ी चक्रों में चैतन्यता आती है। हमारे संगीत के सूक्ष्म स्वर सन्निवेश गले एवं शरीर में विशेष प्रकार का कंपन पैदा करते हैं जिससे रक्त संचरण तीव्र होना आरम्भ हो जाता है। ''प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्''। श्वास पर नियन्त्रण स्वर को साधने का विशेष अभ्यास है। प्रातः काल मंद्र सप्तक का अभ्यास, प्राणायाम का ही रूप है जिससे एकाग्रता, ध्यान करने का अभ्यास बढ़ता है और मानसिक विकार समाप्त होते हैं। नकारात्मकता समाप्त होकर विचारों का शुद्धिकरण होता है। प्रकृति के वाह्य रूप से हमारा वातावरण और आहार उपलब्ध होता है तथा अभ्यान्तर रूप से शारीरिक भावों की साम्यता और इन्द्रियों की प्रसन्नता प्राप्त होती है। आयुर्वेद में भी प्रकृति सुख–साम्यावस्था आरोग्य कहा जाता है।

शरीर के लिये जिस प्रकार अन्न की आवश्यकता होती है उसी प्रकार बाहरी और भीतरी रोगों के समूल नाश के लिये प्राणायाम का प्रयोग होता है। प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से ही हमारे ऋषि मुनि दीर्घ जीवी होते थे। मानसिक सन्तुलन ठीक रखने में चित्त को आनन्द की प्राप्ति होती है। प्राणायामी सब प्रकार से निरोग रहते हुये सुखी रहता है। मन को प्रसन्न और स्वस्थ रखने का पहला उपाय है, शरीर को स्वस्थ रखना। शरीर वह रथ है जिस पर बैठकर जीवन यात्रा करनी होती है। शरीर एक चलता फिरता देव मन्दिर है अतः मन की निर्मलता और बुद्धि की शुद्धता का साधन शरीर से प्राप्त होता है। 'स्वस्थ मन तो स्वस्थ तन' यह अचूक उपाय है। निरोगी रहने का और यह कार्य हमारे शास्त्रीय संगीत के अभ्यास, राग, तानों की गायकी, लय बद्ध बंदिशों का प्रस्तुतीकरण भली भाँति करते हैं। स्वर अभ्यास श्वास पर नियन्त्रण कर हृदय एवं फेफड़ों को बलिष्ठ बनाती है। तानों की प्रक्रिया में हृदय, फेफड़ों के साथ नाभि स्थान प्रभावित होकर निरोगी होता है। रागों के द्वारा भी बहुत उपयोगी उपचार है। हमारे शास्त्रीय संगीत के अनेक राग माइग्रेन, रक्तचाप, मधुमेह, श्वास रोग, थायराइड आदि रोगों में बहुत कारगर है। मैंने स्वयं थायराइड की मरीज होते हुये उज्जई क्रिया के रूप में स्वर अभ्यास कर चमत्कारिक लाभ का अनुभव प्राप्त किया है। भ्रामरी क्रिया भी स्वर अभ्यास का एक रूप है।

आज भाग दौड़ और व्यस्तता की जीवन शैली में इनसोम्निया के मरीज बहुतायत में मिलते हैं, नींद की गोलियों का प्रयोग बढ़ गया है, रोगी बार–बार औषधियों का सेवन करता है। इन दवाइयों का अधिक सेवन उसके लिये आहार स्वरूप हो जाता है और औषधियों का लाभ होना बन्द हो जाता है। शरीर की 'प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास होने लगता है। शास्त्रीय संगीत के अनेक राग अनिद्रा जैसी व्याधियों का अचूक इलाज है। बन्दिशों का निर्माण कर विशेष राग एवं ताल में प्रस्तुतिकरण से भी मनोगत भावों की अभिव्यक्ति कर संवेगों को मन से निकाल कर मस्तिष्क एवं तंत्रिका तंत्र प्रभाव डाल कर रोगमुक्त हुआ जा सकता है। संगीत में ध्वनि कंपन, ध्वनि तरंगे, मस्तिष्क की तरंगें संवेग, इच्छाशक्ति सभी पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आज मेडिटेशन के लिये संगीत के अनेक ऑडियो

और वीडियो मिलते हैं और उनका प्रयोग भी भारी मात्रा में बढ़ गया है। जिस मनुष्य का मन बिगड़ता है उसका स्वभाव भी बिगड़ जाता है। असंयम, असत्य, अभिमान, ईर्ष्या, दंभ, क्रोध, हिंसा और कपट आदि अवगुण ही बिगड़े स्वभाव के लक्षण हैं और ये सूक्ष्म रोग कहलाते हैं। इन स्वभाव को धारण करने वाला इंद्रियों के तेज और शक्ति को खो बैठता है जिससे शरीर विभिन्न प्रकार के रोग धारण कर लेता है। संगीत से रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। संगीत एवं प्राणायाम का नियमित अभ्यास करने वाला व्यक्ति सदा सकारात्मक विचार ऊर्जा एवं आत्मविश्वास से भरा होता है जिससे अनेक व्याधियाँ स्वतः ही समाप्त हो जाती है या उनका जन्म ही नहीं हो पाता। आज डिप्रेशन आम बात है, परन्तु संगीत एवं प्राणायाम मरीज को तीव्रता से डिप्रेशन से बाहर खींच लाते हैं, यह संगीत की परमशक्ति है।

**संदर्भ ग्रन्थ :**

1. वसुधा कुलकर्णी– भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान
2. अखण्ड ज्योति– सितम्बर माह 2004
3. सतीश वर्मा– संगीत चिकित्सा
4. आरोग्य अंक (कल्याण), गीता प्रेस गोरखपुर
5. डा. एडवर्ड पोडोलस्की– म्यूजिक फॉर मोर हेल्थ

***

# भारत की आन्तरिक सुरक्षा एवं चुनौतियों का समग्र अध्ययन

*डॉ. अशोक कुमार सिंह* *

**प्रस्तावना :** एक राष्ट्र की सुरक्षा को सामान्यतः दो खतरों से भय रहता है। पहला खतरा वाह्य खतरा होता है जो विदेशी राष्ट्रों से उत्पन्न होता है। दूसरा खतरा आन्तरिक खतरा होता है जो कि अपने ही देश के कुछ लोगों द्वारा उत्पन्न किया जाता है। वास्तव में आन्तरिक तथा वाह्य खतरे में स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना सम्भव नहीं है क्योंकि आन्तरिक खतरे में विदेशी राष्ट्र भी सम्मिलित हो जाते हैं और वाह्य खतरे में अपने को लोग पंचमार्गी की भूमिका अदा करने लगते हैं। भारत में इसका प्रमाण है कि जब भी भारत में आपसी फूट हुई है तब विदेशियों ने आक्रमण कर दिया है जैसे– जातिवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद, नक्सलवाद, क्षेत्रीयता, बेरोजगारी, युवा आन्दोलन, चोर–बाजारी, रिश्वतखोरी, भाई–भतीजावाद, अनुशासनहीनता, धार्मिक आन्दोलन आदि ऐसी अनेक समस्याएँ हैं। जिनसे भारतीय एकता एवं अखण्डता के समय–समय पर खतरा उत्पन्न हो जाता है। पंजाब के खालिस्तान आन्दोलन में भारतीय सुरक्षा की जड़ को झकझोर कर रख दिया है। इसने न केवल असंख्य निरीह लोगों हकी जान ही नहीं ली वरन् प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को भी हमसे छीन लिया। प्रधानमन्त्री राजीवगांधी जी ने पंजाब व असम समस्या को हल करके एक बार पुनः राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को सुदृढ़ किया है।

वर्तमान समय में भारतीय सुरक्षा को निम्नलिखित समस्याओं से विशेष खतरा है, जिनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

1. जातिवाद की समस्या
2. साम्प्रदायिकता की समस्या
3. भाषावाद की समस्या
4. प्रादेशिकता या क्षेत्रवाद की समस्या
5. युवा आन्दोलन या युवा अतिसक्रियतावाद की समस्या

**1. जातिवाद की समस्या :** जातिवाद जाति प्रथा से सम्बन्धित एक समस्या है जिसका गम्भीर रूप भारत में देखने को मिलता है। भारत को जातियों का अजायबघर कहा जाता है। प्रत्येक जाति के अपने नीति–रिवाज, प्रथाएँ, परम्परायें तथा सामाजिक नियम है इनकी रक्षा करने के लिये जाति संगठन की कठोरता इतना विशाल रूप धारणा कर चुकी है कि प्रत्येक जाति के सदस्य अपनी ही जाति की सर्वोच्च मानते हैं और अन्य जातियों के हितों ही उपेक्षा करते हैं। जाति के नाम पर आज कई संस्थायें व समितियाँ स्थापित हो गयी है और यह अपनी मान्यताओं का प्रचार करने के लिये साप्ताहिक व मासिक पत्रिकाएं भी निकालती है ग्रामीण सामाजिक संरचना में यह भावना अधिक विकराल रूप धारण किये हुये है। ग्रामों में जाति के नाम पर नित्य प्रति संघर्ष, अन्याय पक्षपात, शोषण तथा असंख्य विघटनकारी कार्य होते रहते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जातिवाद अपनी जाति के प्रति अन्य आस्था भावना है जिसमें अपनी जाति के ही तो या उद्देश्यों के सम्मुख अन्य जातियों के हितों ही अवहेलना की जाति है।

**2. साम्प्रदायिकता की समस्या :** 15 अगस्त सन् 1947 को जब भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा के साथ ही यहां के गांव तथा शहर में हिन्दू–मुसलमानों के झगड़े शुय हो गये तो दोनों ने एक–दूसरे के खून की होली खेली तथा भीषण रक्तपात हुआ। जितना नृशंस व्यवाहर इन साम्प्रदायिक दंगों में दिखाई दिया शायद ही कहीं मानव इतिहास में कभी उतना नृंशस व्यवहार दिखाई पड़ा हो। इस सम्प्रदायिक दंगें में सभी एक–दूसरे की जान–माल के दुश्मन बन गये। गांव–गांव में आग लगा दी गई। बच्चों को जलती हुई आग में झोंक दिया गया। स्त्रियों को नग्न करके उन्हें कोड़ों से मारते हुये सड़कों पर

* रीडर, रक्षा एवं स्त्रात्जिक अध्ययन विभाग, आर.आर.पी.जी. कालेज अमेठी, जनपद-अमेठी।

जुलूस निकाले गये। रेल तथा गाड़ियों को रोककर हजारों लोगों को गाजर–मूली की तरह काट दिया गया। लाखों व्यक्ति बेघर हो गये और करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट हो गई इतना बड़ा बलिदान देकर भी देश में साम्प्रदायिक तनाव कम नहीं हुआ। आज भी यह समस्या मुंह बाये खड़ी है।

**3. भाषावाद की समस्या** : मानव समाज में विचार विनियम का भारती महत्व है जिसका प्रयोग भाषा के द्वारा ही किया जाता है। जैकब्स तथा स्टर्न के मतानुसार– ''भाषा का भाषा समुदाय के मौखिक व्यक्तित्व का एक जटिल माध्यम है। भाषा किसी भी क्षेत्र विशेष में रहने वाले लोगों द्वारा बोली जाती है जिससे व्यक्ति अपनी इच्छाओं, भावनाओं एवं विचारों को एक दूसरे तक पहुंचा सकता है। हमारे देश में 1652 मातृ–भाषाओं का प्रचलन है जिन्हें 826 भाषाओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है इन भाषाओं को चार अलग–अलग भाषा परिवारों आर्यन, द्रविणयन, आस्ट्रक और चीनी–तिब्बती भाषा परिवार से सम्बन्ध किया जा सकता है भारत में प्रति बीस मील की दूरी पर भाषा बदल जाती है किसी भी देश में इतनी भाषाओं का होना स्वयं में कोई दोष नहीं परन्तु जब भाषाओं की भिन्नता, विभिन्न भाषा–भाषी समूहों में तनाव का आधार बन जाये तो यह निश्चय ही चिन्ता का विषय होगा। केवल भाषा के प्रश्न को लेकर हमारे देश में करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट हुई तथा सैकड़ों लोगों की अनमोल जाने गई और अभी भी यह विवाद समाप्त नहीं हुआ है। जब भाषा का समर्थन अन्धा रूप धारण कर ले और जिसमें अपनी भाषा को ऊँचा समझकर अन्य भाषाओं को नीचा और त्याज्य समझा जाये तो यह प्रवृत्ति भाषावाद की प्रवृत्ति कहलाती है।

**4. प्रादेशिकता या क्षेत्रवाद की समस्या :** आर्थिक असमानता एवं निर्धनता भारतीय सुरक्षा के लिये एक भयंकर समस्या है। आर्थिक दृष्टि से समाज दो वर्गों में बंटा हुआ है। एक वर्ग में वे लोग आते हैं जो धनी है जैसे उद्योगपति बड़े किसान जमाखोर एवं रिश्वतखोर अधिकारी आदि की आय दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। वही देश की अधिकांश जनता गरीब है उसके लिये जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक वस्तुएं भी सुलभ नहीं है। आज करोड़ों आवश्यक वस्तुएं भी सुलभ नहीं है। आज करोड़ों लोग गरीबी रेखा से नीचे का जीवन जी रहे हैं।

अतः सरकार को चाहिए कि ऐसी नीति अपनायी जाये जिसके धनी एवं गरीब लोगों के मध्य अन्तर कम हो सके तथा विकास एवं प्रगति का लाभ सभी को मिल सके तभी राष्ट्र की सुरक्षा सम्भव है। आवश्यकता है रोटी, कपड़ा और मकान, लेकिन बहुत से ऐसे परिवार है जिनकी ये तीनों आवश्यकताएं बहुत से ऐसे परिवार है जिनकी ये तीनों आवश्यकताएं पूरी नहीं है जो व्यक्ति भूख की ज्वाला से छटपटा रहा हो अथवा मूसलाधार वर्षा में भीग रहा हो या नग्न घूम रहा हो भला ऐसा व्यक्ति राष्ट्र की सुरक्षा के बारे में क्या सोच सकता है। वैसे हमारी सरकार गरीबी हटाओ का डंका पीट रही है लेकिन कागज पर। आज भारत शिक्षित बेरोजगारी की समस्या से पीड़ित है। यह नवयुवक पंजाब और कश्मीर तथा पूर्वोत्तर भारत आतंकवादियों और अलगाववादियों के बहकावे में आ रहे हैं, और भारत की मुख्यधारा से शनैः शनैः कट रहे हैं। इन्हीं नवयुवकों को पाकिस्तान, बांग्लादेश, चीन, बर्मा आदि देशो में आयुधों का प्रशिक्षण देकर भारत के विरोध में खड़ा किया जा रहा है। सामान्य छात्र भी पश्चिमी देशों की नयी पीढ़ी की कल्पनाओं और मूल्यों को जाने–अनजाने में ग्रहण करता जाता है लेकिन पढ़ाई पूरी करने के बाद रोजगार दुर्लभ विकल्पों के कारण आर्थिक तंगी की कड़वाहट उसके मानस को विद्रोही बना देती है जहां तक मेरा अन्दाजा है कोई भी स्वभावतः उग्रपंथी नहीं होता उसे परिस्थितियां वैसी बनाती है। मेरी उक्ति पंजाब, कश्मीर और पूर्वोत्तर भारत पर पूर्णतः लागू होती है। आजादी के बाद निर्धनता को कम करने का मन से संकल्प नहीं लिया जा सका।

**5. युवा आन्दोलन या युवा अतिसक्रियतावाद की समस्या :** युवा आन्दोलन समस्या 1971 से शुरू हुआ। युवा वर्ग देश का भविष्य होने के साथ–साथ हमारे देश के विकास के एक हिस्सा है। राष्ट्र के हित में इनकी भागीदारी महत्वपूर्ण है। भारत के युवाओं की संख्या अन्य देशों से अधिक है। भारत की लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या की आयु 35 वर्ष से कम है सरकार का पूरा ध्यान युवाओं के माध्यम से विकास पर केन्द्रित है सरकार द्वारा पेश की गई राष्ट्रीय युवा नीति 2014 का उद्देश्य युवाओं की क्षमताओं को पहचानना और उसके अनुसार उन्हें अवसर प्रदान कर सशक्त बनाना और इसके माध्यम से विश्वभर में

भारत को उसका सही स्थान दिलाना युवाओं के व्यक्तित्व में सुधार लाना एवं उनमें नेतृत्व के गुण विकसित करने एवं उनकी जिम्मेदारियां नागरिक के गुण एवं स्वयं सेवा की भावना उत्पन्न करने के उद्देश्य से युवा मामले के विभिन्न कार्यक्रमों को कार्यान्वित किया है।

**छात्र आन्दोलन :** छात्र आन्दोलन भी हमारे देश की एक बड़ी समस्या है। यह मनुष्य और समाज दोनों का परस्पर पूरक है और छात्र इसका एक अभिन्न अंग है। एक के बिना दूसरे का स्थायित्व संभव नहीं है। छात्र शक्ति समाज को सुधारने और उसे मजबूत करने वाले घटकों में से एक है। इसलिये कहा जाता है कि युवा देश की रीढ़ है जिसके कन्धे पर देश का भविष्य टिका होता है। स्वतन्त्रता के पूर्व और स्वतन्त्रता के बाद भारत में जितने भी परिवर्तनकारी सामाजिक आन्दोलन हुए उनमें छात्रों की भूमिका बहुत अहम रही है।

**क्षेत्रवाद की समस्या :** क्षेत्रवाद से अभिप्राय किसी देश के ऐसे छोटे के छात्र से है जो आर्थिक, सामाजिक आदि कारणों से अपने पृथक अस्तित्व के लिये जागृत है। अपने क्षेत्र या भूगोल के प्रति अधिक प्रयत्न आर्थिक सामाजिक व राजनैतिक अधिकारों के चाह की भावना को क्षेत्रवाद के नाम से जाना जाता है इस प्रकार की भावना से बाहरी बनाम भीतरी तथा अधिक संकीर्ण रूप धारण करने पर यह क्षेत्र बनाम राष्ट्र हो जाती है जो किसी भी देश की एकता और अखण्डता के लिये सबसे बड़ा पैदा हो जाता है भारत सहित दुनिया के कई देशों में क्षेत्रवाद की मानसिकता को लेकर वहां के निवासी स्वयं को विशिष्ट मानते हुये अन्य राज्यों व लोगों से अधिक अधिकारों की मांग करते हैं, आन्दोलन करते हैं तथा सरकार पर अपनी मांगे मनवाने के लिये दबाव डालते हैं। इस तरह की कोशिशों का नतीजा कई बार हिंसा के रूप में सामने आता है।

**अनुशासनहीनता की समस्या :** अनुशासनहीनता भी भारत की एक बहुत बड़ी समस्या है। वर्तमान युग में अनुशासनहीनता एक बड़ी समस्या से रूप में उभरी है। भारतवर्ष में यह समस्या इतना भयंकर रूप धारण कर गई है कि माता–पिता तथा राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में भी अपना प्रभाव दिखा रही है।

**नक्सलवाद की समस्या :** इस समस्या को हमारी सरकारें जड़ से मिटाने में अब तक पूरी तरह से विफल रही है तथा हमारे सुरक्षाबल इस समस्या से निपटने में सक्षम नहीं हो पा रहे हैं या फिर हमारी सरकारों में राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी है। गौर करें तो नक्सलवाद परिस्थिति के कारण पैदा हुई एक समस्या है और इसकी पृष्ठभूमि सरकारों से जुड़ी हुई है। सर्वप्रथम यह नक्सलवाद पश्चिम बंगाल के नक्सलवाड़ी गांव से शुरू हुई। धीरे–धीरे यह पूरे पश्चिमी बंगाल प्रान्त में फैल गया। नक्सलियों का निशाना, पुलिस, थाने तथा बड़े कृषक होते हैं। आज बंगाल से निकलकर पूरे देश में फैल चुका है। किसी थाने से हथियार लूट ले रहे हैं, जवानों की हत्या कर रहे हैं। जनता और पुलिस प्रशासन इनसे तंग आ चुके हैं। भारत की आन्तरिक सुरक्षा की दृष्टि से इस समस्या का समाधान जल्द ही ढूढ़ना होगा।

**आतंकवाद की समस्या :** हिंसा प्रत्येक दशा में शान्ति व व्यवस्था के लिये खतरनाक होती है। अतः इसके विरूद्ध सत्ता में बैठे लोगों द्वारा शमनात्मक कार्यवाही भी अनिवार्य रूप से होती है। हिंसा को रोकने के लिये शासकों के पास अन्य कोई उपाय भी नहीं होते। आज विश्व में सभी राष्ट्र विशेषकर प्रजातांत्रिक राष्ट्र कमोवेश आतंकवाद के शिकार हो रहे हैं। सबसे मुख्य समस्या यह है कि कुछ राष्ट्र और राजनीतिक दल आतंकवाद को अपने स्वार्थ के साधन के रूप में इस्तेमाल करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझने लगे हैं। हिंसा में विश्वास करने वाले कुछ राजनीतिक दल क्रान्तिकारी हिंसा और आतंकवाद का सहारा लेने में निर्लज्जता का कदापि अनुभव नहीं करते। आतंकवाद फैलाने वालों के अपने उद्देश्य होते हैं। हर देश में इसका रूप एवं प्रकृति अलग–अलग होती है। प्रत्येक सरकार के अलग–अलग अपने सामाजिक और धार्मिक मूल्य होते हैं। अतः इस खतरे के प्रति उनका नजरिया भी अलग–अलग होता है। इस बात को सभी स्वीकार करते हैं कि आतंकवाद से निपटने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की शुरूआत होनी चाहिए।

**धार्मिक समस्या :** भारत एक ऐसा देश है जहाँ धार्मिक विविधता और सहिष्णुता को कानून तथा समाज, दोनों के द्वारा मान्यता प्रदान की गयी है। किन्तु यह मूलतः सनातन वैदिक धर्म और श्रव्य धर्म का पालन करता है। बाकि जो नये धर्म है जैसे कि बौद्ध धर्म और सिख धर्म इन्हें सम्प्रदाय माना जाता है। भारत के पूर्ण इतिास के दौरान धर्म को यहां की संस्कृति में एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारत विश्व की चार प्रमुख धार्मिक परम्पराओं का जन्म स्थान है– हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिक्ख धर्म भारतीयों का एक विशाल बहुमत तथा स्वयं को किसी न किसी धर्म से सम्बन्धित अवश्य बताता है।

देश की अधिसंख्यक जनता जीवन निर्वाह के लिये संघर्ष कर रही है, सरकार को ऐसी नीति बनानी होगी विकास एवं प्रगति का लाभ सभी को मिल सके तभी राष्ट्र की सुरक्षा सम्भव है।

**सन्दर्भ :**

1. डॉ. लल्लन सिंह जी : राष्ट्रीय रक्षा और सुरक्षा, पृ. 418.
2. डॉ. अशोक कुमार सिंह : राष्ट्रीय सुरक्षा, पृ. 556.
3. हरिदत्त वेदालंकार : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, पृ. 506.
4. प्रभुदत्त शर्मा : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, संस्करण 1999, पृ. 19–21.
5. एम.एल. शर्मा : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, नई दिल्ली, 2002, पृ. 55–59.
6. डॉ. जे.एम. श्रीवास्तव : राष्ट्रीय सुरक्षा, पृ. 120.

***

# आत्मज्ञान एवं योग का मार्गः एक दार्शनिक विश्लेषण

*रजनी गोस्वामी**

**परिचयात्मक टिप्पणीः**

भारतीय दर्शन की मूल विशेषता आत्मज्ञान प्राप्त करने का मार्ग दिखाना है। भारतीय दर्शन के सभी छह रूढ़िवादी स्कूल – वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा और वेदांत या उत्तर मीमांसा आत्मज्ञान को जीवन का एकमात्र उद्देश्य मानते हैं।

योग का अष्टांगिक मार्ग सर्वोत्कृष्ट है क्योंकि इसमें प्राचीन वैदिक ज्ञान से लेकर आत्मज्ञान पर समकालीन अंतर्दृष्टि तक सब कुछ समाहित है।

भारतीय दर्शन के तीन विषम मतों में से दो संप्रदाय – बौद्ध और जैन धर्म आत्मज्ञान में विश्वास करते हैं। यद्यपि आत्मज्ञान के नाम भिन्न–भिन्न हैं। बौद्ध धर्म में इसे निर्वाण कहा जाता है जबकि जैन इसे कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति कहते हैं।

यह शोध पत्र भारतीय विद्यालयों का दार्शनिक विश्लेषण प्रदान करने का एक प्रयास है जो यह दर्शाता है कि पतंजलि के योग में वर्णित आत्मज्ञान की अवधारणा भारतीय दर्शन में केंद्रीय भूमिका निभाती है।

**योग का मार्गः**

पतंजलि ने पहले सूत्र में अपनी पुस्तक के उद्देश्य का वर्णन किया है और उन्होंने अपने दूसरे सूत्र में 'योग' शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया है।

योगचित्तवत्ति–निरोध (योग ष्योग मन (चित्त) के संशोधनों (वृत्ति) का निषेध (निरोधः) है।

रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानंद ने योग को विभिन्न रूपों में वर्णित किया है। (1) जब मन शांत हो जाता है तो वास्तविक स्व प्रकट होता है। और इसे आत्मज्ञान कहते हैं।

पतंजलि ने योग सूत्र में योग की परिभाषा को आठ अंगों (अष्टांग, ष्आठ अंगष्) के रूप में निम्नानुसार निर्धारित किया है।

योग के आठ अंग हैंः यम (संयम), नियम (पालन), आसन (योग मुद्राएं), प्राणायाम (श्वास नियंत्रण), प्रत्याहार (इंद्रियों को वापस लेना), धारणा (एकाग्रता), ध्यान (ध्यान) और समाधि (अवशोषण) । पतंजलि के योग का अष्टांगिक मार्ग बताता है कि नैतिक रूप से अनुशासित और उद्देश्यपूर्ण जीवन कैसे जिया जाए जो आत्मज्ञान की ओर ले जाए। (2) योग के आठ अंग इस प्रकार हैंः

**1. यमः**

यम नैतिक नियम हैं और इन्हें नैतिक अनिवार्यता के रूप में वर्णित किया जा सकता है (जो नहीं किया जाना चाहिए)। योग सूत्र 2.30 में पतंजलि द्वारा सूचीबद्ध पाँच यम हैंः

1. अहिंसाः अन्य जीवों को नुकसान न पहुँचाना।
2. सत्यः झूठ से बचें।
3. अस्तेयः चोरी न करना।
4. ब्रह्मचयः शुद्धता, वैवाहिक निष्ठा।
5. अपरिग्रहः भौतिक वस्तुओं का संग्रह नहीं करना। (3)

पतंजलि वर्णन करते हैं कि उपरोक्त प्रत्येक आत्म–संयम व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास में कैसे और क्यों मदद करता है। उदाहरण के लिए, श्लोक 35 में पतंजलि कहते हैं कि अहिंसा के गुण से शत्रुता का परित्याग होता है। ऐसी अवस्था में योगी को आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

* शोधार्थी, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग

**2. नियमः**

पतंजलि के योग पथ का दूसरा घटक नियम है। इसमें पुण्य कार्य, आदतें और प्रथाएं शामिल हैं। साधना पद श्लोक 32 के अनुसार नियम निम्नलिखित हैंः

1. शौचः मन, वाणी और शरीर की पवित्रता।
2. संतोषः संतोष, अन्य लोगों की स्वीकृति, किसी की परिस्थितियों को उनके रूप में स्वीकार करना आदि।
3. तपस्याः दृढ़ता, तपस्या और आत्म–अनुशासन।
4. स्वाध्यायः उपनिषदों और वेदों का अध्ययन, स्वयं के विचारों, भाषण और कार्यों का आत्मनिरीक्षण, स्वयं का अध्ययन आदि।
5. ईश्वरप्रणिधानः

ईश्वर, ब्रह्म, सच्चे स्व, अपरिवर्तनीय वास्तविकता का चिंतन। (4)

योगसूत्र के 2.42वें श्लोक में, पतंजलि बताते हैं कि कैसे और क्यों प्रत्येक नियम व्यक्तिगत और आध्यात्मिक विकास में मदद करता है। बाहरी और आंतरिक विकास दोनों के लिए दूसरों और अपनी परिस्थितियों को स्वीकार करने का गुण अनिवार्य है।

**3. आसनः**

योगसूत्र के श्लोक 46 में पतंजलि ने आसन का वर्णन इस प्रकार किया हैः

**स्थिरसुखमासनम् 46**

योग सूत्र, श्लोक 46।

आसन एक ऐसी मुद्रा है जिसमें व्यक्ति आराम से लंबे समय तक बैठ सकता है। यह आत्मज्ञान की प्राप्ति में बहुत सहायक है। आम धारणा के विपरीत, योग सूत्र में वर्णित कोई विशिष्ट आसन नहीं है। महत्वपूर्ण बात यह है कि एक पूर्ण आराम की स्थिति में बैठकर ध्यान का अभ्यास करें जो समय के साथ विकसित होता है। कोई भी आसन जो दर्द या बेचौनी का कारण बनता है, वह योग मुद्रा नहीं है।

माध्यमिक ग्रंथों में चर्चा की गई है कि रीढ़ की हड्डी सीधे कम गुरुत्वाकर्षण की ओर होनी चाहिए। योग का अभ्यास करने के लिए बैठने का यह सबसे अच्छा तरीका है।

सूत्रों से जुड़ी भाष्य टिप्पणी, जिसे अब पतंजलि ने स्वयं माना है, ध्यान की बारह मुद्राएँ सुझाती हैं – पद्मासन, विरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन, दंडासन, सोपासरायसन, पर्यंकासन, क्रौंच–निषादासन, हस्तनिषदासन, उष्ट्रानिषासन, समसंस्थानासन और स्थिरसुखासन। (5)

**4. प्राणायामः**

प्राणायाम श्वास को नियंत्रित करने के बारे में है। जब आसन का अभ्यास पूरा हो जाता है, तो हमें अपनी सांस को नियंत्रित और नियंत्रित करना होता है। योग सूत्र के 51वें श्लोक में इसका उल्लेख है।

यह सचेत रूप से सांस के समय और लंबाई को बदलकर किया जा सकता है। सांस छोटी और गहरी दोनों हो सकती है। (6)

**5. प्रत्याहारः**

प्रत्याहार गहराई से जागरूकता में अंतर्निहित है। यह बाहरी वस्तुओं से संवेदी अनुभव को वापस लेने की एक प्रक्रिया है। प्रत्याहार के माध्यम से, हम आत्म–निष्कर्षण प्राप्त करते हैं। प्रत्याहार सचेत रूप से मन को नियंत्रित कर रहा है ताकि वह संवेदी अनुभवों में न चले।

प्रत्याहार संसार से अभिभूत होने की नहीं, आत्मज्ञान प्राप्त करने की शक्ति देता है। पतंजलि की अष्टांग योजना के पहले चार अंगों से अंतिम तीन अंगों तक जाने के लिए यह एक महत्वपूर्ण कदम है जो योगी की आंतरिक स्थिति को परिपूर्ण करता है। यह बाहरी दुनिया से अंदर की दुनिया में जाने के बारे में है, आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए। (7)

**6. धारणाः**

इसका अर्थ है एकाग्रता – मन की एकाग्रता। इसका अर्थ है किसी विषय या घटना पर अपना मन लगाना। मन को जागरूकता की वस्तु पर स्थिर करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। यह सांस, नाभि या कुछ भी हो सकता है। धारणा में मन को भटकने नहीं दिया जाता। आत्मज्ञान के लिए धारणा का अभ्यास आवश्यक है।

**7. ध्यानः**

ध्यान अनिवार्य रूप से हमारे दिमाग की प्रक्रियाओं के बारे में गैर–निर्णयात्मक जागरूकता है। धारणा ध्यान की प्रारंभिक अवस्था है। ध्यान हमारे आस–पास होने वाली हर चीज के बारे में जागरूकता पैदा करना है। पतंजलि ध्यान को मन की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करते हैं, जहां मन किसी चीज पर स्थिर होता है, और आत्मज्ञान सहज रूप से प्राप्त होता है। (8)

**8. समाधिः**

समाधि में किसी वस्तु का ध्यान करते समय केवल जागरूकता की वस्तु मौजूद होती है। समाधि के लिए हमें जागरूकता की वस्तु चाहिए। समाधि दो प्रकार की होती है – संप्रज्ञात समाधि जहाँ किसी वस्तु के सहारे की आवश्यकता होती है, और असमप्रज्ञात समाधि जहाँ किसी वस्तु के सहारे की आवश्यकता नहीं होती है। (9)

**उपसहांरः**

एक शोधकर्ता ब्रायंट के अनुसार, योग का उद्देश्य पुरुष (जो चेतना को देख रहा है) और प्रकृति (जिसमें उलझा हुआ मन और क्लेश शामिल है) के बीच भेदभाव के माध्यम से पीड़ा से मुक्ति है। (10)

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, सांख्य दर्शन योग का सैद्धांतिक प्रतिरूप है। योग के आठ अंग हैं विवेकपूर्ण विवेक प्राप्त करने का साधन तथा पुरुष को प्रकृति के साथ सभी संबंधों से अलग करना और चित्त के संशोधन के बिना उसका उत्थान। यही योग का लक्ष्य है।

योग के अष्टांगिक मार्ग के सभी आठ चरणों का दार्शनिक विश्लेषण इस तथ्य को प्रकट करता है कि योग का मार्ग आत्मज्ञान प्राप्त करने का एक निश्चित और स्पष्ट तरीका है।

इस पत्र के शोधकर्ता ने पाया है कि पतंजलि का योग सूत्र योग को एक अभ्यास के रूप में निर्धारित करता है जिसमें अनिवार्य रूप से ध्यान के अभ्यास शामिल होते हैं जो सक्रिय विचार के सभी तरीकों से मुक्त चेतना की स्थिति प्राप्त करने में परिणत होते हैं। ऐसी अवस्था में साक्षी चेतना स्वयं के प्रति जागरूक हो जाती है। और इसी से आत्मज्ञान का पता चलता है। योगाभ्यास का पालन करने से अनायास ही आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है।

**संदर्भ ग्रंथः**


1. विवेकानंद, स्वामी (2001), *स्वामी विवेकानंद के पूर्ण कार्य*, खंड, 9 खंड, अद्वैत आश्रम।
2. *पतंजलि के योगसूत्र,* चार्ल्स जॉनसन (अनुवादक)।
3. अगासे, के.एस. (1904)। *पतंजलयोगसूत्रणि*। पूसेरू आनंदाश्रम, पेज नं, 102।
4. *योग दर्शन.* टी. आर. तात्या (अनुवादक), भोजराज कमेंट्री के साथय हार्वर्ड विश्वविद्यालय अभिलेखागार, पृष्ठ 84।
5. हरिहरानंद आर्य (1983), *पतंजलि का योग दर्शन*, स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस, पृष्ठ 228।
6. *योग–दर्शन,* व्यास जीएन झा (अनुवादक) के भाष्य के साथ पतंजलि के सूत्रय हार्वर्ड विश्वविद्यालय अभिलेखागार, पृष्ठ 90–91।
7. आर. एस. बाजपेयी (2002), *द स्प्लेंडर्स एंड डाइमेंशन्स ऑफ योग*, मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ठ 342–345।
8. *योग दर्शन* टी.आर. तात्या (अनुवादक)।
9. स्वामी जननेश्वरा भारती, *इंटेग्रटिंग 50 वेरायटीज ऑफ योग मैडिटेशन*।
10. एडविन ब्रायंट (2011, रटगर्स यूनिवर्सिटी), *पतंजलि के योग सूत्र*।
11. वर्नर, कारेल (1998)। *योग और भारतीय दर्शन* (1977, 1998 में पुनर्मुद्रित)। मोतीलाल बनारसीदास पब्लिक. आईएसबीएन 81–208–1609–9।


***

# किशोर न्याय (बालको की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम 2015 के अनुरुप गठित "बाल कल्याण समिति'' की भूमिका का एक अध्ययन, सिवनी जिला मध्यप्रदेश के विशेष संदर्भ में

*शोभाराम डेहरिया**

**प्रस्तावनाः–** किशोर न्याय (बालको की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम 2015 (जेजे एक्ट) के नाम से भी जाना जाता है जो वर्तमान में सम्पूर्ण भारत में लागू है।

**अधिनियम की पृष्ठभूमि :** संविधान के अनुच्छेद 15 के खण्ड (3), अनुच्छेद 39 के खण्ड (ड) और खण्ड (च), अनुच्छेद 45 और अनुच्छेद 47 के उपबन्धों के अधीन यह सुनिश्चित करने की कि बालकों की सभी जरूरतों को पूरा किया जाए और उनके मूलभूत मानव अधिकारों की पूर्णतया संरक्षा की जाए, शक्तियाँ प्रदान की गई है, और कर्तव्य अधिरोपित किए गए हैं

और, भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा द्वारा अंगीकृत बालकों के अधिकारों से सम्बन्धित अभिसमय को, जिसमें ऐसे मानदण्ड विहित किए गए हैं, जिनका बालक के सर्वोत्तम हित को सुनिश्चित करने में सभी राज्यों द्वारा पालन किया जाना है, 11 दिसम्बर, 1992 को अंगीकार किया थाः और, विधि का उल्लंघन करने के अभिकथित और उल्लंघन करते पाए जाने वाले बालकों तथा देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बालकों के लिए बालक के अधिकारों से सम्बन्धित अभिसमय, किशोर न्याय के प्रशासन के लिए संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियम, 1985 (बीजिंग नियम), अपनी स्वतंत्रता से वंचित संयुक्त राष्ट्र किशोर संरक्षण नियम (1990), बालक संरक्षण और अन्तरदेशीय दत्तक ग्रहण की बाबत् सहयोग सम्बन्धी हेग कन्वेंशन (1993) तथा अन्य सम्बन्धित अन्तरराष्ट्रीय लिखतों में विहित मानकों को ध्यान में रखते हुए वृहत् उपबन्ध करने के लिए किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 (2000 का 56) को पुनः अधिनियमित करना समीचीन है ।

**अध्ययन का उद्देश्य–**

1. बाल कल्याण समिति के कार्यो का अध्ययन करना जिससे की बाल कल्याण समिति के कार्य कलापों को आम जन तक पहुचाया जा सकें जिससे बच्चों के हितों की रक्षा को बढ़ावा मिल सकें।
2. बाल कल्याण समिति के समक्ष बालकों को संज्ञान में लेना एवं समस्या का निराकरण करने में।
3. बाल कल्याण समिति के सदस्यों को समिति के बारें में ओर अधिक पढ़ने जानने को मिल सके।
4. जेजे एक्ट–2015 की जानकारी अधिक लोगों को मिल सके।
5. बाल कल्याण से जुडें लोगों को बालकों की समस्या का निराकरण में सहायता मिल सके।
6. पास्को एक्ट 2012 की जानकारी जन सामान्य एवं बालकों को मिल सके।

**अध्ययन विधि–**

1. सामाजिक अनुसंधान कारी वैज्ञानिक विधि को प्रयोग में लाया गया है। डाटा कलेक्शन की प्राथमिक एवं द्वितीयक विधि का प्रयोग। कार्य क्षेत्र में अनुभव को साझा करने का भी प्रयास किया गया है।
2. डाटा कलेक्शन
3. सारणीयन।
4. प्रत्यक्ष अवलोकन।

**अध्ययन का महत्वः–**

1. बालकों की देखरेख एवं संरक्षण में कार्य करने वाली ऐजेंसियों को बाल कल्याण समिति को समझने का मौका मिलेगा। जिससे समस्या ग्रस्थ कोई भी बालको को बाल कल्याण समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है।

---

* सहायक प्राध्यापक एवं पूर्व विभागाध्यक्ष (समाज कार्य) एवं सदस्य बाल कल्याण समिति, जिला सिवनी मध्यप्रदेश शासन

2. बालकों की काउसलिंग व समस्या को सुलझाने में सहायता मिल सकें।
3. जेजे एक्ट को अधिक लोगों की पहुंच में लाना जिससे बाल काल्याण को बढावा मिल सकें।
4. पाक्सों एक्ट 2012 की जानकारी जन समान्य एवं बालकों को मिल सके।
5. चाइल्ड हेल्प लाइन 1098 बालकों व आम लोगों की जानकारी में लाया जाना।
6. शासकीय योजनाओं एवं बाल कल्याण समिति से लोग अवगत होगें।

**अध्ययन क्षेत्र का परिचयः–**

अध्ययन क्षेत्र सिवनी जिला मध्यप्रदेश राज्य में स्थित आदिवासी बहुल्य क्षेत्र होने के साथ ही वन एवं कृषि पर आधारित जीवन शैली है। सिवनी जिला का गठन 1956 में हुआ था। सिवनी जिला सतपुडा पर्वत श्रृखला पठार पर स्थित क्षेत्र है। सियोना वृक्ष जो ढोलक बनाने के काम आता है इससे सिवनी का नामकरण हुआ। सिवनी राष्ट्रीय राजमार्ग–7 पर स्थित है जो भारत को उत्तर से दक्षिण बनारस से कन्याकुमारी तक जिला को जोडती है। सिवनी जिला दक्षिण में महाराष्ट्र की सीमा से लगा हुआ है जो नागपुर को जोडती है। सिवनी जिला में पेंच राष्ट्रीय उद्यान जो टाइगर रिजर्व के अंतर्भाग में स्थित है। साथ ही संजय सरोवर बाध एशियां का मिटटी से बना सबसे बडा बाध है जो कृषि एवं पीने के पानी का बडा स्त्रोंत है। जिला की जनसंख्या लगभग 15 लाख के करीब है। जिला में 9 विकासखण्ड है जिनमें से 5 विकासखण्ड आदिवासी विकासखण्ड के अन्तर्गत है। सिवनी जिला में कृषि के अलावा जीवन यापन या रोजगार के लिए कोई प्रमुख व पर्याप्त ईकाई नहीं है इस कारण खाली समय में या परिवार के अतिरिक्त सदस्य नागपुर महाराष्ट्र में काम की तलाश व रोजगार के लिए पलायन करते है। यहां मक्का एवं गेहू का अच्छा उत्पादन के साथ दलहन व धान का उत्पादन भी पर्याप्त मात्र में होगा है। वन क्षेत्रों में उच्च किस्म की सागोन की लकड़ी व पेड़ के घनें वन है।

**बाल कल्याण समिति सिवनीः–** किशोर न्याय (बालको की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम 2015 के अन्तर्गत सिवनी जिला में बाल कल्याण समिति का गठन नियमानुसार मध्यप्रदेश शासन द्वारा किया गया है। जिसके गठन कि अधिसूचना मध्यप्रदेश शासन के असाधारण राजपत्र प्रकाशित दिनांक 07/04/2021 से तीन वर्ष के लिए कार्यकाल निर्धारित किया गया है। जिसमें समिति सदस्यों को शासन के नियमानुसार मानदेय दिया जाता है।

**वर्तमान में सिवनी जिला में धारा 27 के अधीन नियुक्त बाल कल्याण समिति के सदस्यों के नाम की सूचीः–**

**बाल कल्याण समिति का गठन–** राज्य सरकार इस अधिनियम की **धारा 27** के अधीन प्रत्येक जिले के लिए **बालकल्याण समिति** का गठन करेगी। समिति **एक अध्यक्ष और चार सदस्यों से मिलकर बनेगी**, जिनमें कम से कम एक महिला सदस्य होगी। किसी व्यक्ति को सदस्य के रूप में **तीन वर्ष** से अधिक अवधि के लिए नियुक्त नहीं किया जाएगा। बाल कल्याण समिति न्यायपीठ के रूप में कार्य करेगी और उसे दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) द्वारा, यथास्थिति, **महानगर मजिस्ट्रेट** या **प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट** को प्रदत्त शक्तियाँ प्राप्त होंगी। **(धारा 27(9)**

| क्रमांक | नाम | पद | पुरुष/महिला |
|---|---|---|---|
| 1. | श्री विनोद शुक्ला | अध्यक्ष | पुरुष |
| 2. | श्री शोभाराम डेहरिया | सदस्य | पुरुष |
| 3. | श्रीमती संध्या चंदेल | सदस्य | महिला |
| 4. | श्रीमती शशिबाला डेहरिया | सदस्य | महिला |
| 5. | श्री मुकेश कुमार सेन | सदस्य | पुरुष |

**धारा 29. समिति की शक्तियाँ–**(1) समिति को, देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमन्द बालकों की देखरेख, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास के मामलों का निपटारा करने और उनकी मूलभूत आवश्यकताओं तथा संरक्षण के लिए उपबन्ध करने का प्राधिकार होगा।

(2) जहां किसी क्षेत्र के लिए समिति का गठन किया गया है, वहां तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबन्धित है, उसके सिवाय, ऐसी समिति को, देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमन्द बालकों से सम्बन्धित इस अधिनियम के अधीन सभी कार्यवाहियों के सम्बन्ध में अनन्यतः कार्य करने की शक्ति होगी।

**30. समिति के कृत्य और उत्तरदायित्व**–समिति के कृत्यों और उत्तरदायित्वों में निम्नलिखित सम्मिलित होंगे,

(1) उसके समक्ष प्रस्तुत किए गए बालकों का संज्ञान और उन्हें ग्रहण करना

(2) इस अधिनियम के अधीन बालकों की सुरक्षा और भलाई से सम्बन्धित और उसको प्रभावित करने वाले सभी मुद्दों की जांच करना

(3) बालक कल्याण अधिकारियों या परिवीक्षा अधिकारियों या जिला बालक संरक्षण एक या गैर–सरकारी संगठनों को सामाजिक अन्वेषण करने और समिति के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निदेश देना

(4) देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमन्द बालकों की देखरेख करने हेतु योग्य व्यक्ति की घोषणा करने के लिए जांच करना

(5) पोषण देखरेख के लिए किसी बालक के स्थान का निदेश देना।

(6) बालक विशिष्ट देखरेख योजना पर आधारित देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमन्द बालकों की देखरेख, संरक्षण, समुचित पुनर्वास या प्रत्यावर्तन को सुनिश्चित करना और इस सम्बन्ध में माता–पिता या संरक्षक या योग्य व्यक्ति या बाल गृहों या सुविधा उपयुक्त तंत्र के लिए आवश्यक निर्देश पारित करना

(7) संस्थागत सहायता की अपेक्षा वाले प्रत्येक बालक के स्थान के लिए, बालक की आयु, लिंग, निर्योग्यता और आवश्यकताओं पर आधारित तथा संस्था की उपलब्ध क्षमता को ध्यान में रखते हुए रजिस्ट्रीकृत संस्था का चयन करना

(8) देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमन्द बालकों की आवासिक सुविधाओं का प्रत्येक मास में कम से कम दो बार निरीक्षण दौरा करना और जिला बालक संरक्षण एकक और राज्य सरकार को, सेवाओं की क्वालिटी में सुधार करने के लिए कार्रवाई करने की सिफारिश करना

(9) माता–पिता द्वारा अभ्यर्पण विलेख के निष्पादन को प्रमाणित करना और यह सुनिश्चित करना कि उन्हें विनिश्चय पर पुनःविचार करने और कुटुम्ब को एक साथ रखने हेतु सभी प्रयास करने का समय दिया गया है।

(10) यह सुनिश्चित करना कि ऐसी सम्यक् प्रक्रिया का, जो विहित की जाए, अनुसरण करते हुए परित्यक्त या खोए हुए बालकों का, उनके कुटुम्बों को प्रत्यावर्तन करने के लिए सभी प्रयास किए गए हैं

(11) ऐसे अनाथ, परित्यक्त और अभ्यर्पित बालक की घोषणा करना जो सम्यक् जांच के पश्चात् दत्तक ग्रहण के लिए वैध रूप से मुक्त है।

(12) मामलों का स्वप्रेरणा से संज्ञान लेना और ऐसे देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमन्द बालकों तक पंहुचाना, जिन्हें समिति के समक्ष पेश नहीं किया गया है, परन्तु ऐसा विनिश्चय कम से कम तीन सदस्यों द्वारा लिया गया हो

(13) लैंगिक रूप से दुर्व्यवहार से ग्रस्त ऐसे बालकों के पुनर्वास के लिए कार्रवाई करना जो लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 (2012 का 32) के अधीन, यथास्थिति, विशेष किशोर पुलिस एकक या स्थानीय पुलिस द्वारा समिति को, देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमन्द बालकों के रूप में ज्ञापित है

(14) धारा 17 की उपधारा (2) के अधीन बोर्ड द्वारा निर्दिष्ट मामलों में कार्रवाई करना

(15) जिला बालक संरक्षण एकक या राज्य सरकार के समर्थन से बालकों की देखरेख और संरक्षण में अन्तर्वलित पुलिस, श्रम विभाग और अभिकरणों के साथ समन्वय बनाना

(16) समिति, किसी बालक देखरेख संस्था में किसी बालक से दुर्व्यवहार की शिकायत के मामले में जांच करेगी और यथास्थिति, पुलिस या जिला बालक संरक्षण एकक या श्रम विभाग या बालबद्ध सेवाओं को निदेश देगी

(17) बालकों के लिए समुचित विधिक सेवाओं तक पहुंच बनाएगी और

(18) ऐसे अन्य कृत्य और उत्तरदायित्व, जो विहित किए जाए।

**31. समिति के समक्ष पेश किया जाना–**(1) देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमन्द किसी बालक को निम्नलिखित किसी व्यक्ति द्वारा समिति के समक्ष पेश किया जा सकेगा, अर्थात ––

(1) किसी पुलिस अधिकारी द्वारा या विशेष किशोर पुलिस एकक या पदाभिहित बालक कल्याण पुलिस के अधिकारी या जिला बालक कल्याण एकक के किसी अधिकारी या तत्समय प्रवृत्त किसी श्रम विधि के अधीन नियुक्त निरीक्षक द्वारा

(2) किसी लोक सेवक द्वारा

(3) ऐसी बालबद्ध सेवाओं या किसी स्वैच्छिक या गैर–सरकारी संगठन या किसी अभिकरण द्वारा, जिन्हें राज्य सरकार द्वारा मान्यता दी जाए

(4) बालक कल्याण अधिकारी या परिवीक्षा अधिकारी द्वारा

(5) किसी सामाजिक कार्यकर्ता या लोक भावना से युक्त नागरिक द्वारा

(6) स्वयं बालक द्वारा या

(7) किसी नर्स, डॉक्टर, परिचर्या गृह (नर्सिंग होम), अस्पताल या प्रसुति गृह के प्रबन्धक द्वारा

परन्तु बालक को समय नष्ट किए बिना, किन्तु चौबीस घण्टे की अवधि के भीतर यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर, समिति के समक्ष पेश किया जाएगा ।

**बाल कल्याण समिति के समक्ष प्रस्तुत प्रकरण एवं निराकरण वर्ष 2021–22 तकः–**

बाल कल्याण समिति जैसे कि, नाम से ही स्पष्ट है यह समिति बाल कल्याण एवं देखरेख व संरक्षण के लिए शासन द्वारा गठित समिति है जो बालकों के हित एवं कल्याण व सर्वागीण विकास, पुर्नावास आदि के लिए कार्य एवं अपनी शक्तियों का प्रयोग करती है। बाल कल्याण समिति के अध्ययन का उद्देश्य बाल संरक्षण को बढ़ावा मिलें एवं जनसमान्य तक बाल संरक्षण अधिनियम की जानकारी लोगों तक पहुचें एवं बाल अपराध पर रोक लगने के साथ ही बालकों को दुरुपयोग को रोकना व बालको के संर्वागीण विकास के समान अवसर पैदा हो सकें।

**बालक कौन है–** यहां पर अध्ययन कर्ता द्वारा बालक को परिभाषित किया जा रहां है कि, आखिर बालक कौन है? यह बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है। बाल कल्याण समिति के समक्ष भी जब कोई बालक जब भी प्रस्तुत होता है तो उसकी आयु का पता लगाया जाता है। बालकों को निम्नलिखित रुप से परिभाषित किया जा सकता है।

1. एक ऐसा मानव (व्यक्ति) जिसकी आयु 18 बर्ष से कम है बालक की श्रेणी में आता है।
2. मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी बाल्य अवस्था को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है।

1. पूर्व बाल्यावस्था – 0 से 06 वर्ष।
2. उत्तर बाल्यावास्था – 06–12 वर्ष।
3. किशोरावस्था – 12 से 18 वर्ष।

बाल कल्याण समिति के सदस्यों को बालकों के आयु समूह व उसके शारिरीक मानसिक परिवर्तनों की जानकारी होना जरुरी है जिससे कि, बालकों के देखरेख व संरक्षण में उचित निर्णय लेते समय आयु समूह को भी ध्यान रखा जा सके।

बाल कल्याण समिति के समक्ष प्रस्तुत प्रकरण में कुछ प्रकरण पुर्नावास, पोस्को पीडिता, एवं कोविड़ 19 से प्रभावित बच्चें, घर से भाग जाने वाले बच्चें प्रस्तुत हुए जिनमें से कुछ प्रकरण पुलिस द्वारा, कुल प्रकरण परिवार के सदस्यों या पालकों द्वारा, एवं कुछ प्रकरण **चाइल्ड लाइन 1098 के** माध्यम से प्राप्त हुए जिनकी समस्या का निराकरण एवं कुछ प्रकरणों का सूक्ष्म अध्ययन एवं प्रकरण बाल कल्याण समिति के समक्ष प्रचलन में है। एक वर्ष के दौरान बाल कल्याण सिवनी के समक्ष 95 के

लगभग प्रकरण पंजीकृत बाल कल्याण समिति ने संज्ञान में लिया। जिनमें से 89 करीब प्रकरण निराकृत कर दिया गया है। कोविड़ 19 एवं स्पांसरशिप से जुड़े मामलें भी है। कुछ प्रकरण समिति की देखरेख व संरक्षण में है। कुछ प्रकरणों से पीडित बालकों से जुड़े मामलें न्यायालय में विचाराधीन भी है। उसी प्रकार कोविड 19 से प्रभावित बच्चों के लिए योजना बनाने वाला भारत में पहला राज्य बना एवं बच्चों के जीवन यापन से लेकर पढाई के खर्च की पूरी जिम्मेंदारी सरकर ने उठाया। उसी प्रकार पीडित बच्चों को प्राइवेट स्पोन्सरशिप एवं कुछ बच्चों को कैलास सत्यार्थी फाउन्डेसन से भी स्पान्सरशिप सहायता राशि प्राप्त हो रहीं है।

**बाल कल्याण समिति के समक्ष प्रस्तुत प्रकरण :–**

| क्रमांक | प्रकरण का स्वारुप | संख्या | बालक | बालिका |
|---|---|---|---|---|
| 1. | घर से भाग जाना | 15 | 07 | 08 |
| 2. | दोस्त या प्रेम प्रसंग के चलते घर से चलें जाना या पुलिस द्वारा प्रस्तुत करना। | 12 | 02 | 10 |
| 3. | गर्भधारण होने की स्थिति में | 03 | 00 | 03 |
| 4. | परिवार/संरक्षक द्वारा त्याग देना। | 14 | 06 | 08 |
| 5. | कोविड़ 19 के चलते माता–पिता की मृत्यु होने पर वैद्य संरक्षक घोषित करना | 09 | 4 | 05 |
| 6. | स्पांसररशिप योजना का लाभ प्राप्त बालक करना। | 42 | 18 | 22 |
| 7. | पी.एम./सीएम केयर फण्ड/कोविड़ 19 योजना का लाभ | 07 | 03 | 04 |
| 8. | बाल विवाह से संबन्धित प्रकरण | 04 | 00 | 04 |
| 9. | चाइल्ड लाइन 1098 के माध्यम से प्रस्तुत | 16 | 07 | 09 |

**परिवार /करीबी रिस्तेदार में बालकों पुर्नावासः–**

बाल कल्याण समिति सिवनी के समक्ष किशोर बालक एवं बालिकाओं से संबन्धि कुछ ऐसे प्रकरण भी आए जिसमें परिवार द्वारा परिवारिक व सामाजिक कारणों से बालकों को घर में नहीं रखना चाहतें थे। ऐसे प्रकरणों में बालक/बालिका व परिवार के सदस्यों की काउसंलिग करके लगभग 23 बालक/बालिकाओं को परिवार में पुर्नावास कराया गया। एवं कुछ बालको के बैद्य संरक्षक घोषित कर करीबी रिस्तेदारों के यहां बालकों को रखा गया।

**अध्ययन के उपरान्त ध्यान रखने योग्य महत्व पूर्ण बिन्दूः–**

1. बाल कल्याण समिति बालकों के मामलें में बहुत शक्तिशाली एवं प्रभावशील है। साथ ही बाल संरक्षण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहीं है।
2. बाल कल्याण समिति की सहायता के लिए विशेष पुलिस ईकाई का गठन किया गया है।
3. चाइल्ड लाइन 1098 का बाल कल्याण समिति एवं बालकों के बीच पुल का कार्य करती है।
4. शासन द्वारा बालक/बालिकाओं को रखने के लिए विशेष बालक/बालिका/शिशु गृह स्थापित किए है।
5. बाल कल्याण समिति के संचालन में महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा हर संभव सहायता प्रदान की जाती है।
6. नव नियुक्ति योग्य एवं अनुभवी सदस्यों की नियुक्ति शासन द्वारा विशेष प्रक्रिया के माध्यम से किया जाता है।

**सुझावः–**

1. बाल कल्याण समिति के सदस्यों को जेजे एक्ट 2015 व नये संशोधनों का अध्ययन करते रहना चाहिए।
2. पास्को एक्ट 2012 एवं इससे संबंधिय नियम प्रवधानों को अध्ययन एवं जन मानस एवं किशोरों के बीच पार्याप्त प्रचार प्रसार किया जाना चाहिऍ।

3. चाइल्ड लाइन 1098 की जानकारी जनमानस में हो एवं प्रत्येक जिला में इसकी स्थापना हो।
4. बाल कल्याण समिति एवं संबंन्धित उपक्रमों के बीच प्रत्येक माह एक बैंठक अनिवार्य रुप से होना चाहिए।
5. विशेष किशोर पुलिस ईकाई एवं प्रत्येक थाना में पदस्थ बाल कल्याण पुलिस अधिकारियों को समय समय पर प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिए।
6. जिला अधिकारी एवं विभिन्न आवश्यक विभाग के अधिकारियों के साथ समय–समय पर अनिवार्य बैठक होती रहें।
7. बाल संरक्षण अधिनियम, पास्को एक्ट, श्रम अधिनियम, बाल विवाह अधिनियम, दत्तक ग्रहण अधिनियम की जानकारी बाल कल्याण समिति के सदस्यों को होना चाहिएँ एंव समय समय पर प्रशिक्षण।
8. बाल कल्याण समिति के सदस्यों के बीच आपसी समंजस्य अच्छा होना चाहिए।

**निष्कर्षः–** किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम 2015 के अन्तर्गत गठित समिति में एक अध्यक्ष एवं चार सदस्य है। बाल कल्याण समिति का कार्यकाल समाप्त होने की स्थिति में अन्य जिला की बाल कल्याण समिति को उक्त खाली जिला का प्रभार तब तक के लिए सौप दिया जाता है जब तक की वहां नई बाल कल्याण समिति की नियुक्ति न कर दिया जाएँ। हाल ही में सिवनी जिला की समिति को बालाघाट जिला का प्रभार दिया गया था। इस प्रकार बालकों की देखरेख एवं संरक्षण में बाल कल्याण समिति की बहुत अहम भूमिका है। बाल कल्याण समिति न्यायपीठ के रुप में कार्य करती है। समिति बाल कल्याण एवं हित में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका एवं दायित्व का निर्वान करती है। पद और प्रतिष्ठा से परे समाज सेवी एवं कुशल अनुभवी सदस्यों बालकों के कल्याण में सदैव तत्पर रहते है। सरकार द्वारा गठित चयन समिति द्वारा सदस्यों का चयन किया जाता है।

**सन्दर्भ :**

1. जी.आर मदन : समाज कार्य, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
2. बाजपेयी डॉ.एस.आर. : सामाजिक अनुसंधान तथा सर्वेक्षण,किताब घर–कानपुर–2007, पृ. .233.
3. देवेन्द्र बागड़ी : किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम 2015, इंडियन लॉ हाउस।
4. देवेन्द्र बागड़ी : लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम–2012, इंडियन लॉ हाउस।
5. मध्यप्रदेश राजपत्र (असाधारण), भोपाल दिनांक 07 अप्रैल 2021, मध्यप्रदेश शासन।
6. वृदा सिंह : बाल मनोविज्ञान।
7. ए.बी. भटनागर–एजुकेशनल साइकोलॉजी, आर .लाल बुक डिपों, 2003.

***

# ग्रामीण चिकित्सा-संस्कृति के बदलते प्रतिरूप : जनपद फिरोजाबाद (उ.प्र.) के विकास खण्ड मदनपुर के विशेष सन्दर्भ में

*डॉ. (श्रीमती) मधु यादव**

आधुनिक समय में ग्रामीणों में कई प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों का समावेश एवं मिश्रित अस्तित्व पाया जाता है। लोक चिकित्सा पद्धति (जिसके अन्तर्गत घरेलू चिकित्सा से लेकर जादुई धार्मिक चिकित्सा–जादू–टोना, पूजा–मनोती, झाड–फूक, नजर झड़वाना, गन्डा करवाना अर्थात् ओझाई इत्यादि) के अतिरिक्त यूनानी, आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक तथा एलोपैथी का मिला–जुला रूप देखने को मिलता है। उक्त पद्धतियों में चिकित्सा व स्वास्थ्य से सम्बन्धित अनुभवगत विचारों की एक परम्परागत व्यवस्था पायी जाती है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि लोक चिकित्सा पद्धति विविध विश्वासों का ढेर मात्र है। इन विश्वासों का सम्बन्ध उस विशिष्ट परम्परागत विश्व दृष्टि से है, जिसके द्वारा मनुष्य की प्रकृति तथा उसके भौतिक तथा अधिभोतिक परिवेश के विभिन्न तत्वों के अन्तःसम्बन्धों की प्रकृति आदि के विषय में दृष्टिकोण का निर्धारण होता है। इस लोक चिकित्सा के अन्तर्गत जहॉ एक ओर झाड़ फूक (ओझाई), जादुई पद्धति, कर्मकाण्ड, पूजा–पाठ और मनौती आदि की धार्मिक पद्धति है, तो दूसरी ओर घरेलू अनुभवजन्य दवाओं सम्बन्धी ज्ञान का एक विशाल भण्डार है, जिसका ज्ञान मानवीय समाज के अधिकांश सदस्यें को न्यूनाधिक मात्रा में होता ही है और जिसकी क्रियाशीलता सभी के लिए असंदिग्ध होती है। दर्द में चोट में, दस्त, आँख दुखना, पीलिया, चेचक (शीतला मां का निकलना), नजर लगना–लगभग सभी रोगों में घर और आस–पास मिलने वाली वनस्पतियों के बीज, फूल, फल, जड़, छाल और इनके विभिन्न प्रकार के संयोग भाँति–भाँति के रोगों के लिए नुस्खे इस लोक चिकित्सा के अन्तर्गत हर परिवार की सामाजिक, सांस्कृतिक विरासत ही नहीं होते अपितु उनके प्रति रूढ़िवादी व परंपरावादी दृष्टिकोण समाज के शिक्षित व अशिक्षित–दोनों ही वर्गो में व्यवहारिक रूप से देखने को आज मिलता है।

ग्रामीण समाज में घरेलू चिकित्सा पद्धति के अतिरिक्त आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति का भी पूरा अस्तित्व है। ग्रामीणों की लोक चिकित्सा के साथ उनमें व्याप्त अन्य विश्वासों के प्रति जानकारी प्राप्त करना भूगोल के अध्येताओं के लिए एक महत्वपूर्ण विषय है। आधुनिक विज्ञान और तत्सम्बन्धित प्रौद्योगिकी की प्रगति के रूप में आधुनिक चिकित्सा पद्धति ने ग्रामीण लोक चिकित्सा के पारम्परिक स्वरूप की विशेष रूप से प्रभावित किया है।

अध्ययन के उद्देश्य :–

यद्यपि चिकित्सा संस्कृति का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसके समस्त पक्षों का अनुभवजन्य अध्ययन करना कठिन ही नहीं बल्कि दुष्कर भी है। अतः अध्ययनार्थ चयनित उद्देश्य निम्नवत् है :–

1. ग्रामीणों में व्याप्त सामान्य रोगों के प्रति उत्तरदायी सामान्य कारणों को ज्ञात करना।
2. रोग मुक्ति के प्रयासों में भाँति–भाँति की धार्मिक अथवा जादुई पद्धति का ग्रामीण चिकित्सा के सम्बन्ध में ग्रामीणों की मनोवृत्तियों को केन्द्र बिन्दु मानकर उसमें हो रहे परिवर्तनों की जानकारी प्रापत कर समीक्षा करना।
3. वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित आधुनिक चिकित्सा पद्धति (ग्रामीण परिवारों के दरवाजों पर ही पहुॅचने वाले अयोग्य चिकित्सक के रूप में) के प्रति ग्रामीणों की मनोवृत्तियों एवं व्यवहार का अध्ययन करना।

उपर्युक्त समस्त उद्देश्यों को आयुगत, जातिगत व शिक्षागत परिस्थितियों के संदर्भ में विश्लेषित किया गया है। विभिन्न रोगों से ग्रस्त ग्रामीणों की अभिवृत्तियों एवं व्यवहार का अध्ययन करने हेतु रूग्णता के अनुबोध, तद्विषयक अनुभव जन्य अध्ययन, भौगोलिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने के लिए सर्वेक्षण कर्ताओं ने उत्तर प्रदेश के फिरोजाबाद जनपद के विकास खण्ड मदनपुर का चयन किया है। यह मध्य गंगा–यमुना दोआव में स्थित जनपद फिराजाबाद का ग्राम्य एवं कृषि प्रधान क्षेत्र है जिसका क्षेत्रफल 303.4 वर्ण किमी0 एवं जनसंख्या 1,44,606 (1901) है जो 11 न्याय पंचायतों एवं 111 राजस्व गॉवों में विस्तृत है।

रूग्णता के सामान्य कारकों का अनुबोध :

अध्ययन के उद्देश्यों की पृष्ठभूमि में ग्रामीण समाज में उत्तरदाताओं से प्राप्त विश्लेषित तथ्यों के आधार पर रूग्णता के सामान्य कारकों विषयक विचारों को तालिका 1 में प्रस्तुत किया गया है। रूग्णता के सामान्य कारकों के

* एसोसियेट प्राफेसर भूगोल विभाग, आदर्श कृष्ण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद)

अन्तर्गत उत्तरदाताओं द्वारा बताये गये सात मुख्य कारणों को सम्मिलित किया गया है। प्रथम तीन कारणों पर विश्वास उत्तरदाताओं का आधुनिक चिकित्सा विज्ञान अर्थ पूर्ण प्रभाव व वैज्ञानिक उन्मेष की ओर अन्तिम दो कारणों पर उनकी आस्था एवं परम्परावादिता को प्रमाणित करता है।

तालिका–1 विभिन्न कारकों के प्रति उत्तरदाताओं की मनोवृत्ति

| क्रमांक | सामान्य कारक | उत्तरदाताओं का अभिमत (प्रतिशत) | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | पूर्ण सहमत | आंशिक सहमत | असहमत | कह नहीं सकता | योग |
| 1. | पौष्टिक भोजन की कमी | 34 (56.67) | 7 (11.67) | 16 (26.67) | 3 (5.00) | 60 (100.00) |
| 2. | शरीर में रोगाणुओं का प्रवेश | 30 (65.00) | 5 (8.33) | 11 (33.00) | 5 (8.33) | 60 (100.00) |
| 3. | स्वच्छता का अभाव | 42 (70.00) | 3 (5.00) | 7 (11.67) | 8 (13.33) | 60 (100.00) |
| 4. | अशिक्षा | 27 (45.00) | 13 (21.67) | 17 (28.33) | 3 (5.00) | 60 (100.00) |
| 5. | क्षमता से अधिक श्रम करना | 21 (35.00) | 18 (30.00) | 7 (11.67) | 14 (23.33) | 60 (100.00) |
| 6. | पूर्व जन्म के बुरे कर्म | 34 (56.67) | 14 (23.33) | 12 (20.00) | 4 (6.67) | 60 (100.00) |

तालिका–1 के ऑकड़ों से स्पष्ट है कि 70.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वच्छता का अभाव, 65.00 प्रतिशत ने शरीर में रोगाणुओं का प्रवेश तथा 56.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पोष्टिक भोजन की कमी जैसे आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने समस्त कारणों में अपनी पूर्ण सहमति प्रकट की है। 45.00 प्रतिशत अशिक्षा तथा 35.00 प्रतिशत ने क्षमता से अधिक श्रम करने जैसे कारणों को भी उत्तरदायी बताया है। जबकि 50.00 प्रतिशत ने नजर लगना जैसे अधिभौतिक कारक में विश्वास होना स्वीकार किया है। साथ ही 43.33 प्रतिशत ने पूर्णतया, 18.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आंशिक रूप से इस बात पर भी विश्वास प्रकट किया कि अनेक रोगों के कारण व्यक्ति के पूर्व जन्म के बुरे कर्मो के परिणाम के रूप में देखना अत्यन्त व्यापक एवं पुरानी धारणा है। यह धारणा उस कर्म सिद्धान्त से जुड़ी हुई है, जो भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करने वाली एक केन्द्रीय अवधारणा है। यद्यपि वैज्ञानिक चिकित्सा के प्रभाववश व प्रसार के कारण अधिभौतिक कारणों के प्रति आस्था अवश्य अवमूल्यित हुई है, किन्तु इस संन्दर्भ में कुछ स्पष्ट नहीं कहा जा सकता क्योंकि रोगाणुाअें सम्बन्धी यह विशिष्ट धारणा भारतीय संस्कृति द्वारा अन्य को अपने में आत्मसात करने की पृत्ति की परिचायक है, जो ग्रामीण चिकित्सा में ढूढ़े जा सकते हैं।

रोगियों की सामाजिक पृष्ठभूमि :

रोग का सम्बन्ध व्यक्ति की जैविकीय–शारीरिक प्रकृति से होता है। बहुत से रोग शारीरिक कारकों के साथ–साथ संरचनात्मक कारणों से भी होते हैं। सामाजिक जीवन और वातावरण का उससे घनिष्ट सम्बन्ध होता है। व्यक्तित्व के आरम्भिक विकास के विभिन्न चरणें और जीवन में उसकी प्रतिक्रियाओं का बहुत दूर तक व्यक्ति के सामाजिक–सांस्कृतिक– प्राकृतिक वातावरण और पृष्ठभूमि के द्वारा विवेचन किया जा सकता है। जब तक रोगियों के संरचनात्मक कारणों की भूमिका को अच्छी तरह न समझ लिया जाये तब तक ऐसे रोगों का समुचित उपचार नहीं किया जा सकता। शोध पत्र के इस भाग में रोगियों की उम्र, लिंग, वैवाहिक स्थिति, जाति, शिक्षा व व्यवसाय (धन्धा) आदि मूलभूत विशेषताओं की जाँच किया गया है जिससे रोगी की सामाजिक परिस्थितियों को समझने में मदद मिल सके।

तालिका–2 निदर्शित रोगियों की सामाजिक पृष्ठभूमि आवृत्ति (प्रतिशत)

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. उम्र | 21–35 | | | 36–50 | | | 51 एवं उससे ऊपर | |
| | पुरूष | स्त्री | | पुरूष | स्त्री | | पुरूष | स्त्री |
| | 14(23.33) | 9(15.33) | | 11(18.33) | 8(13.33) | | 12(20.00) | 6(10.00) |
| 2. लिंग एवं वैवाहिक स्थिति | वैवाहिक | | | अविवाहित | | | – | |
| | पुरूष | स्त्री | | पुरूष | स्त्री | | – | – |
| | 19(31.67) | 30(50.00) | | 4(6.67) | 7(11.67) | | – | – |
| 3. जाति | उच्च | पिछड़ी | | अनुसूचित | – | | – | – |
| | 21(35.00) | 26(43.33) | | 13(21.67) | – | | – | – |
| 4. शिक्षा | अशिक्षित | | प्रा0से पूर्व मा0तक | | मा0 स्तर | | वि0वि0 | |
| | स्त्री 12 (20.00) | पुरूष 18 (30.00) | स्त्री 9 (15.00) | पुरूष 9 (15.00) | स्त्री 2 (3.33) | पुरूष 6 (10.00) | स्त्री 0 (00.00) | पुरूष 4 (6.67) |
| 5. धन्धा | खेती | मजदूरी | व्यापार | नौकरी | गृहणी | बेरोजगारी | विद्यार्थी | अन्य |
| | 16 (26.67) | 9 (15.00) | 2 (3.33) | 2 (3.33) | 22 (36.67) | 5 (8.33) | 3 (5.00) | 1 (1.67) |

तालिका–2 से स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मिलित सूचनादाताओं में से 23.33 प्रतिशत पुरूष व 15.00 प्रतिशत स्त्री सूचनादाता 21 से 35 वर्ष, 18.33 प्रतिशत पुरूष व 18.33 प्रतिशत स्त्री सूचनादाता 36 से 50 वर्ष और 20.00 प्रतिशत पुरूष व 10.00 प्रतिशत स्त्री सूचनादाता 51 वर्ष से ऊपर की आयु वर्ग के हैं। लिंग व वैवाहिक स्थिति के आधार पर 31. 67 प्रतिशत स्त्री व 50.00 प्रतिशत पुरूष सूचनादाता विवाहित तथा 6.67 प्रतिशत स्त्री व 11.67 प्रतिशत पुरूष सूचनादाता अविवाहित पाये गये। जाति के स्तर पर 35.00 प्रतिशत उच्च जाति के, 43.33 प्रतिशत पिछड़ी जाति के ओर 21.67 प्रतिशत सूचनादाता अनुसूचित जाति के हैं। शैक्षणिक स्तर के अनुसार 20.00 प्रतिशत स्त्री व 30.00 प्रतिशत पुरूष सूचनादाता अशिक्षित, 15.00 प्रतिशत स्त्री व 15.00 पुरूष सूचनादाता प्राथमिक से पूर्व माध्यमिक तक 3.33 प्रतिशत स्त्री व 10.00 प्रतिशत पुरूष सूचनादाता विश्वविद्यालय स्तर के हैं। रोगियों के सामाजिक वर्ग का विश्लेषण करने के लिए उनके धन्धों का अध्ययन किया जा सकता है। इस अध्ययन में यह पाया गया कि 26.67 प्रतिशत रोगियों का सम्बन्ध खेती से और 15.00 प्रतिशत रोगियों का सम्बन्धी मजदूरी से है। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि 23 (88.33 प्रतिशत) महिला रागियों में से 22 (36.67 प्रतिशत) पूरी तरह से ग्रहणियॉ थी। इनमें से 8.33 प्रतिशत रोगी बेरोजगार और 5.00 प्रतिशत रोगी छात्र थे जबकि व्यापार व नौकरी करने वाले नगण्य थे।

लोक चिकित्सा पद्धति की अक्षुणता :

तालिका–3 से पारम्परिक जादुई एवं धार्मिक चिकित्सा के विभिन्न प्रविधियों का आयुगत, जातिगत व शिक्षागत परिस्थितियों के आधार पर ग्राम्य स्तर पर प्रचलन को देखने पर वर्तमान स्थिति का संकेत मिलता है। तालिका से स्पष्ट है कि आज भी रूढिवादी, पारम्परिक, जादुई, धार्मिक चिकित्सा प्रविधियें का प्रचलन सभी ग्रामीण घरों में प्रायः न्यूनाधिक मात्रा में देखने को मिलता है। साथ ही इसका प्रयोग भौतिक प्रविधियों की भॉति अत्यन्त सहज माना जाता है। कम शिक्षित लोग उदाहरण के लिए इधर पीलिया की डाक्टरी दवा भी खायेंगे और उधर पीलिया के लिये ओझाई व टोना भी करते तथा झड़वाते भी हैं। इसी प्रकार पागल कुत्ते के काटने पर झाड़–फूंक भी करवायेंगे और एन्टीरैविक टीका भी लगवायेंगे। चेचक से बचने के लिए चेचक का टीका भी लगवायेंगे परन्तु टीके के दानों को माता मानकर सातवें दिन

माता की पेजा के कर्मकाण्ड भी सम्पादित करेंगे। हाँ, यह बात अवश्य है कि अपेक्षाकृत उच्च जातियों में उनकी उच्च शिक्षा के अधिक प्रभावश अन्य जातियों की तुलना में इन अधिभौतिक प्रविधियों के अनुसरण में अपेक्षाकृत कमी पायी जाती है। जिस उक्त तालिका में ओझाई व जादू टोनों के सम्बन्ध में इनके अनुसरण में दृष्टिगत शिक्षकीय व जातिगत भिन्नताओं की सांख्यकीय सार्थकता में देखा जा सकता है, परन्तु समय रूप में इन विरोधी धारणाओं एवं प्रविधियों का सह अस्तित्व भी इस ग्रामीण क्षेत्र में बना हुआ है।

तालिका–3

निदर्शितों के परिवारों में व्याप्त जादुई–धार्मिक प्रविधियों के प्रति दृष्टिकोण (प्रतिशत सहमति)

| आयु | जादू टोना, पूजा, मनौती | झाड़–फूक | न्जर झड़वाना | गड़ा करवाना (ओझाई) |
|---|---|---|---|---|
| 21–35 | 69.57 | 78.26 | 91.30 | 34.78 |
| 36–50 | 39.47 | 100.00 | 100.00 | 68.12 |
| 51 से ऊपर | 83.33 | 88.89 | 100.00 | 94.44 |
| जाति | जादू टोना, पूजा, मनौती | झाड़–फूक | न्जर झड़वाना | गड़ा करवाना (ओझाई) |
| उच्च | 71.43 | 85.71 | 90.48 | 28.57 |
| पिछड़ी | 84.62 | 84.62 | 100.00 | 76.92 |
| अनुसूचित | 84.62 | 100.00 | 100.00 | 92.31 |
| शिक्षा | जादू टोना, पूजा, मनौती | झाड़–फूक | न्जर झड़वाना | गड़ा करवाना (ओझाई) |
| अशिक्षित | 93.33 | 100.00 | 100.00 | 80.00 |
| प्रा0से पूर्व मा0 | 83.33 | 94.44 | 100.00 | 61.11 |
| माध्यमिक | 50.00 | 62.50 | 87.50 | 25.00 |
| विश्वविद्यालय | 25.00 | 25.00 | 75.00 | 25.00 |

आधुनिक ग्रामीण चिकित्सा पद्धति का स्वरूप :

उपरोक्त उद्देश्य से जानकारी प्राप्त करने के लिये सर्वेक्षणकर्ताओं ने चयनित रोगियों से डिग्री धारी तथा बिना डिग्रीधारी (थैला छाप) चिकित्सकों का सामान्य रूप से व्याप्त विभिन्न रागों के सन्दर्भ में तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने का प्रयास किया है। ग्रामीणों को ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों तथा डिस्पेंसरियों में चिकित्सक उपलब्ध न होने के कारण अथवा क्षेत्र में उपलब्ध अन्य डिग्रीधारी चिकित्सक पर ही प्रायः आश्रित रहना पड़ता है जिसके विभिन्न कारण निम्न हैं :–

(1) अशिक्षा के कारण अयोग्य चिकित्सक को ही योग्य समझना एवं रोगी की गम्भीर स्थिति को न समझ पाना, (2) आर्थिक स्थिति कमजोर होना जिसके कारण शहर जाकर उपचार न कराने में समय व धन को अपव्यय समझना तथा (3) कार्य में व्यस्तता और आवागमन के साधनां का अभाव इत्यादि कारणों से वे अयोग्य चिकित्सकों से उपचार कराना पसन्द करते हैं किन्तु रोगी सूचनादाताओं का अयोग्य चिकित्सकों के सम्बन्ध में अभिमत उचितनहीं है क्योंकि अयोग्यता परक उपचार के कारण मरीजों को क्रानिक स्तर में पहुॅचने पर पुनः उचित उपचार हेतु शहरी योग्यताधारी चिकित्सकों से उपचार कराने में काफी समय व धन व्यय करना पड़ता है। कुछ रोगी उत्तरदाताओं ने यह भी स्वीकार किया कि कभी कभी तो उचित उपचार के अभाव में जीवन का अन्त भी हो जाता है। स्पष्टतः अयोग्य चिकित्सकों के प्रति ग्रामों की मनोवृत्ति अच्छी नहीं है। यह पूछे जाने पर कि फिर आप ऐसे अयोग्य चिकित्सकों से उपचार क्यों कराते हैं, तो उपरोक्त वर्णित कारणों के प्रति सकारात्मक उत्तर प्राप्त हुए हैं।

उपरोक्त तथ्य संकलित करने के उपरान्त सर्वेक्षणकर्ताओं ने बिना डिग्रीधारी चिकित्सकों के विभिन्न रोगों में प्रयुक्त उनकी उपचार विधियों के सन्दर्भ में गहन जानकारी करने के लिए अयोग्य चिकित्सकों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर तथ्य संकलित किये गये जिनको लेकर सर्वेक्षणकर्ता डिग्रीधारी चिकित्सकों से मिले और उनहीं संकलित

तथ्यों के ऊपर विभिन्न रोगों के सम्बन्ध में दी जाने वाली दवा, ताकत, मात्रा तथा अवधि के आधार ज्ञात किये। दोनों ही प्रकार के चिकित्सकों से प्राप्त तथ्यों के तुलनात्मक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अयोग्य चिकित्सकों को विभिन्न रोगों में दी जाने वाली दवाइयों के समूह तथा साथ में दी जाने वाली अन्य दवाओं व विटामिन आदि के सम्बन्ध में किसी प्रकार का ज्ञान नहीं है। वे दी जाने वाली दवा की ताकत व मात्रा एवं अवधि के सम्बन्ध में भी स्पष्ट जानकारी नहीं रखते। विभिन्न रोगों से सम्बन्धित प्राप्त तथ्यें पर सर्वेक्षणकर्ताओं ने चिकित्सकों से प्राप्त टिप्पणियों का विश्लेषण कर जो निष्कर्ष प्राप्त किये हैं वे निम्न हैं :–

1. मलेरिया में अयोग्य चिकित्सक द्वारा दी गयी क्लोरीन की मात्रा यदि अधिक है, तो रोगी को पैप्टिक अल्सर्स अथवा डीहाइड्रेशन हो सकता है यदि मात्रा कम है, तो मलेरिया रेजिस्टेन्स हो जाता है जिसको ठीक होने में काफी समय लगता है।
2. टाइफाइड व पैराटाइफाइड का अयोग्य चिकित्सक सही डाइगनोसिस न कर पाने व उचित ज्ञान न होने पर भी रोगी को गलत रूप से दवाइयॉ देते हैं। वे मोतीझला (शीतला माता) का बहाना देकर बीमारी को इतना फानिक कर देते हैं कि रोगी मैनिनजाइटिंस (मस्तिष्क की बीमारी) की स्थिति में आ जाता है जो एक गम्भीर व जान लेवा रोग है।
3. खांसी में अयोग्य चिकित्सक चाहे दमा ही हो, क्षय की हो तथा स्नोफीलिया अथवा साधारण खॉसी हो, रोगी को एक ही दवा देते रहते हैं जिसके कारण रोगी का कफ फेंफड़ों में ही सूख जाता है, जिसके परिणामस्वरूप भविष्य में रोगी को तपैदिक (क्षय), बोकाइटिस (श्वासनली का रोग) व दमा इत्यादि होकर गम्भीर रूप धारण कर लेता है।
4. पीलिया यकृत की बीमारी है, जिसके सम्बन्ध में अयोग्य चिकित्सकों को ज्ञान न होने पर भी देहाती दवाओं को देकर रोगी को क्रोनिक स्तर में पहुॅचा देते हैं जिनके परिणाम स्वरूप उसका बचना मुश्किल हो जाता है।
5. दस्त में अयोग्य चिकित्सक दवा के साथ एनजाइन नहीं देते जिसके कारण मरीज का पेट फूल जाता है, इनको दस्त में दवा क्लोरोडाइन समूह का ज्ञान नहीं होता।
6. उल्टियाँ अधिक मात्रा में होने पर अयोग्य चिकित्सक बन्द करने के लिए एक के बाद एक दवा देते रहते हैं जिससे रोगी को डीहाड्रेशन हो जाता है। ऐसी स्थिति में रोगी का दिल संकुचित हो जाये तो वह मर भी सकता है जबकि इस स्थिति पर नियन्त्रण के लिये तुरन्त रोगी को डोक्स्ट्रोज (ग्लूकोज) चढ़ाया जाना चाहिए। अयोग्य चिकित्सकों को डोक्स्ट्रोज द्वारा नियन्त्रण की जानकारी नहीं होती है।
7. निमोनिया में अयोग्य चिकित्सक द्वारा अधिक मात्रा में दबा देने से बोकाइटिस (श्वास नली में होने वाली बीमारी) हो सकती है।
8. सामान्य पेट दर्द में अयोग्य चिकित्सक द्वारा अधिक मात्रा में स्पाज्मोडिक देने पर रोगी का पेट फूल सकता है तथा कभी–कभी आँत फटने का भी भय रहता है।
9. सिर दर्द में अयोग्य चिकित्सक सस्ती दवाओं को देते हैं जिसका दिल पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता।

उपरोक्त निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त आधुनिक चिकित्सा पद्धति का स्वरू (स्वतः घरों पर ही पहुॅचने वाले अयोग्य चिकित्सक के रूप में) अशिक्षित ग्रामीणों के लिए न केवल घातक ही है बल्कि मानवीय दृष्टिकोण से असहनीय भी है। ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों व डिस्पेंसरियों में जहॉ चिकित्सक की नियुक्ति थि जो चिकित्सक प्रतिदिन ड्यूटी पर नहीं आते उनके विरूद्ध सख्त विभागीय कार्यवाही की जाये। साथ ही सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों में नियुक्त चिकित्सकों को सरकारी आवास व आवागमन के साधन उपलब्ध कराने चाहिए तथा ग्रामीण चिकित्सीय सेवा भत्ता देकर उन्हें अपने कर्तव्य के पूर्ण पालन के लिए उत्साहित करें। ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत ग्रामीण स्वास्थ्यकर्ताओं को अयोग्यताधारी चिकित्सकां से होने वाली खतरनाक बीमारियों एवं जान के खतरे से अवगत कराना चाहिए। ग्रामीण शिक्षितों एवं समझदार बुजुर्गों को इस दिशा में कारगर प्रयास करने होंगे।

परहेज की अवधारणा :

रोगी के सामान्य कारणों के अनुबोध एवं विभिन्न रोगों में ग्रामीण घरों में जादुई धार्मिक प्रविधियों के प्रचलन की परीक्षा करने एवं आुनिक चिकित्सा पद्धति के स्वरूप के अध्ययन के पश्चात अब हम चिकित्सा संस्कृति के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं पारम्परिक पक्ष परहेज व परिस्थितियों के दृष्टिकोण का अध्ययन करेंगे। परहेज की अवधारणा का आशय व तातर्य दवा खाने तथा चिकित्सा के आदेशों के पालन के अतिरिक्त उन नियमों एवं आचारों के पालन करने में निहित है,

जिनकी प्रकृति धार्मिक एवं अध्यात्मिक अथवा भौतिक किसी भी प्रकार की हो सकती है। इसका सम्बन्ध रोगों के उद्‌भव से लेकर उसके निराकरण आदि सभी पक्षों से होता है, जो पूर्णरूपेण विश्वास का पक्ष है।

तालिका–4 में उत्तरदाताओं के विचारों को आयु, जाति एवं शिक्षा स्तर के सम्बन्ध में स्पष्ट किया गया है–

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 1– | आयु (वर्ष) | 21–35 | 36–50 | 51 से ऊपर |
| | दवा | 20.00 | 11.67 | 3.33 |
| | परहेज | 18.33 | 20.00 | 26.67 |
| 2– | जति | उच्च | पिछड़ी | अनुसूचित |
| | दवा | 10.00 | 18.33 | 6.67 |
| | परहेज | 25.00 | 25.00 | 15.00 |
| 3– | शिक्षा | अशिक्षित | प्रा0माप्र0 | विद्यालय |
| | दवा | 15.00 | 16.67 | 3.33 |
| | परहेज | 35.00 | 26.66 | 3.33 |

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि 65.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं की दृष्टि में रोगों से मुक्ति पाने में परहेज की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके विपरीत दया की अधिक महत्व देने वालों को महत्व देने वाले उत्तरदाताओं के प्रतिशत 50.00 से कुछ अधिक हैं किन्तु इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं की शैक्षणिक परिस्थिति का उनके दृष्टिकोण पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है क्यों कि वहीं एक ओर अशिक्षित उत्तरदाताओं में से 35.00 प्रतिशत लोग परहेज को अधिक महत्व देते हैं वहीं माध्यमिक व पूर्व माध्यमिक स्तर के शिक्षित उत्तरदाताओं का यह प्रतिशत घटकर क्रमशः 8.33 व 3.33 पाया गया है। फिर भी, महत्वपूर्ण बात यह है कि उक्त आकलन हमारा ध्यान इस ओर आकृष्ट करता है कि ग्रामीण उत्तरदाता की दृष्टि में आज भी दवा की तुलना में पारस्परिक परहेजों की रोगों के निवारण में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है। हाँ, इतना अवश्य है कि शिक्षा के स्तर में वृद्धि के साथ–साथ परहेज को अधिक महत्वपूर्ण समझने वालों की संख्या में क्रमशः कमी दृष्टिगोचर है।

निष्कर्ष –

इस प्रकार हम देखते हैं कि ग्रामीण चिकित्सा संस्कृति की परिवर्तनीय पृष्ठभूमि में अपनी एक विशिष्टता है। आधुनिकीकरण एवं आधुनिक चिकित्सा पद्धति के प्रभावों में परिवर्तन की प्रक्रिया गतिशील अवश्य है किन्तु परिवर्तनों का स्वरूप एक नवीन एवं भिन्न प्रकार का है। इन्हें हम उन क्रान्तिकारी परिवर्तनों की श्रेणी में नहीं रख सकते। ग्रामीण चिकित्सा पद्धति के समावेश के साथ–साथ परम्परा में भी परिवर्तन होने लगे हैं। स्पष्टतः ग्रामीण चिकित्सा संस्कृति के तत्वों ने प्रभाव अवश्य डाला है। परन्तु इसके साथ ही ग्रामीणों में पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियों एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी परम्परागत अवधारणाओं व इनसे सम्बद्ध विश्वासगत कारणों का अस्तित्व वर्तमान में भी विद्यमान है। आधुनिक चिकित्सा के अनेक तत्वों एवं अवधारणाओं को ग्रामीण चिकित्सा संस्कृति में अपने अनुरूप नये अर्थ एवं नवीन व्याख्यायें प्रदान कर उपचार अभियोजन करने का प्रयास किया है हमें परम्परागत विश्वासों एवं प्रविधियों का विस्थापन ही नहीं अपितु परम्पराओं की ही आधुनिकीकरण की प्रक्रिया उक्त संस्कृति में स्पष्ट परिलक्षित होती है।

***

# नारदीय पुराण में कर्मकाण्ड विवेचन

*ज्योतिषबरण राय* *

वेदों के सभी भाष्यकार इस बात से सहमत हैं कि चारों वेदों में प्रधानतः तीन विषयों कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड एवं उपासना कांड का प्रतिपादन है। कर्मकाण्ड अर्थात् यज्ञकर्म वह है जिससे यजमान को इस लोक में अभीष्ट फल की प्राप्ति हो और मरने पर यथेष्ट फल मिले। यजुर्वेद के प्रथम से उन्तालीसवें अध्याय तक यज्ञों का ही वर्णन है। अन्तिम अध्याय (40वाँ) इस वेद का उपसंहार है जो 'ईशावास्योपनिषद्' कहलाता है। वेद का अधिकांश कर्मकाण्ड एवं उपासना से परिपूर्ण है, शेष अल्प ही ज्ञानकाण्ड है। कर्मकाण्ड कनिष्ठ अधिकारी के लिए है। पूर्वमीमांसाशास्त्र कर्मकाण्ड का प्रतिपादक है। इसका नाम 'पूर्वमीमांसा' शास्त्र इसलिए पड़ा कि कर्मकाण्ड मनुष्य का प्रथम धर्म है, ज्ञानकाण्ड का अधिकार उसके उपरांत आता है। पूर्व आचरणीय कर्मकाण्ड से सम्बन्धित होने के कारण इसे पूर्व मीमांसा कहते हैं। ज्ञानकाण्डविषयक मीमांसा का दूसरा पक्ष 'उत्तर मीमांसा' अथवा वेदान्त कहलाता है।[1] भारत में कर्मकाण्ड की प्राचीन परम्परा है। वैदिक काल से लेकर लौकिक संस्कृत काल में भी यज्ञ की प्रधानता बतायी गयी है। ''द्वापरे यज्ञमेवाहुः' इस पाराशरीय वचन से भी प्रतीत होता है कि यज्ञ भारतीय संस्कृति की एक धरोहर है। महाकवि भास ने भी कर्ण के मुख से कहलाया है कि इक्ष्वाकु, शर्याति, ययाति, भगवान् राम, मान्धाता, नाभाग, नृग तथा अम्बरीष इन सभी नृप गणों के धनकोश तथा राज्य इनके शरीर के साथ ही नष्ट हो गये, केवल क्रतु (यज्ञ) रूपी शरीरों से ही अद्यावधि विद्यमान हैं।[2] भास का विश्वास था कि यज्ञादि कर्मों से उन्नति होती है। तात्पर्य है कि स्व-अनुष्ठित यज्ञों से ही लोग अमर रहते हैं। पंचरात्र में शकुनि ने दुर्योधन से निरन्तर यज्ञ करते रहने का निर्देश दिया है। उन यज्ञों में बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ देते रहो, अन्त में राजसूय यज्ञ करके जरासन्ध की तरह सभी नृपतियों को बन्दी बना लो।[3] कर्ण भी दुर्योधन से कहता है कि उसका शरीर यज्ञ में किये गये व्रतों से अतिकृश हो रहा है- ''क्रतुव्रतैस्ते तनुगात्रमेतत्।।'' 7वीं शताब्दी में बाणभट्ट के समय भी यज्ञ का बड़ा महत्त्व था। उन्होंने लिखा है कि उनके पूर्वज अर्थपति ने असंख्य यज्ञों को सम्पन्न कर बिना प्रयास के ही स्वर्ग को जीत लिया था।[4] राजा शूद्रक यज्ञों के कर्ता थे- ''आहर्ता क्रतूनाम्'' (वहीं)। उन्होंने फिर कहा है कि राजा शूद्रक के राज्य में लोगों की आँखों से आँसू तो गिरते थे किन्तु निरन्तर यज्ञाग्नि के धुँओं से आँखों से अश्रु गिरते थे- ''अनवरत मरवाग्निधूमेनाश्रुपातः''[5]। राजा का शासन ही ऐसा था कि अन्य समय किसी प्रकार के दुःख नहीं रहने के कारण अश्रुपात का प्रश्न ही नही उठता था। पूर्व कथित है कि यज्ञ इहलोक तथा परलोक दोनों को तार देता है। ब्राह्मणग्रन्थों तथा श्रौतसूत्रों में यज्ञविधि का बहुत विस्तार हुआ है। दृश्य और अदृश्य दोनों का मार्ग प्रशस्त करने वाला यज्ञ ही है। यज्ञ सृष्टि के आदि से चला जा रहा है। सृष्टि की उत्पत्ति यज्ञ का फल कही जाती है, जिसे ब्राह्मण ने किया था। इस तरह यज्ञ भारतीय संस्कृति का जाना पहचाना वैशिष्ट्य है।

कर्मकाण्ड और धर्मशास्त्र के बीच बड़ा निकट सम्बन्ध है। ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं, भारतीय संस्कृति में अश्वमेध की बड़ी परिपाटी रही है। बहुत बड़ा फलदायक होने के कारण अन्य धार्मिक कार्यफलों को भी अश्वमेध से जोड़ दिया जाता है, यथा गंगामाहात्म्य को देवालय और नदी किनारे पढ़ने से अश्वमेध का फल मिलता है।[6] कहा जाता है कि जन्म लेते हुए मनुष्य तीन प्रकार के ऋणों से युक्त हो जाता है, ये ऋण हैं- देवयज्ञ, ऋषियज्ञ और पितृयज्ञ। ये तीनों यज्ञ दैनन्दिन कर्म के रूप में प्रसिद्ध महायज्ञ के रूप में प्रसिद्ध है। मनु के अनुसार ये यज्ञ प्रतिदिन करने चाहिए। बलिकर्म के बाद स्वधाकार पितृयज्ञ है, उसमें गया-श्राद्ध भी है। हिन्दूधर्मशास्त्र के अनुसार सन्ध्यावन्दनानन्तर देवर्षि पितृतर्पण का

* शोध छात्र, विश्वविद्यालय संस्कृति विभाग, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

विधान है, जो नित्यकर्म है– ''एते महायज्ञा अहरहः कर्तव्याः। कर्मकाण्ड और धर्मशास्त्र का सिद्धान्त है कि सन्ध्यावन्दन से विहीन व्यक्ति अपवित्र होता है और वह सभी कर्मों के लिए अयोग्य है– ''सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।।''

मनु का भी कहना है कि जो द्विज त्रिकाल सन्ध्या नहीं करता है, वह द्विज के सभी कर्मों से बहिष्कृत करने योग्य है–

**''नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्।**
**स साधुभिर्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः।।**[7]

नारदीय पुराण में भी सन्ध्योपासन–महिमा का वर्णन है। इस पुराण में समय प्राप्त होने पर भगवान् शंकर के द्वारा सन्ध्योपासन करने का विधान है। सन्ध्योपासन में भगवान् सूर्य की स्तुति की जाती है, जो प्रत्यक्ष देवता के रूप में जाने जाते हैं। सूर्य देवता के रूप में प्रतिष्ठित है, इसी सूर्य की देवाधिदेव शंकर क्यों उपासना करते हैं? भगवान् विष्णु ने महादेव के सामने ऐसी जिज्ञासा प्रकट की है कि सभी देवताओं के द्वारा जिनको नमस्कार किया जाता है, सभी यज्ञों में जिनको आहुति चढ़ायी जाती है, वे क्यों जपादि का अनुष्ठान करेंगे? सभी देवता अंजलिबद्ध होकर आप शंकर की ही आराधना करते हैं, ऐसे शंकर किनके लिए अपना हाथ पसारेंगे। देवताओं को जो नमस्कार करते हैं और उनकी पूजा करते हैं, इसका फलविधान शंकर ही करते हैं, ऐसे देवाधिदेव को फल कौन देंगे और कौन देवता आपसे अधिक हैं–

**''सर्वैर्नमस्यते यस्तु सर्वैरेव समर्च्यते।**
**हूयते सर्वयज्ञेषु स भवान् किं जपिष्यति।।**
**रचिता×जलयः सर्वे त्वामेवैकमुपासते।**
**स भवान् देवदेवेशः कस्मै विरचिता×जलिः।**
**नमस्कारादिपुण्यानां फलदस्त्वं महेश्वर**
**तव कः फलदो वन्द्यः को वा त्वत्तोऽधिकः वद।।''**[8]

भगवान् विष्णु के प्रश्न का महादेव ने बड़ा ही सुन्दर उत्तर दिया है। उन्होंने कहा– हे गोविन्द! मैं किसी का ध्यान नहीं करता न किसी को प्रणाम करता हूँ; किन्तु, नास्तिकजनों की इस कर्म में प्रवृत्ति हो, इसीलिए मैं ये सब कर्म करता हूँ–

**''ध्याये न किंचिद्गोविन्द नमस्येह न किंचन**
**किन्तु नास्तिकजनानां प्रवृत्यर्थमिदं मया।**
**तस्माल्लोकोपकारार्थमिदं सर्वं कृतं मया।।''**[9]

बहुत ठीक, ऐसा कहकर और भगवान् शंकर को प्रणाम कर वे गौतम के घर गये। देवर्षियों के साथ सभी ने शंकर की पूजा की। इस तरह कर्मकाण्डान्तर्गत प्रथम कल्प सन्ध्यावन्दन के माहात्म्य को हम सहज रूप से समझ सकते हैं। इस 73वें अध्याय में हनुमान् का चरितवर्णन है। 80वें अध्याय में सकल अभीष्ट सिद्धिप्रद पूजा विधानपूर्वक श्रीकृष्ण की आराधना की कथा बतायी गयी है। इसी तरह आगे सभी देवी देवताओं की स्तुति की गयी है। पूर्व भाग के 110 वें अध्याय से प्रतिपदा से सभी तिथियों के व्रतों का विधान प्रस्तुत किया गया है।

नारदीय पुराण के उत्तरभाग में गंगास्नान के माहात्म्य का वर्णन है। इसी तरह 45वें अध्याय से गयाश्राद्ध का वर्णन है। काशी क्षेत्र में विद्यमान शिवलिंगों की आराधना का फल भी यहाँ वर्णित है। भारत की सभी दिशाओं में विद्यमान देवी देवताओं तथा तीर्थों की महत्ता का वर्णन भी इस उत्तरभाग में वर्णित है। कर्मकाण्ड और अध्यात्मक्षेत्र के विषय में इस पुराण में पर्याप्त जानकारी दी गयी है। कर्मकाण्ड के विषय में भी नारदीय पुराण में अनेक बातें कहीं गयी हैं। धर्मशास्त्र ग्रन्थों के समान ही नारदीय पुराण में यज्ञों का वर्णन किया गया है। यज्ञ केवल अग्नि में होम से ही सम्बद्ध नहीं है, अन्यथा पंचमहायज्ञों की परिकल्पना ही नहीं होती। नारदीय पुराण का मन्तव्य है कि पंचमहायज्ञों का अनुष्ठान होना ही चाहिए। किन्तु इन यज्ञों के पूर्व (गोपी चन्दन) ऊर्ध्व पुण्ड आवश्यक है, अन्यथा यज्ञ का कोई फल ही नहीं मिलेगा।[10] यहाँ कहा गया है कि ऊर्ध्वपुण्ड तथा तुलसीदल को कुछ लोग श्राद्ध में विहित नहीं मानते। ''ऊर्ध्वपुण्डं च तुलसीं श्राद्धे नेच्छन्ति केचन। नारीदय पुराण 27/44। किन्तु, मिथिला में ऊर्ध्वपुण्ड की श्राद्ध में महती आवश्यकता है और श्राद्धकाल में गंगा से लायी हुई मिट्टी (गंगौट) से ऊर्ध्वपुण्ड किया जाता है। इसके पश्चात् ही वेदविहित कर्म किये जाएँगे। वेदाध्ययन के लिए धर्मशास्त्र के

समान ही कर्मकाण्ड में करणीय है। वेदाध्ययन के बिना नित्य, नैमित्तिक, काम्यादि कर्म निष्पफल हो जाते हैं।[11] वेदाध्ययन के अतिरिक्त अन्यत्र परिश्रम करना वृथा है। जो अन्यत्र परिश्रम करता है, उसको नरक मिलता है।[12]

पंचमहायज्ञ के पक्ष में नारदीय पुराण दृढ़तो खड़ा है। पुराण का कहना है कि अन्नादि ब्राह्मण पितरों के उद्देश्य से तर्पण करें। पंचमहायज्ञों को नहीं करने वाला ब्रह्महत्या का भागी होता है। इसलिए प्रतिदिन इन यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिये। याज्ञवल्क्य स्मृति से कुछ पृथक् यहाँ पंचमहायज्ञों का नामकरण किया गया है[13] देवयज्ञादि सम्पन्न होने के बाद ही मित्र भृत्यादि के साथ चुपचाप भोजन करना चाहिये। पितृयज्ञ के क्रम में श्राद्ध आता है। श्रद्धापूर्वक प्रेत एवं पितरों के उद्देश्य से भोजनादि जो कुछ दान किया जाता, वही श्राद्ध कहलाता है। श्राद्ध में एक दिन पहले निमन्त्रण देने की व्यवस्था है। श्राद्ध के दिन प्रातःकाल उठकर प्रातःकृत्य समाप्त कर कुतप संज्ञक वेला में श्राद्ध करना चाहिये–

**''ततः प्रातः समुत्थाय प्रातःकृत्यं समाप्य च।**
**श्राद्धं समाचारेद्विद्वान् काले कुतपसंज्ञिते।।'' 28/21**

दिन के आठवें भाग में जब सूर्य की गति कुछ मन्द होती है, तो पितर के निमित्त श्राद्ध में किया हुआ दान अक्षय होता है–

**''दिवसस्याष्टमे काले यदा मन्दायते रविः।**
**स कालः कुतपस्तत्र पितृणां दत्त भक्ष्यम्।। 28/22**

विधाता ने पितरों के लिये अपराह्ण काल को प्रशस्त माना है। पितरों के निमित्त जो कव्य (श्राद्धान्न) विहित समय में दान नहीं किया जाता, तो ऐसा दान राक्षसी कहलाता और पितरों को प्राप्त नहीं होता–

**''यत्कव्यं दीयते द्रव्यैरकाले मुनिसत्तम।**
**राक्षसं तद्धि विज्ञेयं पितृणां नोपतिष्ठति।।**[14]

यहाँ तक कहा गया है कि अकाल में श्राद्ध करने से दाता और भोक्ता दोनों नरक जाते हैं। श्लोक 25।।

इस अध्याय में श्राद्धमन्त्र का विनियोग भी बताया गया है। क्षयतिथि के निर्धारण के सम्बन्ध में बताया गया है कि यदि दो अपराह्ण में क्षय तिथि पड़ती हो तो पूर्व तिथि में श्राद्ध होना चाहिये–

**''क्षयाहस्य तिथिर्या तु ह्यपराह्णद्वये यदि।**
**पूर्वा क्षेया तु कर्त्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा।।**[15]

श्राद्धतिथि में पर्याप्त ब्राह्मणों को निमन्त्रण देना चाहिये। पितरों के निमित्त तीन ब्राह्मणों को निमन्त्रण देना उचित है, एक से भी काम चल सकता है। यदि वेदज्ञ ब्राह्मण न मिले, तो भ्राता और पुत्र को भी खिलाने का निर्देश यहाँ मिलता है। किन्तु, किसी भी स्थिति में वेदविहीन को निमन्त्रण न दे–

**''ब्राह्मणानामभावेतु भ्रातरं पुत्रमेव च।**
**आत्मानं वा नियुंजीत न विप्रं वेदवर्जितम्।।''**[16]

निमन्त्रित ब्राह्मण का आदरपूर्वक पैर धोकर बैठाने का निर्देश दिया गया है। इस तरह श्राद्ध रूपी महायज्ञ का नारदीय पुराण में विशद विवेचन हुआ है। नारदीय पुराण में श्राद्ध के अवसर पर द्रव्याभाव वा ब्राह्मणाभाव की स्थिति में विकल्प भी प्रस्तुत किया है। जैसे कहा है कि द्रव्याभाव निमन्त्रणीय ब्राह्मण के अभाव में पितृसूक्त में अन्न का हवन करना चाहिये। यदि द्रव्याभाव वा अन्नाभाव अत्यधिक हो, तो गायों को घास खिला दे। स्नान करके तिलतर्पण कर ले अथवा जोर–जोर से निर्जन वन में रो। मैं दरिद्र हूँ, महापापी हूँ, ऐसा कहता हुआ दसरे दिन पितरों का तर्पण करे। नारदीय पुराण का मन्तव्य है कि जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक पितृश्राद्ध करता है, उसका सन्तिक्षय नहीं होता, वह जीवन में सुखी रहता है। जो पितरों का श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करते हैं, उनसे विष्णु पूजित होते हैं, उनके सन्तुष्ट रहने पर जगन्नाथ प्रसन्न होते हैं और इससे सभी देवगण प्रसन्न होते हैं–

**"श्राद्धं कुर्वन्ति ये मर्त्याः श्रद्धावन्तो मुनीश्वर।**
**न तेषां सन्ततिच्छेदः सम्पन्नास्ते भवन्ति च।**
**पितृन् यजन्ति ये श्राद्धे तैस्तु विष्णुः प्रपूजितः।**
**तस्मिंस्तुष्टे जगन्नाथे सर्वास्तुष्यन्ति देवताः।।"**[17]

उन्नतीसवें अध्याय में विस्तारपूर्वक तिथिनिर्णय किया गया है। इसके साथ ही विभिन्न प्रायश्चितों का वर्णन भी इस अध्याय में मिलता है। उत्तरार्ध भाग में कर्मकाण्ड सम्बन्धी अनेक विषयों का विवेचन किया गया है। 39वें अध्याय में गंगास्नान के माहात्मय का वर्णन है।[18] ग्रन्थ के पैंतालीसवें अध्याय से लेकर 47वें अध्याय तक गयाश्राद्ध की महत्ता बतायी गयी है। इस तरह अनेक कर्मकाण्डीय विषयों का विवेचन हुआ है। धर्मप्राण व्यक्तियों के लिये बड़े उपयोगी है।

**संदर्भ–सूची :**

1. हिन्दूधर्मकोश– डॉ. राजबली पाण्डेय पृ. 156 से साभार
2. इक्ष्वाकुशर्यातिययातिराममान्धातृनाभागनृगाम्बरीषाः।
   एते सकोशाः पुरुषारु सराष्ट्राः नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते।।
   पंचरात्रम् 1/24
3. एवमेव क्रतून सर्वान् समानीयाप्तदक्षिणान्।
   राजसूये नृपाञ्जित्वा जरासन्ध इवानया।। वहीं 1/28
4. मखैरसंख्यैरजयत् सुरालयं सुखेन यो यूपकरैर्गजैरि।।
   कादम्बरी मंगलाचरण 16
5. वही कथा मुख भाग
6. इदं तु गंगामाहात्म्यं यः पठेच्छृणुयादपि।
   देवालये नदीतीरे सोऽश्वमेधफलं लभेत।।
   नारदीय पुराण 11/97
7. मनुस्मृति
8. नारदीय पुराणः पूर्व भाग 79/196–99
9. वही 200–201
10. वही– यज्ञो दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
    वृथा भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्डं विनाकृतम्।। पूर्व0 27/44
11. नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्चान्यत्कर्म वैदिकम्।
    अनधीतस्य विप्रस्य सर्वं भवति निष्फलम्।। 26/64
12. अनधीत्य तु यो वेदमन्त्रं यत्न कुरुते श्रमम्।
    शूद्रतुल्यः स विज्ञेयो नरकस्य प्रियोऽतिथिः। 26/62
13. देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथैव च।
    नृयज्ञो ब्रह्मयज्ञश्च पंचयज्ञान्प्रचक्षते।। वही श्लोक 76
14. वही– श्लोक– 28/24
15. वही– श्लोक– 28/27
16. वही– श्लोक– 28/34
17. वही– 29/82–83
18. गंगायां स्नाति यो मर्त्यो नैरन्तर्येण नित्यदा
    जीवन्मुक्तः स चात्रैव मृतो विष्णुपदं व्रजेत्
    प्रातः स्नानाद्दशगुणं पुण्ये मध्यन्दिने स्मृतम्।
    सायंकाले शतगुणमनन्तं शिवसन्निधौ।
    कपिलाकोट्दिानाद्धि गंगास्नानं विशिष्यते।। 39/43–45

***

# स्वातंत्र्योत्तर बिहार का आर्थिक इतिहास (मगध क्षेत्र के विशेष संदर्भ में) : एक अध्ययन

*मनोज कुमार**

स्वातंत्र्योत्तर मगध के आर्थिक इतिहास पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट होता है कि जो स्थितियाँ सम्पूर्ण बिहार की रही हैं, कमोबेश वही स्थितियाँ इस क्षेत्र के पिछड़ेपन के भी कारण रही हैं। हाँ, एक अन्तर भौगोलिक बनावट को लेकर रहा है, जिसने निश्चित ही आर्थिक और सामाजिक जीवन को प्रभावित किया है। उदाहरण के लिये आधुनिक बिहार के दक्षिणी भाग यानि मगध क्षेत्र की नदियाँ गंगा को छोड़कर हिमालय से नहीं निकलकर अन्य स्त्रोतों से निकलती हैं और वे उत्तरी बिहार की नदियों जैसा तबाही भी नहीं मचाती है। दक्षिणी बिहार यानि मगध का प्रदेश मैदानी और पठारी क्षेत्रों के अवशेषों का संगम है। इनकी प्राकृतिक छटा और उनमें छुपे इतिहास ने उक्त क्षेत्र को विश्व पर्यटन के मानचित्र पर स्थापित होने की अपार संभावना दी है। उदाहरण के लिये बिहार के दो विश्व विरासत महाबोधि मंदिर बोध गया और प्राचीन नालन्दा महाविहार उक्त क्षेत्र के गौरव हैं और पर्यटन के स्वर्ग भी।

बाबजूद इसके दोनों क्षेत्रों की स्थितियाँ जैसे–परम्परागत कृषि पर निर्भरता, औद्योगिक पिछड़ापन, राजनैतिक अस्थिरता, वित्तीय संस्थाओं की कमी, संरचनागत कमियाँ और कानून–व्यवस्था की समस्यायें समान रहीं हैं। मगध क्षेत्र से आने वाले डॉ. श्रीकृष्ण सिंह स्वतंत्र बिहार के पहले मुख्यमंत्री बने। वे एक दूरदर्शी राजनेता थे। वे आजादी के लिये संघर्षों से निकले हुये नेता थे और आजाद बिहार की चुनौतियों और उत्तरदायित्त्व से खूब परिचित थे। उन्हें श्री अनुग्रह नारायण सिंह जैसा योग्य और दूरदर्शी सहयोगी मिला था। उन्होंने लोगों के जीवन–स्तर को उठाने और कानून का राज स्थापित करने में काफी सफलता पायी थी।

बिहार के आर्थिक पिछड़ेपन की कहानी आजादी के पूर्व से शुरू होती है। अंग्रेजी शासनकाल में ही बिहार में जमीनदारी प्रथा लागू की गयी थी। Permanent settlement के तहत सरकारी टैक्स निश्चित कर दिया गया था। रैयतों से बसूलकर हर हाल में जमीनदारों को सरकार को कर चुकाना होता था चाहे फसल मारी ही क्यों न गयी हो। रैयत जमीन और जेबर बेचकर कर चुकाते थे। जमीनदार भी मौके का लाभ उठाकर रैयतों का शोषण व जुल्म करते थे। आश्चर्य रूप से मद्रास आदि दक्षिणी प्रान्तों में रैयतबारी व्यवस्था लागू थी जहाँ कर फसल की ऊपज पर आधारित होता था। यहाँ जमीनदारी उत्पीड़न के कारण अमीर और गरीबों के बीच खाई गहरी होती गयी। सामान्य कृषक मजदूर बनने पर विवश होते गये।

आजादी के बाद भी बिहार एक कृषि प्रधान राज्य बना रहा। कृषकों की स्थिति में यथेष्ट सुधार आज तक नहीं हो पाया है। बिहार न केवल भारत के गरीबतम राज्यों में गिना जाता है बल्कि यह ''बिमारू'' राज्य भी कहा जाता है। बिहार के गंगा दोआब क्षेत्र विश्व के सबसे उपजाऊ भूमि क्षेत्र होते हुये भी, यहाँ के कृषक मजदूरों को आजीविका हेतु दूसरे प्रदेश जाना पड़ता है।

बाढ़ बिहार की कृषि के पिछड़ेपन के पीछे एक प्रमुख कारण है। परन्तु मगध क्षेत्र अपेक्षाकृत इस समस्या समे कम ग्रसित है। परन्तु पूरे प्रदेश के पिछड़ेपन के कारण प्रदेश के राजस्व में कमी होती है जिसका असर अन्य क्षेत्र पर भी पड़ता है। देश के कुल बाढ़ प्रभावित जनसंख्या का 21 प्रतिशत हिस्सा अकेले बिहार में है। बिहार के आर्थिक पिछड़ेपन का एक बहुत बड़ा कारण बाढ़ की समस्या भी है। यह सच है कि मगध प्रदेश का क्षेत्र अपेक्षाकृत कम प्रभावित है, परन्तु बाढ़ और सुखाड़ दोनों समस्यायें बिहार के आर्थिक पिछड़ेपन के प्रमुख कारणों के गिना जाता है। आजादी के सात दशक बीतने के बाद भी अभी तक इस पर बिहार सरकार की कोई ठोस योजना नहीं बनी। कृषि बिहार की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है परन्तु कतिपय कारणों से यह पिछड़ा हुआ है।

---

* शोध प्रज्ञ, मगध विश्वविद्यालय

भारत के स्तर पर देखें तो कृषि में गुणात्मक परिवर्तन हेतु 1960 के दशक में हरित क्रांति की शुरूआत हुयी। कुछ वर्षों बाद बिहार में हरित क्रांति गहन कृषि जिला कार्यक्रम (Intensive Agriculture District Programme-IADP) के तहत तत्कालीन शाहाबाद जिले में 1966–67 ई0 में शुरू हुयी।

इसके तहत उन्नत बीज, खाद, कीटनाशक दवा, सुनिश्चित सिंचाई सुविधा बहुफसली कृषि पद्धति, किसान क्रेडिट कार्ड और विपनण आदि की सुविधायें प्रदान की गयीं।

परिणामः बिहार की फसल के प्रतिरूप में परिवर्तन आया। यहाँ चावल उत्पादन के क्षेत्र में कमी आयी वहीं गेहूँ उत्पादन की दर में तीन गुणा वृद्धि हुयी। 1950 ई0 से 1995 ई0 के बीच इसकी उत्पादकता 7 गुणा बढ़ी है। हरित क्रांति का अनुकूल प्रभाव बिहार में मक्का उत्पादन पर भी पड़ा। परन्तु चावल के उत्पादन में मामूली वृद्धि हुयी। उसी तरह दलहन में अरहर और चना के उत्पादन दर में क्रमशः तीन गुणा और दो गुणा वृद्धि हुयी है परन्तु उनके उपज क्षेत्रफल में कमी आयी है। अतः इसका बहुत लाभ राज्य को नहीं मिला। इसी प्रकार आलू के उत्पादन में दस गुणा और गन्ना के उत्पादन में तीन गुणा बढ़ा है। 1956 समे 1995 ई0 के बीच तम्बाकू के उत्पादन में पाँच गुणा वृद्धि हुयी है परन्तु उसके उत्पादन क्षेत्रफल में कमी आयी है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है बिहार में असंतुलित भूमि वितरण का एक प्रमुख कारण अँग्रजों द्वारा स्थायी बंदोवस्त (जमीनदारी व्यवस्था) लागू किया जाना रहा जिससे जमीन एक वर्ग के हाथ में सीमित रह गया। सामाजिक और सांस्कृतिक कारणों समे कई वर्गों को जमीन रखने का अधिकार नहीं था। अतः भारतीय समाज का एक बड़ा वर्ग भूमिहीन रह गया।

15 अगस्त 1947 ई0 के बाद बिहार में भी भूमि सुधार की अवश्यकता समझी गयी। तदनुसार यहाँ भूमि सुधार हेतु दो–स्तर पर कार्य किये गये। एक तो संस्थागत स्तर पर और दूसरे तकनीकि स्तर पर।

संस्थागत स्तर के भूमि सुधार में भूमि के समान वितरण और उसे यथासंभव न्योचितपूर्ण बनाने का प्रयास होता है। इसके अन्तर्गत 1950 ई0 में जमीनदारी प्रथा का उन्मूलन कानून लाया गया जिसे 1952 ई0 में लागू किया गया। बिहार में भूमि सुधार हेतु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कदम जमीनदारी उन्मूलन अधिनियम का है।

दूसरा सुधार जोतों की सीमाबंदी या भू–हदबंदी द्वारा किया गया। इसके तहत जोतों की अधिकतम सीमा का निर्धारण करना और अधिशेष (Surplus) भूमि को भूमिहीनों के मध्य वितरण जैसे कार्यक्रम हैं। इस कानून को भी बिहार को विशेष सफलता नहीं मिली क्योंकि अधिशेष भूमि का वितरण नहीं हो पाया। ज्यादातर मामलों में भूमि का मुद्दा मुकदमों में उलझा दी गयी है।

इसी तरह बिहार में राज्य चकबंदी अधिनियम 1956 ई0 में पारित किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य तथा कृषि–भूमि के अलग–अलग टुकड़ों के स्थान पर किसानों को एक ही स्थान पर भूमि उपलब्ध कराना ताकि कृषि उत्पादन एवं होल्डिंग के आकार में वृद्धि हो सके। इससे सिंचाई तथा ट्रैक्टर आदि से जोताई, बुआयी एवं कटाई सुगम हो जाता है। परन्तु 1980 के दशक में प्रशासनिक कारणों से इसे बंद कर दिया गया जबकि कार्यक्रम बड़ा उपयोगी था। इसी तरह कृषि सुधार का तीसरा प्रयास बिहार सहकारी कृषि के रूप में 1952 ई0 में हुआ। इसके तहत कृषक स्वयं अपने मेढ़ को तोड़कर बड़े–बड़े सहकारी फार्म का निर्माण करते। परन्तु बिहार में जातीय तनाव अशिक्षा एवं प्रशासनिक जटिलताओं के कारण कृषक एक जुट नहीं हो सके। परिणामतः सरकारी सहायता से बंचित रह गये।

भूमि सुधार का दूसरा आयाम तकनीकी भूमि सुधार रहा जिसके अन्तर्गत भूमि की ऊपज शक्ति एवं जमीन की उर्वरा शक्ति बढ़ाने पर बल दिया जाता है। इसके लिये अनेक कदम उठाये गये। इसके तहत भूमि दस्तावेजों का कम्प्यूटरीकरण करना, विज्ञान और प्रद्योगिकी का उपयोग कर भूमि से जुड़ी समस्याओं का समाधान करना और बितरित भूमि पर यथाशीघ्र भूमिहीनों का कब्जा दिलाना आदि अनेक प्रयास किये गये। सभी दिशाओं में प्रयास हुये हैं, परन्तु वे पर्याप्त नहीं कहे जा सकते।

2014 ई0 के मार्च तक परिवार गृहस्थल योजना के अन्तर्गत 2.47 लाख परिवारों को जमीन वितरित की जानी थी। उनमें से 2.22 लाख परिवारों के बीच कुल 6,641 एकड़ जमीन वितरित की गयी है। शेष बचे परिवारों को रैयती भूमि खरीदकर उपलब्ध करायी जा रही है। इसके लिये महादलित परिवारों के लिये रैयती भूमि की क्रय नीति 1 जनवरी, 2010 से लागू है।

बिहार की अर्थव्यवस्था पर गौर करें तो बिहार की गरीबी के पीछे सार्वजनिक नीति की असफलता भी एक प्रमुख कारण है।

बिहार में ग्रामीण विकास एवं रोजगार कार्यक्रम को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। ऐसी योजनायें जो पूर्णतया राज्य योजना द्वारा वित्तपोषित है, जैसे–सामुदायिक विकास, पंचायती राज, विशेष क्षेत्रीय योजना तथा न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम इत्यादि।

दूसरा, ऐसी योजनाओं जो 50–50 के अनुपात में केन्द्र तथा राज्य द्वारा वित्तपोषित है। जैसे समेकित ग्रामीण विकास योजना तथा सूखा पीड़ित क्षेत्र योजना आदि।

तीसरा, जो पूर्णतया केन्द्र द्वारा पोषित योजना है; जैसे कि प्रधानमंत्री रोजगार योजना आदि।

इन योजनाओं के कार्यान्वयन का प्रारूप तो दिखता है परन्तु इनका वास्तविक लाभ लाभार्थियों तक नहीं पहुँच पाता है। कार्यान्वयन के स्तर पर भ्रष्टाचार इसका एक प्रमुख कारण माना जाता है। इसी कारण बिहार गरीबी के दुश्चक्र को तोड़ने में पूर्णतया असफल रहा है।

आजादी के शीघ्र बाद 1952 ई. में भारत सरकार ने रेलभाड़ा समानीकरण कानून (Freight Equalisation Act) लागू किया। इसके अनुसार कोई भी खनिज सम्पदा सम्पूर्ण भारत में एक ही कीमत पर उपलब्ध होगा। इसके लिये भारत सरकार भारतीय रेल को सब्सीडी मुहैया कराती थी। इस कानून के अन्तर्गत बिहार में पाये जाने वाले लौह अयस्क और कोयला आदि को सम्मिलित किया गया वही अन्य प्रदेशों के उत्पाद यथा पेट्रोल आदि को सम्मिलित नहीं किया गया। परिणामतः दक्षिण भारत खासकर समुद्रतटीय प्रदेशों, जहाँ समुद्री व्यापार की सुविधा उपलब्ध थी, में बिहार से कच्चे माल ले जाकर कारखानों की स्थापना हुयी। परन्तु बिहार के खनिज सम्पदा से भरपूर क्षेत्रों में उद्योग नहीं के बराबर लगाये गये। यह बिहार के औद्योगिक पिछड़ेपन का एक महत्त्वपूर्ण कारण बना। इस कानून को 1992 ई. में बदल दिया गया।

परन्तु औद्योगिक पिछड़ेपन का यह मात्र कारण नहीं था। कारणों की विवेचना के पूर्व बिहार की औद्योगिक स्थिति पर एक नजर डालना उपयुक्त रहेगा। इसे एक पैमाने से समझा जा सकता है। जहाँ शुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद में औद्योगिक क्षेत्र का राष्ट्रीय औसत योगदान 27.5 प्रतिशत है वहीं बिहार में यह 20.7 प्रतिशत है। राष्ट्रीय औद्योगिक योगदान में बिहार का योगदान 1.22 प्रतिशत या कहें तो राज्यों में सबसे कम है।

वहीं द्वितीयक क्षेत्र की बात करें तो बिहार में राज्य के कुल सकल घरेलू उत्पाद में इसका योगदान 20 प्रतिशत से कम है जबकि राष्ट्रीय औसत 31 प्रतिशत है। हाँलाकि बिहार की अर्थव्यवस्था में थोड़ा बहुत ढांचागत परिवर्तन दिखा है। परन्तु इसके लिये एक तरह से तृतीयक क्षेत्र की उच्च विकास दर का योगदान कहा जाता है। एक शोध ग्रंथ में छपे लेख के अनुसार सन् 1999 ई0 के बाद बिहार राज्य के कुल सकल घरेलू उत्पाद में इस सेक्टर का योगदान 50 प्रतिशत हो गया है (Indian Journal of Agriculture Business Vol.6.No.1 Jan-June 2020 ijab.2454.7964.6120.2) यह कृषि के बाद सबसे बड़ा रोजगार प्रदान करने वाला क्षेत्र भी साबित हुआ है। इसके तहत व्यापार, होटल, रेंस्टोरैंट, ट्रांस्प्रोर्टेशन तथा सूचना संचार आदि आते हैं।

बिहार में कृषि–आधारित उद्योग : 2014–15 ई0 तक आते–आते कृषि आधारित उद्योगों का हिस्सा कुल औद्योगिक उत्पाद का 34.9 प्रतिशत हो गया। पूरे देश के स्तर पर यह आँकड़ा 41.6 प्रतिशत तक दर्शाता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि इस क्षेत्र में अभी भी अपार संभावना बनी हुयी है। (वार्षिक औद्योगिक सर्वेक्षण (2013–14 और 2014–15 के अनुसार)

कल–कारखाने : अगर हम संख्या की दृष्टि से देखें तो वर्ष 2014–15 में भारत के कुल कल कारखानों में बिहार के कारखानों का हिस्सा मात्र 1.6 प्रतिशत था। परन्तु बिहार की आबादी राष्ट्रीय

आबादी का 8.6 प्रतिशत है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि बिहार औद्योगिक बिकास के मामले में अन्य भारतीय राज्यों की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ है।

बिहार राज्य कृषि–प्रधान राज्य है। ऐसे में राज्यों में पूरक अर्थव्यवस्था के रूप में लघु एवं कुटीर उद्योग का काफी महत्त्व होता है। इस क्षेत्र का देश के कुल निर्यात में लगभग 40 प्रतिशत योगदान है और देश के कुल 2.6 करोड़ इकाइयों द्वारा 6.9 करोड़ लोगों को रोजगार दिये जाने का अनुमान है। बिहार में 2017–18 के रिपोर्ट के अनुसार अतिलघु, लघु और मध्यम उद्यमों की कुल संख्या 34.46 लाख थी (समग्र .271)।

बिहार में इस दर्जे के प्रमुख उद्योग कुछ निम्न प्रकार हैं– हस्तकरघा वस्त्र उद्योग, बीड़ी, साबुन, चमड़ा, टोकड़ी, चटाई, फर्नीचर, रेशम, मत्स्य, शहद पालन आदि। बिहार में इनकी संख्या तो काफी है परन्तु उनकी उत्पादकता निम्न है। फिर भी कृषि के बाद रोजगार मुहैया कराने में ये महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

रेशम उद्योग बिहार का परम्परागत गैर–कृषि उद्योग रहा है। यहाँ तसर, मलबरी और अंडी प्रकार के रेशम पाये जाते हैं। परन्तु झारखण्ड के अलग हो जाने से इस उद्योग में कमी आयी है। यह प्रमुख रूप से बांका, मुंगेर, नवादा, कैमूर, जमुई तथा रोहतास तथा कोसी क्षेत्र के सहरसा, मधेपूरा, अररिया, कटिहार, पूर्णिया तथा भागलपुर आदि में प्रचलित है। परन्तु मगध क्षेत्र के कुछ ही जगहों में उद्योग कार्यरत है। जैसे कि गया, नालन्दा में नेपुरा तथा नवादा में कादीरगंज आदि। परन्तु ये आधुनिक मशीनों से निर्मित कपड़े की तुलना में पिछड़ते जा रहा हैं।

दुग्ध–उत्पादन बिहार की पूरातन परम्परा है। इसे घरेलू जरूरत पूरा करने के लिये किया जाता रहा है। परन्तु 1983 ई0 में स्थापित बिहार राज्य सहकारी दुग्ध उत्पादक महासंघ (कॉम्फेड) ने राज्य में दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र भी सहराहनीय भूमिका निभाई है। जहाँ 2013–14 में राष्ट्रीय स्तर पर सहकारी क्षेत्र में दुग्ध संग्रहण में मात्र 2.6 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की है वहीं कॉम्फेड को 20 प्रतिशत वृद्धि दर्ज करने में सफलता मिली है। 2011–12 में नालंदा और डेहरी ऑन–सोन में दो बड़ी दुग्धशालायें खुली। कॉम्फेड ने एक दिन में 20.61 लाख लीटर दुग्ध संग्रहित करने का लक्ष्य प्राप्त किया है। दुग्ध उत्पादन में मगध क्षेत्र की उपलब्धियाँ औसत रूप से ठीक कहा जा सकता है।

भारतीय संविधान के अनुसार भारत सरकार और राज्यों के बीच आर्थिक अधिकारों का विभाजन किया गया है। भारत सरकार राज्यों को कई तरीकों से आर्थिक सहयोग प्रदान करती है। भारत सरकार राज्यों को वित्त आयोग, योजना आयोग (अब नीति आयोग) केन्द्रीय पोषित योजनाओं के लिये संबंधित मंत्रालयों के माध्यम से तथा अतिरिक्त सहायता के रूप में आर्थिक सहयोग प्रदान करती है। अगर हम गौर करें तो यह पाते है कि प्रथम से ग्यारहवें योजना काल (1951–2012) तक प्रति व्यक्ति, योजना सहायता बिहार को अन्य राज्यों से कम दी गयी है। इसे राष्ट्रीय औसत के 40 प्रतिशत से भी कम सहयोग मिला है। (Golam Rasal & Eklaby Sharana 231) इस तरह बिहार को आर्थिक संकट से जूझना पड़ा। प्रथम योजना काल में तो बिहार को पंजाब का एक–चौथाई से भी कम राशि मुहैया करायी गयी थी। ठीक इसके विपरीत गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब और हरियाणा को केन्द्रीय योजना सहायता बिहार के दूने से भी ज्यादा दिया गया। दूसरी ओर औद्योगिक और सेवा क्षेत्र में पिछड़ेपन के कारण बिहार का राजकोशीय आधार अपेक्षाकृत छोटा होता गया। कमजोर आर्थिक प्रबंधन और संरक्षणात्मक राजनीति पर निर्भरता के कारण बिहार में कर संचित करने की क्षमता कमजोर पड़ती गयी। यहाँ तक कि केन्द्रीय पोषित विकास योजनाओं के लिए अपने हिस्से की राशि लगाने की स्थिति नहीं रहने के कारण आठवीं और नववीं पंचवर्षीय विकास योजनाओं में बिहार पचास प्रतिशत से भी कम उपयोग कर पाया। विकास की बड़ी आवश्यकता के बाबजूद बिहार 8वीं और 9वीं योजना काल में 50 प्रतिशत राशि का भी उपयोग नहीं कर पाया। (Sexena 2007) इसी तरह अन्य केन्द्रीय योजना जैसे बाह्य पोषित योजनायें तथा लोन आदि भी बिहार को कम मिल पाया। उपरोक्त कारणों से बिहार का भौतिक और आर्थिक संरचनात्मक विकास कम हो सका।

बिहार सूती हस्तकर्घा और बुनायी के लिये प्रसिद्ध था। 19वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में लगभग बिहार की आबादी का 20 प्रतिशत लोग इस उद्योग से जुड़े थे। अंग्रेजों के नील की खेती हेतु बाध्यकारी कानून ने सूत उद्योग को हतोत्साहित किया और यह केवल राज्य के कार्यारत आबादी के केवल 8.5 प्रतिशत तक सिमट गया।

इसी तरह संरचनात्मक कमियों तथा अन्य संबंद्ध कारणों से बिहार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 1991 से 1998 ई. के बीच राष्ट्रीय औसत का मात्र 0.1 प्रतिशत ही हो पाया। 2007 ई. में भारत सरकार के रिपोर्ट के अनुसार जहाँ महाराष्ट्र में प्रति व्यक्ति प्रत्यक्ष निवेश Rs.5019 था वहीं बिहार में यह मात्र Rs. 89 था। (Govt. of India 2007)

**बिहार एवं अन्य राज्यों की जोत का औसत आकार**

| देश/राज्य | कृषि क्षेत्र के होल्डिंगों का औसत आकार |
|---|---|
| अखिल भारत | 1.8 हेक्टेयर |
| पंजाब | 3.8 हेक्टेयर |
| हरियाणा | 3.5 हेक्टेयर |
| बिहार | 1.38 हेक्टेयर से .68 हेक्टेयर के बीच (बिहार समग्र –175) |

अतः गौर किया जाय तो यह स्पष्ट होता है कि आज भी बिहार में कृषि परम्परागत तरीकों से की जाती है। इसके पिछड़ेपन के कारणों को देखें तो ज्ञात होता है कि बिहार की कृषि वर्षा की प्रवृति पर निर्भरत करती है। यह आज भी मॉनसुन के साथ जुआ ही है। पर्याप्त वर्षा नहीं होने पर खेतों की सिंचाई नहीं हो पाती।

बिहार में मगध समवेत जोतो का आकार छोटा है और उनका वितरण दोषपूर्ण है। जों खेती पर निर्भर है उनके पास अपनी जमीन नहीं है। जिसके पास जमीन है वे अन्य स्त्रोतों से अपनी जीविका चलाते हैं। अतः कृषि पर निर्भरता नहीं रहने के कारण बड़े जोतेदार कृषि में पूंजी निवेश नहीं करते और जोतेदार स्वामीत्व के अभाव और आर्थिक विपन्नता के कारण कुछ नया नहीं कर पाते हैं। यह मगध के आर्थिक पिछड़ापन का महत्त्वपूर्ण कारण है।

अतः बिहार राज्य में आधारभूत संरचना तथा सिंचाई सुविधा जैसे कि विद्युत उपलब्धता के अभाव तथा आधुनिक ढंग की कृषि विशेषज्ञता का आभाव, कृषकों का परम्परागत दृष्टिकोण और कृषिपर जनसंख्या का बढ़ता बोझ आदि अनेक कारण है जिसके कारण बिहार आर्थिक रूप से पिछड़े प्रदेशों की सूची में अग्रगण्य राज्य बना हुआ है। बिहार की कृषि में सरकारी निवेश पंजाब के तुलना में एक चौथाई और राष्ट्रीय औसत के आधे से कम है। (Guruswamy & Kaul, 2003)

बिहार को अधिसरंचना की दृष्टि से पिछड़ा माना जाता है और इसे बिहार के समग्र पिछड़ापन का भी कारण माना जाता है।

2005 ई0 के बाद बिहार सरकार द्वारा सड़क निर्माण को प्राथमिकता दी गयी। पिछले दसक की तुलना में बिहार में सड़क और पुल निर्माण में तीन गुणा प्रगति हुयी है। इस अवधि में इसने अपने बजट का 5 से 8 प्रतिशत इस मद में खर्च किया है। जहाँ सड़क में निवेश 2007–08 में 2696 करोड़ था वह 2017–18 में 7522 करोड़ रू0 हो गया।

सड़क (राष्ट्रीय उच्च पथ, राज्य उच्च पथ और मुख्य जिला पथ) की लम्बाई की दृष्टि से 5.8 प्रतिशत के साथ मगध का पटना जिला प्रथम है, गया 4.9 प्रतिशत के हिसाब से दूसरे स्थान पर और नालन्दा 4.1 प्रतिशत के साथ चौथे स्थान पर है। देश के रेल मार्गो में बिहार का हिस्सा 5.6 प्रतिशत है। परन्तु प्रति लाख आबादी के हिसाब से बिहार में रेलवे की लम्बाई मात्र 4.9 किमी. है जो देश में सबसे कम है जबकि झारखण्ड 11.7 किमी. के साथ शीर्ष पर है। यह स्थिति अच्छी इसलिये नहीं है क्योंकि आजादी के बाद बिहार राज्य ने कुल आठ रेलवे मंत्री दिया है।

बिहार में कृषि उत्पादकता दर राष्ट्रीय औसत से कम और पंजाब का आधा है। (Govt. of India 2007). बिहार की 80 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से आज भी कृषि पर निर्भर करती

है। कृषि का मुख्य आधार यानि जमीन का अधिकांश हिस्सा संभ्रान्त लोगों के हाथों में सिमटा है और उन्हीं के हाथों में सामाजिक और राजनैतिक ताकत भी है। जमीन संशोधन कानून को लागू नहीं किया जा सका। परिणामतः ग्रामीण क्षेत्र के 2002–03 के एन.एस.एस रिपोर्ट संख्या 472 के अनुसार आज बिहार की एक–तिहाई जनसंख्या भूमिहीन है।

कुशल मानव संसाधन किसी अर्थव्यवस्था के प्रेरक पहलू होते हैं। बिहार में जनसंख्या का घनत्व 800 व्यक्ति प्रति वर्ग किलो मीटर है जो राष्ट्रीय औसत 329 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. के दूने से भी अधिक है। अगर यह आबादी कुशलता युक्त हों, तो यह अर्थव्यवस्था के लिये परम उपयोगी हो जाती है वरना बोझ। गतिशील कृषि और उद्योग के अभाव में बढ़ी आबादी ने कृषि क्षेत्र पर भारी दबाव उत्पन्न किया है। 1971 से 2001 के बीच बिहार में कृषि श्रमिकों का बोझ 41.8% से बढ़कर 48% हो गया। जबकि इसी अवधि में पूरे भारत में यह प्रतिशत 31.4% से घटकर 26.5% रह गयी है।

बढ़ती गरीबी, असमानता, अशिक्षा और प्रशिक्षण के अभाव में ग्रामीण ने कृषि पर भारी दबाव उत्पन्न किया है। बहुतायत मात्रा में लोग घरबाड़ छोड़कर दूसरे राज्यों में पलायन हेतु मजबूर हुये हैं। (A Bihar Times, 26 June 2009)

अतः बिहार की बड़ी आबादी राज्य के विकास में योगदान करने से बंचित है। सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के कारण बिहार अपने महत्त्वपूर्ण संसाधन का उपयोग राज्य निर्माण में नहीं कर पा रहा है। बिहार, इसके विपरीत, पलायित मजदूर द्वारा भेजे गये पैसे को लेबर इकॉनॉमी का नाम देकर अपनी कमी को अपनी ताकत समझने की भूल कर रहा है।

जहाँ तक मगध का आर्थिक स्थिति का प्रश्न है कृषि के क्षेत्र में यह क्षेत्र बाढ़ की विभीषिका से अपेक्षाकृत मुक्त है। फिर भी पटना और नालन्दा जिलों में इसका प्रभाव देखने को मिलता है। अगर सम्पूर्ण बिहार की बात करें तो इसके कुल भूभाग का लगभग दो–तिहाई भाग यानि 73.06 प्रतिशत भाग बाढ़ प्रभावित है। इसने कृषि–प्रधान प्रदेश होने के वाबजूद इसे एक अभिशप्त प्रदेश बना दिया है।

मगध क्षेत्र में ऊपजाऊ भूमि पर कृषक काफी परिश्रम करते हैं। नकदी फसलों और शाक–सब्जियों के उत्पादन में इस प्रक्षेत्र ने सराहनीय प्रयास किया है। परन्तु परम्परागत कृषि प्रणाली, पूँजी का अभाव और उत्तम–खाद–बीज के अभाव में इनका उत्पादन दर निम्न है।

मगध क्षेत्र का औद्योगिक विकास पर्याप्त नहीं रहा है। बाढ़ में एन.टी.पी.सी. की स्थापना से मगध ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण बिहार बिजली के मामलों में प्रगति किया है। इसी तरह हरनौत का रेल कारखाना और राजगीर का आयुद्ध निर्माण कारखाने स्वातंत्र्योत्तर मगध में निर्मित औद्योगिक प्रतिस्ठान कहे जा सकते हैं परन्तु उनकी स्थापना से स्थानीय लोगों को लाभ नहीं के बराबर हुआ है। क्योंकि इनके उत्पादन सम्पूर्ण भारतवर्ष भेजे जाते हैं और कर्मचारियों का चयन राष्ट्रीय स्तर पर होता है।

आधुनिक मगध का प्रदेश दुनिया के पर्यटन मानचित्र पर सुनहरे बिन्दू की तरह हैं। नालन्दा में प्राचीन विश्वविद्यालय के अवशेष आज भी सम्पूर्ण विश्व से लाखों पर्यटकों को आकर्षित करता है। वहीं बोध गया में निजी स्तर पर सैकड़ों विदेशी बौद्ध मठ बनाये गये हैं। महाबोधि मंदिर का इलाका एक वैश्विक संस्कृति का केन्द्र के रूप में दुनिया भर से प्रतिवर्ष लाखों पर्यटकों को आकर्षित करता है। उसी तरह राजगीर में आजादी के बाद पाण्डू पोखर, घोड़ा–कटोरा, विश्व शांति स्तूप, जापानी, थाई, बर्मीज बौद्ध मठ और जू सफारी, नेचर सफारी और ग्लास ब्रिज के लिये चर्चित है। यहाँ के ऐतिहासिक धरोहर तो विश्व–प्रसिद्ध हैं ही। इन्हीं कारणों से यहाँ प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में पर्यटक आते हैं। इससे स्थानीय स्तर पर लाभ मिला है।

परन्तु सरकारी और निजी स्तर पर पर्यटन के विकास के लिये मानसिक और व्यावहारिक तैयारी पर्याप्त नहीं है और इस कारण अनन्त संभावओं से युक्त मगध का प्रक्षेत्र आर्थिक रूप से इसका लाभ लेने में अक्षम रहा है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. Reginal studies, Reginal Science, 2014, Vol. 1. No. 1, P-231 http://dx.doi.org/10.1080/21681376.2014.943804
2. Saxena, No. C. (2007). Rural Poverty Reduction through eentrally sponsored schemes, Indian journal of Medical Research, 126 (4), 381-389
3. Govt. of India (2007). Uttar Pradesh Development Report. New Delhi. Govt. of India planning commission. Development Report Series, Academic foundation.
4. Planning Commission (2012). Report of the working group on issues reltating to Growth and Development at sub-national level for 12th five-year plan (2012-17). New Delhi. Govt. of India.
5. Guruswamy, M & Kaul, A. (2003). The Economic strangulation of Bihar. New Delhi: Centre for policy Alternatives. Retrieved from htt://cpasindia.org/report/02-Economic-strangulation-Bihar.pdf
6. बिहार टाइम्स. 26 जून, 2009

***

# वैदिक कालीन समाज में नारी शिक्षा पर विहंगावलोकन

*अनिल कुमार**

मानव जीवन की धुरी जिन तीन आधारों पर टिकी है वह ज्ञान, धर्म और शान्ति है। ज्ञान, धर्म व शान्ति की स्वामिनी के रूप में स्त्री वाचक शब्द का प्रयोग होना उसकी श्रेष्ठता को बताता है। स्त्री को समृद्धि और संस्कृति की अधिष्ठात्री भी कहा जाता है। परा और अपरा शक्ति के रूप में चर्चा तत्व ज्ञानी हमेशा से करते रहे हैं। सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा आदि अनेक रूपों में उसकी आराधना होती रही है। इन्हीं शक्तियों का संयुक्त एवं मूर्तिमान रूप नारी है।

वैदिक कालीन नारी की जब हम बात करते हैं तो हमें उसके विभिन्न रूपों और कार्यों का अवलोकन होता है। शिक्षा, धर्म, व्यक्तित्व और सामाजिक विकास में उसका महति योगदान था। नववधू को श्वसुरगृह की साम्राज्ञी माना जाता था। नारी को पति के साथ प्रत्येक कामों में सहयोगी माना जाता था। वह अत्यन्त सुशिक्षित, सुसभ्य तथा सुसंस्कृत होती थी। वह पति के साथ मिलकर याज्ञिक कार्य सम्पन्न कराती थी। वैदिक युगीन नारी स्वछन्द एवं मुक्त थी परन्तु उसे सामाजिक मान–सम्मान प्राप्त था। वैदिक युग में स्त्री शिक्षा अपनी उच्चतम सीमा पर थी। ऋग्वेदिक पंडिता स्त्रियों यथा–रोमशा, अपाला, उर्वशी, विश्ववारा, सिकता, निवावरी, घोषा, लोपामुद्रा आदि ने अध्ययन–अध्यापन के साथ–साथ अनेक ऋचाओं का भी प्रणमन किया था। उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्री को विवाह योग्य अत्यधिक उत्तम माना जाता था। वैदिक कालीन स्त्रियाँ ब्रहमचर्य धर्म का पालन करते हुए उपनयन संस्कार भी कराती थी तब शिक्षा ग्रहण करती थी। ब्रहमयज्ञ में जिन ऋषियों की गणना की जाती है उनमें सुलभा, गार्गी, मैत्रेयी आदि विदुषियों के भी नाम सम्मानपूर्वक लिये जाते हैं जिनकी प्रतिष्ठा वैदिक ऋषियों के समान थी।

प्राचीन भारत में शिक्षा गुरुकुल प्रणाली पर आधारित थी, अर्थात् शिक्षा जगत से जुड़ी महिलायें अपने अस्तित्व का प्रबंधन करना स्वयं जानती थीं। शिक्षक पद पर जिन महिलाओं को नियुक्त किया जाता था। उनकी छवि समाज में अपेक्षाकृत अधिक सम्मानजनक थी। वे समस्त महिला शिक्षकायें अपने–अपने लौकिक एवं अलौकिक ज्ञान के माध्यम से समाज को नई दिशा प्रदान करती थीं। शिक्षक वास्तव में समाज की धुरी होता है। यदि शिक्षक स्वयं ज्ञानशील, विवेकशील एवं नैतिक मूल्यों से पूर्ण होगा तभी उसके द्वारा दी जाने वाली शिक्षा में भी इन समस्त गुणों का समावेश होगा तथा जिससे नवीन पीढ़ी की सही दिशा व दशा का मूल्यांकन किया जा सकेगा।

वैदिक समाज में पुत्रों के समान ही पुत्रियों की भी शिक्षा–दीक्षा की पूरी देख–रेख की जाती थी। शिक्षा प्राप्ति के लिए गुरुकुल जाना पड़ता था, ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था। कन्या ब्रह्मचर्य का पालन करती थी, आश्रम में शिक्षा प्राप्त करती थी, सह–शिक्षा का प्रचलन था। प्राचीन भारत में शिक्षा से तात्पर्य वैदिक शिक्षा से था। कन्याएं भी बालकों की भांति यज्ञ करती थीं। यज्ञ करने एवं वैदिक प्रार्थनाओं को करने का अधिकार केवल उसी व्यक्ति को प्राप्त था जिसका उपनयन संस्कार किया गया हो। यजुर्वेद के अनुसार बालिकाओं का भी उपनयन संस्कार किया जाता था। कन्याएँ विस्तृत ज्ञान राशि प्राप्त कर सकती थीं। वे बुद्धि एवं शिक्षा में अग्रणी थीं। वशिष्ट सूत्र के अनुसार उपाध्याय की तुलना में आचार्य दस गुना प्रतिष्ठित हैं, आचार्य से सौ गुना प्रतिष्ठित पिता हैं और पिता से सहस्त्र गुना प्रतिष्ठित पद माता का है, माता के पद की यह प्रतिष्ठा प्राचीन भारत में स्त्रियों की उच्च स्थिति का स्पष्ट प्रमाण है। इस काल में गार्गी, मैत्रयी आदि के नाम अविस्मरणीय हैं। ये वाद–विवाद तर्क शास्त्र में पारंगत थीं। रोमशा, उर्वशी, घोषा, विश्ववारा, लोपामुद्रा आदि परम् विदुषी स्त्रियां हुईं, उन्होंने वैदिक ऋचाओं की रचना की। कन्याएँ उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं,

* एसोसिएट प्रोफसर, इतिहास विभाग, एस. डी., पी.जी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ.प्र.

शिक्षक के पद पर चाहे पुरूष हो या स्त्री उनका सम्मान सदा ही समाज के द्वारा व शिष्यों के द्वारा होता रहा है अर्थात् गुरु–शिष्य सम्बन्ध पिता–पुत्र, माता–पुत्री की तरह हमेशा रहा है। गुरु की आज्ञा का पालन, अनुशासन में रहकर मर्यादा एवं विवेक की सीमा रेखा को समझना व उस पर कायम रहना यही भारतीय शिक्षा का आदर्श रहा है और इस पथ पर दृढ़ रहने वाला ही गुरु द्वारा दिये गये ज्ञान को पूर्णतः अधीत कर पाता है। ऐसे ही आदर्श को स्थापित करती हुई वैदिक ऋचा कहती है कि 'जो स्त्री पढ़ाने वाली हो, विदुषी हो, कुमारी हो, तीक्ष्ण बुद्धि वाली हो तो उसकी आज्ञा कन्याओं (पढ़ने वाली लड़कियाँ) को मानना चाहिए तथा उनके अनुकूल व्यवहार करना चाहिए। इसी में आगे ऋषि गृहकार्य के प्रति भी सावचेत करते हुए ऋषि कहाता है कि घर की क्रियाओं में तथा पाक विद्या में जो पंडिताइने (कुशल नारी) है उनसे भी बालिकाओं को शिक्षा प्रदत्त करानी चाहिये।'

उक्त शिक्षा की बात जो ऋषि कहते हैं वह आज के समाज में इतनी सटीक बैठती है कि अमीर एवं सम्पन्न परिवार के लोग, जहाँ प्रत्येक कार्य के लिए नौकर रखे है, जैसे कपड़ा धोना, झाड़ू लगाना, खाना बनाने वाली, कोई नौकरानी आदि ऐसे घर की लड़कियाँ ये सब कार्य नही कर पाती है वे केवल विद्यालय, महाविद्यालयों से उच्च शिक्षा तो प्राप्त कर लेती हैं। लेकिन विवाह के उपरान्त गृहकार्य के विषय में उपहास की पात्र बनती है और इससे अन्ततः स्थिति भयावह हो जाती है। अतः लड़कियों को शिक्षा के साथ–साथ गृहकार्य करने की शिक्षा या आदत डालनी चाहिए जो माता–पिता का स्वाभाविक कर्तव्य है।

'वैदिक कालीन समाज में पुत्र और पुत्री दोनों को द्विजत्व प्रदान किया जाता था अर्थात् यज्ञोपवीत उपनयन संस्कार पश्चात् गुरुकुल में अध्ययनार्थ भेजा जाता था। अध्यापक व अध्यापिका जिनके पास विद्या व तेज है उनसे माता–पिता यह निवेदन करते थे कि हमारी सन्तान को ऐसा बना दें कि उनके द्वारा प्राप्त विद्या से वह अपनी व अपने समाज की रक्षा कर प्रेरणा दे सकें। स्त्री–पुरूषों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे अच्छे पुत्र व पुत्रियाँ दें।''

वैदिककाल में राजतन्त्र प्रणाली थी और राजा राज्य का सर्वप्रमुख होता था। उसी के अधीन राज्य के सम्पूर्ण कार्य व व्यवहार सम्पादित होते थे। उसकी आज्ञा सर्वोपरि होती थी। यद्यपि यह बात सत्य है कि वह समिति व सभा के निर्णयों पर विचार करता था। ब्राह्मण या ऋषि उनके मंत्री, गुरु होते थे। अतः परोक्ष रूप से ब्राह्मण या ऋषि की आज्ञा का पालन सामान्यतः किया जाता था। राजा के कर्तव्यों की ओर ध्यान दिलाते हुए ऋषि कहता है कि ''राज्य की स्त्रियों को विद्वान बनाने हेतु परिवार के अलावा राजाओं का भी कर्तव्य है। राजा को चाहिये कि इन बालिकाओं को ऐसी धाइयों को सौंपे जो विद्या सम्पन्न हो। जिससे कोई अशिक्षित न रहे।'' यदि मनुष्य को सुख प्राप्त करना है और दुःख से निवृत्त होना है तो जीवन में विदुषी माता, विद्वान गुरु तथा पदार्थ विज्ञान का ज्ञान आवश्यक है।

समाज में प्रायः लोग किये गये उपकार को भूल जाते है। वैदिक साहित्य में इसको ऋण कहा गया है। इसी का स्मरण कराते हुए कन्या को कहा गया है कि तुझमें जो शिक्षा की चेतना जगी है यह तुझे शिक्षा देने वाली विदुषी महिला के कारण जगी है। उसका साथ कभी मत छोड़ना। शिक्षिका के कर्तव्यों का स्मरण कराते हुए ऋषि कहता है कि उसे अपने विद्यार्थियों को धर्मयुक्त शिक्षा देनी चाहिए। जिससे विद्यार्थी दुर्व्यसनों की ओर न जाएं और चिन्तारहित होकर आनन्दपूर्ण जीवन बिता सके। ऐसी शिक्षा प्रदान करनी है।

शिक्षा, अशिक्षा एवं कुशिक्षा प्रायः समाज में 3 प्रकार की यही शिक्षा पायी जाती है। शिक्षा का तात्पर्य व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र को एकता अखण्डता, स्नेह, प्यार, न्याय के साथ वैश्विक स्तर बन्धुत्व की भावना का विकास करते हुए ज्ञान प्राप्त करे तथा वैज्ञानिक ज्ञान का सदुपयोग करे। शिक्षा, प्रायः राष्ट्रभाषा का सम्मान करते हुए सम्यक ढंग से लिखना, पढ़ना, बोलना और सुनना भी सिखाती है। इसलिए वैदिक शिक्षा में वाणी का अत्यधिक महत्व दिया गया है। पढ़ने वालों अर्थात् शिक्षित व्यक्ति की वाणी उनके गुणों को प्रकाशित करने वाली है। अतः वह सत शुद्ध और प्रशंसनीय एवं मीठी होनी चाहिए। ऋग्वैदिक ऋषि यह कामना करते थे कि हमें ऐसी स्त्रियां प्राप्त हो जो माता के सदृश पालन करें। सौभाग्य से युक्त हो तथा सदुपदेश देने वाली हो। जिस प्रकार नदियां खेतों को सींचती है वैसे ही

स्त्रियां जीवन को सिंचित करें। जैसे गाय बछड़े को पोषित करती है वैसे ही माता रूप में हमें विद्या और शिक्षा से पोषित करे।

कन्या अपने गुरु से निवेदन करती है कि हे आचार्य मैं ब्रह्मचारिणी हूं। मैं आपकी वन्दना करती हूं। जिस प्रकार माता–पिता पुत्र शिक्षा देते है आप मुझे वैसी ही शिक्षा दें, मैं ज्ञान शून्य हूं अतः आप शिक्षा देकर मेरा कल्याण करें। इससे शिष्य का गुरु के प्रति नम्रता एवं आदर भाव तथा श्रृद्धाभाव प्रकट होता है। अतः गीता का यह श्लोक – श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।' पूर्णतः सार्थक प्रतीत होता है।
अतः उक्त तथ्यों से निम्न निष्कर्ष निकलते है –

1. वैदिककाल में शिक्षा में शिक्षा के क्षेत्र में बालक–बालिका को समान महत्व दिया जाता था।
2. विदुषी एवं शिक्षित स्त्रियाँ समाज में शिक्षिका की भूमिका अदा करती थी।
3. समाज में यह नहीं देखा जाता था कि कोई विवाहित है या अविवाहित। आदर सम्मान केवल शिक्षा का था।
4. विदुषी स्त्रियां केवल परिवार के सदस्यों को ही नहीं बल्कि समाज के समस्त बालक–बालिकाओं को शिक्षित करती थी।
5. नारी शिक्षा का इतना महत्व था कि शिक्षित नारी अपने पति को भी शिक्षित करती थी।

**वैदिककालीन विदुषी स्त्रियाँ**

ऋग्वेद का चारों वेदों में सर्वाधिक महत्व है। ऋग्वेद के अधिकांश मन्त्र अन्य तीनों वेदों (यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) में उसी रूप में या आंशिक परिवर्तन के साथ समभावी या समानार्थी रूप में मिलते हैं। ऋग्वेद के अध्ययन से मालूम पड़ता है कि स्त्रियां वेदाध्ययन करती थी। कवितायें बनाती थी एवं मन्त्रों का आविष्कार एवं रचना भी करती थी, कुछ विदुषी नारियाँ निम्न है –

**विदुषी घोषा –** ज्ञान प्राप्ति हेतु स्वयं का अज्ञानी समझना ही सफलता का मंत्र है। अगर कोई अल्पज्ञ या अज्ञ अपने बहुज्ञ या सर्वज्ञ समझे लगे तो वह कमी भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता। इसी विचारधारा एवं श्रेष्ठता को अपने ह्रदय में उतारकर वैदिककालीन विदुषी घोषा ने ऋग्वेद के 10 मण्डल के 39 से 40 वें सूक्त की सृष्टि की और अपने को अनाथ असहाय और अज्ञानी समझते हुए गुरु से ज्ञान की भिक्षा मांगती है। हे गुरुवर (अश्विनद्वय) जैसे पिता पुत्र को शिक्षा देता है वैसे ही मुझे भी शिक्षा दो। मेरा कोई यथार्थ बन्धु नहीं है। मैं ज्ञानशून्य हूं। मेरा कुटुम्ब नहीं हैं, बुद्धि भी नही है। मैं जीवन में किसी भी संकव से घिरूं उससे पूर्व ही उसे दूर करो। तत्कालीन समाज नारी शिक्षा प्रचलित थी। स्त्रियाँ रथ भी बनाती थी। यज्ञकार्य में भी नियुक्त होती थी और पुत्र–पौत्रों को समाज में प्रतिष्ठित भी करती थी।

**विदुषी लोपामुद्रा –** महर्षि अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा द्वारा एक सूक्त सृजित किया गया था। इससे कामशास्त्र के विषय अल्पन्त उच्च कोटि की बाते भी है।

विदुषी अपाला – महर्षि अत्रि की पुत्री अपाला ने देवराज इन्द्र की स्तुति की है और एक सम्पूर्ण सूक्त की रचना की।

**विदुषी लोमशा –** विदुषी लोमशा इन्द्र की स्तुति में 2 मंत्रों की रचना की है।

विदुषी विश्वावारा – अग्नि की स्तुति अत्यन्त ही रोचक एवं विनम्रता के साथ किया है। यह स्तुति ऋग्वेद के पंचम मण्डल के 28 वे सूक्त में है।

**ऋषिका सूर्या –** ऋषिका सूर्या ने दशम मण्डल के 85 वें सूक्त की रचना करके अनेक वैज्ञानिक तथ्यों को स्पष्ट किया है। रथ के निर्माण मे पलाश और शाल्मली के वृक्षों की उपयोगिता की श्रेष्ठता 18 नारी को पति के वश में रहकर घर के नौकर पर सेवकों पर शासन या उचित आदेश निर्देश देना। स्त्री वृद्धावस्था तक पतिगृह का स्वामित्व करने वाली आदि बातों का उल्लेख है।

देवी इन्द्राणी – देवी इन्द्राणी ने ऋग्वेद 10वें मण्डल के 86 वें सूक्त के अनेक मंत्रो की अधिष्ठात्री है। जैसे – 2, 4, 7, 9, 10, 15, 18, 22, 23।

**ब्रह्मवादिनी जूहू** – ब्रह्मवादिनी जूहू ने तपस्या और सच्चरित्रता को सर्वश्रेष्ठ बताया है। इससे निकृष्ट पदार्थ भी उत्तम एवं श्रेष्ठ स्थान पर स्थापित हो सकता है। इन्होनें ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 109वें सूक्त की रचना की है।

इसी प्रकार विवस्वान की पुत्री यमी द्वारा 10–154वें सूक्त कामगोत्रीय विदुषी श्रद्धा द्वारा 10–151वें सूक्त, सर्वराज्ञी 10–189वें सूक्त ऋषि दीर्घतमा की माता विदुषी ममता द्वारा 10–15वें सूक्त के 2, 5, 7, 9, 11, 13, 15, 16वें मंत्रों की दृष्टा, ऋषिका वाग्देवी ने 10वें मण्डल 125वां सूक्त सृजित किया गया है।

उपरोक्तः स्पष्ट यह है कि वैदिककालीन स्त्रियों के द्वारा मंत्रों की रचना करना केवल शिक्षित होने का ही प्रमाण नहीं देता बल्कि शिक्षा और विद्या के क्षेत्र में उच्च कोटि का वैदुष्य या विदुषी होने के भी प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। ऋषि कन्यायें आश्रम में स्वतः ही पिता के पास शिक्षित होकर नारियों को शिक्षित करती थी और नारियां समाज में परिवार में प्रतिस्थापित होकर आवश्यकतानुसार परिवार को, समाज में लड़कियों को व नारियों को शिक्षित करती थी। उनमें अनेकानेक गुण थे जिसके कारण समाज में देवी और श्री के रूप में आदृत और सम्मानित थी। वैदिक युगीन स्त्री अपनी अस्मिता, अस्तित्व को बनाये रखने हेतु कृत संकल्प रहती थी।

**संदर्भ सूचीं :**


1. नूनं सते प्रतिवरं.....विदये सुवीरा।। ऋग्वेद् 2–17–26
2. अम्बितमें नदीतमें.....नस्कृधि।। ऋग्वेद 2–41–16
3. त्वे विश्वा सरस्वती.....दिदिडिढ नः।। ऋग्वेद 2–41–17
4. अग्ने.....सामपीतये।। यजुर्वेद 19–12
5. नार्य्यस्ते.....शम्यन्तुत्वा।। यजुर्वेद 23–36
6. हिरण्य हस्तमश्विना.....ऐरयतं सुदान।। यजुर्वेद 1–118–24
7. सधमादो द्युम्निनोराप.....तमास्वन्तः।। यजुर्वेद 10–7
8. अविर्मथ्याऽअविचोऽअग्निर्ग.....विश्वशम्भुवावावित्तादितिरूरूशर्म्म।। यजु. 10–9
9. अच्छा सिन्धु ..... मनुसंचरन्ती।। ऋग्वेद 3–33–3
10. ऋग्वेद 10–39–7, 10–40–10 वैदिक साहित्य, पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ काशी–1950
11. ऋग्वेद 1–126, 6–7 वां मंत्र
12. वैदिक साहित्य, पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, वाराणसी 1950 पृ. 74
13. वैदिक साहित्य, पं. रामगोविन्द त्रिवेदी,
14. .शर्मा व्यास, ''भारत का इतिहास'' प्रारम्भ से 1200 ईस्वी तक, पृष्ठ 131
15. डॉ. लता सिंहल, ''भारतीय संस्कृति में नारी'', पृष्ठ 132–133
16. अथर्वेद 1.5.18, डॉ. जयशंकर मिश्र, ''प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास'', पृष्ठ 344
17. सत्यकेतु विद्यालंकार, ''प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन'', पृष्ठ 213
18. अल्तेकर, ए.एस. 1956. द पोजीशन आफ विमेन इन हिन्द ू सिवलाइजेशन। मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।


***

# कर नियोजन एवं प्रबन्धन द्वारा आयकर-भार में कमी

*डॉ. रमेश चन्द्र वर्मा**

**सारांश (Abstract)**

प्रत्यक्ष करों में आयकर एक प्रमुख कर है जो भारत में 'आयकर अधिनियम 1961' के अनुसार लागू होता है। यह कर व्यक्तियों, संस्थाओं, व्यवसायिक फर्मों और हिन्दू अविभाजित परिवारों पर अलग–अलग दरों के अनुसार लागू होता है। व्यक्तियों के सन्दर्भ में कर की न्यूनतम दर 5 प्रतिशत एवं अधिकतम दर 30 प्रतिशत है और वित्तीय वर्ष 2020–21 से लागू आयकर के नये स्लैब में भी आयकर की दरें 5 प्रतिशत से 30 प्रतिशत की सीमान्तर्गत निर्धारित है। इन दरों से करदाताओं की आय पर आयकर की देय धनराशि का निर्धारण करने के दौरान आयकर अधिनियम में अनेक छूटों, बचतों और कटौतियों का प्रावधान किया गया है जिसका लाभ उठाकर करदाता अपने आयकर–भार में कमी ला सकते हैं परन्तु पिछले एक दशक के दौरान उनकी आयों में पर्याप्त बढ़ोत्तरी देखी जा रही है जबकि इस दौरान आयकर छूट व कटौतियों की सीमा प्रायः स्थिर है। इससे देय आयकर की मात्रा लगातार बढ़ रही हैं जिसमें कमी लाने के लिए करदाताओं को अपने आयकर नियोजन एवं प्रबन्धन द्वारा विविध तरीकों को अपनाने की आवश्यकता है। इससे न केवल आयकर–भार में कमी आएगी, बल्कि शुद्ध आय में भी बढ़ोत्तरी होगी।

**कुँजीभूत शब्द (Keywords) –** आयकर, प्रत्यक्ष कर, कटौतियाँ, न्यू पेंशन फंड।

**परिचय (Introduction) –**

देश और अर्थव्यवस्था के संचालन में करों का महत्वपूर्ण योगदान है जिन्हें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर–आय के रूप में सरकार आम जनता से प्राप्त करके देश की प्रगति में इस्तेमाल करती है। प्रत्यक्ष करों में आयकर एक प्रमुख कर है जो भारत में 'आयकर अधिनियम 1961' के अनुसार लागू होता है। यह कर व्यक्तियों, संस्थाओं, व्यवसायिक फर्मों और हिन्दू अविभाजित परिवारों पर अलग–अलग दरों के अनुसार लागू होता है। व्यक्तियों के सन्दर्भ में कर की न्यूनतम दर 5 प्रतिशत एवं अधिकतम दर 30 प्रतिशत है और वित्तीय वर्ष 2020–21 से लागू आयकर के नये स्लैब में भी आयकर की दरें 5 प्रतिशत से 30 प्रतिशत की सीमान्तर्गत निर्धारित है। इन दरों से करदाताओं की आय पर आयकर की देय धनराशि का निर्धारण करने के दौरान आयकर अधिनियम में अनेक छूटों, बचतों और कटौतियों का प्रावधान किया गया है जिसका लाभ उठाकर करदाता अपने आयकर–भार में कमी ला सकते हैं परन्तु पिछले एक दशक के दौरान उनकी आयों में पर्याप्त बढ़ोत्तरी देखी जा रही है जबकि इस दौरान आयकर छूट व कटौतियों की सीमा प्रायः स्थिर है। इससे देय आयकर की मात्रा लगातार बढ़ रही हैं जिसमें कमी लाने के लिए करदाताओं को अपने आयकरनियोजन एवं प्रबन्धन द्वारा विविध तरीकों को अपनाने की आवश्यकता है। इससे न केवल आयकर–भार में कमी आएगी, बल्कि शुद्ध आय में भी बढ़ोत्तरी होगी।

**अध्ययन का उद्देश्य, क्षेत्र एवं प्रविधि (Objectives, Scope and Technique of the Study)–**

अध्ययन का उद्देश्य कर–भार में लगातार हो रही वृद्धि में कमी लाने के विविध वैध उपायों की चर्चा करना है। साथ ही, आयकर नियोजन एवं प्रबन्धन के प्रयोग द्वारा आयकर–भार की सीमा घटाने और शुद्ध आय बढ़ाने के तरीकों की भी समीक्षा करना प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य है।

अध्ययन के क्षेत्र के अन्तर्गत वित्तीय वर्ष 2020–21 के लिए आयकर प्रावधानों का व्यक्तियों के सन्दर्भ में अध्ययन सम्मिलित है तथा अन्य श्रेणी के करदाताओं को अध्ययन से अलग रखा गया है। साथ ही, 'आयकर अधिनियम–1961' के अनुसार अध्ययन किया जा रहा है।

* एसोसिएट प्रोफेसर-वाणिज्य, पं.दी.द.उ.राजकीय महाविद्यालय, राजाजीपुरम, लखनऊ

एक आर्थिक विषय होने के कारण अध्ययन में शोध की अवलोकन एवं आर्थिक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है और आँकड़ें एवं सूचनाएँ द्वितीयक स्त्रोतों से प्राप्त किये गये हैं जिसमें इकोनोमिक सर्वे आफ इंडिया की रिपोर्ट, वित्त विधेयक 2020–21, केन्द्रीय बजट 2020 एवं आयकर अधिनियम पर उपलब्ध प्रामाणिक पुस्तकें सम्मिलित हैं।

**विश्लेषण एवं व्याख्या(Analysis & Explanation) –**

भारत में आयकर सरकार की आय का एक प्रमुख साधन है। इकोनामिक सर्वे आफ इंडिया के अनुसार, वर्ष 2018–19 में आयकर के रूप में सरकार को 11,18,000 करोड़ के राजस्व की प्राप्ति हुई जबकि वर्ष 2019–20 में यह 13,63,000 करोड़ रूपए हो गया। वर्ष 2019–20 के दौरान कुल करदाताओं की संख्या 8,22,00,000 तक पहुँच चुकी है जो यद्यपि जनसंख्या की दृष्टि से आनुपातिक रूप से कम है परन्तु शुद्ध धनराशि की दृष्टि से बहुत कम नहीं है। व्यक्तियों के सम्बन्ध में सरकार द्वारा निम्नलिखित दरों से आयकर प्राप्त किया जा रहा है –

**सामान्य व्यक्तियों पर आयकर दरें (वित्त वर्ष 2020–21)**

| आय रू0 | कर की दरें |
|---|---|
| 0–2,50,000 | शून्य |
| 2,50,000 – 5,00,000 | 5 प्रतिशत |
| 5,00,000 – 10,00,000 | 20 प्रतिशत |
| 10,00,000 से ऊपर | 30 प्रतिशत |

फरवरी–2020 के बजट में सरकार ने आयकर के एक नये स्लैब को भी वैकल्पिक रूप में लागू किया है जिसके साथ किसी प्रकार की कटौती उपलब्ध नहीं है किन्तु आयकर–दरें तुलनात्मक रूप से नीची है। यह स्लैब निम्नवत है –

| आय रू0 | कर की दरें |
|---|---|
| 0 – 2,50,000 | शून्य |
| 2,50,000 – 5,00,000 | 5 प्रतिशत |
| 5,00,000 – 7,50,000 | 10 प्रतिशत |
| 7,50,000 – 10,00,000 | 15 प्रतिशत |
| 10,00,000 – 12,50,000 | 20 प्रतिशत |
| 12,50,000 – 15,00,000 | 25 प्रतिशत |
| 15,00,000 से ऊपर | 30 प्रतिशत |

वित्तीय वर्ष 2020–21 से लागू उपरोक्त आयकर दरें पूरी तरह से वैकल्पिक हैं और इसके अनुसार आयकर की गणना करने के लिए सामान्यतः कोई भी कटौती आय में से नहीं घटेगी किन्तु धारा '80सी0सी0डी0–2' में नियोक्ता का अंशदान 14 प्रतिशत घटाया जा सकेगा।

**कौन सा स्लैब उपयुक्त है? (Which Slab is Suitable?)–**

वित्तीय वर्ष 2020–21 से पूर्व सामान्य व्यक्तियों के लिए आयकर का एक ही स्लैब था परन्तु इसी वर्ष केन्द्रीय बजट में उपरोक्त वैकल्पिक स्लैब भी लागू हो जाने के कारण दोनों में से किसको अपना करके करदाता अपना कर भार कम कर सकता है, यह अभी भी सभी के लिए शोध और जिज्ञासा का विषय बना हुआ है। पुराने स्लैब की दशा में धारा '16ए' में रू0 50,000 की वैधानिक कटौती, धारा '80सी0सी0डी0–1बी' में रू0 50,000 न्यू पेंशन स्कीम की अतिरिक्त कटौती और धारा '24बी' के अन्तर्गत गृह ऋण के ब्याज पर रू0 2,00,000.00 की अधिकतम छूट आदि ऐसे आकर्षण हैं जिनके कारण करदाता पुराने टैक्स स्लैब में बने रहना चाहते हैं। अतः जिन करदाताओं को उपरोक्त छूटें व कटौतियों या उसके अतिरिक्त भी अन्य कटौतियों का लाभ उठाते हुए अपने कर–भार में कमी

लाना है, उन्हें निःसंदेह आयकर का पुराना स्लैब अपनाना चाहिए। दूसरी ओर, ऐसे करदाता जिन्हें धारा '80सी' के रू0 1,50,000 के अतिरिक्त अन्य विशेष कटौती का लाभ नहीं उठाना है, उनके लिए निश्चित रूप से आयकर का नया स्लैब अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

**आयकर के पुराने स्लैब में उपलब्ध कटौतियाँ (DeductionsAvailable for Old Income Tax Slab)–**

आयकर के पुराने स्लैब का प्रयोग करने वाले करदाताओं को चैप्टर VIकी कटौतियों के अलावा अन्य भी कई कटौतियाँ उपलब्ध हैं जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं (1) धारा '16ए' के अर्न्तगत प्रत्येक वेतनभोगी कर्मचारी को वेतन से आय निर्धारित करने में रू0 50,000.00 की वैधानिक कटौती अनुमन्य है। (2) धारा '80सी' के अन्तर्गत जो करदाता भविष्य निधि में अंशदान करते हैं, अपने या परिवार के लिए जीवन बीमा प्रीमियम का भुगतान करते हैं राष्ट्रीय बचत पत्र, इक्विटी लिंक सेविंग स्कीम के म्युचुअल फंड में निवेश करते हैं, बच्चों के शिक्षण शुल्क का भुगतान करते हैं, गृह ऋण की वापसी करते हैं, न्यू पेंशन स्कीम में अंशदान करते हैं, ऐसे तमाम करदाताओं को अधिकतम रू0 1,50,000.00 की कटौती उपलब्ध है। (3) धारा '80सी0सी0डी0–2' के अन्तर्गत कर्मचारी के पेंशन फंड में नियोक्ता के अंशदान पर वेतन के अधिकतम 14 प्रतिशत की कटौती अनुमन्य है। (4) यदि कोई व्यक्ति अपने न्यू पेंशन फंड में अतिरिक्त धनराशि जमा करता है तो धारा '80सी0सी0डी0–1बी' के अन्तर्गत रू0 50,000.00 की अतिरिक्त कटौती दी जाती है। (5) धारा '80डी' के अन्तर्गत चिकित्सा बीमा प्रीमियम का भुगतान करने पर करदाता को रू0 25,000.00 एवं अभिभावक के लिए भुगतान करने पर अतिरिक्त रू0 25,000.00 की कटौती दी जाती है। यदि करदाता एवं माता–पिता वरिष्ठ नागरिक हैं तो अधिकतम छूट बढ़कर रू0 1,00,000.00 हो जाएगा। (6) धारा '80डीडी' के अन्तर्गत करदाता का कोई आश्रित यदि दिव्यांग है तो उसकी देखभाल हेतु रू0 75,000.00 (अति गंभीरता की दशा में रू0 1,25,000.00) की कटौती की जाती है। (7) धारा '80डीडीबी' के अन्तर्गत कैंसर, एड्स व कुछ अन्य गंभीर बीमारियों के इलाज पर हुए व्यय हेतु रू0 40,000.00 (वरिष्ठ नागरिक की दशा में रू0 1,00,000.00) की कटौती उपलब्ध है। (8) धारा '80ई' के अन्तर्गत बच्चों के शिक्षा हेतु लिए गये ऋण का ब्याज कटौती योग्य है। (9) धारा '80ईई' में कुछ नये श्रेणी के मकानों के क्रय पर गृह ऋण के ब्याज में धारा '24बी' में दी जाने वाली रू0 2,00,000.00 की कटौती के अलावा रू0 50,000.00 की अतिरिक्त कटौती दी जा रही है। (10) इसी तरह, इलेक्ट्रिकल वाहन क्रय पर ऋण का ब्याज रू0 1,50,000.00 तक धारा '80ईईबी' में घटाया जा सकता है। (11) धारा '80जी' में दान व चन्दे का भुगतान करने पर निर्दिष्ट शर्तों का पालन करने पर दान की धनराशि का 50 प्रतिशत या 100 प्रतिशत कटौती योग्य है यद्यपि कुछ दानों के लिए कुल आय के 10 प्रतिशत की अधिकतम सीमा भी निर्धारित है। (12) ऐसा करदाता जो स्वरोजगारी है या मकान किराया भत्ता न प्राप्त करने वाला वेतनभोगी है, धारा '80जीजी' के अन्तर्गत वेतन के 10 प्रतिशत से अधिक किराए के भुगतान पर कुल आय का 25 प्रतिशत या रू0 60,000.00 (जो कम हो) तक छूट ले सकता है। (13) बैंक ब्याज भी धारा '80टीटीए' के अन्तर्गत रू0 10,000.00 तक कटौती योग्य है किन्तु वरिष्ठ नागरिक की दशा में धारा '80टीटीबी' के अन्तर्गत रू0 50,000.00 तक कटौती योग्य है। (14) यदि करदाता दिव्यांग है, तो रू0 75,000.00 एवं गंभीरता की दशा में रू0 1,25,000.00 तक कटौती धारा '80यू' के अन्तर्गत दी जा रही है। इन सभी के अतिरिक्त, चैप्टर VIके धारा 80 के विभिन्न उपनियमों के अन्तर्गत अन्य अनेकों कटौतियाँ उपलब्ध हैं। (15) धारा '87ए' के अन्तर्गत यदि किसी करदाता की कुल आय रू0 5,00,000.00 से कम है, तो उसे देय आयकर पर रू0 12,500.00 की छूट प्राप्त है अर्थात उसे कोई कर नहीं देना होगा।

**कर–नियोजन एवं प्रबन्धन कैसे किया जाए? (How to do Tax Planning and Management?)–**

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि कर–भार में कमी करके करदाता न केवल कर देयताओं को कम कर सकते हैं बल्कि बची हुई आय का बेहतर प्रबन्धन करके अपनी कुल आय में वृद्धि भी कर सकते हैं। इसी उद्देश्य से कर नियोजन किया जाता है ताकि आयकर अधिनियम में उपलब्ध छूटों एवं कटौतियों का पूरा–पूरा उपयोग करते हुए कर देयता में कमी लायी जा सके। इसका लाभ प्रत्यक्षतः तो कर–भार में कमी के रूप में दिखता है किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से कर सम्बन्धी विवादों और कर–निर्धारण

लागतों में भी कमी आती है। करदाता कर–भार में कमी आने से प्राप्त अतिरिक्त धनराशि का विनियोजन अधिक उत्पादक एवं लाभदायक मदों में करके अपनी कुल आय एवं संपत्ति को अधिकतम कर सकते हैं। ये कुछ उपाय है जिनसे करदाता अपना कर नियोजन एवं प्रबन्धन कर सकते हैं –

1. **गृह ऋण का उपयोग**_–धारा '24बी' के अन्तर्गत उपलब्ध रू0 2,00,000 की कटौती का लाभ उठाने के लिए भवन को यथासंभव गृह ऋण लेकर ही क्रय अथवा निर्माण करना चाहिए। इससे उच्च आयकर स्लैब में आने वाले करदाता रू0 62,400.00 का कर बचा सकते हैं।
2. यदि संभव हो, तो धारा '80सी' में उपलब्ध रू0 1,50,000.00 की कटौती का लाभ उठाने के लिए किये जा रहे निवेश को इक्विटी लिंक्ड सेविंग स्कीम (ELSS) के म्युचुअल फंड में प्रयोग करना चाहिए क्योंकि अन्य निवेश से 6 प्रतिशत या 7 प्रतिशत का लाभ होता है जबकि म्युचुअल फंड में 12 प्रतिशत से 16 प्रतिशत तक का लाभ देखा गया है यद्यपि जोखिम भी अधिक होता है।
3. भविष्य की आर्थिक सुरक्षा हेतु न्यू पेंशन स्कीम के टियर Iखाते में निवेश करके रू0 50,000.00 की कटौती धारा '80सीसीडी–1बी' में लिया जा सकता है और इससे रू0 15,600.00 की कर देयता में कमी आती है। साथ ही, लंबे समय तक धन अवरूद्ध रहता है और परिपक्वता पर प्राप्त होने वाली 60 प्रतिशत धनराशि कर मुक्त होती है। अतः भले ही कोई करदाता, पुराने पेंशन स्कीम से आच्छादित है, उसे यह निवेश अवश्य करना चाहिए।
4. अपनी अतिरिक्त आय को बैंकों की सावधि जमा में रखने वालेउम्रदराज करदाताओं को पब्लिक प्राविडेन्ट फंड (PPF) को प्राथमिकता देना चाहिए क्योंकि बैंकों की सावधि जमा की तुलना में इस पर ब्याज 2 प्रतिशत अधिक होता है। साथ ही, ब्याज पर लगने वाला अधिकतम 30 प्रतिशत तक का आयकर बच जाता है क्योंकि इसका ब्याज कर मुक्त होता है।
5. युवा एवं व्यस्क करदाताओं को अपनी अतिरिक्त आय का एक हिस्सा भविष्य की आवश्यकताओं के लिए म्युचुअल फंड के यूनिट्स में निवेश करना चाहिए, चाहे नियमित किश्तों में अथवा एकमुश्त निवेश द्वारा। इसका लाभ यह है कि धारा 112 के अंतर्गत क्रय से एक वर्ष बाद इन्हें बेचने पर होने वाला दीर्घकालीन पूँजी लाभ रू0 1,00,000.00 तक प्रति वर्ष करमुक्त होता है एवं उससे अधिक लाभ होने पर न्यूनतम 10 प्रतिशत का कर उक्त अतिरिक्त लाभ पर देय होता है। यदि वे प्रति वर्ष रू0 1,00,000 की सीमा तक पूँजी लाभ का हिस्सा निकाल कर उसे पुनर्निवेश करते रहें, तो अन्त में पूँजी लाभ भी काफी कम आएगा और उन्हें मामूली कर देना पड़ेगा। यदि यही धनराशि वे बैंक की सावधि जमा में रखते हैं, तो अधिकतम 30 प्रतिशत तक उन्हें ब्याज पर आयकर देना पड़ता है जो बहुत ही अधिक है।
6. निजी क्षेत्र के वेतनभोगी कर्मचारी जिन्हें मकान किराया भत्ता नहीं मिलता है, वे धारा '80जीजी' के अन्तर्गत अधिकतम रू0 60,000.00 की कटौती का लाभ उठा सकते हैं जिससे प्रति वर्ष रू0 18,720.00 कर की बचत कर सकते हैं।
7. उद्‌गम स्थान पर कर की सही मात्रा सही समय पर भुगतान करने से भी धारा 234ए, 234बी, 234सी एवं 234डी के अर्थदण्ड व ब्याज के प्रावधान से बचा जा सकता है। इसी तरह, सही समय पर आयकर विवरणी दाखिल करके भी करदाता अर्थदण्ड एवं जुर्माने से बच सकते हैं जिससे अप्रत्यक्षतः उनके कर–भार में कमी आती है।
8. भविष्य निधि एवं जीवन बीमा की प्राप्तियाँ करमुक्त होती है, अतः सीमान्तर्गत इनमें निवेश से भारी मात्रा में कर को बचाया जा सकता है।

**निष्कर्ष (Conclusion)–**

वस्तुतः आयकर के प्रावधानों को समझना, उनका लाभ उठाना और इस आधार पर कर नियोजन व प्रबन्धन करके अपने कर भार को कम करना पूर्व की भाँति आज भी करदाताओं के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य है। इसी कारण, अधिकांश करदाता आयकर अधिनियम में उपलब्ध छूटों व कटौतियों का पूर्ण लाभ नहीं उठा पाते हैं और उनका कर भार बढ़ता रहता है। सही योजनाओं में निवेश न करने के कारण भी उनका कर भार बढ़ता रहता है। हाल के वर्षों में केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड ने भी आयकर

नियमों और प्रावधानों में उदारतापूर्वक एवं व्यापक रूप से बहुत सुधार किया है ताकि करदाताओं को आयकर नियमों का अधिक से अधिक लाभ मिल सके और वे अपना कर भार कम कर सकें। अतः आवश्यकता इस बात की है कि करदाता आयकर नियमों का भली–भाँति अध्ययन करके, भले ही उन्हें किसी वित्तीय विशेषज्ञ की सहायता लेनी पड़े, आयकर के उन प्रावधानों का लाभ उठाएं, जो उनके कर भार को कम करते हैं। साथ ही, निवेश करते समय उन योजनाओं में कोष हस्तांतरित करें जहाँ परिपक्वता धनराशि करमुक्त या न्यूनतम दर से कर योग्य होती है। यदि इस प्रकार से अपने आयकर का नियोजन एवं प्रबन्धन करते हैं, तो निश्चित रूप से अपने कर भार में करदाता कमी ला करके अपनी वास्तविक आय एवं संपत्ति बढ़ा सकते हैं।

## संदर्भ (Refrences) :


1. आयकर विधान एवं लेखे – डा0 आर0के0 जैन, एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन्स, आगरा (2019–20, 2020–21)
2. स्टूडेन्ट्स गाइड टू इनकम टैक्स – डा0 विनोद के0 सिंहानिया एवं डा0 मोनिका सिंहानिया, टैक्समैन पब्लिकेशन्स प्रा0लि0, नई दिल्ली (2018–19, 2019–20, 2020–21)
3. वित्त विधेयक, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार (2018–19, 2019–20, 2020–21)
4. इकोनोमिक सर्वे आफ इंडिया मिनिस्ट्री आफ फाइनेंस, गवर्नमेंट आफ इंडिया, नई दिल्ली (2018–19, 2019–20, 2020–21)
5. इनकम टैक्स लॉ एंड अकाउंट्स – डा0 एच0सी0 मेहरोत्रा एंड डा0 एस0पी0 गोयल, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा (2018–19, 2019–20, 2020–21)
6. यूनियन बजट्स आफ इंडिया, मिनिस्ट्री आफ फायनांस, गवर्नमेंट आफ इंडिया (2018–19, 2019–20, 2020–21)
7. मुद्रा बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं राजस्व – डा0 टी0टी0 सेठी, प्रकाशक–लक्ष्मी नारायन अग्रवाल, आगरा (2017)
8. रिपोर्ट्स आफ सेन्ट्रल बोर्ड आफ डायरेक्ट टैक्स, गवर्नमेंट आफ इंडिया (2019–20, 2020–21)


***

# हिन्दी साहित्य इतिहासकारों के नजर से ओझल महामति प्राणनाथ

*डॉ. शिवाजी**

महामति प्राणनाथ का जन्म 6 अक्टूबर, 1618 को गुजरात के जामनगर में हुआ था। इनका असली नाम मेहराज ठाकुर था। इनके पिता केशव ठाकुर जामनगर के दीवान थे, माता धनबाई एक धार्मिक महिला थी। इनके गुरू स्वामी देवचन्द्र थे। महामति को अनेक नामों से उनके चाहने वाले, सुन्दर साथ, अनुयायियों, विद्वतजनों द्वारा सम्बोधित किया गया– महामति प्राणनाथ ,विजयाभिनन्दन, पन्ना के महाराज निष्कलंक बुद्ध, खालविन्द आदि। छत्रसाल इनके शिष्य थे। महामति ने सन् 1698 ई0 में सांसारिक मोह माया को छोडकर परमधाम को प्राप्त हुए । महामति की वाणी कुलजम स्वरूप ग्रन्थ में संकलित है, जो प्रणामी सम्प्रदाय का पवित्र ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध है। महामति की वाणी को अमृतवाणी कहा जाता है। कुलजम स्वरूप में पूर्ण ब्रह्म परमात्मा का परम स्वरूप, तत्कालीन समाज में समन्वय की भावना निहित है। प्राणनाथ की वाणियों के संग्रह को कुलजम स्वरूप के अतिरिक्त अन्य तारतम्य वाणी स्वरूप के अतिरिक्त साहब, श्री मुख वाणी, निजानन्द सागर, कुलजम शरीफ ,प्राणनाथ वचनामृत आदि नामों से जानी जाती है। कुछ विद्वान इनके द्वारा रचित 14 ग्रन्थों को ही माना है लेकिन गुजराती भाषा में लिखित दो रचनाएँ– प्रकाश और कलश का भाषान्तर स्वयं महामति प्राणनाथ ने हिन्दुस्तानी में किया, इस प्रकार कुल ग्रन्थों की संख्या 16 हो गयी।

मध्यकालीन सन्त महामति प्राणनाथ आज के विकट संकट के दौर में जब विश्वग्राम की अवधारणा विकसित करने के नाम पर पूँजीवादी व्यवस्था अपने स्वरूप को बदलकर समाज में एक प्रकार से विभिन्न धर्मों के बीच कुछ चुनिंदा मल्टी नेशनल कम्पनियों के माध्यम से 'सर्वधर्म समभाव' बिगाड़ने का प्रयास कर रही हैं तो, ऐसे में प्राणनाथ का महत्व और अधिक बढ जाता है– उनके पंथ निरपेक्षता के कारण जिसमें उन्होंने हिन्दू, इस्लाम, ईसाई,बौद्ध अदि धर्म के माध्यम से 'बसुधैव कुटुम्बकम् 'की अवधारणा को साकार किया है। जो कवियों की मूल ध्वनि है– का समन्वय किया है।

यह दुःखद आश्चर्य होता है कि उत्तर मध्यकाल में प्राणनाथ जैसे सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण समाज सुधारक,सन्त को उचित विवेचन, मूल्यांकन नहीं किया। यही स्थिति कमावेश हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों की भी रही । इसके पीछे एक कारण प्रणामी सम्प्रदाय के रूढ़िग्राहिता भी कुछ हद तक जिम्मेदार है। सम्प्रदाय के आचार्यो एवं अनुयायियों ने प्रणामी वाणी को पूजनीय मानते हुए एक लम्बे समय तक उसे गोपनीय बनाये रखा था।

छत्रसाल के दरबारी कवि गोरे लाल (लाल कवि) जो प्राणनाथ के समकालीन भी थे– ने छत्र प्रकाश में इनके सम्बन्ध में लिखा तथा प्रणामी सम्प्रदाय के सिद्वान्तों पर प्रकाश भी डाला। हिन्दी इतिहासकारों के लेखन में उनके जीवन एवं साहित्य–लेखन के विषय में उदासीनता के साथ प्रमाणिकता का अभाव देखा जा सकता है।

सर्वप्रथम महामति प्राणनाथ के साहित्य को प्रकाश में लाने का श्रेय एफ0एस0 ग्राउज को है– जिन्होने "प्रणामी सम्प्रदाय" नामक लेख– जो कयामतनाम पर लिखा गया– का प्रकाशन 'एशिटायिक सोसाइटी आफॅ बंगाल' के जर्नल में कराया था। किन्तु इसमें प्राणनाथ से सम्बन्धित साम्रगी में अस्पष्टता एवं अधूरापन है।

'हिस्ट्री ऑफ लिटरेचर' में फैंक0 इ0के0 ने 'प्राणनाथी सम्प्रदाय' शीर्षक के अर्न्तगत जो विवरण दिया है वह मात्र ऐतिहासिक लेखक की मानसिकता को दर्शाता है, साहित्य इतिहास लेखन को नहीं।

हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने अपने शोध–प्रबन्ध 'हिन्दी काव्य' में निर्गुण सम्प्रदाय' में कुछ आलोचनात्मक टिप्पणी कर हिन्दी के विद्वानों का ध्यान खीचा। बड़थ्वाल ने महामति की एक रचना 'कलज शरीफ' का उल्लेख किया है यद्यिप इस ग्रन्थ का अब तक प्राप्त महामति के

---

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, आर.एम.पी.(पी.जी.) कालेज, सीतापुर

ग्रन्थों से मिलान करने पर उसमें बहुत कुछ असामनताएँ मिलती हैं। बाद में परशुराम चतुर्वेदी ने 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा' में प्रणामी पंथ तथा साहित्य का महत्वपूर्ण उल्लेख किया है, लेकिन वह भी प्रामाणिकता के अभाव में अधूरा सा प्रतीत होता है।

शिवसिंह सेंगर द्वारा लिखित 'शिव सिंह सरोज' में प्राणनाथ का उल्लेख 'प्राणनाथ बैसवारे के' रूप में करते हुए चलता बने हैं।

जार्ज ग्रियर्सन 'द मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' में प्राणनाथ को 1650 ई0 में बुंदेलखण्ड के शासक छत्रसाल का दरबारी माना है तथाा प्राणनाथी सम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं हिन्दू–मुसलमान को मिलाने वाले एक प्रयत्नकर्ता के रूप में देखा है। प्राणनाथ के ग्रन्थों की संख्या 14 मानी है। इसके अतिरिक्त ग्रियर्सन प्राणनाथ को 'विजयाभिनन्दन' नाम से एक स्वतंत्र कवि के रूप में भी उल्लेख किया है।

भारतेंदु के जीवनीकार बाबू शिवनन्दन सहाय ने मेहदावल की यात्रा का जिक्र करते हुए 'प्राण' नामक धर्म को प्रचलित बताया है– जिसे प्राणनाथ के प्रणामी सम्पदाय से जोड़कर देखने का प्रयास किया है, लेकिन तथ्यों के अभाव के कारण इसका स्पष्ट सम्बन्ध नहीं बता सके हैं।

मिश्र बन्धुओं ने अपने इतिहास ग्रन्थ 'मिश्र बन्धु विनोद' के 'प्रौढ़ माध्यमिक प्रकरण' के अर्न्तगत प्राणनाथ का उल्लेख कर यह बताया है कि इन्होंने ही पन्ना के महराज को पन्ना में हीरे की खानों की जानकारी तथा बुन्देंलखण्ड में जातीयता जाग्रत करने का भी काम किया। इसके अतिरिक्त मिश्रबन्धु अपने इसी ग्रन्थ के 'पूर्वालंकृत प्रकरण' के अर्न्तगत पुनः इन्द्रामती बाई का उल्लेख किया और इन्द्रामती को प्राणनाथ की पत्नी बताया तथा इन्हें हिन्दी में लिखने वाली दूसरी 'स्त्री–कवि' के रूप में माना है। इसके अलावा भी मिश्रबन्धुओं नें अपने इस ग्रन्थ में महामति को 'विजयाभिनन्दन' नाम से प्रस्तुत कर इनकी वाणियों को 'जोशवाणी', 'होशवाणी', 'दासवाणी' के रूप में गिनाया है।। इनके विवरण में महामति के 4 ग्रन्थों का उल्लेख है –जो प्रामाणिकताकी दृष्टि से संदिग्ध है। इन्द्रवती का उल्लेख भी भ्रमपूर्ण है।

गौरीशंकर द्विवेदी 'बुन्देल–बैभव– (द्वितीय भाग) में प्राणनाथ और विजयाभिनन्दन नाम से दो अलग अलग व्यक्तियों के रूप में प्राणनाथ का संक्षिप्त परिचय दिया है और प्राणनाथ द्वारा 'सब धर्म ग्रन्थों का सार अर्थात परिणाम' को लेकर स्थापित किये गये मत को 'परिणामी' मत कहा है। महामति को दी गयी पदवी 'प्राणनाथ' को उनके गुरू देवचन्द्र जी द्वारा दिया गया बताया है। इनके पत्नी का नाम इन्द्रामती बाई जो एक अच्छी कवियित्री थीं– को माना है इनके परिचयात्मक विवरणों में भी कई भ्रान्तियाँ रह गई हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'गोस्वामी तुलसीदास' में प्राणनाथ के सम्बन्ध में 'तुलसी की भक्ति पद्धति' पृष्ठ 8 पर लिखा है– "यहीं तक नहीं माधुर्य भाव की उपासना को लेकर कई प्रकार के सखी सम्प्रदाय भी चले जिनमें समय–समय पर प्रियतम के साथ संयोग हुआ करता है। एक कृष्णोपासक सम्प्रदाय स्वामी प्राणनाथ जी ने चलाया जो न तो द्वारका, वृन्दावन आदि तीर्थों को कोई महत्व देता है और न मदिरों में श्री कृष्ण की मूर्तियों का दर्शन करने जाता है। वह इस वृन्दावन और इसमें विहार करने वाले कृष्ण को गोलोक की नित्य लीला की एक छाया मात्र मानता है।" आचार्य शुक्ल इतना ही लिखने के बाद मौन धारण कर लेते हैं, इसके अतिरिक्त अपने इतिहास ग्रन्थ या अन्य कहीं कुछ भी प्राणनाथ के सम्बन्ध में नही लिखा।

डॉ0 रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में भक्तिकाल के अर्न्तगत स्वामी प्राणनाथ का जीवन परिचय दिया है, जिसमें अनेक त्रुटियाँ लक्षित की जा सकती हैं, जैसे – प्राणनाथ का जन्म (सं0 1710) एवं (मृत्यु सं0 1771) में प्राणनाथ के पिता का नाम खेमाजी बताया, मथुरा में देवचन्द्र का शिष्य बनना इत्यादि सब गलत है।रामकुमार ने अलग–अलग 'प्रणामी' और 'धामी' सम्प्रदायों को बताया है जो मूलतः एक है। महामति को छत्रसाल के विशेष कृपापात्र बताना भी उचित समझ में नही आता है। प्राणनाथ को रामकुमार ने 'निर्गुणवाद के बहुत समीप' माना है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास' में महामति के ज्ञानात्मक पक्ष को अत्यन्त छोटे विवेचन में समाप्त कर दिया है– उसमें भी तथात्मक सच्चाई कम ही दिखाई देती है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रो0 माताबदल जायसवाल ने महामति का जीवनवृत्त एवं उनकी रचनाओं का परिचय संक्षेप में किन्तु प्रामाणिकता के साथ 'हिन्दी साहित्य'(द्वितीय खण्ड) में दिया है जो एक प्राराम्भिक प्रयास मात्र ही कहा जा सकता है।

'हिन्दी साहित्य का कोश' (भाग– 2, संपा0 धीरेन्द्र वर्मा) में माताबदल ने प्राणनाथ का परिचय तथ्यपूर्ण एवं प्रामाणिक ढंग से लिखने का प्रयास किया है किन्तु कमियाँ यहाँ भी दृष्टिगत है– महामति का परमधाम गमन–चित्रकूट बताना जबकि मृत्यु पन्ना में हुई , जामनगर के कारावास प्रबोधपुरी या हबसा को प्रमोधपुरी बताना।

हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास (सोलह भागों) के सप्तम भाग में प्राणनाथ और उनके सम्प्रदाय का परिचय दो स्थानों पर 'प्रणामी या धामी सम्प्रदाय' के अन्तर्गत दिया गया है। इसमें प्राणनाथ का परिचय कुछ व्यापक आकार ग्रहण करता है फिर भी इसमें तमाम त्रुटियाँ, भ्रातियाँ, साक्ष्यों का अभाव खटकता है, जैसे– 'रास ग्रन्थ' को इसमें 'रस ग्रन्थ' के रूप में उल्लेख भ्रामक है। इसमें बीतक (जीवनी ) साहित्य पर भी प्रकाश डाला गया है जिससे प्राणनाथ के सम्बन्ध में कुछ पुष्ट और सही जानकारी मिल सके । इस प्रकार इसमें महामति से सम्बंधित तथ्यों में कुछ हद तक व्यापक जाँच पड़ताल की कोशिश की गयी है।

वर्तमान परिदृश्य पटल पर प्राण्नाथ तथा प्रणामी सम्प्रदाय पर डॉ0 मुखारया, डॉ0 कमला शर्मा ,डॉ0 विमला मेहता (प्रणामी मिशन दिल्ली), डॉ0 रणजीत साहा ने तथ्यों साक्ष्यों के साथ लेखन कार्य कर रहे हैं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल , बाबू श्यामदास दास, अयोध्या सिंह उपाध्याय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नलिन विलोचन शर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, बच्चन सिंह आदि जैसे इतिहासकारों की दृष्टि से महामति प्राणनाथ और प्रणामी सम्प्रदाय का ओझल हो जाना अत्यन्त दुभाग्यपूर्ण है। अतः साहित्य और इतिहास , धर्म – दर्शन और समाज , लोक–परम्परा, पंथनिरपेक्षता आदि को दृष्टिगत करते हुए हिन्दी में महामति प्राणनाथ और प्रणामी सम्प्रदाय पर शोध की आवयश्कता बनी हुई है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ :**


1. हिस्ट्री ऑफ लिटरेचर– फ्रैंक0ई0के0
2. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय– पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
3. शिव सिंह सरोज– शिव सिंह सेंगर
4. द मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान– जार्ज ग्रियर्सन
5. मिश्र बन्धु विनोद– मिश्र बन्धु
6. बुंदेल वैभव – गौरी शंकर द्विवेदी
7. गोस्वामी तुलसीदास– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
8. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास– डॉ0 रामकुमार वर्मा
9. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास– आचार्य चतुरसेन शास्त्री
10. हिन्दी साहित्य का कोश (भाग–2) –संपादक धीरेन्द्र वर्मा
11. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास (सोलह भागों में) का सप्तम भाग
12. 'प्रणामी मिशन' दिल्ली द्वारा प्रकाशित सम्बन्धित पुस्तकें एवं पंत्रिकाएँ


***

# पर्यावरणीय संरक्षण में लॉकडाउन की सकारात्मक भूमिका

*डॉ. चिन्तामणि देवी* *

वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व कोविड–19 से प्रभावित है विशेष रूप से कोरोना के नए वेरियेंट से लगातार जनमानस स्वास्थ्य सम्बन्धी गम्भीर समस्याओं से ग्रस्त है तथा इसी महामारी के दौरान ऑक्सीजन की अत्यधिक आवश्यकता महसूस की गई जिसकी कमी के कारण और समय पर नहीं मिलने के कारण लाखों की जनसंख्या तबाही का कारण बनी और समस्त विश्व में सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभाव दृष्टिगोचर हुए। यह हो सच्चाई है कि प्रकृति के साथ मानव को सामंजस्य बनाकर ही रहना पड़ेगा। ऑक्सीजन की कमी के कारण औद्योगिक उद्देश्यों के लिए ऑक्सीजन की आपूर्ति प्रतिबंधित हुई। भारत सरकार तथा उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा किए गये विभिन्न अन्य प्रयासों के साथ चिकित्सा प्रयोजनों के लिए औद्योगिक ऑक्सीजन के उपयोग से ऑक्सीजन की आपूर्ति पर दबाब कम हुआ है। ऑक्सीजन की मांग में वृद्वि की पूर्ति हेतु ऑक्सीजन उत्पादन के पूरे पारिस्थिक तंत्र को सुद्वद् करने की आवश्यकता है।

लॉकडाउन से पर्यावरण संरक्षण के कई उदाहरण परिलक्षित होते हैं, जिन्हें संक्षिप्त रूप में यहाँ प्रस्तुत करना उचित होगा जिससे सभी पारिस्थितिकी सम्बद्ध है। विशेष रूप से पर्यावरण संरक्षण में जल प्रदूषण संरक्षण, वायु प्रदूषण में कमी, ध्वनि प्रदूषण में कमी, जीव–जन्तुओं का संरक्षण शामिल है।

1. ध्वनि प्रदूषण में संरक्षण
2. वायु प्रदूषणमें संरक्षण
3. जल प्रदूषण में संरक्षण
4. जीव–जन्तुओं का संरक्षण

**1. ध्वनि प्रदूषण में संरक्षण–** ध्वनि मात्र मानवीय क्रिया द्वारा ही नहीं अपितु प्रकृति में पशु–पक्षी जीव–जन्तु विभिन्न प्रकार की ध्वनियॉ उत्पन्न करते हैं इनमें एक ओर पक्षियों का कलरव है तो दूसरी ओर शेर की दहाड़ तथा अन्य जंगली जानवरों की डरावनी ध्वनि इसी प्रकार जलवायु सम्बन्धी तव्वों में भी कभी मधुर ध्वनि का तो कभी डरावनी ध्वनि का अहसास होता है।

आधुनिक यांत्रिक युग में निरंतर बढ़ते कल कारखाने उद्योगधन्धे रेलगाड़ियों मोटर एवं अन्य स्वचालित वाहन जेट एवं हवाई जहाज की आवाज तो शोर का कारण बनते ही है आज तेज आवाज का संगीत, धार्मिक एवं सामाजिक समारोह जुलूस जनसभा आदि सभी ध्वनि प्रदूषण के कारणहैं। लॉकडाउन के वर्ष 2019–20 के दौरान विभिन्न प्रकार के शोर प्रदूषको में कमी निरंतर आकी गई है।

अधिकांश देशों में शोर की अधिकतम सीमा 75 से 85 डेसीबल की ध्वनि अत्यधिक तीव्र की श्रेणी में आ जाती है तीव्र ध्वनि अथवा शोर प्रदूषण की तेजी नगरों में अपेक्षाकृत अधिक तथा श्राृयी ग्रामीण अंचलों में कम होती है। शहरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में भी यातायात हल्की एवं भारी–वाहनों क्रमशः 70 डेसीबल, 100 डेसीबल रेलगाड़ी का शोर 110 से 130 डेसीबल के लगभग होता है जिसे लॉ्कडाउन में बन्द रहने के कारण शोर प्रदूषण में लगभग 70 फीसदी कमी आई। व्यापारिक क्षेत्रों और औद्योगिक क्षेत्रों में कम से कम 45–55 एवं 50–60 डेसीबल ध्वनि प्रदूषण होता है जिसें बन्द होन के बाद लगभग 20 प्रतिशत की कमी आई। रेस्टोरेंट होटल में 50 से 55 प्रतिशत डेसीबल की ध्वनि के स्थान पर 20 डेसीबल ध्वनि ऑकी गई।

कर्णप्रिय अर्थात कानों को प्रिय लगने वाली सुमधुरध्वनि गीटार, वीणावादन रेडियो टीवी इत्यादिपर 'अत्यधिक ध्यान' संकेन्द्रित होने के कारण मानसिक स्वास्थ पर अच्छा प्रभाव दिखाई दिया, जिससे भय जैसी बीमारियों पर काबू पाने में समर्थ हो सके तथा परस्पर वार्तालाप से मानसिक सम्बल प्रदान करने में वाद्य यंत्रों का भी बड़ा योगदान रहा है। जो कि शोरगुल प्रदूषण से मुक्ति दिलाते हैं। शहर के विभिन्न भागों में शोर स्तर में विषमता पायी जाती है। मुम्बई में सांताक्रूज हवाई अड्डे पर 104 डेसीबल तथा बाम्बे वी0टी, सीपी० टैंक चर्चगेट कोलाबा क्षेत्रों में स्वीकार्य सीमा से अधिक ध्वनि स्तर

* एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग, के.आर.पी.जी. कॉलेज, मथुरा

पाया जाता है जिसमें काफी कमी पाई गयी सिर्फ 20–21 दिनों के लॉकडाउन के समय प्रतिवंधित रहने पर दिल्ली में त्रिमूर्ति, दरियागंज चाँदनीचौक क्षेत्रों में 90 डेसीबल तक फतेहपुर सीकरी में 85 डेसीबल कनॉट प्लेस में 80 डेसीबल, मदुराई 75 डेसीबल तथा त्रिवेन्द्रम में 70 डेसीबल शोर प्रदूषण स्तर औसत रुप से मिलता है। कानपुर के विभिन्न भागों में 45 से 90 डेसीबल लखनऊ के कई भागों में 90–100 डेसीबल वाराणसी में 58 से 86 डेसीबलतक शोर स्तर रिकार्ड किये गये थे जो कि कोरोना काल में लॉकडाउन के समय लगभग 50 प्रतिशत ध्वनि प्रदूषण में कमी आंकी गई।

दैनिक कार्यों से शोर प्रदूषण में भी काफी कमी आंकी गई जिसमें चुनावों के प्रचार प्रसार पर रोक धार्मिक कथा कीर्तन में कमी विवाह उत्सवों में बैंड के प्रयोग में कमी खनिज उत्खनन में भी कार्य सहभागिता कम होने के कारण शोर प्रदूषण में कमी आई हैं। शोर के कारणदैनिक जीवन में जो सामाजिक तनाव मानसिक अस्थिरता कुण्ठा पागलपन आदि लगातार बने रहते थे उसमें काफी सुधार हुआ है।

**2. वायु प्रदूषण में संरक्षण :** लॉकडाउन के बाद इस अनलॉक में भी देशभर में लगातार प्रदूषण मुक्त हवा चल रही है। यही वजह है कि 110 शहरों के लोग इस समय स्वच्छ हवा में सांस ले रहे हैं। दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, चंडीगढ़, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश (वाराणसी को छोड़कर) कहीं की भी हवा फिलहाल खराब नहीं है। सिर्फ वाराणसी और तालचेर (ओडिशा) का एयर क्वालिटी इंडेक्स अपेक्षाकृत थोड़ा अधिक है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) ने देश के 112 शहरों का वायु गुणवत्ता सूचकांक (एयर क्वालिटी इंडेक्स) जारी किया। 110 शहरों का इंडेक्स 100 से भी नीचे रहा। इनमें 61 शहरों का इंडेक्स तो 50 से भी नीचे यानी अच्छा, जबकि 49 शहरों का एयर क्वालिटी इंडेक्स 50 से 100 के बीच यानी संतोषजनक दर्ज किया गया। दिल्ली–एनसीआर की बात करें तो फरीदाबाद और गुरूग्राम का एयर क्वालिटी इंडेक्स 50 से नीचे, जबकि दिल्ली, गाजियाबाद, नोएडा और ग्रेटर नोएडा का इंडेक्स 50 से 100 से बीच यानी संतोषजनक श्रेणी में रहा।

**तालिका – 01**

**लॉकडाउन के बाद भारत के प्रमुख शहरों मे वायु प्रदूषण मे सुधार–**

| शहर | ए. क्यू आई |
|---|---|
| लुधियाना | 33 |
| चंडीगढ़ | 37 |
| जयपुर | 43 |
| ग्वालियर | 45 |
| पटियाला | 47 |
| अमृतसर | 50 |
| आगरा | 52 |
| कानपुर | 60 |
| पटना | 60 |
| इंदौर | 69 |
| भटिंडा | 71 |
| लखनऊ | 72 |
| गया | 95 |
| तालचेर | 108 |
| वाराणसी | 164 |

स्त्रोतः– 02 सितंम्बर 2020 दैनिक जागरण

लॉकडाउन के समय वायु प्रदूषण में कमी इसलिए दृष्टिगत हुई कि विश्व के सभी देशों की सरकारों ने वाहनों के उपयोग में प्रतिबंध लगा दिया। रेलवे, वायुयान, जलयान आदि के उपयोग को भी

प्रतिबंधित कर दिया। सड़को पर वाहन सिर्फ आपात काल में उपयोग में लाए जा सके। सीधा प्रभाव वायु प्रदूषण पर पड़ने के कारण वायु प्रदूषण के तत्वों में कमी पायी गई, कारखानों पर भी रोक लगने के कारण वायुप्रदूषक तत्वों का स्तर गिर गया, जिससे वातावरण स्वच्छ होना प्रारम्भ हो गया। भारत में इसका प्रभाव कई महानगरों में देखा गया। जहाँ वायु की शुद्धता में 20–40 की वृद्धि दर्ज की गई। पिछले वर्षों से वर्तमान वर्ष में $No_2$ व Ph 2.5 के लेवल में कमी आई है। जो मार्च माह के बाद दर्ज की गई है जिसका कारण लॉकडाउन है।

$No_2$ के एकत्रीकरण में मुम्बई व दिल्ली जैसे महानगरों में वायुगुणवत्ता में कमी आई। दिल्ली की वायु गुणवत्ता में सुधार पाया गया । औद्योगिक उत्सर्जन और जीवाश्म ईधन के दहन में कमी के कारण पीएम 2.5 पी०एम. 10 की तीव्रता में लगभग क्रमशः 46 प्रति. और 50 प्रति. की कमी आई है। इसी प्रकार परिवहन सेवाओं के नगण्य उपयोग और वाहनों की आवाजाही पर प्रतिबन्ध के कारण नाइट्रोजन ऑक्साइड और कार्बन मोनोऑक्साइड की तीव्रता में क्रमशः 56 प्रति. और 37 प्रति. गिरावट दर्ज की गई है। वेंजिन के उत्सर्जन में भी 47 प्रति. कमी आई है। सल्फर डाई ऑक्साइड की तीव्रता में गिरावट अपेक्षाकृत कम है क्योंकि इसके मुख्य स्रोत के रूप में बिजली संयत्र अभी भी कार्य कर रहे हैं।

लॉकडाउन से पूर्व धूल कणों की मात्रा जो हवा में औसत 220 से 300 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर अक्सर हुआ करती थी। वह घटकर सीधे 50 पर आ गई है। नाइट्रोजन ऑक्साइड और सल्फर डाईऑक्साइड जैसे हानिकारक गैसों की मात्रा भी मानक से कई गुना कम हो गयी है।

**तालिका – 02**

**लॉकडाउन के समय 22 अप्रैल विश्व पृथ्वी दिवस पर वायु प्रदूषण में कमी**

| तत्व | मानक | औसत | वर्तमान |
|---|---|---|---|
| पी. एम–25 | 60 | 300 | 50 |
| एन ओ–2 | 80 | 180 | 14 |
| एस ओ–2 | 80 | 160 | 26 |

स्रोत–जनसंख्या, पर्यावरण और स्वास्थ्य।

21 दिनों के प्रथम लॉकडाउन के बाद इंडिया गेट के पास अधिक स्वच्छ वायु (वायु गुणवत्ता, सूचकांकों के आधार पर रिकार्ड की गई। देश के कुछ हिस्सों में लोगों ने यह दावा किया कि वर्षों बाद हिमालय काफी दूर से साफ दिखाई दे रहा था। गंगोत्री चोटी 300 कि.मी. दूर से दिखाई दे रही थी।

**3. जलप्रदूषण में संरक्षण –** भारत के प्रमुखनदियों का संरक्षण जलप्रदूषण की अधिकता जोकि गंगा नदी में थी। वह काफी मात्रा में कम हो गई। कानपुर में सबसे अधिक प्रदूषण का सामना करने वाली गंगा इन दिनों बिल्कुल स्वच्छ नजर आने लगी हैं। यमुना नदी एवं ब्रह्मपुत्र नदियों सहित अन्य नदियाँ भी संरक्षित हुई।

1. गंगानदी का संरक्षण
2. यमुना नदी का संरक्षण
3. ब्रह्मपुत्र नदी का संरक्षण

जहाँ अरबों रुपये के खर्च के बावजूद भी कई योजनाएं सफल परिणाम नहीं दिखा पाई। वही लॉकडाउन ने मात्र 20 दिन में ही स्वतः कार्यकल्प कर दिखाया। जिसका कारण फेक्ट्रियॉ एवं टेनरियॉ बन्द होने से मानव जनित अन्य कारकों से गंगा प्रदूषण कम हुआ है।जलकर विभाग का जलशोधन में खर्च घटकर आधा रह गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण भारत की नदियों के साथ ही विश्व की नदियों का जलभीस्वतः स्वच्छ हो गया। अतःपशु–पक्षी, मनुष्य कृषि इत्यादि कार्यों में स्वच्छजल शामिल हो गया ।

आज सम्पूर्ण विश्व कोरोना वायरस जैसी खतरनाक बीमारी के संक्रमण से जूझ रहा है। हम कही भी दृष्टि डालते है, तो हर तरफ एक अजीब सा वातावरण दिखाई देता है। सम्पूर्ण विश्व की गतिविधियों रूक सी गयी है। कोरोना वायरस के प्रकोप की रोकथाम के लिये 24 मार्च से लागू लॉकडाउन गरीब–गुरबों और प्रवासी मजदूरों के लिये आफत बनकर आया है लेकिन इसका एक

नतीजा हर तरह के प्रदूषण में भारी कमी के रूप में दिख रहा है, वातावरण ऐसे खिल उठा है, मानो लॉकडाउन उसके लिए वरदान बनकर आया हो। वातावरण ऐसे प्रतीत हो रहा है कि मानो प्रकृति अपने मूल्य स्वरूप में लौट आयी है, हवा पानी अपने शुद्ध–साफ स्वरूप में दिखने लगा है।

जल के बिना जीवन सम्भव नहीं है अतः यह एक अमूल्य संसाधन है। स्वच्छ जल की आवश्यकता दिन–प्रतिदिन इसकी आपूर्ति की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ रही है। अतएंव जल एक अनन्त नहीं वरन सीमित एवं नाजुक संसाधन है। पृथ्वी के इस जलमण्डल का 96.596 भाग समुद्रोके खारे पानी के रूप में मिलता है और केवल 2.5 प्रतिशत ही मीठा पानी है, उसका भी 68.7 प्रतिशत हिमानियों एवं हिम आवरण में संचित है। शेष 30.1 प्रतिशत भूमिगत 0.86 प्रतिशत परमाफ्रास्ट के रूप में एवं 0.34 प्रतिशत नदियों, झीलो आदि में विद्यमान है। इस प्रकार मानव उपयोग हेतु कुल जल भण्डार 0.008 प्रतिशत ही सुलभ है।

लॉकडाउन की वजह से देश की 1.3 अरब आबादी घरों में सिमटी हुई है वाहन और फैक्टिंयां पूर्णतयः बन्द होने के कारण निकलने वाला गन्दा जल नदियों में प्रवाहित नहीं हो पा रहा है। इसके अतिरिक्त तीर्थ नगरियों में मौजूद धर्मशाला होटल–लॉज से आने वाले सीवर और अन्य प्रदूषकों की कमी आयी है जिसे स्पष्टता नदियों में देखा जा सकता है।

कई वर्षों से गंगा को साफ करने की कवायद चल रही है। हजारो करोड़ो रू० खर्च करने के बाद भी गंगा की सफाई का परिणाम बहुत अच्छा नही आ रहा था किन्तु कोरोना वायरस से बचने के लिए लगाए गये लॉकडाउन का सकारात्मक असर नदियों पर देखने को मिल रहा है।

**4. गंगाः नदी का जल संरक्षण :** देश प्रमुख तीर्थ स्थल हरिद्वार और ऋषिकेश में गंगा जल एकदम साफ नीला दिखता है और वैज्ञानिक इस पीने योग्य बता रहे है। वैज्ञानिकों के अनुसार गंगा के साफ पानी की वजह इसके पानी में घुले डिसॉल्वड सॉलिड की मात्रा में आयी 500% की कमी है। ऐसा तीर्थ नगरी में मौजूद धर्मशाला होटल–लॉज से आने वाले सीवर और प्रदूषकों में कमी की वजह से हुआ है। 24 मार्च से लगे लॉकडाउन में क्या फर्क आया है, यह ज्ञात करने के लिए सात अप्रैल से अध्ययन किया गया इसके लिये देव प्रयाग से लेक र हरिद्वार तक के नमूने लिये गये, देहरादून, स्थित केन्द्रीय प्रयोगशाला मे नमूनों की जांच के बाद 14 अप्रैल को इसके आंकड़े प्रदर्शित किये गये। लॉकडाउन अवधि में गंगा के जल में चौकाने वाले सुधार हुए है। केन्द्रीय प्रयोगशाला के प्रभारी S.S. Pal के अनुसार लॉकडान अवधि में गंगाजल की गुणवत्ता में सुधार चौंकाने वाला है। गंगा के पानी में कहीं–कही A श्रेणी का परिवर्तन हुआ है जो पहले B श्रेणी का था।

केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड (CPCB) की ताजा रिपोर्ट के अनुसार गंगा का जल–उन शहरों में भी कम हुआ है जहाँ गंगा सर्वाधिक प्रदूषित थी नमूनों के अनुसार ऋषिकेश से लेकर हरिद्वार तक

फीकल कॉलीफार्म की मात्रा काफी कमी आयी है। कानपुर के आस–पास गंगा जल में भी काफी सुधार हुआ है। इसका मुख्य कारण नगर की टेंनरियों का बन्द होना है।

रियल टाइम मॉनिटरिंग में गंगा नदी का पानी 36 मॉनिटरिंग में से 27 में नहाने के लिये उपयुक्त माना गया है। वाराणसी में गंगा नदी में पानी की गुणवत्ता में 40–50 फीसदी तक सुधार हुआ है।

**गंगा नदी सुधार**

**तलिका –03**
**गंगा नदी में सुधार**

| **Pre-Lockdown** | | **Lockdown** |
|---|---|---|
| DO | 8.3 | 10 |
| BOD | 3.8 | 2.8 |
| FCC | 2.200 | 1.400 |

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि लॉकडान में Dissolved Oxygen (DO) में वृद्धि हुई और Biochemical Oxygen Demand (BOD) में काफी कमी आयी है।

BOD level जल में कार्बनिक पदार्थो के क्षय को प्रदर्शित करता है। BOD level में आयी कमी शुद्ध जल का सूचक है तथा DO में कमी अशुद्ध जल की गुणवत्ता प्रदर्शित करती है। यदि Dissolved Oxygen level घटता है तो नदी के जलीय जीवन को नष्ट कर देगा। तालिका के अनुसार Fecal Caliform Count (FCC) प्रारम्भिक जल की गुणवत्तामें भी सुधार हुआ है।

**तालिका –04**
**वाराणसी के प्रमुख स्थानों के नमूनें 24 मार्च से 20 अप्रेल 2020**

| Samne Ghat | | |
|---|---|---|
| Parameter | March 24 | April 20 |
| DO | 7.6 | 8.7 |
| BOD | 3.2 | 1.5 |
| Assi Ghat | | |
| Parameter | March 24 | April 20 |
| DO | 7.4 | 8.5 |
| BOD | 6.5 | 2.5 |
| Dashashwamedh Ghat | | |
| Parameter | March 24 | April 20 |
| DO | 7.2 | 8.5 |
| BOD | 4.6 | 1.4 |
| Raj Ghat | | |
| Parameter | March 24 | April 20 |
| DO | 4.5 | 7.2 |
| BOD | 9.5 | 7.5 |

Dissolved Oxygen level की वृद्धि तथा Biochemical Oxygen Demand level की कमी लॉकडाउन का एक वरदान है। लॉकडाउन को गंगा स्वच्छता अभियान में एक पाठ की तरह लेना चाहिए।

24 मार्च से 20 अप्रैल के लिये गये नमूनों के अनुसार जल की गुणवत्ता में काफी अन्तर पाया गया है।

सामनेघाट, अस्सी घाट, दशेरावामेध घाट व राजघाट के जल को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि लॉकडाउन से कितना परिवर्तन आया है। यहाँ के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि Dissolved Oxygen level 25.30 प्रतिशत बढ़ा है।

जबकि Biochemical Oxygen Demand level में 35–40 प्रतिशत तक की कटौती हुई है। इसके अतिरिक्त नदी की स्वयं साफ रखने की क्षमता में सुधार हुआ है।

आई.आई.टी. के प्रोफेसर तथा संकट मोचन फाउन्डेशन (SMF) के अध्ययक्ष ''प्रो. विश्वम्भर नाथ मिश्रा के अनुसारः– लॉकडाउन में गंगा जल में Dissolved Oxygen level में सुधार हुआ है।

SMF ने कई बार इसके नमूने लिये। नमूनो से ज्ञात हुआ है कि पानी में घुले Dissolved Oxygen की मात्रा में 500 प्रतिशत की कमी आयी है।

वाराणसी नगर का नाम वरूणा नदी और असी नदी की दो धाराओं के नाम रखा गया है जो गंगा नदी को स्वच्छ जल अर्पित करती है। लॉकडाउन में नगर की गतिविधियाँ रूकने कारण प्रदूषित जल में काफी कमी आयी है। जल की गुणवत्ता में सुधार के कारण यहां गंगा जैसे मूल में आ गयी हो, ऐसा प्रतीत होता है।

**यमुना नदी का संरक्षण :** लॉकडाउन का असर अन्य नदियों पर भी देखने को मिल रहा है यमुना नदी भी उनमें से एक है। दिल्ली बोर्ड के उपाध्यक्ष राघव चडढा के अनुसार ''यमुना नदी के पानी की गुणवत्ता में सुधार हुआ है जिसका मुख्य कारण दिल्ली के बन्द उद्योग धन्धे है किसी प्रकार के औद्योगिक कचरा यमुना में नहीं जा रहा है।

हरियाणा से आने वाला पानी भी स्वच्छ हो गया है और इसमें अमोनिया की मात्रा में काफी कमी आयी है।

**ब्रह्मपुत्रनदी का संरक्षण :–** लॉकडाउन का असर उत्तरपूर्वी राज्यों में प्रवाहित होने वाली ब्रहमपुत्र नहीं पर भी देखने को मिल रहा है। पहले इसका जल काफी मटमैला हुआ करता था किन्तु लॉकडाउन के बाद जल पूर्णतयः शुद्ध पाया गया है।

**ब्रह्मपुत्र नदी :** पर्यावरणविद और साउथ एशिया नेटवर्क ऑन डैम रिवर पीपुल (SANDRP) के एसोसिएट कोआर्डिनेटर 'भीम सिंह रावत' के अनुसार ''आर्गेनिक प्रदूषण अभी नदी के पानी में घुलकर खत्म हो जाता है, लेकिन औद्योगिक ईकाइयों से होने वाला रासायनिक कचरा घातक किस्म का प्रदूषण है जो नदी की खुद को साफ रखने की क्षमता को खत्म कर देता है। लॉकडाउन के दौरान

नदी को खुद साफ रखने की क्षमता में सुधार के कारण ही जल की गुणवत्ता में सुधार हुआ है। गंगा सहित अन्य नदियों में होता हुआ परिवर्तन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

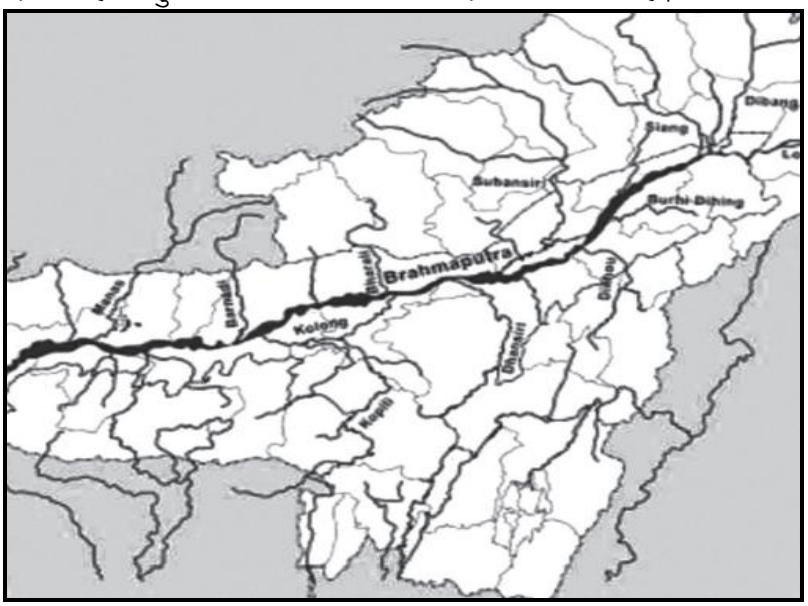


**जीव–जन्तु एवं जानवरों का संरक्षण :** विलुप्त हुए पक्षियों और जानवरों का पुनः दृष्टिगोचर होना। जानवर जंगलो से बहार स्वतंत्रता पूर्वक इधर से उधर निर्भय होकर विचरण कर रहे है। पक्षी अपने पसंदीदा स्थानों की ओर प्रस्थान कररहे हैं। जलीय जानवरों को उन स्थानों पर देखा जा रहा है। जिसे उन्होंने काई वर्षों पहले छोड़ दिया था। सभी पेड़–पौधे एवं वनस्पतियों भी स्वच्छ पर्यावरण के साथ जीव–जन्तु एवं मनुष्यों से सम्बंध स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो रही है।

जो ग्रामीण जनसंख्या मजबूर होकर गाँव से शहर की ओर पलायन कर गई और अधिक मजबूर होकर शहर से गाँव की और पुनः वापस लौट आई और काफी परेशानियों का सामना करते हुए। जैसा कि कोरोना महामारी के दौरान तीव्रगति से पलायन करती जनसंख्या अपने–अपने ग्रामीण इलाके में जनसंख्या में तीव्र वृद्धि का परिचायक है। अतः अधिक से अधिक जनसंख्या अपने ग्रामीण परिवेशमें ही रह रहकर गुजर बसर करने को प्राथमिकता दे रहे है। गाँवो के विकास में यही जनता साधक के रूप में कार्य कर रही है तथा गाँव की ओर ही प्रवास कर रहे है।

**निष्कर्षः** विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार ''शोक, भय, गरीबी पिछड़ापन के कारण मानसिक स्वास्थ् सम्बन्धी परिस्थितियाँ और भी बढ़ रही हैं। ''हर कोई एक दूसरे से भावनात्मक रूप से संलिप्त नहीं हो रहा है जिससे दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं, सामाजिकता को निभाना मुश्किल हो गया है। जिससे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव परिलक्षित होता है और मानसिकता गिरती नजर आ रही है।

कोविड–19 जैसी महामारी को रोकने के लिए गर्म होती पृथ्वी को (ग्लोबल वार्मिंग) बचाने का भरसक प्रयास करना चाहिए। बनों के कटान पर पूरी रोक लगानी आवश्यक है। आवश्यकता पारिस्थितिक स्वस्थ पारिस्थितिक इन महामारियों से लड़ने में हमारी मदद करता है जैव विविधता रोगों के पंचोजेंस का तेजप्रसार बनाती है। मानसिक स्वास्थ्य का संतुलन भी अत्यधिक शोचनीय हो गया है। कोरोना वायरस कोविड लोगों में अकेलापन, चिंता, तनाव व्यवहार में परिवर्तन दिमागी प्रतिक्रियाओं में 'काफी परिवर्तन कर दिया है। भय कुण्ठा तथा तनाव में निरंतर रहने से मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक दोनों रूपों से शिथिल पड़ जाता है। उसकी नकारात्मक सोच बढ़ती जा रही है। अतः इच्छाशक्ति को प्रबल बनाने के लिए अत्याधुनिक तकनीक का प्रयोग व्यवहार में लाना होगा। मौजूदा समय में अपनाया जा रहा आरोग्य सेतु ऐप इसका उदाहरण है। जो कोविड रोगी के सम्पर्क में आने पर आपको आगाह

करता है। लेकिन आई–आई–टी में कई नये प्रयास हो रहे है जो भविष्य में कोरोना से बचाव जाँच एवं उपचार के मार्गदर्शन में कारगर साबित होंगे। इतना ही नहीं इस प्रकार की किसी बीमारी के फैलाव को लेकर चेतावनी भी जारी कर सकेंगे। देश में और देश के भीतर–बाहर संक्रामक बीमारियों की निगरानी में आर्टिफिशियल इंटेलीजेंसी के इस्तेमाल को लेकर कई शोध हो रहे हैं। नीतिगत बदलाव लाने होंगे सबसे पहले स्वास्थ्य पर निवेश बढ़ाना होगा। कोविंड संकट के बाद भी जो कार्य घर से हो सकता है उसे जारी रखना में भी कमी आयेगी। यदि लोग सरकार द्वारा तय मानकों का पालन करते हैं तो बीमारी के फैलाव को नियंत्रित किया जा सकता है। कोरोना संक्ट में मास्क लगाने, दो गज की सामाजिक दूरी का पालन करने भीड़ वाले स्थानों पर नहीं जाने से काफी हद तक कोरोना महामारी का फैलाव रोका जा सकता है। ज्यादातर लोग खतरे को महसूस कर अपनी जिम्मेदारी को दिखा रहे हैं। मोटे तौर पर यही सावधानी रखनी होनी, कि कोरोना से बचना भी है। जो सर्वजनहितार्थ है।

जिस स्वच्छता और निर्मलता के लिये सरकार करोड़ो रूपये खर्च करके परिणाम नही ला सकी वह परिणाम लॉकडाउन से मिल गया, मछली और अन्य जीव पानी में साफ दिखाई देते है। यह बेशक महामारी की दहशत की घड़ी है लेकिन इससे हमे सबक भी लेना चाहिये ताकि प्रकृति भी साफ बनी रहे, और हमारा जीवन भी सुरक्षित रहे।

**सन्दर्भ :**

1. प्रतियोगिता दर्पण सामान्य अध्ययन, भारतीय अर्थव्यवस्था 2019–20.
2. डॉ उमाकांत एवं डॉ संजय सिंह : जनसंख्या पर्यावरण और स्वास्थ्य
3. डॉ संजय सिंह : लॉकडाउन से जल संसाधन की गुणवत्ता में सुधार
4. योजना
5. अर्थ साँख्यिकी
6. Horton, R.E. (1932) : Drainage Basin Charactoristics Trans, Amer. Geogphys. U vol. 14, pp. 350-61.
7. Jarvis, R.S. (1977) : Drainage Network Analysis Prog. Physical Geography vol, 1, pp. 271-95.
8. Jarvis, R.S. (1976) : Classification of Nested Tributary Basin in Analysis of Drainage Basin Shape, Water Resources Research vol. 12 p.p. 1151-64,
9. Chhibber, H.L (1948) : "The Drainage Pattern Observed in India and Adjacent Countries National Geographical Journal of India vol 2 (1).
10. Laws, B.C. (1968) : Mountain and Rivers of India 21st International Geographical Congress Publication Culcutta
11. Singh, R.I. (1971) : India Regional Geography, NGSI, Varanasi.

***

# चार्वाक के नीतिशास्त्र का महत्व - वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

***Dr. Dhanajoy Mahto****

नीतिशास्त्र अर्थात जिसमें मानव आचरण के आदर्श की मीमांसा होती है जिससे मनुष्य का कर्तव्याकर्तव्य और उसके कर्मो के औचितय अनौचितय का ठीक –ठीक निर्णय किया जा सके। चूँकि आचरण का आधार चरित्र है इसलिए इसे चरित्र विज्ञान भी कहा जा सकता है। 'Ethics' ग्रीक शब्द 'Ethics' से व्युत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है। रीति प्रचलन या आदत इसे नीति विज्ञान ( Science of morlit) भी कहा जाता है Morlity शब्द की उत्पत्ति 'Mores' से हुई है 'Mores' का भी अर्थ है प्रचलन या रीति अतः नीतिशास्त्र का सम्ब्ध प्रचलन रीति या आदत से है।

नीतिशास्त्र का सबसे बड़ा कार्य आत्मचेतन मानव प्राणियों को अपने निर्णयों की कसौटी अपने आप पर ही करने का प्रयास करना चाहिए। इसके साथ ही शुभ के विषय में सोचने के लिए प्रेरित करना है। उसकी महत्ता आदर्श उपस्थित करने में नहीं बल्कि व्यक्ति को चिन्तनशील तथा आत्म चेतन जीवन का महत्व बतलाने में और उस दिशा में प्रेरित करने में है। कार्य करते है।कितनी भी इच्छाऐं उठती रहती है इनमें संघर्ष होता है और मनुष्य को किसी एक प्रेरक अथवा इच्छा को चुन लेना पड़ता है। इस चुनाव के लिए उसे संकल्प करना पड़ता है संकल्प सभी करते है उसके बिना जीवन नहीं चल सकता परन्तु इस संकल्प की कसौटी क्या है, क्या होनी चाहिए, इस विषय में सभी नहीं सोचते है नीतिशास्त्र इसी चिन्तन हीन के विरूद्ध करता कार्य करता है।नैतिक व्यक्ति को चाहिए कि वह पूरी सच्चाई से उस कसौटी के विषय में सोचे और कसौटी को निश्चित करने के बाद उसी के अनुसार कार्य करें इस प्रकार का कार्य नैतिक है। फिर चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो नैतिकर्ता मनुष्य की सच्चाई पर निर्भर है। यह सच्चाई ही नैतिकता की वास्तविक आधार माना जा सकता है।

चार्वाक अर्थात जड़वादी प्राचीन भारतीय साहित्य में जड़वादी को ही चार्वाक कहा गया है। जड़वाद के अनुसार जड़ ही एकमात्र तत्व है और उसी से मन अथवा चेतना पैदा होती है सर्वदर्शनसंग्रह के प्रथम अध्याय में चार्वाक दर्शन का इन शब्दों में वर्णन किया गया है ''कोई स्वर्ग नहीं है कोई अन्तिम मोक्ष नहीं है न ही कोई पारलौकिक आत्मा है न चारों वर्णो की कर्म व्यवस्थाओं इत्यादि का कोई यथार्थ फल होता है। ''[1]चार्वाक के अनुसार पृथ्वी , जल, वायु और तेज ये चार तत्व है। इन चारों का ज्ञान प्रत्यक्ष से ही होता है इस तरह चार्वाक के अनुसार प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। । प्रत्यक्ष को एकमात्र प्रमाण मानने पर स्वभावतः हीवह जड़ को एकमात्र तत्व मानता है ईश्वर आत्मा स्वर्ग परलोक जीवन की नित्यता तथा अदृश्य आदि तत्व दिखायी नहीं पड़ते इसलिए उनको नहीं मानते । जड़वादी होने के कारण चार्वाक शरीर को अलग किसी अप्रत्यक्ष अपरिवर्तनीय और अमर आत्मा में विश्वास नहीं करते । उनको मानना है कि '' जब तक जीवन चलता हैं तब तक मनुष्य को सुख से रहना चाहिए। ऋण लेकर भी घी पीना चाहिये। जब शरीर एक बार राख बन जाता है तो वह फिर यहाँ कैसे लौट सकता है।''

'' यावज्जीवेत सुखं जीवेत ऋंण कृत्वां घृंत पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुर्नरागमनं कुतः।।''2

अतः सुख को ही जीवन का उद्देश्य बताया गया है सुख ही उपकार है और दुःख अपकार। दूसरे शब्दों में उपकार या सुख ही नैतिक मापदंड भी है। यदि किसी कर्म से उपकार होता हो तो वह नैतिक दृष्टि से अच्छा है और यदि अपकार तो खराब है, अर्थात यहाँ दूसरे का उपकार या अपकार नहीं बल्कि स्वार्थ सुख और स्वार्थ दुःख लगाया गया है। चार्वाक स्वार्थवाद है, अतः स्वार्थ सुख प्राप्त करना ही जीवन का लक्ष्य बतलाते है। पाश्चात्य विद्धान का मत है कि स्वार्थ से परार्थ नहीं सिद्ध हो सकता । चार्वाक का मत पाश्चात्य सुखवाद के निकृष्ट रूप से मिलता है उनका मानना है कि

* Assistant Professor, Department of philosophy, Murshidabad Adarsh Mahavidyalaya, Islampur, Murshidabad, West Bengal

शारीरिक सुख और मानसिक सुख में कोई अन्तर नहीं हैं क्योंकि आत्मा और शरीर में गुण का भेद नहीं है। सुखवाद के समर्थक विद्वान स्टुअर्ट मिल ने अपनी पुस्तक Utilitarionism के चौथे अध्याय में सुखवाद के पक्ष में समर्थन इस प्रकार किया हैः–'' और अब हमें निश्चय करना है कि बात वास्तव में यही है कि मानव जाति वस्तुतः अपने लिए उस चीज के अलावा कोई और नहीं चाहती जो उसे सुख देती है या दुःख को दूर करती है यहाँ स्पष्टतः हम तथ्य और अनुभव के प्रश्न में पहुँच गए है। जिसका उत्तर इस तरह के सभी प्रश्नों के उत्तरों की तरह प्रमाण पर आश्रित हैं इसका उत्तर केवल अभ्यास से पुष्ट आत्म चेतना और आत्म निरीक्षण से तथा दूसरों के निरीक्षिण से ही प्राप्त हो सकताहै। मुझे यकीन है कि इन प्रमाणों पर निष्पक्ष रूप से विचार करने पर यह सिद्ध हो जाएगा कि किसी चीज की इच्छा करना और उसे सुखद मानों उसकी अनिच्छा करना और उसे दुःखद समझना दो ऐसी बाते है। जिन्हें बिल्कुल भी पृथक नहीं किया जा सकता बल्कि यह कहना चाहिए कि जो एक ही तथ्य के दो भाग है एक ही मनोवैज्ञानिक तथ्य के बारे में दो भिन्न है, एक ही मनोवैज्ञानिक तथ्य के बारे में दो भिन्न प्रकार के कथन हैं किसी वस्तु को वांछनीय समझना उस अवस्था को छोड़कर जब उसके परिणामों के लिए वांछनीय माना जाता है और उसे सुखद समझना बिल्कुल एक ही बात है। किसी चीज को उसे छोड़कर किसी अन्य रूप में चाह करना शारीरिक और तत्वमीमांसीय दृष्टि हो तो असंभव है।''

चार्वाकों ने वेदों की बड़ी निन्दा की है। इनके मत के अनुसार वैदिक कर्मकाण्ड बेकार है। स्वर्ग और नरक पुरोहितों की कल्पनाएँहैं परलोक के लिए कोई प्रमाण नहीं है। चार्वाक ने कहा है दुःखों से मोक्ष की आशा करना मूर्खता है। '' आत्मा को शारीरिक बन्धन से मुक्त होना असम्भव है। दुःख तो शरीर के साथ लगा ही रहता है। दुःखों से पूर्ण मुक्ति की सम्भावना नहीं हो सकती । मुक्ति की चाहे वह शरीर से मुक्ति हो अथवा दुःख से पुरी तरह केवल मरने पर ही प्राप्त हो सकती है। चार्वाक का कथन है मरणम एवं अपवर्गः अर्थात मौत ही मोक्ष है। अतः सुख ही जीवन का परम लक्ष्य है। अर्थात काम एक साधन है। उसका उपार्जन भी जरूरी है। दुःख के साथ में सोचे और कसौटी को निश्चित करने के बाद उसी के अनुसार कार्य करे । इस प्रकार का कार्य नैतिक है फिर चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो । नैतिकता मनुष्य की सच्चाई ही नैतिकता को वास्तविक आधार माना जा सकता है।

चार्वाक अर्थात जड़वादी को ही चार्वाक कहा गया है। जड़वाद के अनुसार जड़वाद के अनुसार जड़ ही एक मात्र तत्व है और उसी से मन अथवा चेतना पैदा होती है। सर्वदर्शनसंग्रह के प्रथम अध्याय में चर्वाक दर्शन का इन शब्दों में वर्जन किया गया है। '' कोई स्वर्ग नहीं है। कोई अन्तिम मोक्ष नहीं है न ही कोई पारलौकिक आत्मा है न चारों वर्णो की कर्म व्यवस्थाओं इत्यादि का कोई यथार्थ फल होता है।'' चार्वाक के अनुसार पृथ्वी ,जल, वायृ और तेज ये चार तत्व है। इन चारों का ज्ञान प्रत्यक्ष से ही होता है। इस तरह चार्वाक के अनुसार प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है । प्रत्यक्ष को एकमात्र प्रमाण मानने पर स्वभावतः ही वह जड़ को एकमात्र प्रमाण मानने पर स्वभावतः ही वह जड़ को एकमात्र तत्व मानता है ईश्वर , आत्मा, स्वर्ग , परलोक जीवन की नित्यता तथा अदृश्य आदि तत्व दिखायी नही पड़ते इसलिए उनको नहीं मानते। जडत्रवादी तथा अदृश्य आदि तत्व दिखयी नहीं पड़ते इसलिए उनको नहीं मानते। जडवादी होने के कारण चार्वाक शरीर से अलग किसी अप्रत्यक्ष अपरिवर्तनीय और अमर आत्मा में विश्वास नहीं करते। उनको मानना है कि '' जब तक जीवन चलता है। तब तक मनुष्य को सुख से रहना चाहिये जब शरीर एक बार राख बन जाता है तो वह फिर यहाँ कैसे लौटे सकता है।

चार्वाक का सुखवाद सत्य परन्तु एकांगी है चर्वाक , स्वार्थवाद और सुशिक्षित चार्वाक मत स्थूल और परिष्कृत दोनों प्रकार के भारतीय सुखवाद का प्रतिनिधि है। सभी चार्वाक मतानुयायी एक ही तरह के नहीं थे कुछ धुर्त थे तो कुछ शिक्षित । जहां धूर्त चार्वाक पूर्णतः स्वार्थी होते थे और केवल सुख की ही अधिकधिक मात्रा को ही महत्व देते थे वहीं शिक्षित चार्वाक दूसरों के सुख तथा दुख की गुणवता को भी महत्व देते थे पर दोनों ही प्रकार के चार्वाक सुख के केवल मनोदैहिक स्वरूप की

स्वीकृति एवं महत्व देते थे।ये किसी भी तरह किसी भी प्रकार के आध्यात्मिक सुख को महत्व नहीं देते थें।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चार्वाक के नीतिशास्त्र की महत्ता को देखने पर यह प्रतीत होता है कि मनुष्य का जीवन सदगुण और पवित्रता की सिद्धि का सीधा सरल संघर्ष मात्र नहीं है। दुर्गुण और पाप की ओर भी मनुष्य के पैर ओर भी बहुत काफी फिसलते है। प्रत्येक व्यक्ति के नैतिक जीवन को स्वतः एक जगत माना जा सकता हैं कोई भी व्यक्ति कभी भी ऐसी किसी चीज की इच्छा या खोज नहीं करता जिसे वह शुभ नहीं समझता । बुराई को कभी कोई नहीं चाहता उसे जब भी कभी कोई चाहता है तबवह विशिष्ट परिस्थितियों के अधीन शुभ के साथ एकरूप बनाना नहीं सीख उसे सामाजिक कर्तव्य निरन्तर एक बाधा मालूम होते है और इस प्रकार वह सामाजिक कर्तव्य के विरूद्ध विद्रोह करने के लिए प्रेरित होता है। व्यक्तियों के सम्बन्ध में नैतिक निर्णय देते समय यह बहुत ही जरूरी होता है कि न केवल उनकी त्रुटियों और असफलताओं पर विचार किया जाय बल्कि उनकी सफलताओं और उनके प्रयत्नों पर भी विचार किया जाय।

**संदर्भ सूची :**

1. नीतिशास्त्र की रूपरेखा–डॉ0 रामनाथ शर्मा 1976.77, मेरठ
2. नीतिशस्त्र की ररूपरेखा (पाश्चात्य और भारतीय ) अशोक कुमार वर्मा 2017 , मोतिलाल बनारसीदास
3. नीति प्रवेशिका –जे0 एन0 मेकेन्जी 1972
4. नितिशास्त्र की रूपरेखा –डॉ0 रामनाथशर्मा ,मेरठ
5. नीतिशास्त्र के मूलसिद्धांत वेद प्रकाश वर्मा ,अलाईड पब्लिशर्स लिमिटेड
6. नीतिशास्त्र प्रो0नित्यानन्द मिश्र, मोतीलाल बनारसी दास

***

# वाल्मीकि रामायण में जाति व्यावस्था एक नैतिक दृष्टि

*संदीप शीट* *

आर्यों का मूलभूत विश्वास है कि जन्म से सब व्यक्ति समान नहीं होते। चारों वर्णों में विभाजन समानता के नहीं असमान के आधार पर किया गया था। सब से ऊंचा स्थान ब्राह्मणों का था दूसरा स्थान क्षत्रियों का था तीसरे स्थान पर वैश्य थे और चौथे स्थान पर शूद्र था प्रत्येक वर्ण के निश्चित कर्तव्य और नियम थे. सब प्रकार के धार्मिक कामों की जिम्मेदारी ब्राह्मणों पर शासन और युद्ध की क्षत्रियों पर, व्यापार की वैश्यों पर, और सेवा की जिम्मेदारी शूद्रों पर थी. खेती प्रमुख व्यवसाय था। पर यह किसी एक के लिए निश्चित नहीं था. फिर भी पहले तीनों ही भूस्वामी थे और शूद्रों से खेती कराते थे. तीनों वर्णों को ब्राह्मण की आज्ञा माननी पड़ती थी और शूद्र को तीनों वर्णों की सेवा करनी पड़ती थी।

वाल्मीकि के समय में केवल ब्राह्मण ही दो बार जन्म लेने वाले कहलाते थे. सारा ज्ञान व स्वर्ग की चाबी ब्राह्मणों के पास थी. उन की राय के अनुसार ही राजा राज्य करता था. ब्राह्मण का किसी तरह भी अपमान या निरादर करने पर राजा अपने आदमियों में तो आलोचना का पात्र ही बनता था. परलोक से भी हाथ धो बैठता था। ब्राह्मणों के क्रोध व शाप की तलवार हर समय सब के सिर पर लटकती रहती थी. क्षत्रियों को कुछ सीमा तक ज्ञान प्राप्त करने की अर्थात वेद पढ़ने की आज्ञा थी. उस से कुछ कम वैश्यों को भी थी पर शूद्रों को बिल्कुल नहीं थी। ब्राह्मण द्वारा शूद्र को वेद पढ़ाना उतना ही घोर पाप था जितना कि परस्त्री से संबंध रखना।

कोई भी व्यक्ति न तो अपनी जाति बदल सकता था न पेशा वर्णसंकरता राष्ट्रीय संकट मानी जाती थी. द्वापर युग में कृष्णावतार के समय वर्णसंकरता नरक का द्वार मानी गई है।

वर्ण के अनुसार ही अपराध के लिए अलग अलग दंड व्यवस्था का विधान था. ब्राह्मण के भले ही सब तरह के दंडों से मुक्त न रखा गया हो पर मृत्यु दंड से तो वह मुक्त ही था। "शास्त्र जानने वाले महात्माओं ने कहा था " ब्राह्मण सब प्रकार के दंडों से मुक्त है

वर्ण व्यवस्था के अतिरिक्त आर्यों में छुआछूत भी थी. अछूत या चांडाल आर्य समाज से बाहर थे। जाति से बहार निकाले गए लोगों ने चांडालों या अछूतों के साथ नाते जोड़ लिए। उन के लिए न कोई व्यवसाय था। न भोजन और न ही घर था। शायद उन का आस्तित्व जंगली जानवरों व कौओं जैसा ही था। वाल्मीकि के समय में ब्राह्मण का दोनों लोकों पर प्रभुत्व था।

वर्ण व्यवस्था व छुआछुत वास्वत में आर्यों के कुटिल बुद्धिवाले प्रतिभावानों की उपज है और हमारे देश को भयंकर जहरीली दो अनुपम भेटें है। ये दोनों हमारे देश में सामाजिक सामंजस्य व राजनीतिक एकता के मार्ग में रोड़े अटकाती रही और अंत में इस देश को नष्टभ्रष्ट कर दिया। पुराने चार वर्ण का स्थान अनगिनत झूठी सच्ची जातियों ने ले लिया है। हालांकि हमारे वर्तमान संविधान के अनुसार जातिवाद पर आधारित विशेषाधिकार समाप्त हो चुके हैं और छुआछूत एक दंडनीय अपराध है। पर फिर भी किसी न किसी रूप में ये दोनों अभिशाप आज भी जीवित हैं।

**शूद्र**

मनु के अनुसार शुद्र को किसी भी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान आदि करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि केवल सेवा करने मात्र से ही वह पापों से मुक्त हो जाता है। इस तरह मनु ने शारीरिक श्रम को ऊंचा स्थान दिया है। पर मनु के नियम तो कलयुग के लिए है, परंतु त्रेतायुग में राम के समय में यदि शूद्र किसी भी प्रकार का धार्मिक काम या तप करता था तो वह दंड के योग्य होता था, सारे युगों में शूद्र का काम है दूसरे वर्णों की सेवा करना।

---

* राँची विश्वविद्यालय, राँची

तप करने पर शूद्र दंड का भागी बनता था. शंबूक नामक शूद्र द्वारा तप करने पर राम ने उस का सिर काट डाला था। मनु के अनुसार शूद्र कभी गलती नहीं कर सकता जब कि अपने कर्तव्य से जरा सा विमुख होने पर भी ब्राह्मण चांडाल बन जाता है। रामयण के अनुसार ब्राह्मण कभी गलती नहीं कर सकता। वह बुद्धिजीवी तथा परजीवी था। मनु के अनुसार मालिक व मालकिन स्वयं भोजन करने से पहले नौकरों को भोजन करवाएं सेवकों या मजदूरों का पारिश्रमिक रोकना पाप है। रसोई में बनी चीजें सेवक को दिए बिना अंशमात्र खाना भी पाप है।

जब तक शूद्र अपने वर्ण के लिए बताए गए नियमों का पालन करना रहता था। अपने नियमों का पालन करना रहता था। अपने भाग्य से संतुष्ट रहता था और कोई महत्वकांक्षा नहीं पालता था. तब तक उस पर किसी प्रकार की कोई भी कठिनाई नहीं आती थी।

ईसा मसीह ने पेलेस्टाइन के गरीबों और दुर्दशाग्रस्त लोगों को आश्वासन दिया था कि मरने के बाद परलोक में सुख को भोगेंगे, पर भारत में शूद्र को इस तरह का भी कोई आश्वासन नही दिया गया।

**शंबूक**

ब्राह्मण के लाभ व महत्व के लिए ईश्वर ने इस संसार की रचना की थी. रामायण के अनुसार – दूसरे सारे वर्ण ब्राह्मण की सेवा के लिए थे। राजा भी ब्राह्मण के हाथों की कठपुतली मात्र थे।

एक ब्राह्मण ने अपने पुत्र मर जाने पर राम को सरेआम दोषी ठहराया। यदि राजा अपना कर्तव्य ठीक से पालन करता तो पिता के रहते पुत्र की मृत्यु न होती। पर रामराज्य में ऐसा होना अपवाद रूप था। अतः वसिष्ट की सलाह पर इस मामले पर सलाह देने के लिए आठ प्रमुख ब्राह्मणों की एक समिति बनाई गई। उन्होंने सोचविचार कर के बताया कि किसी शूद्र के तप करने के कारण ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु हुई है। यह एक महा अपराध था. राम के कठोर शासन में शूद्र ऐसा साहस कर सकता है। पर राम को ज्ञात नहीं था। सारे खोजबीन के बाद शिवालिक तराई में एक झील के किनारे शीर्षासन से तप करता हुआ शूद्र मिल ही गया और एक क्षण की भी हिचकिचाहट दिखाए बिना राम ने अपनी सुंदर तथा तीक्ष्ण तलवार से उस का सिर उड़ा दिया। उस के देवसदृश कार्य से स्वर्ग में देवता इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने बारबार पुष्पवर्षा की। उस की प्रशंसा करते हुए कहा कि "आप ने यह देव कृपा सदृश कार्य किया है" आप की कृपा से यह शूद्र स्वर्ग नहीं प्राप्त कर सकेगा।

स्पष्टतः शूद्रों के लिए स्वर्ग के द्वार ईश्वर ने बंद नहीं किए बल्कि देवताओं , ऋषियों और ब्राह्मणों ने उसे स्वर्ग में प्रवेश करने से रोका था, स्वर्ग पर तो उनका एकाधिकार था और वे उसे वैसा ही रचना चाहते थे। आठ ब्राह्मणों की समिति के प्रवक्ता नारद ने शास्त्र का प्रमाण दिया कि– अन्य वर्णों की सेवा ही शूद्र के लिए सबसे श्रेष्ठ धर्म है।

मारे गए शूद्र का नाम शंबूक था. रामराज्य की न्याय व्यवस्था की तुलना प्राचनी या आधुनिक किसी भी सभ्य राज्य से नही की जा सकती। सर्व सत्तावादी शासन में भसी अपराधी को अपनी सफाई देने का या अपना अपराध स्वीकार कर के क्षमा मांगने का अवसर दिया जाता है। पर शंबूक को यह अधिकार भी नहीं दिया गया।

बालि वध के बारे में कई भी उल्टे सीधे तर्क प्रस्तुत किए है पर एक निष्ठावान व निरपराध व्यक्ति शंबूक की इस क्रुर हत्या के बारे में काई भी तर्क बहाना बनाने असमर्थ है, काई भी बिना मरे स्वर्ग नहीं जा सकता इस लिए स्वाभाविक मृत्यु या आत्महत्या या किसी द्वारा मारे जाने के बिना शूद्र की इच्छा पूरी न हो पाती। ब्राह्मण के सिवाय कोई तप नहीं कर सकता। और युग धर्म की रक्षा करना राजा होने के नाते राम का कर्तव्य था ताकि समाज व्यवस्था भंग न हो अराजकता न फैले, शंबूक की इच्छा शास्त्र विरूद्ध थी. रामायण में मोक्ष शब्द का प्रयोग नहीं है। रामायण में एक बार भी मुक्ति या मोक्ष शब्द नहीं आता है। वास्तव में जीवात्मा और परमात्मा का मिलने की यह कल्पना उपनिषद काल की है. इसलिए दृढ़ता पूर्वक में नहीं कहता हैं कि राम ने शंबूक को मोक्ष दे दिया. वास्तव में शंबूक का लक्ष्य मोक्ष पना नहीं था स्वर्ग जा कर वहा रहना लक्ष्य था। राम अवतार को द्वारा मारे जाने के कारण शंबूक के स्वर्ग प्राप्ति हो गया एयसा नहीं वोल सकतो, कारण स्वर्ग देवताओं के लिये है। एसलिए स्वर्ग

में न जाने देने के लिए ही राम को यह घृणित अपराध करना पड़ा। यदि यह मान भी लें कि भले ही ऋषि व ब्राह्मणों के कहने पर राम ने उसे मार डाला और प्रायश्चित रूप में शूद्र को स्वर्ग दे दिया, तो जिन देवताओं ने स्वर्गप्राप्ति से हटाने के लिए राम द्वारा इस वध की प्रशंसा की थी. वे ही देवता उसे स्वर्ग में नहीं रहने देते।

शंबूक को ज्ञान था कि वह तप नहीं कर सकता. पर फिर भी उस ने शांतिपूर्ण तथा अहिंसक मार्ग द्वारा वन मे तप कर के उन नियमों का विरोध किया. और इस के परिमाणों के भुगतने के लिए भी तैयार रहा. जब राम ने उस की तप का उद्देश्य पूछा तो उसने निर्भयता से बता दिया वह मनुष्य होने के नाते वहां के अन्य निवासियों के बराबर के अधिकार व समान अवसर का दावा पेश कर के स्वर्ग जाने का अधिकार प्राप्त करना चाहता था और संभवतः उस ने सोचा कि रामराज्य में जो सुखसुविधा प्राप्त नहीं है वे स्वर्ग जा कर भोगूंगा. पर बेचारे को नहीं मालूम था कि स्वर्ग में उंच नीच व जातिवाद का बोलबाला है. शायद ये सब मालूम होता तो वह ऐसा कर अपनी जान न गंवाता. पर जान गंवाने के कारण वह समाज में प्रसिद्ध हो गया। और जातपात व छूआछूत के विरूद्ध प्रथम विद्रोही होने का गौरव पाया.

मेरा विचार से जाति प्रथा की रीढ़ तोडने वाले गौतम बुद्ध तथा छुआछूत से अवैध करा देने वाले महात्मा गांधी की प्रेरणा का स्त्रोत शंबूक को मानना चाहिए.

**संदर्भ सूची :**

वाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस गोरखपुर
रामायण रहस्य, अभिलाष दास, इण्डियन प्रेस, प्रथम संस्करण 1988
रामायण एक नया दृष्टिकोण, प,ह,गुप्ता, विश्व बुक्स प्राइवेट लि,
रामायणकथा में नैतिक मूल्य, विनोद बाला अ़रूण, प्रभात प्रकाशन, 2019

***

# वर्तमान छापा कला के परिप्रेक्ष्य में भारतीय कला

*डॉ. नीतू वशिष्ठ* *

कलाओं पर जब भी विचारती हूं, लगता है तमाम हमारी कलाओं का उत्स अंतर्मन संवेदनाएं हैं | इसलिए कलाएं अपने स्वरूप में इतनी विविधता, सुष्मिता और बहुतेरी बार विशिष्ट नवीनता लिए होती है कि उसमें प्रवेश करते ही वही रहने का मन करता है | यह कलाएं ही तो हैं जिन्हें मनश्चछु से देखा जाता है, आंखें होना ही वहां पर्याप्त नहीं है, जो कुछ आंखें देखती है उससे परे भी आपका मन वहाँ बहुत कुछ देख रहा होता है |

"बहरहाल भारतीय कला के इतिहास को रूप परिवर्तन के इतिहास से अभिहित किया जाता है | मानो वहां रूपों का अंतर्मन संवेदनाओं से उदात्त चित्रण होता है | व्यक्तिगत रूप से मैं यह मानती हूं कि भारतीय कला विश्व में अन्य कलाओं से भिन्न है यहां जो कुछ बनता है या जो कुछ दिखाया जाता है वह सादृश्य होता है | उसमें भौतिक तत्वों के साथ-साथ छाया प्रकाश, रेखात्मकता, अनुपात, घनत्व आदि के साथ-साथ मानवीय संवेदनाओं को दर्शाया जाता है | कलाकार रंग रेखाओं के साथ अंतर्निहित अपनी सोच को लयबद्ध एकरूपता जब प्रदान करता है तो वहां वह परंपरा का निर्वहन ही नहीं कर रहा होता बल्कि अपने सृजन के विशुद्ध आनंद की भी अभिव्यक्ति कर रहा होता है |"[1]

"अगर हम आज के दौर की बात करें तो आज कलाओं में प्रयोग की अहम भूमिका है, कलाकार नित नए-नए प्रयोग कर कलाओं को एक नए रंग में रंगता चला जा रहा है | समकालीन कलाओं में एक नया प्रयोग छापा कला के रूप में हुआ है | अंतःकरण के उद्गारों की अभिव्यक्ति को सशक्त जीवंत रूप देकर नवीन प्रयोगों को अपनाना ही कलाकार का कर्तव्य है | इन प्रयोगों से प्राप्त अनुभव उनकी कला को उत्कृष्टता की ओर ले जाते हैं |

छापा कला को अंग्रेजी में 'ग्राफिक आर्ट' कहा जाता है | इसे ग्रीक भाषा में 'ग्राफिको' तथा लेटिन भाषा में 'ग्राफिक्स' कहा जाता है | 'ग्राफी' शब्द के साथ अनेक शब्द जुड़े हैं जैसे लिथोग्राफी, फोटोग्राफी, कैलीग्राफी, कोरयोग्राफी आदि इन सभी माध्यमों द्वारा अक्षर, चिन्ह, आकृति, ड्राइंग का आलेखन होता है | विश्व में ग्राफिक्स शब्द आज छापा कला का पर्याय बन गया है |"[2]

समय के साथ-साथ कला में आशातीत परिवर्तन आया है | आज के युग में हर कलाकार यही प्रयत्न करता है कि वह कुछ ऐसा रचनात्मक कार्य करें जो परंपरागत कला शैलियों से हटकर हो जिससे उसकी अपनी निजी व्यक्तिगत पहचान बन सके | इसी रचनात्मकता के कारण आज समकालीन कलाकारों ने छापा चित्रण की परंपरागत पद्धतियों से भी नित नूतन प्रयोग कर उत्कृष्ट कलाकृतियों को जन्म दिया है |

तकनीक व माध्यम की दृष्टि से छापा चित्रकला का एक समृद्ध व वैभवशाली इतिहास है | भारतीय चित्रकला प्रारंभ से ही समाज का दर्पण रही है कलाकार चाहे किसी भी युग का हो वह माध्यम की खोज करता रहा है | इस आधार पर तकनीक और माध्यम की दृष्टि से भारतीय छापाकला न केवल पुरातन मान्यताओं का अवलोकन है अपितु संयोजन का एक मौलिक स्वरूप भी है |

---

* विभागाध्यक्ष - चित्रकला विभाग, श्री कुन्द-कुन्द जैन स्नात्कोत्तर, महाविद्यालय खतौली, मुजफ्फरनगर

"आज के नवीनतम युग में छापा कला की एक पद्धति 'कोलाज' प्लेट में कार्य करने वाले मोन्टगुमरी में जन्मे कलाकार "कंवल कृष्ण" ने जाना कि प्रयोगात्मक विधि अपनाने में आकस्मिक घटनाओं का होना अवश्यंभावी है | यह पहले कलाकार थे जिन्होंने इस प्रश्न को कि घटनाएं क्यों होती है और उनको किस तरह अपनी कार्यविधि को नया आयाम प्रदान किया | उन्होंने ही सर्वप्रथम कोलाज प्लेट बनाई और उसे इंटैग्लियो पद्धति से अम्लांकित प्लेट की तरह छापा | उन्होंने बोर्ड व बनावट वाले पेपर को गोंद से चिपका चिपका कर छपाई के लिए सतह बनाई, यह प्लेट एक प्रकार से कोलाज होता है जिस पर रोलरों के द्वारा विभिन्न रंगों की स्याही लगाकर छापा बनाया जाता है | इस तरह वह रूढ़ी और स्वयं विकसित प्रक्रिया के उत्तम मिश्रण से एक नया प्रभाव पाने में सफल हुए |"[३]

"एक अन्य नवीन छापा चित्रकार सोमनाथ होर का नाम उल्लेखनीय है | उन्होंने लुगदी छापा चित्र में कार्य किया, सीमेंट और प्लास्टर ब्लॉक तथा कागज की लुगदी के साथ नवीनतम परीक्षण किए हैं | इसके लिए सबसे पहले समतल सतह की 1 इंच मोटी मिट्टी की पट्टियां लेकर उस पर उपकरणों की सहायता से चित्रांकन उकेरा जाता है | इस प्रकार बनी समतल सतह से सीमेंट के घोल द्वारा उसका सांचा बनाया जाता है | सूखने के उपरांत सीमेंट का यही सांचा प्लेट का कार्य करता है जिस पर कच्चे पेपर की लुगदी की तह बिछाकर अंत में अनेक प्रकार के हस्त कौशल से छापा चित्र बनाए जाते हैं |"4

"एक अन्य छापा चित्रकारों में अनुपम सूद का नाम बहुतायत से लिया जाता है | 1944 में होशियारपुर में जन्मे अनुपम सूद ने शिक्षा तो पेंटिंग में ग्रहण की किंतु सृजनात्मक कार्य की शुरुआत की तो एचिंग का चुनाव किया | जब अनुपम सूद को छापा कलाकार के रूप में स्वीकृति मिलने लगी तो इससे जुड़ाव और गहरा हो गया | अनुपम सूद ने माना कि एक बार छापा कला से जुड़ कर उससे दूर जाना उनके लिए नामुमकिन है | अनुपम सूद के छापा चित्रों में व्यक्ति की मानसिक जकड़न व कसमसाहट है जो मनोवैज्ञानिक स्तर पर आज की विसंगत परिस्थितियों का खुलासा है, एक गुमसुम मौन प्रतिक्रिया जो चेहरों से पढ़ी जा सकती है | अनुपम के चित्रों में बेचैनी व भय आकृतियों की भाव भंगिमाओं से आभासित होता है | इसके अलावा इन आकृतियों के चेहरों पर व्याप्त खामोशी और उदासी की हल्की सी झलक देखी जा सकती है |"5

"अनुपम सूद ने अपनी संरचनाओं में फोटो एचिंग्स के साथ स्क्रीन का उपयोग बड़ी ही सुंदरता से किया और उस पर रेजिन पाउडर द्वारा हल्के-गहरे एक्वाटिंट के बाद शरीर का त्रिआयामी पक्ष उभारने के लिए वह स्क्रैपर के प्रयोग द्वारा आकृतियों में आयतन की संवेदनात्मक उपस्थिति को उजागर कर देती है | 'ट्रिब्यूट' नामक छापा चित्र को अनुपम ने चार रंगों में छापा है जिसमें प्रत्येक रंग के लिए उन्होंने अलग प्लेट का प्रयोग किया है | उनके काम में फोटोग्राफ का प्रयोग भी खूब देखा जा सकता है |

अनुपम के चित्रों की अपनी ही पहचान है | उनमें एक अद्भुत रहस्यमयता और छायाओं का सुंदर प्रयोग हुआ है | उनमें नाटकीय प्रकाश और क्रीड़ा सहजता से विद्यमान रहती है | आकृतियों की लयात्मकता में एक अद्भुत निस्तब्धता है |"6

आज के युवा कलाकार बड़े उत्साह व लगन से काम करते हुए कुछ न कुछ नया खोजने की होड़ में जुटे हुए हैं | इसी कारण आज कला इतनी विस्तृत, असीमित व कल्पनातीत हो गई है जिसका प्रत्यक्ष रूप आज भी असंख्य कला दीर्घाओं में मिलता है | आज कलाकार के सामने माध्यमों तथा

प्रयोगों की अपार संभावनाएं खुली है जिसमें देश के अनेक छापाकार उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं और वह अपनी कृतियों में या तो क्षेत्रीय अर्थ भेद समाहित किए हुए हैं अथवा वह कंप्यूटर युग के साथ पंक्तिबद्ध हैं | पाब्लो पिकासो ने कहा है कि "विश्व में कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है परंतु कला अमर रहेगी जब तक संसार में मनुष्य का अस्तित्व है कला का भी अस्तित्व रहेगा |

**संदर्भ ग्रंथ सूची :**

1. समकालीन कला पत्रिका, अक्टूबर 2012, अंक 13, पृष्ठ संख्या- 13
2. श्याम शर्मा, काष्ठ छापा कला, पृष्ठ संख्या 2, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना
3. भारत की समकालीन कला एक परिप्रेक्ष्य, प्राणनाथ मांगो, पृष्ठ संख्या- 29
4. विनोद भारद्वाज, आधुनिक भारतीय कला का विकास, आधुनिक कला कोष, पृष्ठ संख्या- 293
5. डॉक्टर सुनील कुमार, भारतीय छापा चित्रकला, पृष्ठ संख्या- 92, 93 भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली
6. भारत की समकालीन कला एक परिप्रेक्ष्य, प्राणनाथ मांगो, पृष्ठ संख्या- 193

***

# आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की साहित्यिक संवेदना

*डॉ. शिखा तिवारी**

हमारे हिन्दी की साहित्य–साधकों का जीवन घोर संघर्षमय रहा है। चाहे वो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हों, प्रेमचन्द्र हों, प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी हों अथवा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबू श्याम सुन्दर दास या आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी। यह संघर्ष ही जिजीविषा बढ़ाता है और कुछ बेहतर करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

इन्हीं मूर्धन्य निःस्वार्थी, निष्काम साहित्य–साधना रत मनीषियों की श्रेणी में अग्रपंक्तिबद्ध नाम है– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का। आचार्य शुक्ल नौ वर्ष की कोमल आयु में ही मातृहीन बालक हो गए। उनका बचपन अपनी पितामही की गोद में बीता। उनकी दादी का अगौना गाँव के राजपरिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसी कारण इन पर उस राजसी परिवेश का प्रभाव पड़ा तथा अरबी, फारसी तथा अंग्रेजी भाषा के संस्कारों ने इनके व्यक्तित्व–निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। घर पर विमाता आईं। पिता बालक से विमुख हो गए और उनके व्यवहार में कसैलापन आ गया। उनके पिताजी मुस्लिम और अंग्रेजी सभ्यता के सम्पोषक थे। बालक शुक्ल हिन्दी की किताबें छुप–छुप कर पढ़ते। विवाह हुआ और पत्नी के साथ भी पारिवारिक वातावरण क्लेश और संत्रास का ही रहा। ऐसा ही कुछ प्रेमचन्द्र को भी झेलना पड़ा है।

1903 में पं0 बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने शुक्लजी को आनन्द कादम्बिनी के संपादन के लिए बुला लिया फिर बाबू श्यामसुन्दर दास जी ने 'हिन्दी शब्द सागर' के सम्पादन के लिए। कोश के सन्दर्भ में काम करते–करते शुक्लजी बाबू श्यामसुन्दर दास से घनिष्ठतर होते गए। 1919 में बी. एच. यू. में अध्यापक पद पर उनकी नियुक्ति हुई फिर उन्होंने पीछे मुड़कर न देखा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी–साहित्य के विख्यात कृति साहित्यकार हैं। अन्वेषक, इतिहास–लेखक, आलोचक, कवि, कहानीकार, निबन्ध–लेखक, सम्पादक, कुशल वक्ता और सफल अध्यापक तथा अनुवादक आचार्य शुक्ल को भला कौन नहीं जानता? हिन्दी साहित्य ऐसे मनीषी आचार्यों का सदैव ऋणी है।

शुक्ल जी का निबन्धकार और समालोचक का व्यक्तित्व एक दूसरे का पूरक है। निबन्धों में उनकी समीक्षा के सिद्धान्त निर्मित हुए और आलोचनाओं में उनका व्यावहारिक रूप मिला है। आ. शुक्ल की सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दो तरह की समीक्षा है। उनका सैद्धान्तिक समीक्षा ग्रन्थ 'रसमीमांसा' है और व्यावहारिक आलोचना 'चिन्तामणि' के निबन्धों और तुलसी, जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, 'भ्रमरगीतसार' की भूमिका, और 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में प्रकट हुआ है।

उनकी समीक्षा सिद्धांत के केन्द्र में 'रसवाद' है। उसका उन्होंने वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक दोनों दृष्टियों से चिन्तन किया है। भारतीय काव्यशास्त्र की अतल गहराईयों में घुसकर वे मुक्ता ढूँढ़ लाए हैं। अपने 'रसमीमांसा' ग्रन्थ में उन्होंने 'काव्य की साधना', 'काव्य और स्मृति प्रसार', 'काव्य और व्यवहार', 'सौन्दर्य', 'चमत्कार', 'काव्य के विभाग', 'काव्य का लक्ष्य', 'रस', 'रूपविधान', 'शब्दशक्ति', 'ध्वनि' आदि पर खूब अच्छी तरह विचार किया है।

उन्होंने 'रस परिपाक' के लिए 'विभाव–विधान' को मूल वस्तु माना है। विभाव में आलम्बन को मुख्य वस्तु माना है और आलम्बन को 'लोकधर्मी' होना नितान्त आवश्यक माना है। उन्होंने बाहरी और भीतरी सौन्दर्य तथा रूप–सौन्दर्य और कर्म–सौन्दर्य के मेल पर जोर दिया है। वे लिखते हैं–

''भावों की प्रक्रिया की समीक्षा से पता चलता है कि उदय से अस्त तक भावमंडल का कुछ भाग तो आश्रय की चेतना के प्रकाश में रहता है और कुछ अन्तस्संज्ञा के क्षेत्र (Subconscious region)

* एसोसिएट प्रोफेसर, डी सी एस के पी जी कॉलेज मऊ

में छिपा रहता है। संचारी भावों के संचरण काल में कभी–कभी उनके स्थायी भाव कारण रूप में अन्तस्संज्ञा के भीतर पड़ जाते हैं।''[1]

उन्होंने रस की मध्यम और निकृष्ट कोटियाँ भी निर्धारित की है। उन्होंने 'रसभास', 'भावाभास' आदि पर विचार किया है। 'वे विभावादि की रूपविधान', 'कल्पना' द्वारा मानते हैं।[2] वे सौन्दर्यानुभूति को रसानुभूति के स्तर पर देखते हैं। सौन्दर्य की गत्यात्मक स्थिति उन्होंने स्वीकार की है और उन्होंने सौन्दर्य को मंगल से जोड़ा है। उन्होंने 'द्वन्द्व' सौन्दर्य और 'विरूद्धों' का सामंजस्य' पर जोर दिया है। पहली बार उनके यहाँ यह टर्म प्रयुक्त हुआ है। यथा– ''लोक में फैली दुःख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनन्दकला जो शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्‌भुत मनोहरता, कटुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचण्डता में भी गहरी आर्द्रता साथ लगी रहती है। विरूद्धों का यही सामंजस्य कर्म क्षेत्र का सौन्दर्य है।''[3]

उन्होंने गत्यात्मकता के अभाव में वास्तविक सौन्दर्य की स्थिति नहीं मानी है। काव्य के क्षेत्र में उन्होंने 'आनन्द' की सिद्धावस्था' से बेहतर 'आनन्द की साधनावस्था को' माना है। ''उन्होंने कविता को अभिव्यंजना माना है।''[4] उन्होंने करूणा को बीजभाव माना है क्योंकि इसी के द्वारा रक्षा का विधान होता है जबकि पालन और रंजन प्रेम से होता है। उन्होंने तरह–तरह से उदाहरण देकर अपनी बात समझाई है और कठिन को सरल बनाया है। उन्होंने 'साधारणीकरण'[5] को ही काव्य के मूल्यांकन का निकष माना है।

आचार्य शुक्ल का 'कविता क्या है,' निबन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस निबन्ध में शुक्ल जी ने बड़ी आवश्यक बात यह कही है कि ''सभ्यता की वृद्धि के साथ–साथ ज्यों–ज्यों मनुष्यों के व्यापार बहुरूपी और जटिल होते जायेंगे। कविता की आवश्यकता और महत्व बढ़ता जाएगा क्योंकि कविता ही मनुष्य को मनुष्यता की उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित करती है। कविता हृदय को प्रकृत दशा में लाती है। उसकी अलग भावसत्ता नहीं रह जाती, बल्कि उसका हृदय विश्व–हृदय हो जाता है।'' कविता का लक्ष्य मनोरंजन मात्र कहना कविता को हल्का करना होगा, यद्यपि कविता मन को अनुरंजित अवश्य करती है। वे चमत्कार दिखाना काव्य का लक्ष्य नहीं मानते। चमत्कार का प्रयोग भाव को तीव्र करने के लिए किया जा सकता है। 'काव्य में लोकमंगल की साधना एवं सिद्धावस्था' आचार्य शुक्ल का अत्यंत महत्वपूर्ण और चर्चित निबन्ध है। इस निबन्ध में उन्होंने काव्य के दो विभाग किये हैं–

1. आनन्द की साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले।
2. आनन्द की सिद्धावस्था या उपभोग पक्ष को लेकर चलने वाले।

उन्होंने आनन्द की साधनावस्था वाले काव्यों में रामचरितमानस, हम्मीर रासो, पृथ्वीराज रासो, छत्रप्रकाश को रखा है और सिद्धावस्था वाले काव्यों में आर्यासप्तदशती, गाथा सप्तशती, अमरूक शतक और गीतगोविन्द को।''[6]

आचार्य शुक्ल धर्म को 'अभ्युदय' और 'निःश्रेयस' से जोड़ते हैं। वे मानते हैं कि जैसे अग्नि का धर्म है जलाना वैसे ही मानव का धर्म है– 'मानवता' जो उसका स्वभाव है। मानवता मानव स्तर पर विकसित चेतना में व्यक्त गुणों– धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय–निग्रह, विद्या, बुद्धि, सत्य और अक्रोध की समष्टि का नाम है जो मानव को लोकमंगल में प्रवृत्त कराता है। लोक के अस्तित्वरक्षण, पालन और रंजन में प्रवृत्त कराता है। इस धर्म के कारण मानव 'सर्वभूतहिते रताः' रहता है। इस शाश्वत धर्म का सम्बन्ध वे बुद्धि से नहीं हृदय से बताते हैं। उनकी दृष्टि में काव्य इसी 'सामंजस्य' की ओर मनुष्य को पहुँचाने का साधन है। उनके अनुसार काव्य में इसी धर्म के भावों को जगाने की शक्ति देखकर वे उसके आधार पर 'भावयोग' की कल्पना करते हैं और उसे 'कर्मयोग' और 'ज्ञानयोग' के समकक्ष रखते हैं। आचार्य शुक्ल की स्पष्ट मान्यता है कि 'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था 'ज्ञानदशा' कहलातीी है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था 'रसदशा' कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति–साधना के लिए वाणी जो शब्द–विधान करती आई है उसे 'कविता' कहते हैं।

आचार्य शुक्ल मानते हैं कि कविता मनुष्य की वासना का परिष्कार करती है। उसे राग–द्वेष से मुक्त कर परकीय सुख–दुःख में रमण कराती है– परकीय सुख–दुख को मन का विस्तार कर आत्मीय

बनाती है। आत्मा या मन की परिधि का विस्तार करती है। इस प्रकार के व्यायाम से मन का विस्तार होता है। समन्वय की चेष्टा बढ़ती है मनुष्यत्व की साधना पूरी होती है और मनुष्य का जगत से पूर्ण तादाम्य हो जाता है, उसकी अलग भावसत्ता नहीं रह जाती उसका हृदय 'विश्वहृदय' हो जाता है।

शुक्ल जी काव्य का सम्बन्ध 'मनोमय कोश' से स्थापित करते हैं क्योंकि काव्य का सम्बन्ध 'मनोविकारों' से है। काव्य के लिए 'भावना' और 'कल्पना' आवश्यक है क्योंकि यही उसका विधायक भाव है। भाव नंगे होकर नहीं बल्कि सभ्यतासूचक लिबास में (प्रच्छन्न रूप से नहीं) सामने आएं यह कवि कर्म है। इसके लिए शुक्ल जी अभिव्यंजना और अलंकरण पर विचार करते हैं। 'लक्षणा शक्ति' पर वे विशेष जोर देते हैं।

'सौन्दर्य' को शुक्ल जी सुन्दर वस्तु से पृथक कोई पदार्थ नहींमानते हैं। हमारी अन्तस्सत्ता की तदाकार परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है। आचार्य प्रवर हर कर्म के मूल में 'मन' को मानते हैं और मन की प्रेरणा है– 'इच्छाशक्ति'। इच्छाशक्ति के 'प्रवृत्ति' और 'निवृत्ति' दो धर्म हैं। सौन्दर्यानुभूति के समय बाहर–भीतर एक हो जाती है। वाह्य वस्तु और आन्तरिकता एक हो जाती है। इसी स्थिति को 'साधारणीकरण' कहकर आचार्य शुक्ल ने बुलाया है।

आचार्य शुक्ल के अनुसार भावों की छानबीन करने पर मंगल का विधान करने वाले दो भाव ठहरते हैं– करूणा और प्रेम। करूणा की गति रक्षा की होती है और प्रेम की रंजन की। अतः वे साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले काव्यों का बीजभाव 'करूणा' ही मानते हैं। करूणा का भाव बड़ा व्यापक है। मंगल शक्ति का अधिष्ठान करने वाले राम और कृष्ण का पराक्रम, धैर्य, रूप माधुर्य और शील भी लोकोत्तर है। उन्होंने रूप सौन्दर्य और कर्म सौन्दर्य के मेल की बात की है। उन्होंने कहा है कि ''काव्य का उत्कर्ष केवल प्रेमभाव की कोमल व्यंजना ही नहीं, क्रोध आदि उग्र और प्रचण्ड भावों के विधान में, उसकी तह में करूण भाव होता है।''[7] हमारे अवतारी पुरूष हृदय के बड़े कोमल होते हैं, परन्तु कर्म में वज्र की तरह कठोर होते हैं।

लोकमंगल की साधना को कविता के प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठित करके आचार्य शुक्ल अपनी मौलिक दृष्टि का परिचय देते हैं। अपने 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद' निबन्ध में आचार्य शुक्ल ने साधारणीकरण को स्पष्ट करते हुए कहा है कि – ''उक्त काव्य को एक साथ पढ़ने और समझने सुनने वाले सहस्रों मनुष्यों को जब वही रसोद्बोधन हो तो उसे ही साधारणीकरण कहते हैं। सच्चे कवि को लोक हृदय की पहचान होती है और इसी लोकहृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम 'रसदशा' है।''[8]

उनका कहना है कि ''कविता वस्तुओं और व्यापारों का बिम्ब–ग्रहण कराने का प्रयत्न करती है, अर्थग्रहण मात्र से उसका काम नहीं चलता। बिम्ब ग्रहण विशेष होता है सामान्य का नहीं।''[9]

**'साधारणीकरण' आलम्बनत्व धर्म का होता है।** किसी भी कवि के सफल होने की कसौटी यही है कि उसके काव्य का साधारणीकरण हुआ है अथवा नहीं। 'कल्पना' को वे काव्य का बोधपक्ष मानते हैं। कल्पना में आई रूप–व्यापार–योजना का कवि या श्रोता को अन्तः साक्षात्कार का बोध होता है। परन्तु बोध पक्ष के अलावा कविता का भावपक्ष भी होता है। भारतीय दृष्टि 'भावपक्ष' को प्रधानता देती है और इसीलिए रस सिद्धान्त की प्रतिष्ठा हुई है। जबकि पाश्चात्य काव्यशास्त्र बोधपक्ष पर ही अधिक जोर देता है।

चिन्तामणि–1 में भावों और मनोविकारों पर उनके बहुत से निबन्ध संकलित हैं। जैसे– उत्साह, श्रद्धा–भक्ति, करूणा, लज्जा और ग्लानि, लोभ और प्रीति, घृणा, ईर्ष्या, भय, क्रोध आदि। ये सभी निबन्ध अत्यन्त मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लिखे गये हैं। भाषा बहुत सरल है शैली भावात्मक है। इनकी तरह का लिखना तो दूर सोच सकना भी बड़ी मुश्किल बात है। इसे पढ़ना बहुत मनोरंजक है।

उनकी व्यावहारिक समीक्षा के अन्तर्गत उन्होंने जायसी, तुलसी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, सूरदास, घनानंद, बिहारीलाल से लेकर प्रसाद, पन्त और निराला तक चिन्तन किया है। व्यावहारिक आलोचनाओं में उन्होंने भावपक्ष और कलापक्ष का अलग–अलग विवेचन किया है। भावपक्ष के विवेचन में वो दो पद्धतियों का इस्तेमाल करते हैं। वर्ण्य–भाव का वे या तो मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं या पैराफ्रेज

करते हैं। उनमें भावों की मनोवैज्ञानिक पकड़ और विश्लेषण की क्षमता है, किन्तु वे इसे शब्दार्थों से सम्बद्ध नहीं करते। फलतः उस विवेचन को वैज्ञानिक प्रामाणिकता नहीं मिल पाती। कलापक्ष में मुख्यतः उन्होंने अलंकारों और भाषा को लिया है। अलंकारों का वर्णन उन्होंने प्रायः निरपेक्ष होकर किया है। भाषा का विवेचन उन्होंने, व्याकरण के सन्दर्भ में किया है। 'भ्रमरगीत–सार' की भूमिका के रूप में शुक्लजी ने सूरदास की सारगर्भित समीक्षा की है। 'तुलसीदास की भावुकता' की उन्होंने विस्तृत चर्चा की है। उन्होंने तुलसीदास की भक्ति का स्वरूप स्पष्ट किया है और उनकी लोकधर्मिता, मर्यादाप्रियता, शील साधना का विस्तार से विवेचन किया है, 'जायसी' की प्रबन्ध चेतना की अति प्रशंसा करते हुए उन्होंने तुलसी के बाद उनको दूसरा स्थान दिया है। उन्होंने 'बिहारीलाल' और 'घनानन्द' की बहुत प्रशंसा की है। 'भारतेन्दु' के प्रति उनका विशेष प्रेम तो है ही।

प्राचीन भारतीय सिद्धांतों में आचार्य शुक्ल ने 'वक्रोक्तिवाद' और 'चमत्कारवाद' का सर्वाधिक विरोध किया है। क्योंकि उनकी दृष्टि में ये रस–विरोधी सिद्धान्त हैं। आधुनिक सिद्धान्तों में उन्होंने उन सिद्धान्तों को स्वीकार किया है जिनसे रस–सिद्धान्त का समर्थन होता है। ''एवर क्राम्बी की प्रेषणीयता (कम्युनिकेबिलिटी) का सिद्धान्त, एडीसन और कॉलरिज का भावप्रेरित कल्पनावाद और रिचर्ड्स का सामान्यीकृत अनुभूतिवाद और कल्पनात्मक अनुभूतिवाद आचार्य शुक्ल के रस सिद्धान्त के मेल में पड़ते हैं।''[10]

''वास्तव में आचार्य शुक्ल की मूलभूत धारणा यह है कि मनुष्य लोकबद्ध प्राणी है। लोक के भीतर ही उसके ज्ञान और भावक्षेत्रों का प्रसार होता है। लोक की समस्त अनुभूतियाँ सुख–दुखात्मक होती हैं। मानव जीवन में अनुभूत समस्त भाव सुख–दुख मूलक ही हैं। सुखात्मक भावों में राग या प्रेम प्रधान हैं; दुखात्मक भावों में शोक या करूणा।''[11]

आचार्य शुक्ल का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पर बात न हो तो बात पूरी ही न होगी। वास्तव में यह ग्रन्थ ही हिन्दी साहित्य का पहला सम्यक् वैज्ञानिक साहित्य बना। यद्यपि इसमें बाद में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा अनेक सुधार हुए, पर उस समय इस ग्रन्थ का लिखा जाना ही एक ऐतिहासिक घटना थी। इसी के आलोक में बहुत दिनों तक हिन्दी साहित्य को देखा गया और अभी भी हिन्दी साहित्य पढ़ने समझने की प्रथम पुस्तक यही है उसके बाद आप चाहे जितना पढ़ें बात स्पष्ट होती जाएगी पर शुक्ल जी को तो पढ़ना ही होगा। इस ग्रन्थ के सूत्रवाक्य हिन्दी के विद्यार्थियों के लिए पीढ़ी दर पीढ़ी संस्कारित होने के समान हैं।

आचार्य शुक्ल के समीक्षक व्यक्तित्व के महत्व को प्रायः सभी ख्यातिबद्ध समीक्षकों ने स्वीकार किया है।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी लिखते हैं– '' साहित्य कृतियों और साहित्यशास्त्र की पद्धतियों का निरूपण करने में शुक्ल जी ने असाधारण अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया है। सच पूछिए तो रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति आदि सम्प्रदायों की जो व्याख्याएँ आज प्रचलित हैं वे प्रमुखतः शुक्ल जी द्वारा ही उद्भावित हैं।''[12]

आचार्य नगेन्द्रलिखते हैं– ''आरम्भ में आचार्य शुक्ल के प्रभाववश मेरे मन में भारतीय रस–सिद्धांत के प्रति गहरी आस्था हो गयी थी। शुक्ल जी का मेरे मन पर विचित्र आतंक और प्रभाव रहा है। मेरे अपने संस्कार शुक्ल जी के संस्कारों से सर्वथा भिन्न थे। मेरा साहित्यिक संस्कार छायावादी युग में हुआ था। शुक्ल जी सुधार–युग की विभूति थे। उनके निष्कर्षों को मानने को मैं बिल्कुल तैयार न था परन्तु उनके प्रौढ़ तर्क और अनिवार्य शैली मेरे ऊपर बुरी तरह हावी हो जाते थे और मैं यह मानने को विवश हो जाता था कि व्यक्ति की काव्यदृष्टि चाहे संकुचित हो लेकिन फिर भी अपनी सीमा में यह महारथी अजेय है।''[13]

डॉ. रामविलास शर्मा ने आचार्य शुक्ल की समीक्षा पद्धति को वरदान मानते हुए कहा है– ''दृढ़ता, आत्म–विश्वास और निर्भीकता शुक्ल जी के विशेष गुण हैं। लाख–विरोधी प्रचार हो, वह अपने सिद्धांत पर अडिग रहे। रहस्यवाद की भारत–व्यापी धूम होने पर भी उन्होंने उसका विरोध करना नहीं छोड़ा। हिन्दी–संसार में शुक्ल जी 'एक और अद्वितीय' व्यक्तित्व लेकर अवतीर्ण हुए थे। प्राचीन साहित्य

का इस प्रकार मंथन करने वाले कम साहित्यिक समालोचक होंगे। संस्कृत के साहित्य–शास्त्र पर उनका पूर्ण अधिकार था। यह कह सकना बड़ा कठिन है कि आचार्य शुक्ल के ऊपर प्राचीन विचारों का प्रभाव अधिक है या नवीन विचारों का। जिस लेखक का प्रभाव इतना व्यापक हो उसकी असाधारण प्रतिभा के लिए प्रमाण खोजने की आवश्यकता नहीं।''[14]

ये कुछ बानगी है जो यह बताती है कि इस व्यक्ति ने अपनी पीढ़ी को, आगे की पीढ़ी और आने वाली अनन्त पीढ़ियों पर किस प्रकार छाप छोड़ी है। इनका हिन्दी साहित्य के प्रति समर्पण स्तुत्य है। इन्होंने काव्य की प्रकृति की बजाय काव्य के प्रयोजन पर अधिक बल दिया है। इन्होंने समझौता न करते हुए उन्हीं सिद्धांतों को अपनाया है जो भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से सरोकार रखते हैं उसके अलावा उन्होंने सबको नकारा है। इस वरेण्य विद्वान को शत–शत नमन।

**सन्दर्भ :**


1. रस मीमांसा : आ. रामचन्द्र शुक्ल : पुस्तक प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, प्र. सं. 2018, पृ. 37
2. पथिकृत आ. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी आलोचना के शिखरों का साक्षात्कार : रामचन्द्र तिवारी : लोकभारती इलाहाबाद, प्र. सं. 1996, पृ. 48
3. वही, पृ. 49
4. रसमीमांसा : पृ. 46, पुस्तक प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, प्र. सं. 2018
5. रसमीमांसा : पृ. 46, पुस्तक प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, प्र. सं. 2018
6. लोकमंगल की साधनावस्था निबन्ध : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि – 1, पृ. 158, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सन् 2020
7. वही, पृ. 164
8. साधारणीकृत और व्यक्ति–वैचित्र्यवाद निबन्ध : चिन्तामणि भाग–1, आ. रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 166, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सन् 2020
9. वही, पृ. 167
10. हिन्दी का गद्य साहित्य : रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्र. सं. 1955, पृ. सं. 660
11. वही, पृ. 660
12. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, नया साहित्य नये प्रश्न, पृ. 52
13. हिन्दी आलोचना, पृ. 225 आ. नगेन्द्र, हिन्दी सा. का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, सन् 2000
14. हिन्दी साहित्य का गद्य साहित्य : डॉ. रामचन्द्र तिवारी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्र. सं. 1955, पृ. सं. 667


***

# ।। ज्योतिषीय नक्षत्रों में रोहिणी नक्षत्र का महत्व ।।

*डॉ. योगेंद्र कुमार**

**सारांश** :– प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में नक्षत्रों के विषय में विस्तार से वर्णन किया गया है, नक्षत्रों के स्वामी, तारा, उनकी आकृति का वर्णन, पुराणों में नक्षत्रों की अधिष्ठात्री देवियों का वर्णन, दक्ष की पुत्रियों का चन्द्रमा की पत्नी के रूप में वर्णन, नक्षत्र चक्र का वर्णन एवं सभी नक्षत्रों में से रोहिणी नक्षत्र की प्रधानता एवं महत्व पर प्रकाष डाला गया है।

**शब्द संकेत** – ऋग्वेद, सूर्य, चन्द्रमा सप्तर्षि, नक्षत्र, तारापुंज, अग्निशिखा, सिंह की पूंछ, हाथी का दांत, शकट, सीमंतोन्नयन, विवाह, क्रान्तिवृत्त, दिशा, उपंग, मुंह,गला, वनस्पतियां इत्यादि।

आकाश में तारा–समूह को नक्षत्र कहते हैं। साधारणतः यह चन्द्रमा के पथ से जुड़े हैं, पर वास्तव में किसी भी तारा–समूह को नक्षत्र कहना उचित है। ऋग्वेद में एक स्थान पर सूर्य को भी नक्षत्र कहा गया है। अन्य नक्षत्रों में सप्तर्षि और अगस्त्य हैं।

नक्षत्र सूची अथर्ववेद, तैत्तिरीय संहिता, शतपथ [1]ब्राह्मण और लगध के वेदांग ज्योतिष में मिलती है। भागवत पुराण के अनुसार ये नक्षत्रों की अधिष्ठात्री देवियाँ प्रचेता पुत्र दक्ष की पुत्रियाँ तथा चन्द्रमा की पत्नियाँ हैं।

तारे हमारे सौर जगत् के भीतर नहीं है। ये सूर्य से बहुत दूर हैं और सूर्य की परिक्रमा न करने के कारण स्थिर जान पड़ते हैं – अर्थात् एक तारा दूसरे तारे से जिस ओर और जितनी दूर आज देखा जायगा उसी ओर और उतनी ही दूर पर सदा देखा जायगा। इस प्रकार ऐसे दो चार पास–पास रहने वाले तारों की परस्पर स्थिति का ध्यान एक बार कर लेने से हम उन सबको दूसरी बार देखने से पहचान सकते हैं। पहचान के लिये यदि हम उन सब तारों के मिलने से जो आकार बने उसे निर्दिष्ट करके समूचे तारक पुंज का कोई नाम रख लें तो और भी सुभीता होगा। नक्षत्रों का विभाग इसीलिये और इसी प्रकार किया गया है।

चंद्रमा २७–२८ दिनों में पृथ्वी के चारों ओर घूम आता है। खगोल में यह भ्रमण पथ इन्हीं तारों के बीच से होकर गया हुआ जान पड़ता है। इसी पथ में पड़ने वाले तारों के अलग अलग दल बाँधकर एक एक तारक पुंज का नाम नक्षत्र रखा गया है। इस रीति से सारा पथ इन २७ नक्षत्रों में विभक्त होकर 'नक्षत्र चक्र' कहलाता है। नीचे तारों की संख्या और आकृति सहित २७ नक्षत्रों के नाम दिए जाते हैं–

| क्रमांक | नक्षत्र | स्वामी ग्रह | तारा संख्या | आकृति पहचान |
|---|---|---|---|---|
| 1. | अश्विनी | केतु | 3 | घोड़ा |
| 2. | भरणी | शुक्र | 3 | त्रिकोण |
| 3 | कृत्तिका | रवि | 6 | अग्नि शिखा |
| 4 | रोहिणी | चन्द्र | 5 | गाड़ी |
| 5 | मृगशिरा | मंगल | 3 | हरिणमस्तक/विडाल पद |
| 6 | आर्द्रा | राहु | 1 | उज्वल |
| 7 | पुनर्वसु | गुरू | 5/6 | धनुष/धर |
| 8 | पुष्य | शनि | 1/3 | माणिक्य वर्ण |
| 9 | अश्लेषा | बुध | 5 | कुत्ते की पूँछ/कुलाव चक्र |
| 10 | मघा | केतु | ५ | हल |

* असिस्टेंट प्रोफेसर (ज्योतिष), महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय भोपाल (म०प्र०) 462038

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 11 | पूर्वा–फाल्गुनी | शुक्र | 2 | खट्वाकार × उत्तर दिशा |
| 12 | उत्तरा–फाल्गुनी | रवि | 2 | शय्याकार × उत्तर दिशा |
| 13 | हस्त | चन्द्र | 5 | हाथ का पंजा |
| 14 | चित्रा | मंगल | 1 | मुक्तावत उज्ज्वल |
| 15 | स्वाती | राहु | 1 | कुंकु वर्ण |
| 16 | विशाखा | गुरू | 5/6 | तोरण या माला |
| 17 | अनुराधा | शनि | 7 | सूप या जलधारा |
| 18 | ज्येष्ठा | बुध | 3 | सर्प या कुण्डल |
| 19 | मूल | केतु | 9/11 | शंख या सिंह की पूँछ |
| 20 | पूर्वा–षाढा | शुक्र | 4 | सूप या हाथी का दांत |
| 21 | उत्तरा–षाढा | रवि | 4 | सूप |
| 22 | श्रवण | चन्द्र | 3 | बाण या त्रिशूल |
| 23 | धनिष्ठा | मंगल | 5 | मर्दल बाजा |
| 24 | शतभिषा | राहु | 100 | मंडलाकार |
| 25 | पूर्वा–भाद्रपद | गुरू | 2 | भारवत् या घंटाकार |
| 26 | उत्तरा–भाद्रपद | शनि | 2 | दो मस्तक |
| 27 | रेवती | बुध | 32 | मछली या मृदंग |

इन २७ नक्षत्रों के अतिरिक्त 'अभिजित' नाम का एक और नक्षत्र पहले माना जाता था पर वह पूर्वाषाढ़ा के भीतर ही आ जाता है, इससे अब २७ ही नक्षत्र गिने जाते हैं। इन्हीं नक्षत्रों के नाम पर महीनों के नाम रखे गए हैं। महीने की पूर्णिमा को चंद्रमा जिस नक्षत्र पर रहेगा उस महीने का नाम उसी नक्षत्र के अनुसार होगा, जैसे कार्तिक की पूर्णिमा को चंद्रमा कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्र पर रहेगा, अग्रहायण की पूर्णिमा को मृगशिरा वा आर्दा परय इसी प्रकार और समझिए।

नक्षत्र चार चरणों में विभक्त होते हैं अर्थात एक नक्षत्र में चार चरण होते हैं। इस प्रकार 27 × × 4 = 108 चरण हुये। नव चरण को मिलाकर एक राशि होती है। अतएव 108 भागित 9 से कुल 12 राशियां हुई। कहने का तात्पर्य यह है कि नक्षत्र केवल अपना प्रभाव ही नहीं अपितु राशि एवं ग्रह के प्रभाव के अनुसार फल प्रदान करते हैं।

## रोहिणी (रूहइनन्डीष) चौथा नक्षत्र पुंज

शकटः अर्थात् गाड़ी – **रोहिणी शकट मर्कनन्दनश्चोदिभनति रूंधिरोऽथवा शशी** (वराह.47) जिसमें पांच तारे हैं। जिसकी आकृति गाड़ी की है। दक्ष की एक पुत्री जो चंद्रमा की अत्यंत प्रिय संगिनी है।

**उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्।**

लाल रंग की गाय भी एक अर्थ होता है।

जीवन में अनन्त उतार–चढ़ाव आते हैं। व्यक्ति इन थपेड़ों का डटकर सामना करें तो निश्चय ही स्थिति सुधर जाती है। मन प्रसन्न तन, तेज बिराजा सभी कुछ अनुकूल हो जाता है।

वृहत्संहिता में वराह मिहिर ने रोहिणी नक्षत्र में जन्म लेने वाले जातक के विषय में लिखा है कि –

**रोहिण्यां सत्यशुचिः प्रियंवदः स्थिरः स्वरूपश्च**

अर्थात रोहिणी में जन्म लेने वाले जातक सत्य का आचरण करने वाला, रागद्वेष लोभादि से रहित, प्रशस्त चरित्र वाला, पवित्र, प्रिय तथा मधुर बोलने वाला, स्थिर बुद्धि तथा स्वरूपवान, कांतिवान और सुंदर होता है।

**धनी कृतज्ञो मेधावी नृपमान्यः प्रियवंदः।**
**सत्यवादी सुरूपश्च रोहिण्यां जायते नरः।।** मान सागरी

आचार्य मानसार जी ने मानसागरी में लिखा है कि रोहिणी नक्षत्र में जन्म लेने वाले जातक धनवान, उपकार को मानने वाले, तीव्र बुद्धि तथा उत्तम स्मरण शक्ति वाले, राजा के समान उच्च व्यक्तियों द्वारा सम्मान प्राप्त करने वाले, प्रिय तथा सत्य बोलने वाले और सुंदर रूप वाले होते हैं।

**सुरुपः स्थिरधीर्मानी भोगवान्सुरतप्रियः ।**
**प्रियवाक्चतुरो दक्षस्तेजस्वी ब्रह्मधिष्ण्यजः।।** नारद संहिता – 52/4

महामुनि नारद जी ने नारद संहिता में लिखा है कि रोहिणी नक्षत्र में जन्म लेने वाले जातक सुंदर रूप वाले, स्थिर बुद्धि वाले, सम्माननीय, भोगी, कामप्रिय, प्रिय वाणी बोलने वाले, चतुर, दक्ष और तेजस्वी होते हैं। रोहिणी नक्षत्र के स्वामी ब्रह्मा जी है। ओ, वा, वी, वू चार चरण है, वृषभ राशि है, राशीश शुक्र है, वैश्य वर्ण, चतुष्पद वश्य, सर्प योनि है तथा नकुल योनि से वैर है, मनुष्य गण और अन्त्य नाड़ी है। इस नक्षत्र में निम्नलिखित कार्य करना शुभ होता है।

**श्रीमान्तोन्नयनोद्वाहवस्त्रभूषा स्थिर– क्रियाः।**
**गजवास्त्वभिषेकाश्च प्रतिष्ठा ब्रह्मभे शुभाः।।** नारद संहिता – 6/6

महामुनि नारद जी ने नारद संहिता में लिखा है कि रोहिणी नक्षत्र में सीमंतोन्नयन, विवाह, वस्त्र, आभूषण, स्थिरकर्म, गजकर्म, वास्तुकर्म, अभिषेक और प्रतिष्ठा कर्म करना शुभ होता है

रोहिणी नक्षत्र का गणितीय विस्तार 1 राशि 10 अंश कला से एक राशि 23 अंश 20 कला तक होता है। इस नक्षत्र का वास्तविक रेखांश एक राशि 15 अंश 55 कला 56 विकला है। क्रान्तिवृत्त से पूरी 5 अंश 28 कला 3 विकला दक्षिण तथा विशुवत रेखा से 16 अंश 30 कला 12 विकला उत्तर है। अर्थात विशुवत रेखा व क्रान्ति वृत्त के मध्य स्थित है।

अश्विनी, भरणी, कृतिका और रोहणी नक्षत्र को एक रेखा द्वारा मिलाया जाए तो एक अर्धवृत्त बन जाएगा। रोहिणी आकाश में सर्वाधिक 20 (बीस) चमकीले तारों में से एक है। रोहिणी नक्षत्र का रंग लाल सुर्ख है। इस नक्षत्र में रोहिणी के अतिरिक्त 4 तारे इसके पश्चिम में और हैं। यह पांचों तारे मिलकर रथ या बैलगाड़ी का स्वरूप बनाते हैं। जिसके जूड़े पर रोहिणी नक्षत्र है।

मई माह में प्रातः काल पूर्व दिशा में रोहिणी नक्षत्र के तारे उदित होते हैं। तथा नौ से ग्यारह बजे रात्रि के मध्य जनवरी माह में शिरो बिंदु पर आते हैं। 24 मई को निरयन सूर्य रोहिणी नक्षत्र में प्रवेश करता है। रोहिणी नक्षत्र के चारों चरण (ओ, वा, वी, वू) वृषभ राशि में आते हैं।

रोहिणी नक्षत्र का अधिपति स्वयं चंद्रमा है। और चंद्र एक मृदु ग्रह है। इस नक्षत्र में जब चंद्रमा रहे तो जातक मृदुभाषी एवं सत्य वचन बोलने वाला होता है–

**प्रजापतेर्मे प्रियवाक् सुरूपः।**
**शुचि सदा सत्यवचो शशांके।।**

कूर्म चक्र के आधार पर रोहिणी नक्षत्र किसी भी स्थान के मध्यवर्ती प्रदेश को सूचित करता है। इस कारण किसी भी स्थान के मध्य भाग के प्रदेश में बनने वाली घटनाओं या कारणों के लिए रोहिणी नक्षत्र में होने वाले ग्रहाचार जवाबदार हो सकते हैं। राजकीय फलादेश के लिए इस प्रकार रोहिणी को देश के मध्यवर्ती प्रदेशों पर बनने वाली घटनाओं के लिए जवाबदार माना जा सकता है।

पौराणिक कथा के अनुसार रोहिणी चंद्रमा की 27 पत्नियों में सबसे सुंदर, आकर्षक, तेजस्वी एवं सुंदर वस्त्र धारण करने वाली तथा चंद्रमा की प्रिय है। ज्यों–ज्यों चंद्रमा और रोहिणी की समीपता बढ़ती जाती है त्यों–त्यों उसका स्वरूप खिलता जाता है और चंद्र के साथ एकाकार होकर छुप जाती है। रोहिणी नक्षत्र के देवता ब्रह्मा जी हैं।

रोहिणी नक्षत्र का जातक आकर्षक, सुंदर, प्रेम करने वाला, तेजस्वी, सम्मोहक एवं प्रगतिशील रहने वाला होता है। ऐसे जातक शरीर से पतले, सामाजिक कार्यों में रुचि रखते हैं, इनका मनोबल दर्द रहता है, मित्रों की कमी नहीं रहती, शीघ्र निर्णय लेने की शक्ति अच्छी रहती है, पद एवं प्रतिष्ठा इनको होती है। साहित्य, संगीत एवं ललित कला में इनका विशेष प्रेम रहता है और अध्यात्म में उनकी रुचि रहती है। मानसिक रूप से ऐसे जातक स्वस्थ होते हैं आमतौर पर एजेंट, जज, फैंसी आइटमों

के व्यापारी, जमीन, खेती एवं राजकीय कार्यों द्वारा अथवा साहित्य आदि से धन, वैभव और सत्ता प्राप्त करते हैं।

रोहिणी नक्षत्र में जन्म लेने वाली स्त्री सुंदर, आकर्षक शरीर वाली, सावधान चित्रवाली, पवित्र, पति की आज्ञाकारिणी, माता–पिता की भक्त और सेवा करने वाली, संतान से युक्त, ऐश्वर्यवान और धनवान होती है रोहिणी नक्षत्र में जन्मी स्त्री की पहचान उसकी आंख से की जा सकती है। रोहिणी नक्षत्र शुभ ग्रह से युक्त या संबंधित हो तो नक्षत्र सूचित अंग, उपंग, मुंह,गला, जीभ, गर्दन इत्यादि के रोग या तकली प्राप्त नहीं होते हैं।

वृक्षों – वनस्पतियों से भी शांति होती है यथा – रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति के लिए जामुन अभीष्ट है। इसके पूजन, स्पर्श, परिक्रमा तथा जल अर्पण से बाधाएं एवं रोग सहज ही दूर हो जाते हैं।

इसी कारण 27 नक्षत्रों में रोहिणी नक्षत्र की विशेषता कहीं गई है।

**सन्दर्भ गन्थ :**

डॉ0 निलिम्प त्रिपाठी, सन्– 2015, ग्रह नक्षत्र निधि, डॉ0 भास्कराचार्य त्रिपाठी सांस्कृतिक एवं समाज कल्याण समिति, (म0प्र0) पृष्ठ संख्या– 05, 47 से 49।

***

# आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का राष्टवादी चिन्तन

*विजय प्रकाश* *

सरस्वती के यशस्वी सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने परतंत्र भारत में स्वतंत्रता के लिए साहित्य के माध्यम से अतुलनीय योगदान दिया है। सरस्वती के सम्पादक रहते हुए द्विवेदी जी अंग्रेजी राज की पोल खोलकर भारतीय जनमानस के सामने रखते हैं। द्विवेदी जी के नाम पर ही हिन्दी साहित्य में दो दशकों (1900–1920) का नामकरण किया गया है। इसी से इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि इनके नाम पर ही एक ''युग नाम'' की घोषणा की गयी है जो अपने आप में उनकी योग्यता को सिद्ध कर देता है। उन्होंने अपना अतुलनीय योगदान अंग्रेजों के खिलाफ लेखनी चलाने में किया है। अंग्रेजी के खिलाफ शुरूआती दौर में सखाराम गणेश देउस्कर माधवराय सप्रे आदि भी लिख रहे थे। इनके समय में ही द्विवेदी जी भी अपनी लेखनी ''सरस्वती'' के माध्यम से चलायी। द्विवेदी जी की क्रान्तिकारी पुस्तक ''सम्पत्ति शास्त्र'' सन 1908 में आती है। जो वास्तव में अंग्रेजी राज के शोषणात्मक रवैया को खोलकर लोगों के सामने रख देती है। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में ''व्याकरण'' और 'खड़ी बोली' को साहित्यिक प्रतिष्ठा दिखाने में अनमोल भूमिका का निर्वहन किया है। आचार्य द्विवेदी के लिए साहित्य केवल कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक तक ही सीमित नही था। द्विवेदी लिखते हैं ''ज्ञानराशि के संचित कोष का नाम साहित्य है।'' द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य में अपने लेखों, विचारों के माध्यम से हिन्दी मे सुधार किया है। द्विवेदी युग में भाषा में व्याकरण सुधार की प्रक्रिया शुरू हुयी जो आगे चलकर खड़ी बोली के रूप में स्थापित हुयी। व्याकरण की शुद्धता को भी द्विवेदी जी ने सरस्वती के माध्यम से पूरा किया। तब से अब तक व्याकरण की शुद्धता बनी हुयी है। डॉ० मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं– 'द्विवेदी जी ने हिन्दी में ज्ञान के साहित्य के निर्माण और विकास के लिए जैसा प्रयत्न किया वैसा उनके पहले और बाद में भी बहुत कम दिखायी देता है। उनका प्रयत्न दो तरफा था। एक ओर उन्होंने ''सरस्ती'' में इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, समाजशास्त्र, विज्ञान, शिक्षा, दर्शन, संस्कृति और भाषा सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर लिखने के लिए दूसरों को प्रोत्साहित किया तो दूसरी ओर स्वयं इन विषयों पर लिखने के लिए दूसरों को प्रोत्साहित किया तो दूसरी ओर स्वयं इन विषयों पर लगातार लिखकर नये लेखकों का मार्गदर्शन भी किया।''[1]

द्विवेदी जी की सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक ''सम्पत्ति शास्त्र'' है। जिसको दो खण्ड मे लिखा गया है– पहला खण्ड पूर्वार्द्ध है तथा दूसरा खण्ड उत्तरार्द्ध है। पूर्वार्द्ध के 7 भाग हैं, उत्तरार्द्ध के 5 भाग हैं। इस पुस्तक में इनके सम्पत्ति शास्त्र का स्वरूप भारतवर्ष में सम्पत्ति के अभाव का कारण, जमीन, मेहनत, व्यय पूंजी, जमीन की वृद्धि, पूंजी की वृद्धि, मालियत और सिक्का, कागजी रूपया, मजदूरी, मुनाफा, सम्पत्ति का उपभोग, व्यवसायी व्यक्ति, व्यवसाय समिति, साख, बैंकिंग, बीमा, विदेशी व्यापार, प्रत्यक्षकर, परोक्षकर, देशान्तर गमन इत्यादि निबन्धों के माध्यम से द्विवेदी जी भारत की दुर्दशा को उजागर किया है जो अंग्रेजों के द्वारा की जा रही थी। द्विवेदी जी का रचना संसार अत्यन्त व्यापक है, वे स्वतंत्रता आन्दोलनों में सक्रिय देशभक्तों की कुर्बानी को भी ध्यान में रखते है। इनके कार्य को देखकर ही डॉ० राम विलास शर्मा जी लिखते हैं– ''हिन्दी नवजागरण का तीसरा चरण महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके सहयोगियों का कार्यकाल है।''[2]

गुलाम भारत में द्विवेदी जी ने अंग्रेजों के खिलाफ जमकर लिखा है। द्विवेदी जी सरकार, जमींदार एवं साहूकारों के विषय में भी लिखते हैं। सम्पत्ति का दुरूपयोग सरकार ने किस प्रकार किया है इसको द्विवेदी जी ने दिखाने का प्रयास किया है। इसी बात की ओर संकेत करते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं– ''सरकार, जमींदार, साहूकार, ये सभी किसान की फसल में हिस्सा बांटते थे। सितम्बर 1915 की ''सरस्वती'' में कृष्णानन्द जोशी का ''भारतीय किसान'' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने किसान की फसल में हिस्सा बांटने वालों की चर्चा की और बताया कि सरकार, जमींदार और

* असिस्टेंट प्रोफेसर, विषय-हिन्दी, आर.एम.पी.(पी.जी.) कालेज सीतापुर

साहूकार को उनका भाग देने के बाद जो कुछ बचता है वह नहीं के बराबर है। जिन्दा रहने के लिए किसान कर्ज लेता और उनका परिवार पीढ़ियों तक साहूकार का गुलाम बन जाता है।''[3]

द्विवेदी जी अंग्रेजों की लूट के बारे में सरस्वती में लगातार लिखते रहे। भारत में राजकाज का पूरा सच, सरकारी अफसरों की तनख्वाह से लेकर सेना रखने और उसके देखभाल करने, रेल बनाने, सड़क निर्माण आदि का खर्च भारतीय किसानों से वसूल किया जाता था, इस प्रकार किसानों की दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी थी। भाारत में अंग्रेज अपनी कूटनीतिक चालों के बल पर चलते सारे खर्च भारतीय जनता से वसूलते थे और तमाम नौकरशाही तामझाम के साथ अंग्रेजों के हित में काम करती थी। डॉ० रामविलास शर्मा जी ने द्विवेदी जी के इस उद्‌गार को ''ठग विद्या'' कहा है और बताते हैं कि किस प्रकार अंग्रेज इस विद्या का प्रयोग कर भारतीय तंत्र को खोखला बना रहे हैं। भारत का नियंता विदेशों में रहता है और यहां की अच्छी वस्तुएं, कीमती वस्तुएं बाहर (इंग्लैण्ड) को भेजनी पड़ती हैं। इस बात की ओर संकेत करते हुए शर्मा जी द्विवेदी जी की ये पंक्तियां उद्‌धृत करते हैं– ''हिन्दुस्तान पराधीन देश यहां का राज्य सूत्र अंग्रेजों के हाथ में है। उनके प्रधान सूत्रधार इंग्लैण्ड में रहते है उनके ओहदे का नाम है सेक्रेटरी ऑफ स्टेट, उनका दफ्तर लंदन में है और वहीं उनके सलाहकारों की एक सभी भी है। इन सबकी तनख्वाह हिन्दुस्तान के जिम्मे है। हिन्दुस्तान में जो अंग्रेज अफसर काम करते हैं वे जब पेंशन लेकर इंग्लैण्ड जाते हैं तब पेंशन भी उनकी यहीं से दी जाती है, यहां के लिए बहुत सी फौज भी इंग्लैण्ड को भेजनी पड़ती है।[4]

सभी खर्च का हिसाब द्विवेदी जी प्रस्तुत करते हैं। सूद, कर्ज इत्यादि के माध्यम से सरकार ने जो लूट मचाई है उसका भी ध्यान देते हैं। इसकी तरफ शर्मा जी का भी ध्यान जाता है और द्विवेदी जी की ये पंक्तियां लिखते हैं– 'रेल आदि बनाने के लिए सामान विलायत से मंगाना पड़ता है। रेल आदि बनाने के लिए गवर्नमेन्ट ने बहुत सा रूपया महाजनों से कर्ज से लिया है, उसका सूद भी देना पड़ता है। इन सब खर्चों का सलाना टोटल कोई 20 करोड़ रूपया होता है। वह सब हिन्दुस्तान से लिया जाता है। इसे एक प्रकार का ''कर'' समझना चाहिए। अंग्रेजों में इसी कर का नाम है होम चार्जेज (Home charges)"[5]

जब बात कर की चली है तो भारत में (औपनिवेशिक भारत) सम्पूर्ण कर प्रणाली अंग्रेजों को अपनी कर प्रणाली थी। किसानों पर कर लगाया जाता था, जमींदारी प्रथा, रैयतबाड़ी बन्दोबस्त इत्यादि के माध्यम से किसानों पर करारोपण किया जाता था। इस तरफ द्विवेदी की पैनी नजर बहुत गहराई तक पहुंची है। इसका जिक्र करते हुए प्रो० मैनेजर पाण्डेय जी लिखते हैं– ''द्विवेदी जी के चिन्तन की एक विशेषता यह है कि वे सामाजिक समस्याओं पर विचार करते हुए पूरे भारत को ध्यान में रखते हैं, केवल हिन्दी प्रदेश को नहीं। जब वह किसानों की समस्याओं पर लिखते हैं तो उनके सामने देश भर के किसान होते हैं। अंग्रेजी राज की लगान व्यवस्था से किसानों की तबाही के प्रसंग में उन्होंने बंगाल, पंजाब, बम्बई और मद्रास के किसानों की दुर्दशा पर भी ध्यान दिया है।''[6]

भूमण्डलीकरण के दौर में जो क्रियाएं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा की जा रही है वह औपनिवेशिक समय के दौर से कम नहीं है, जब गरीब आम आदमी कुचला जा रहा है और बड़े–बड़े पूंजीपति यानि कुछ अमीर वर्ग ही इसका उपयोग कर अपने को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बड़ा बनता जा रहा है। आज सरकार जिसे ''सब्सिडी'' कहकर छूट दे रही है। वह अन्य विकसित देशों के तुलना में बहुत ही कम है किसानों का ही नुकसान हो रहा है और विदेशी कम्पनियां अपना अधिकार बाजार पर कायम करती चली जा रही है। इस ओर ''प्रो० प्रणय कृष्ण'' का ध्यान जाता है, जिसकी महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की सम्पत्ति शास्त्र में चिन्ता करते नजर आते हैं। प्रो० प्रणय कृष्ण लिखते हैं– ''भूमण्डलीकरण, निजीकरण, उदारीकरण के वर्तमान दौर ने एक बार फिर औपनिवेशिक दौर की याद ताजा कर दी है। खेती को सब्सिडी और सरकारी समर्थन मूल्य की व्यवस्था खत्म किये जाने से खेती किसानों के लिए उत्तरोत्तर घाटे का सौदा होती गयी है। अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी के दबाव में कृषि उत्पाद भारी संख्या में निर्बाध रूप से आयात किये जाने लगे हैं।''[7]

भारत की सारी दमदारी किसानों के ऊपर एक हद तक निर्भर करती है। ऐसे में यदि किसानों का सहयोग सरकार नहीं करती है तो ''प्रो० प्रणय कृष्ण'' की भविष्यवाणी शत–प्रतिशत भारत ही नहीं अपितु तीसरी दुनिया के सभी देशों के ऊपर सच लागू होती है। यहां दुर्भिक्ष, अकाल, इत्यादि प्राकृतिक आपदाओं के द्वारा भी भारतीय अर्थतंत्र प्रभावित होता है। सारा शासन तंत्र और सारी राजनीतिक चहल–पहल किसानों के बलबूते पर होती दिखायी देती है। सुधारवादी चिन्तन और कार्यक्रम तथा क्रान्तिकारी चिन्तन में भेद यहां साफ दिखाई देता है। किसानों के हितकर वे ही हैं जो सरकार के द्वारा बनायी गयी योजनाओं का उपयोग अपने पक्ष में करते हैं और किसानों का नाम देते है, चाहे वह ''क्रेडिट कार्ड'' योजना हो, ''बही योजना'' हो, ''ग्रीन कार्ड'' योजना हो या फिर सरकार द्वारा उपलब्ध कराये जाने वाले ऋण हों। सभी पर दलालों, घूसखोरों एवं ठेकेदारों का दबदबा बना हुआ है जिसका लाभ उचित व्यक्ति, किसान नहीं प्राप्त कर पा रहा है। इन सबकी तरफ ध्यान दिलाते हुए रामविलास शर्मा जी ने द्विवेदी जी के टिप्पणी को उद्धृत किया है जो अब के तीसरी दुनिया के देशों पर प्रासंगिक सिद्ध होती है सिर्फ रूप बदल गया है। व्यवस्थाएं बदल गयी है तो शोषण का तरीका भी बदल गया है। शर्मा जी, द्विवेदी जी की टिप्पणी को उद्धृत करते हैं– ''इन 70 फीसदी किसानों की दुर्गति का ज्ञान शहरों में मेज, कुर्सी लगाकर बैठने और मोटर कार तथा फिटनों पर घूमने वालों को नहीं हो सकता। इन लोगों का हाहाकार इनके गन्दे गांवों में घुसने इनके साथ रहने और इनसे बातचीत करने से हो सकता है। प्रजा के प्रतिनिधि बनने का दम भरने वाले कितने माननीय महाशय वर्तमान कौंसिलों में ऐसे हैं जिन्हें इन बेचारों की दुर्गति का ज्ञान हो? हर साल हजारों रूपया नजराने के नाम से इनसे ऐंठ जाता है।''[8]

अंग्रेजों ने भारतीय उद्योग धन्धों को नाश कर दिया और उद्योगीकरण की जड़ ही काट डाली जिससे भविष्य में भारत किसी भी विकास के लायक नहीं रह जाये। भारतीय उद्योगों के नष्ट हो जाने से भारतीय मजदूर किसान आदि अत्यधिक प्रभावित हो गये और अकाल ही काल के गले में समा गये। भारतीय बाजार सिर्फ अंग्रेजों के लिए कच्चे माल के उत्पादक के रूप में काम आने लगा और अंग्रेज इसका भरपूर दुरूपयोग करते रहे। भारतीय बाजार घाटे का व्यापार बनकर रह गया। डॉ० रामविलास शर्मा जी ने इस तरफ ध्यान दिया है और यह बताया है कि किस प्रकार अंग्रेज भारतीय अर्थतंत्र को प्रभावित कर रहे थे। उनकी नीतियां किस प्रकार भारतीय उद्योग धन्धे को प्रभावित कर रही थीं। शर्मा जी ने इस ओर द्विवेदी जी द्वारा लगायी गयी दृष्टि को उद्धृत किया है जो व्यापार नीति की विस्तृत आलोचना है– ''शुरू शुरू में इंगलिस्तान की गवर्नमेंट ने यहां के कपड़े के रफ्तानी को, विलायत में उस पर कड़ा महसूल लगाकर बिल्कुल रोक दिया, यहां का व्यापार, यहां का कला कौशल मारा गया। अब जब उसके पुनर्जीवन की ओर लोगों का ध्यान गया है तब यथेष्ट कर लगाकर विलायती वस्तुओं की आमदनी रोकी नहीं जाती। यदि किसी विलायती चीज पर कुछ महसूल है भी तो इतना कम है कि न होने के बराबर है।''[9]

अब हम यदि आज के विश्व ग्राम में देंखे तो खुले व्यापार की वकालत जोरों से चल रही है जिसकी तरफ रामबिलास शर्मा जी ने ध्यान दिया है और लिखा है ''मजे की बात यह है कि जब यहां के व्यापार का नाश कर चुके, तब खुली होड़ का समर्थन करने लगे। जिस तीसरी दुनिया की बात आज उत्तर औपनिवेशिक युग ग्लोबलाइजेशन के दौर में की जा रही है, उस तरफ द्विवेदी का ध्यान उसी समय चल गया था। नस्लवाद, रंगभेद के उपर भी लिखते हैं और उसका जमकर विरोध करते हैं शर्मा जी लिखते हैं– ''इस नस्लावाद के शिकार अफ्रीकी हब्सी ही नहीं, भारत के आर्य और द्रविड़ भी थे। यही लोग कुली बनकर दक्षिणी अफ्रीकी और अन्य देशों में दासों की तरह भेजे गये थे।''[11] इसी परिप्रेक्ष्य में शर्मा जी द्विवेदी जी द्वारा 16 दिसम्बर, 1913 को ''सरस्वती'' में दक्षिण अफ्रीका में भारतीय मजदूरों की दुर्दशा पर लिखी टिप्पणी का जिक्र करते हैं। द्विवेदी जी लिखते हैं– ''मिस्टर गांधी का आत्म गौरव और स्वदेशाभिमान।'' इसमें गांधी जी के अपमान और उसकी यातनाओं का उल्लेख करने के बाद द्विवेदी जी ने लिखा।'' गोरे और काले के भेद ने वहां जो काण्ड मचा रक्खा था उसे देखकर गांधी को बड़ा दुःख हुआ है। उन्होंने देखा कि उनके देशवासी गोरों की बस्ती में नहीं रहने पाते।

पशुवत समझे जाकर उन पर नाना प्रकार के अत्याचार होते हैं। कैदियों की तरह उन्हें अंगूठे का चिन्ह लगाना पड़ता है, 45 रूपये साल, नटाल प्रान्त में रहने के लिए टैक्स देना पड़ा है। जो लोग ठीक पर कुली बनकर वहां जाते हैं और खानों और खेतों पर काम करते हैं उनकी दुर्गति का तो पारावार ही नहीं।''[12]

सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि देशभक्ति विज्ञान, स्वाधीनता ये सभी यूरोपीय लोगों की देन है अर्थात् अंग्रेजों के द्वारा ये सभी बातें सिखायी गयी है। भारतीय, स्वतंत्रता के विषय में अंग्रेजों से सीखे हैं, टेक्नालाजी का विकास, वैज्ञानिक अविष्कार इत्यादि यूरोप से सीखे हैं, लेकिन रामविलास शर्मा जी यह दिखाते हैं कि ''देशभक्ति, विज्ञान, स्वाधीनता ये सब बातें भारत यूरापे से नहीं, एशिया के देश जापान से भी सीख सकता है। एशिया के देश एशियाई होने के कारण यूरोप वालों के गुलाम बनेगें ही, यूरोप हमेशा श्रेष्ठ है, एशिया के लोग उनके सामने हमेशा पिछड़े हुए हैं, पहले भी रहे हैं, आगे भी रहेंगे इस निरन्तर प्रचारित साम्राज्यवादी धारणा का खण्डन करते हुए निबन्धकार ने लिखा ''जापानियों के बराबर देशभक्ति और कोई पृथ्वी पर पीठ नहीं है। देशभक्ति से प्रेरित होकर विद्या और विज्ञान के बल पर वे असम्भव को सम्भव कर दिखाते हैं। जापान भी एशिया में है। हिन्दुस्तान भी एशिया में हैं। अधिकांश जापानी बौद्ध है और बौद्ध मत के प्रवर्तक की जन्मूभूमि हिन्दुस्तान ही है। प्रायः हिन्दुस्तानियों के रूप रंग में भी बहुत कुछ साम्य है हिन्दुस्तानियों के समान जापानी भी निरूपद्रवी, सहनशील, परोपकारी, दयालु, माता–पिता के भक्त और सरल स्वभाव के होते हैं। परन्तु दोनों में असमानता भी है। जापानी स्वधानी है हिन्दुस्तानी पराधीन.....जापान में छुआछूत नहीं, हिन्दुस्तान में इसकी पराकाष्ठा है। ये बातें विचार करने लायक हैं।''[13]

हिन्दी में नवजागरण के सूत्रधार द्विवेदी जी थे। भारत में नवजागरण का प्रभाव अंग्रेजों से नहीं आया। इस विषय में इंग्लैण्ड और जापान की तुलना की जानी चाहिए तो यह स्वतः सिद्ध हो जायेगा कि नव जागरण का प्रभाव इंग्लैण्ड से कितना भारत पर पड़ा। हिन्दी के जागरण में तो साफ–साफ दिखाई देता है कि न तो स्वाधीनता का प्रश्न है और न ही शिक्षा का प्रश्न या फिर समाज में बदलाव, सर्वांगीण विकास का किसी प्रकार का प्रभाव भारत में अंग्रेजों के द्वारा पूर्णतः लाया ही नहीं गया। रामविलास जी ''जापनी देशभक्त है, हिन्दुस्तानी देशभक्त नहीं।'' के मूल में राजनीतिक समस्या को इंगित करते हैं और लिखते हैं– ''पहले देश को पहचानों, हृदय में देशभक्ति को जगह दो, राष्ट्रीय एकता कायम करो, स्वाधीनता प्राप्त करो, तभी आधुनिक राष्ट्र बनेगें तब यूरोप के मुकाबले खड़े हो सकेगें।''[14]

अंग्रेजों की साम्राज्यवादी व्यवस्था विश्व के सभी उपनिवेशित देशों में लागू थी। इस व्यवस्था ने अनेक महाद्वीपों की जनता पर अपना शासन स्थापित कर लिया।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद भारत के स्वतंत्रता आन्दोलनों के सम्बन्ध की चर्चा की जाती रही है। इस विषय पर द्विवेदी जी भी अपनी चिन्ता व्यक्त करते हैं। अनेक देशों ने अपनी स्वतंत्रता के लिए अनेक आन्दोलन किए एवं लड़ाइयां लड़ी। उसका भिन्न देशों में भिन्न–भिन्न परिणाम निकला। इस प्रकार विभिन्न आन्दोलनों के द्वारा उत्पन्न स्थिति और उनके द्वारा संचालित की जा रही पूंजीवादी व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा, इस पर राम विलास शर्मा जी लिखते है ''इस तरह विभिन्न महाद्वीपों के स्वाधीनता आन्दोलन साम्राज्यवादी व्यवस्था पर प्रहार रहे थे। आवश्यकता इस बात की थी कि वे सब मिलकर इस अवस्था से लड़े जिससे कि अपने संघर्ष में उन्हें सफलता प्राप्त हो। रूस की समाजवादी क्रान्ति के बाद यह कार्य तेजी से हुआ किन्तु स्वाधीनता आन्दोलनों का जन्म रूसी क्रान्ति से नहीं हुआ, वे उससे पहले से विद्यमान थे, रूसी क्रान्ति को सफल बनाने में उनसे सहायता मिली....। युद्ध से पूंजीवाद का पुराना सम्बन्ध था। पूंजीवादी देश जैसे पिछड़ी हुयी जातियों के प्रदेशों में वही क्रिया सम्पन्न करने में लगे पूंजीवाद के विकास के साथ युद्ध के पैमाने और उसकी भीषणता में भी वृद्धि हुयी।''[15]

भारत में सामन्ती व्यवस्था अत्यन्त सशक्त एवं दृढ़ रही है। वहां विकास मुख्यतः विज्ञान एवं तर्क के रूप में रूढ़िवादी समाज में ग्राह्य नहीं होता है। जब अंग्रेज भारत को उपनिवेशित किये तब

भारत में पश्चिमी ज्ञान–विज्ञान का प्रसार होने लगा और यह प्रसार, भारतीय विज्ञान की दृष्टि से पीछे था। रामविलास शर्मा जी भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि भारतीय वैज्ञानिक यंत्र पाश्चात्य यंत्रों से अच्छे हैं और जिस यंत्र का पाश्चात्य अब विकास कार्य कर रहा था उसका रूप भारत में पहले से ही विद्यमान है। उदाहरणतया कृषि यंत्र जिसका रूप भारत में ''हल'' के रूप में है और पाश्चात्य जगत में ''ट्रैक्टर'' के रूप में है। अतः यह देखा जाता है कि हल के माध्यम से खेत की जुताई पहले से ही होती आ रही है।

किसी भी देश की राष्ट्रभाषा उसकी अनुगामी होती है। भावात्मक एकता का माध्यम राष्ट्रभाषा होती है। राष्ट्रभाषा की प्रगति देश की प्रगति में सहायक होती है। यूरोप में एक भाषा एक राष्ट्र का सिद्धान्त कार्य करता है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी भाषा है। भारत विभिन्न भाषा–भाषियों का देश सदियों से रहा है। यहां विभिन्न जाति–धर्म, सम्प्रदाय के लोगों का निवास स्थान है। जहां कितने ही प्रकार के लोग निवास करते हैं, वहां विभिन्न भाषा–बोलियों का होना स्वाभाविक है लेकिन किसी एक भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत कर लेने से राष्ट्र के विकास से महत्वपूर्ण भूमिका होती है। महावीर प्रसाद द्विवेदी स्वयं सात भाषाएं जानते थे– हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, गुजराती, मराठी, बंग्ला और अंग्रेजी इसका प्रमाण सरस्वती में समय–समय पर प्रकाशित लेखों द्वारा होता है। औपनिवेशित भारत में महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने हिन्दी का समर्थन किया। बंगला, गुजराती, तमिल आदि भाषाओं को शिक्षा का आधार बनाने और अन्य स्तरों पर उनका व्यवहार करने के लिए जहां भी प्रयत्न होते वहां द्विवेदी जी हिन्दी का समर्थन करते हैं। लेकिन हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित होने में सफलता नही मिली। इसका कारण बताते हुए शर्मा जी लिखते हैं– ''इसका एक कारण यह था कि प्रादेशिक भाषाओं के अधिकारों के लिए तब तक संघर्ष सफल न हो सकता था जब तक साथ–साथ केन्द्र से अंग्रेजी को हटाने का प्रयत्न न किया जाय। यद्यपि अनेक प्रदेशों में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए आवाज सुनायी दी, पर यह आवाज धीमी थी। केवल गांधी जी ने इस बात को अच्छी तरह समझा कि जब तक हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए जोरदार आन्दोलन न होगा, तब तक गुजराती और बंग्ला आदि भाषाओं को उनके अधिकार प्रान्त न होंगे।''[16]

इस दिशा में द्विवेदी द्वारा किये गये प्रयास के सम्बन्ध में फरवरी 1916 की सरस्वती में द्विवेदी जी ने एक टिप्पणी लिखी जिसको रामविलास शर्मा जी उद्धृत करते हैं– ''कांग्रेस में हिन्दी'' इस प्रकार दिसम्बर 1916 में कांग्रेस का 31वां अधिवेशन लखनऊ मे हुआ। इस प्रकार द्विवेदी जी हिन्दी के लिए अथक प्रयास किया है, चाहे वह साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली की स्थापना की बात हो या राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की स्थापना।''[17]

**सन्दर्भ :**


1. सम्पत्ति शास्त्र, प्रस्तावना पृष्ठ 7 यश पब्लिकेशन दिल्ली।
2. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, डॉ० रामविलास शर्मा पृष्ठ 15, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. वही, पृष्ठ संख्या 28
4. वही, पृष्ठ संख्या 29
5. वही
6. सम्पत्तिशास्त्र– महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रस्तावना पृष्ठ सं० 15, मैनेजर पाण्डेय
7. मैनेजर पाण्डेय का आलोचनात्मक संघर्ष– प्रणय कृष्ण, पृष्ठ संख्या 109, स्पॉट क्रिएटिव सर्विसेज, इलाहाबाद।
8. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नव जागरण, रामविलास शर्मा, पृष्ठ 31, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. वही, पृष्ठ संख्या 33
10. वही, पृष्ठ संख्या 33
11. वही, पृष्ठ संख्या 40

12. वही, पृष्ठ संख्या 43
13. वही, पृष्ठ संख्या 53
14. वही, पृष्ठ संख्या 54
15. वही, पृष्ठ संख्या 61
16. वही, पृष्ठ संख्या 195
17. वही, पृष्ठ संख्या 195

***

# बौद्ध धर्म में महिलाओं का स्थान एवं सामाजिक उत्थान में सहभागिता

*डॉ. यु. कुण्डला* *

जैसा कि हमारीप्राचीन परम्परा से चली आ रही प्रथा के अनुसार मनुस्मृति में यह कहा गया है, जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ सभी देवता निवास करते हैं। नारी को वैदिक काल से ही सम्मानित दृष्टि से देखा जाता है। महिला को श्रद्धा, दया, ममता एवं सौन्दर्यरूपी कोमल मूल्यों वाली देवी माना गया है।

किसी भी दश में सम्यता एवं संस्कृति के विकास में बेटी, पत्नी व माता के विविध रूप में नारी का महत्वपूर्ण योगदान होता है। वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति उत्तम रही है, समाज में इन्हीं पुरूषों के समान धर्म, राजनीति, शिक्षा और सम्पत्ति के समान अधिकार प्राप्त थे। इस काल में अनेक विदुषियाँ हुई थी जिन्होंने वेदों की ऋचाओं रचना की व पुरूषों से शास्त्रार्थ करती थीं। इनमें विषवारा, अपाला, घोषा, लोपा, मुद्रा, गार्गी, लीलावती मुख्य है।

बौद्ध धर्म में महिलाओं की स्थिति अच्छी रही है। उन्हें पुरूषों के समान दर्जा दिया गया। उन्हीं में से एक थीं महामाया देवी जिन्होंने ५६३ ई.पू. में ५६ साल की अवस्था में गर्भधारण किया। वह शाक्यवश के राजा शुद्धोधन की पत्नी थी। राजा शुद्धोधन हिमालय पर्वत के नीचे कपिलवस्तु नामक देश के राजा थे। महामाया ने नेपाल में (लुम्बिनी) नामक वन में गौतम बुद्ध को जन्म दिया। जन्म के पश्चात् युवा अवस्था में सिद्धार्थ गौतम को चार दुःख के दृश्य दिखाई पड़े। वृद्ध, बीमार, मृत व सन्यासी। तत्पश्चात उन्होंने गृहत्याग करने का निर्णय लिया। उन्होंने घर त्याग दिया और बोधगया में बोधिवृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किया। प्रजापति गौतमी, जो कि महामाया देवी की बहन थीं, उन्होंने बुद्ध भगवान का पालन-पोषण किया था, उन्होंने भगवान गौतम बुद्ध से प्रार्थना किया कि उनको भी भिक्षुणी बनालें, मगर तथागत ने अस्वीकार कर दिया। अपने शिष्य आनन्द (चचेरे भाई) के आग्रह पर उन्होंने उन्हें भिक्षुणी बना लिया एवं भिक्षु-भिक्षुणी को संघ में समान रूप से दर्जा दिया। बौद्ध समाज में पुरूष-महिला को समान दर्जा दिया गया है। बुद्ध ने अपने उपदश में कहा कि जिस प्रकार समुद्र के पानी में कोई भी वस्तु डालने से प्रभाव नहीं पड़ता व निरन्तर बहता है इसी प्रकार बुद्ध के शरण में आने से जाति-पाति, ऊँच-नीच एवं पुरूष-महिला किसी का भी भेद-भाव नहीं किया जाता। उनके द्वारा सभी मानव जाति समान है।

अतः कहने का तात्पर्य यह है कि पुरूष एवं नारी पहिए के दो रूप माने जाते हैं। आधुनिक समय म कुछ महान समाज सुधारकों द्वारा महिलाओं को समाज में उचित स्थान दिलवाया गया। जिसमें राजा राम मोहन राय, महात्मा गांधी, स्वामी दयानन्द सरस्वती, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने हर क्षेत्र में नारी के लिए एक अच्छे प्रयास किये हैं। परन्तु समय के बदलाव के साथ नारी को उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। उन्हें सिर्फ घर, गृहस्थी एवं अभिभावकों द्वारा बालिका मजदूरी एवं बेटी को पराया धन के रूप में देखना इत्यादि पुरूष प्रधान समाज में महिला को हेय दृष्टि से देखा जाता है। पुरूष अपने शारीरिक बल द्वारा महिला का शोषण करते हैं, उन्हें यह लगता है कि नारी का शिक्षा देने की क्या जरूरत है, उन्हें तो चूल्हा-चौका ही करना है और अगर कोई महिला शिक्षित होकर डॉक्टर बन जाती है तो कई बार पति एवं समाज द्वारा ईष्यावश शैक्षणिक शोषण भी किया जाता है।

महिलाओं के साथ अमानवीय व्यवहार, छेड़-छाड़, घरों, सड़कों, बगीचों, कार्यालयों में देखा जा सकता है। वास्तविकता यह है कि अगर प्रत्येक महिला शिक्षित हो जाये तो सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक विकास को अत्यधिक बढ़ावा मिलेगा। अगर एक आदमी शिक्षित होता है तो कुछ लोग शिक्षित होते हैं, और अगर एक नारी शिक्षित होती है तो एक पीढ़ी शिक्षित होती है।

लेकिन वर्तमान समय में जब किसी परिवार में पुत्री का जन्म होता है, तब माता-पिता के चेहरे पर खशी का एहसास न होकर उनके चेहरे पर दुःख झलकता है। कारण लड़की पराया धन होती है। उनकी सबसे बड़ा चिंता जब

---

* सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, चीनी एवं जापानी अध्ययन विभाग, नव नालन्दा महाविहार, (मानित विश्वविद्यालय) संस्कति मंत्रालय, भारत सरकार, नालन्दा

उस लड़की की शादी होगी तब वे उनके लिए दहेज रूपी पैसा, जेवर तथा भिन्न-भिन्न तरह का ख्याल उनके जेहान में आता रहता है। सोचते हैं कि वे इतना पैसा कहाँ से लाएगें।

परन्तु हमारे संविधान में साफ-साफ लिखा है कि दहेज लेना और देना अपराध है। फिर भी हम बुद्धिजीवी लोग और हमारा समाज इसे नकारते हैं। हम जानते है कि आज हमारे समाज में महिलाओं के ऊपर जो अपराध हो रहे है, तकरीबन ६०:दहेज के मामले पाए जाते है।

मेरे अनुसार जब तक आप और हम अपनी दकियानुशी सोच और हमारी पुरानी परम्परा को नहीं बदलेगें तब तक हमारे देश और हमारी देश की महिलाओं का उत्थान और विकास संभव नहीं है। चाहे हमारे सरकार महिलाओं के लिए कितनी ही योजना और नियम बना ले, जब तक महिलाओं की स्थिति नहीं सुधरेगी तो देश का विकास नहीं हो सकेगा।

भगवान बुद्ध के विचार नारी के जीवन में कितना बड़ा विश्वास, कितनी बड़ी आशा, उम्मीदें जगाते हैं, इस बात का पता इन थेरियों के वचनों से पता चलता है। उसी प्रकार **थेरीगाथा** से इस बात का पता चलता है कि नारी केवल श्रद्धा और आस्था रखने वाली ही नहीं होती, बल्कि बुद्धिमत्तामें पुरूषों से किसी भी मात्रा में कम नहीं होती। थेरीगाथा म भिक्खुणियों का जो व्यक्तित्व व्यक्त हुआ है, उनके व्यक्तित्व के चरित्र के जो गुण व्यक्त हुए हैं, वे भारतीय साहित्य में अन्यत्र व्यक्त नारियों के चरित्र से एकदम भिन्न हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में व्यक्त नारियों के चरित्र से एकदम भिन्न हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में व्यक्त नारियाँ अधिकांश काल्पनिक और पौराणिक हैं। लेकिन थेरीगाथा की थेरियाँ न काल्पनिक हैं और न पौराणिक हैं। थेरीगाथा की सभी थेरियाँ ऐतिहासिक पात्र हैं। जिनके जीवन में कहीं भी निराशावाद नहीं हैं, बल्कि आशावाद, दृढ़ संकल्प है। परमशान्ति, निर्वाण को प्राप्त करने का और जीवन से सभी दुक्खों को समाप्त करके, जीवन से तृष्णा को समूल नष्ट करके, तीनों विद्याओं को प्राप्त करके, अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करके निर्वाण प्राप्त करने का भी दृढ़ संकल्प इनमें स्पष्ट देखा जा सकता है। उसी प्रकार इन भिक्खुणियों में मानवतावाद भी कूट-कूट कर भरा हुआ ह। यह भिक्खुणियाँ बुद्ध के उपदेशों को जन-जन तक पहुँचाने का भी महान कार्य करती हैं। भिक्खुणी **पटाचारा की शिष्या भिक्खुणियाँ** कहती हैं कि -

**लोग मूसलों से धान कूट-कूट कर**
**अर्थार्जन करते हैं**
**और अपने स्त्री-पुत्रादि का पालन-पोषण करते हैं।**
**तो फिर तुम भी बुद्ध के शासन का अभ्यास**
**क्यों नहीं करती,**
**जिसे करके पछताना नहीं होता।**
**.....पटाचारा के शासन के इन वचनों को सुन कर, हम सब पैर**
**धोकर एकान्त में ध्यान के लिए बैठ गई।**
**और चित्त की समाधि से युक्त होकर**
**हमने बुद्ध-शासन को पूरा किया।**

इस तरह भिक्खुणियाँ अपने विचारों से दूसरों को प्रभावित करके बुद्ध के शासन को जन-जन तक पहुँचाने का भी कार्य करती थीं। भिक्खुणी धम्मदिन्ना बुद्ध की धम्म-प्रचारक भिक्खुणियों में प्रथम और अग्रणी मानी जाती है। भिक्खुणी धम्मदिन्ना ने राजा बिम्बिसार की शंकाओं का भी बड़े बुद्धिवादी ढंग से समाधान किया था। जिसका प्रशंसा स्वयं भगवान बुद्ध ने भी की। बौद्ध धम्म के प्रचार-प्रसार में भिक्खुणियों का बहुत ही योगदान हैं।

इस थेरीगाथा में केवल अर्हत भिक्खुणियों के और वह भी बुद्धकालीन भिक्खुणियों के विचार, जीवनानुभव, जो उन्होंने स्वयं प्रेरित होकर गए हैं, संग्रहित हैं। वास्तव में भिक्खणियों की संख्या अनगिनत है। देश-विदेश में अनगिनत भिक्खुणियाँ हुई हैं। इस थेरीगाथा में केवल ७३ भिक्खुणियों के जीवनानुभव है।

बौद्ध धर्म में महिलाओं को सम्मान ओर पुरूषों के समान अधिकार मिला। यही कारण रहा कि विभिन्न जाति, सम्प्रदाय एवं वर्णों से आने वाली स्त्रियों को संघ में स्थान मिला। थेरीगाथा में थेरियों के उदान इस बात का प्रमाण हैं कि भारतीय चिन्तन परम्परा में बुद्ध ने स्त्रियों के सशक्तिकरण के लिए जो कार्य किया, उसने भारतीय स्त्रियों

के दार्शनिक चिन्तन के लिए प्रेरणा का कार्य किया और इस बात के लिए आश्वस्त किया कि स्त्रियों को भी यदि समानता का अवसर मिले तो वह भी चिन्तन परम्परा में अतुलनीय योगदान दे सकती हैं।

**सन्दर्भ :**


१. ज्ञवदह र्प ज्ंच क्म श्रपदह – ज्ंसचम ;त्मंत २०००ए ज्ंपूंदद्ध
२. दीघनिकाय, भाग- २, पृ०- १६३.
३. बुद्धवंस (म्यानमारी भाषा)
४. संयुक्तनिकाय अट्ठकथा
५. भद्दाकपिलानी थेरी अपदान, अपदान
६. क्प र्प ळनप ळनपकम ज्च । भ्ंचचल स्पमिण
७. थेरीगाथा, (अनु. डॉ. विमल कीर्ति), नई दिल्ली, सम्यक् प्रकाशन, २०१२।
८. थेरगाथापालि, थेरीगाथापालि, हिंदी अनुवाद (अनु. स्वामीद्वारिकादास शास्त्री), वाराणसी : बौद्धभारती, २०१२।
९. उपाध्याय, भरत सिंह, पालि साहित्य का इतिहास, प्रयाग : हिंदी साहित्य सम्मेलन, २०१३।
१०. पिपलायन, मधुकर, बौद्ध महिलाओं के प्रेरणादायक प्रसंग, नई दिल्ली : सम्यक प्रकाशन, २०१३।


***

# सोशल मीडिया के प्रमुख स्वरूप

*दिग्विजय त्रिपाठी* *

सोशल मीडिया के सन्दर्भ में जो विचार समाज के सम्मुख रखे जाते रहे हैं। उन्होंने सोशल मीडिया की उत्पत्ति, विकास के साथ ही साथ अनुप्रयोगों तथा सामग्रियों के सन्दर्भ में की गयी विश्लेषणात्मकता द्वारा व्यापक परिवर्तन को स्वीकारना है। सोशल मीडिया के परिभाषा में कहा गया है कि यह इन्टरनेट आधारित अनुप्रयोगों का एक ऐसा समूह है जो प्रयोक्ता जनित सामग्री के सृजन एवं आदान-प्रदान की अनुमति देना है। इसके अतिरिक्त सोशल मीडिया मोबाइल और वेब आधारित प्रौद्योगिकी द्वारा ऐसे क्रियाशील मंचों का निर्माण करना है, जिनके माध्यम से व्यक्ति और समुदाय सामग्री का सम्प्रेषण एवं सह सृजन कर सकते हैं, उस पर विचार कर सकते हैं और उसका परिष्कार कर सकते हैं। यह संगठनों, समुदायों और व्यक्तियों के मध्य संचार के महत्त्वपूर्ण और व्यापक परिवर्तनों को परिणाम के रूप में देता है।[1]

सोशल मीडिया व्यवहारिक रूप से टेक्ट और प्रस्तुतिकरण दोनों माध्यमों की अनुमति देता है। स्वभावतः मल्टिमीडिया होने के कारण यह ज्ञान को अभिव्यक्त करने के लिए उपरोक्त दोनों माध्यम की स्वीकृति प्रदान करने के साथ ही साथ अन्य अनेक माध्यम जैसे- विडियो, कार्टून, स्लाइड, आडियो, फोटो आदि भी शेयर उपलब्ध कराता है। सोशल मीडिया पर इस प्रकार के ई-पोर्टफोलियो की संरचना ज्ञान के औपचारिक और अनौपचारिक विकास हेतु जनसमुदाय को समृद्ध करता है। यह अभिप्रेरणा के प्रभावी सिद्धान्त को त्वरित और क्रियाशील बनाता है।[2] मीडिया और समाज का सम्बन्ध आरम्भ से ही रहा है, किन्तु मीडिया ने समय-समय पर समाज को ऊर्जावान बनाया है। आधुनिक परिस्थिति में लोकतांत्रिक व्यवस्था के स्थापित होने में मीडिया ने सबसे महत्त्वपूर्ण दायित्व का निर्वहन किया है। सोशल मीडिया ने समाज के मध्य अपनी सार्थकता भी स्थापित किया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समाज की अपेक्षायें मीडिया से बढ़ी है। मीडिया ने अपने दायित्व के अनुरूप चुनौतियों के उत्तर के रूप में सामान्यीकृत करते हुए विविध एप्स का निर्माण किया जिसे नागरिकों द्वारा संज्ञान अधिकार को प्राप्त करने वाले माध्यमों के रूप में देखा गया। इस प्रक्रिया ने मूलभूत आदर्शों और मूल्यों को भी परिवर्तित किया। नीतिगत और नैतिकता के स्थान पर वैचारिकी को सामाजिक निर्णय के रूप में स्थापित किया है जिससे की व्यक्ति की अपेक्षायें आनलाईन समाज की ओर निर्भर हो गयी। इस प्रकार सोशल मीडिया को सामाजिक जीवन के दर्पण के रूप में देखा जाने लगा। सोशल मीडिया केवल सूचना और मनोरंजन के विकल्प न होकर जागरूक नैतिक और जनमत को बनाने के रूप में तैयार किया गया।[3]

सोशल मीडिया के प्रचार-प्रसार में भाषाई उपादेयता की विशेष महत्ता रही है। जब तक सोशल मीडिया वैश्वीक भाषा पर आधारित था तब तक इसका विकास अत्यन्त धीमी गति से था, किन्तु जैसे ही सोशल मीडिया में राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय भाषाओं में भाषायी उपस्थिति दर्ज कराई। इसके विकास की गति तीव्र हो गयी। भाषा की संरचना और बाह्य प्रयोग संवाद सम्प्रेषण और सौम्यता को प्रभावित किया। संसार की लगभग सभी भाषाओं में सोशल मीडिया के प्रभावों का अनुभव किया जा रहा है। साथ ही उसे समझने का भी प्रयास किया जा रहा है। उस पर विमर्श हो रहा है। सोशल मीडिया ने जो नया माध्यम उत्पन्न किया है वह सभी भाषाओं के प्रयोग उपयोग के ढंग, शैली और वाक्य रचना को प्रभावित किया है। यह प्रभाव सोशल मीडिया के विविध साइटों पर केवल लिखित अथवा लेखनी में ही प्रभावी नहीं दिखलाई पड़ता बल्कि बोल-चाल वाली भाषा पर भी इसका प्रभाव व्यापक रूप से दिखलाई दे रहा है।[4] सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्य की सुगमता भी हुई है। जिस कार्य को पूर्णता के रूप में प्रिन्ट मीडिया और इलेक्ट्रानिक मीडिया मिलकर नहीं कर

---

* शोध छात्र, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

पाये उसे सोशल मीडिया के छोटे-छोटे माध्यमों ने कर दिखाया। क्योंकि सोशल मीडिया एक सामाजिक विचार का मंच है जो एक प्रकार की ऐतिहासिक परिघटना के रूप में सामने आया है। इसने समाज और निजी जीवन में प्रभावी हस्तक्षेप किया। साहित्य के सन्दर्भ में यह स्थिति अधिक सहिष्णु दिखाई देता है कि अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करने की परम्परा में सबसे अधिक प्रभावी सोशल मीडिया के विविध एप्स हैं।[5]

सामाजिक परिवर्तन में सोशल मीडिया द्वारा हस्तक्षेप इन्टरनेट के विकास के क्रम के साथ ही बढ़ता गया। यह वृद्धि सोशल साइटों के निर्माण के पश्चात् सुविधा और उपयोग के अनुसरण के रूप में और अधिक सक्रिय हो गया। सोशल साइटों के (अपडेट) सुधार और आवश्यकताओं के अनुरूप सुविधाओं के मिलने से इसकी उपादेयता बढ़ गयी। भाषा के सरलीकरण और दैनिक जीवन में इनके प्रयोग के अनुबन्ध में सोशल साइट्स को और अधिक आकर्षक बनाया, साथ ही सस्ता और मनोरंजनपूर्ण होने के कारण समूह की निर्भरता सोशल साइटों पर और अधिक बढ़ गया। साइटों के निर्माण से उनके प्रति रुचियों का आकर्षण साइट की ग्राह्यता और उपयोगिता को दर्शाते हैं। वर्तमान में सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में कुछ प्रमुख साइटों के महत्त्व और उपयोग को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है -

**1. लिंकडिन -** 28 दिसम्बर सन् 2002ई. को माउन्डेन ब्यू कैलिफोर्निया, अमेरिका में रीड हॉफ मैन, एलेन ब्लू, के. ग्वेरिक, ऐरिकली, जीन-लुक विलिएन्ट ने माइक्रोसाफ्ट कम्पनी के साथ मिलकर इसका निर्माण किया।[6] सन् 2002ई. में निर्मित होने के पश्चात् 2003 में लिंकडिन की साइट सफलता पूर्वक और तीव्र रूप से प्रसारित हुई। लिंकडिन ने सोशल नेटवर्किंग पर पूर्णरूप से व्यापारिक और व्यवसायिक क्रियाविधि को अपनाया। लिंकडिन ने अपने साइट के अन्तर्गत विविध प्रकार के वार्तालापों को सामान्य रूप से लागू न करते हुए केवल व्यवसायिक और प्रतिष्ठापरक वाणिज्यिक केन्द्र पर अपना ध्यान केन्द्रित किया।[7] इस प्रकार यह साइट् पूर्ण रूप से व्यापार को समर्पित सोशल नेटवर्किंग की प्रक्रिया के साथ व्यापारिक प्रतिष्ठान और पेशेवर प्रारूप को अपनाने वाला साईट है। अपनी इन्हीं गुणवत्ताओं के कारण यह वर्तमान समय में भी दुनिया की लोकप्रिय सोशल नेटवर्किंग साइट में से एक है।

लिंकडिन का प्रयोग दो प्रकार की सेवाओं के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। यह सेवायें मुफ्त (फ्री) तथा प्रीमियम (भुगतान) के विकल्प के रूप में उपभोगकर्ता के सामने आता है। उपभोगकर्ता को यह तय करना होता है कि लिंक में किस प्रकार की सेवा लेना चाहते हैं। इस सुविधा के विकल्प के अनुप्रयोग के कई कारण हैं जिनमें से प्रमुख कारण वेवसाइट उद्योगों और कम्पनियाँ उपयोगकर्ताओं हेतु नौकरी अथवा रोजगार की खोज को पूर्ण करना होता है। कुछ लोग ब्लॉग अथवा वेबसाइट को भी इसमें शेयर कर अपनी उपस्थिति अथवा ट्रैफिक को बढ़ा सकते हैं जिससे सोशल नेटवर्किंग, मीडिया नेटवर्किंग के इस साइट में पेशेवर व व्यवसाय से सम्बन्धित सम्भावनाओं में सुगमतापूर्वक प्राप्त करके उसका पूर्ण उपयोग किया जा सके। आधुनिक समय में भी लिंकडिन का प्रयोग प्रतिष्ठापरक रूप में किया जा रहा है। वर्तमान में इसके 739 मिलियन यूजर हैं।[8]

**2. फेसबुक -** मार्क जुकरवर्ग तथा डस्टिन मास्कोविड्ज द्वारा फेसबुक की स्थापना सन् 2004ई. में की गई। यह उस समय निर्मित किया गया जब मार्क जुकरवर्ग कम्प्यूटर विज्ञान के छात्र थे। वास्तव में इसकी स्थापना छोटे ग्रुप को तैयार करने के लिए किया गया। जिसमें हावर्ड विश्वविद्यालय के छात्रों को परस्पर जोड़ना प्रमुख था। हावर्ड विश्वविद्यालय के साथ ही कुछ ही समय में अन्य कॉलेजों तक इसका विस्तार हो गया। इसके माध्यम से छात्र साइट पर पंजीकृत होकर अपने आवश्यकता और उद्देश्यों के अनुरूप अन्य छात्रों से सम्बद्ध होकर विचारों का आदान-प्रदान करने लगे। यह प्रयोजन छात्रों के मध्य सफल तथा लोकप्रिय हो गया जिसका गैर-विद्यालयों के छात्रों पर भी प्रयोग किया गया। वर्ष 2005 ई. को इसका हाईस्कूल संस्करण प्रारम्भ किया गया। सितम्बर 2006 ई. से फेसबुक को सोशल मीडिया की दुनियाँ में सबके उपयोग तथा स्वागत के लिए इसे खोल दिया। जिसने सोशल मीडिया जगत् में वैचारिक क्रान्ति का प्रसार किया। सोशल मीडिया की इस साइट् पर उपयोगकर्ताओं द्वारा अपने विचारों को दूसरे को सम्प्रेषित करने तथा दूसरे द्वारा अभिव्यक्त किये गये विचारों को जानने और उनसे सम्बन्धित होने के अनेक अप्लिकेशन उपलब्ध कराये गये। फेसबुक की सफलता का मूल कारण समय और आवश्यकता के अनुरूप नये-नये सोशल अप्लिकेशनों का इससे जुड़ना भी रहा है। अध्ययन विषय यह बताते हैं कि फेसबुक की प्रसिद्धि और

सफलता से प्रभावित होकर अन्य अनेक दूसरे साइट्स याहू से लेकर **वायेकाम** जैसी बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ इसे खरीदना चाहती थी। किन्तु, मार्क जुकरवर्ग ने इसे स्वयं ही संचालित किया। इसकी सफलता का मूल्यांकन इस प्रकार से कर सकते हैं कि वर्ष 2008 ई. में फेसबुक **माई स्पेस** को पीछे छोड़कर नम्बर एक सोशल नेटवर्किंग साइट्स बन गयी, जो वर्तमान में भी बनी हुई है।

सोशल मीडिया को परस्पर संवाद का इन्टरनेट आधारित एक ऐसा अत्यधिक गतिशील प्लेटफार्म कहा जा सकता है जिसके माध्यम से आमजन संवाद स्थापित करते हैं। परस्पर जानकारियों, सूचना या ज्ञान का आदान-प्रदान करते हैं और उपयोगकर्ता जनित सामग्री को सामग्री सृजन की सहयोगात्मक प्रतिक्रिया के एक भाग के रूप में संशोधित करते हैं। इसमें सोशल नेटवर्किंग साइट्स (जैसे- फसेबुक और गूगल +), ब्लॉग और माइक्रोब्लॉग (जैसे-ट्विटर) सामग्री समुदाय (कन्टेन्ट कम्यूनिटीज) (जैसे- यूट्यूब), सहयोगात्मक सामग्री सृजन परियोजनाएँ (यथा- विकिपीडिया) और यहाँ तक की आभासी गेमिंग कम्यूनिटीज (यथा-वर्ल्ड ऑफ वार क्राफ्ट) सम्मिलित हैं। यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि एन्ड्रोयड मोबाइल फोन की बढ़ती लोकप्रियता और विस्तार से सोशल मीडिया का विस्फोटन हो गया है।[9]

**3. यूट्यूब** – स्टीव चेन, जावेद करीम और मार्क हर्ले ने 14 फरवरी वर्ष 2005 ई. को यूट्यूब नाम से सैनब्रूनो, कैलिफोर्निया, अमेरिका में एक सोशल प्लेटफार्म पंजीकृत किया। इसने पंजीकृत सदस्यों को विडियो क्लिप को देखने की सुविधा के साथ ही साथ अपना विडियो अपलोड करने की सुविधा मिली। इस साइट् का उद्देश्य विशेष रूप से विडियो और उससे सम्बन्धित कार्यक्रमों को विडियो ब्लॉगिंग के रूप में प्रसारित करना था। इसकी दो प्रमुख सेवा शर्तें थीं। गैर पंजीकृत सदस्य केवल विडियो देख सकते हैं और टिप्पणी कर सकते हैं, वहीं पंजीकृत सदस्य असीमित विडियो अपलोड कर सकते हैं और विडियो में टिप्पणी भी जोड़ सकते हैं। यूट्यूब द्वारा दिखाये जाने वाला विडियो लाईव स्ट्रीम से सम्बन्धित विडियो को दिखाया जाने वाला एक प्लेटफार्म है जो प्रत्यक्ष प्रभाव को दर्शाता है। इसमें अधिकांश विडियो निःशुल्क होते हैं, लेकिन कुछ विडियो को भुगतान के बाद देखा जा सकता है। यूट्यूब के आरम्भ के पश्चात् ऑनलाईन विडियो पोस्ट करने के सरल विकल्पों में इन्टरफेस को आसानी से उपयोग करने के अतिरिक्त यूट्यूब ने इसे सम्भव बनाया। यूट्यूब ने विविध विषयों के साथ विडियो साझेदारी के इन्टरनेट कल्चर को सबसे महत्त्वपूर्ण भाग बना दिया। यूट्यूब लगभग सभी विषयों पर विविध विचारों और उनसे सम्बन्धित अभिगम की प्रक्रिया को सामान्यीकृत करने का प्रयास किया। यूट्यूब शिक्षण, प्रशिक्षण के अतिरिक्त अन्य विविध प्रकार के प्लेटफार्मों को देने का कार्य किया। यह प्लेटफार्म प्रशिक्षण और विकल्प के कारण अधिक लोकप्रिय हुए। साथ ही मनोरंजन, कार्टून और चिकित्सा के क्षेत्र में भी इसका प्रभाव लोकप्रिय रहा। यूट्यूब की मातृ कम्पनी गूगल है जबकि इसका स्वामित्व गूगल व अल्फावेट कम्पनी के अधिन आता है। इसका मुख्य उत्पाद विडियो होस्टिंग सेवा है।[10] वर्तमान में यूट्यूब के 02 बिलियन से ज्यादा यूजर्स हैं।[11]

**4. ट्वीटर** – ट्वीटर एक माइक्रो ब्लॉगिंग साइट्स है जो पारम्परिक ब्लॉग का एक आधुनिक स्वरूप है। इसकी स्थापना 21 मार्च सन् 2006 ई. को किया गया है। इसका मुख्यालय सेनफ्रान्सिंसको, कैलीफोर्निया, अमेरिका, बिजस्टोन इसके क्रिएटिव निदेशक हैं तथा इवॉन विलयम की देख-रेख में यह संचालित है जो बहुभाषीय विधाओं पर आधारित है। ब्लॉग के सन्दर्भ में यदि हम देखें तो इसमें कुछ शब्दों द्वारा अपनी अभिव्यक्ति दिया जाता है। जबकि माइक्रो ब्लॉग कुछ सौ अक्षरों द्वारा अथवा उससे कम शब्दों में अभिव्यक्ति दी जाती है। ट्वीटर के अन्तर्गत विविध भाषाओं में अभिव्यक्त विचारों को सम्प्रेषित करने के लिए अधिक शब्दों का उपयोग नहीं होता है। इसमें मुख्य बातें शीर्षक के रूप में दिया जाता है। यही कारण है कि ट्वीटर को इन्टरनेट का SMS भी कहा जाता है। जिस पर सन्देश आसानी से लिखे और पढ़े जाते हैं। ट्वीटर की कार्यविधिकी में संदेश को लिखना या प्रेषित करना **ट्वीट** कहा जाता है। इसके उपयोगकर्ता जो परस्पर आपस में जुड़े होते हैं उन्हें **फालोअर** कहा जाता है। ट्वीटर वर्तमान समय की सबसे प्रभावशाली माइक्रो ब्लॉगिंग साइट्स है।[12]

ट्वीटर का उपयोग विशेष रूप से विचारों के सम्प्रेषण के रूप में किया जा रहा है। ट्वीटर को विश्लेषणात्मकता के रूप में विशेष प्रसिद्धि मिली, क्योंकि इस पर लिखे जाने वाले विचार विश्लेषण के रूप में होते हैं।

आरम्भ में ट्वीटर पर विचार सीमित थे। किन्तु धीरे-धीरे विचारों की क्रान्ति और इसकी महत्ता को जनमानस ने समझा। संसार के कई देशों में ट्वीटर का प्रयोग व्यवसायिक गतिविधियों के मूल्यांकन हेतु

ग्राहकों से फिडबैक लिये जाने के सन्दर्भ में होता है। साथ ही विविध समाज सेवियों ने भी इसका उपयोग संन्देश तथा संरक्षण के सन्दर्भ में किया है। ट्वीटर के अन्तर्गत सबसे प्रभावशाली सूचनाओं को चुनाव विश्लेषण और नीतिगत निर्णयों के मूल्यांकन के रूप में देखा जा सकता है। वर्तमान में विविध राजनीतिक दल तथा सुप्रसिद्ध व्यक्ति अपने विचारों को सम्प्रेषित करने के लिए ट्वीटर का प्रयोग कर रहे हैं। भारत में ट्वीटर का प्रयोग राजनीतिक परिचर्चा और योजनाओं की समीक्षा के सन्दर्भ में विशेष रूप से दिखलाई पड़ता है।[13] विश्व में ट्वीटर के उपयोगकर्ताओं की संख्या 330 मिलियन मासिक एक्टिव यूजर हैं[14] जबकि वर्तमान में भारत में 17.3 मिलियन यूजर्स हैं।[15]

**5. ह्वाट्सएप** - वर्ष 2009 ई. में ह्वाट्सएप का मौलिक संस्करण प्रचलन में आया। इसके विकास में ब्रेएन एक्टोन व जॉन कौम का विशेष योगदान रहा है। जेन कौम और ऐलेक्स सिमैन के परस्पर सहयोग एवं वैचारिक आदान-प्रदान से ह्वाट्सएप का प्रयोगात्मक परीक्षण और विकास तीव्र गति से हुआ है। ह्वाट्सएप स्मार्ट फोन पर चलने वाला एक प्रसिद्ध तत्क्षण मैसेजिंग सेवा है। इसकी सहायता से इन्टरनेट के द्वारा दूसरे ह्वाट्सएप उपयोगकर्ता से सम्बन्ध स्थापित करके विविध प्रकार के संदेशों को सम्प्रेषित अथवा प्राप्त किया जाता है। मोबाइल एप में ह्वाट्सएप सन्देश सेवा के आदान-प्रदान का सबसे लोकप्रिय तथा प्रचलित एप है। इस एप में पारम्परिक रूप से सूचना सम्प्रेषण के विविध आयामों को एक स्थान पर एकत्रित करके एक ही एप द्वारा सम्प्रेषित करने का क्रान्तिकारी कार्य किया। इस मोबाईल सॉफ्टवेयर के अन्तर्गत मोबाईल डेटा अथवा इन्टरनेट का उपयोग करके बिना किसी अतिरिक्त शुल्क के अनगिनत सन्देश, फोटो, विडियो, डाक्यूमेन्ट्स, ऑडियो संदेश और मुफ्त कॉल करने की सुविधा दी है। यह एप भाषा के सीमा और बन्धन से मुक्त है। इसके अन्तर्गत भेजे गये सन्देश का प्रयोग सामूहिक वार्तालाप द्वारा विचारों का परस्पर आदान-प्रदान होता है। यह अदान-प्रदान सबसे अधिक प्रभावी इसलिए भी माना जाता है क्योंकि इसमें उपयोगकर्ता यदि अल्पशिक्षित हैं तो भी ऑडियो और विडियो के माध्यम से जानकारी भेजता अथवा प्राप्त करता रहता है। वास्तव में ह्वाट्सएप इन्टरनेट उपयोगकर्ताओं की महती आवश्यकता बन गया है।[16] सामाजिक परिवर्तन के जिन साइटों को विविध आयाम के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है उनमें वर्तमान में ह्वाट्सएप सबसे अधिक लोकप्रिय, प्रसिद्ध और प्रभावी है। इस अप्लिकेशन के अन्दर सूचना देने के उद्देश्य तथा सूचनाओं के सम्प्रेषण का मूल्यांकन अत्यन्त सुगमता से होता है। अनेक दशाओं में यह देखा जा सकता है कि ह्वाट्सएप के प्रति वैश्विक आधार पर जनमानस की उत्सुकता अन्य एप की तुलना में अधिक है। विश्व में इस समय ह्वाट्सएप के 02 विलियन यूजर्स हैं[17] तथा भारत में 240 मिलियन लोग ह्वाट्सएप का उपयोग करते हैं।[18]

**6. इंस्टाग्राम** - इंस्टाग्राम इन्टरनेट आधारित साझाकरण अप्लिकेशन के रूप में उपयोगकर्ताओं के सामने सार्वजनिक रूप से अक्टूबर 2010ई. में आया। इसकी स्थापना केविन सिस्ट्राम और माइक क्रेगर के द्वारा IOS ऑपरेटिंग सिस्टम के लिए विशेष रूप से निःशुल्क मोबाईल एप के रूप में दिया गया। सन् 2010 ई. में इसके निर्माण के पश्चात् सन् 2012 ई. से इंस्टाग्राम अधिक लोकप्रिय हो गया। इसके अन्तर्गत पंजीकृत उपयोगकर्ता अनगिनत रूप में फोटो और विडियो साझा कर सकते हैं साथ ही फोटो के साथ फिल्टर का प्रयोग व प्रेषित चित्रों के साथ अपनी यथास्थिति को भी जोड़ सकते हैं। यह स्थिति सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक स्थिति को भी चिन्हित करता है। इस अप्लिकेशन के अन्तर्गत फेसबुक और ट्वीटर जैसे सोशल साइट्स में हैज टैग जोड़े जाते हैं, वैसे ही इसमें भी हैज टैग लगाने का विकल्प होता है। इस ऐप में फोटो और विडियो के अतिरिक्त टेक्सट मैसेज को भी पोस्ट किया जा सकता है। इंस्टाग्राम स्टोरी फीचर के द्वारा उन विडियो और फोटो का ब्रोडकास्टिंग किया जा रहा है जो इंस्टाग्राम से 24 घण्टे बाद ही हटाये जाते हैं।[19] वर्तमान में इंस्टाग्राम की कुल विश्व में 1,000.8 मिलियन उपभोक्ता है[20] जबकि भारत में इंस्टाग्राम के 8 करोड़ 59 लाख उपयोगकर्ता हैं।[21]

**7. टेलीग्राम** - टेलीग्राम आधुनिक समय का मैसेजिंग एप है जो क्लाउड पर आधारित मैसेज और वाइस सुविधाएँ देता है। टेलीग्राम का निर्माण निकोलार्ड और पावेल डू ओ शेव ने किया। टेलीग्राम वर्ष 2013 ई. में विश्व के सम्मुख आया। लन्दन और जर्मनी में टेलीग्राम सर्वाधिक प्रचलित ऐप के रूप में है। यह एक ऐसा सोशल साइट्स है जो दूसरे अन्य साइट्स से बिल्कुल अलग है, क्योंकि यह मोबाईल नम्बर पर चलता है। इसमें एक से अधिक नम्बरों का उपयोग कर सकते हैं। टेलीग्राम एक प्रभावशाली ऐप है, जबकि इसका उपयोग करना अत्यन्त सरल है। इसमें सन्देश सेवा के साथ ही साथ महत्त्वपूर्ण जानकारी और गुप्त वार्तालाप की भी सुविधा है क्योंकि इसके चैट किसी भी सर्वर में सुरक्षित नहीं किये जाते हैं। टेलीग्राम

ऐप के रूप में उपयोग की स्थिति को प्रेषक अपने अनुसार परिवर्तित कर सकते हैं। टेलीग्राम में एक से अधिक प्रोफाईल पिक्चर रख सकते हैं, जबकि अन्य साइट्स में ऐसी सुविधा नहीं है।[22] वर्तमान में टेलीग्राम के विश्व में 400 मिलियन मासिक ऐक्टिव यूजर्स हैं[23] जबकि भारत में 15.45 मिलियन यूजर्स हैं।[24]

[25]

| क्र.सं. | नाम | सक्रिय उपभोक्ता | स्थापना | उत्पत्ति | सक्रिय सदस्यों की गणना की तिथि |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | टेन्सेन्ट क्यू.क्यू. | 976 मिलियन | फरवरी 1999 | चीन | जनवरी, 2021 |
| 2. | लिंकडिन | 206 मिलियन | मई 2003 | अमेरिका | जनवरी, 2021 |
| 3. | स्काइप | 460 मिलियन | अगस्त 2003 | स्टोनिया | मार्च, 2021 |
| 4. | वैडू टियेबा | 500 मिलियन | दिसम्बर 2003 | चीन | जनवरी, 2021 |
| 5. | फेसबुक | 2.74 बिलियन | फरवरी 2004 | अमेरिका | जनवरी, 2021 |
| 6. | टेन्सेन्ट क्यू जोन | 738 मिलियन | मई 2005 | चीन | दिसम्बर, 2020 |
| 7. | ट्विटर | 530 मिलियन | मार्च 2006 | अमेरिका | मार्च, 2021 |
| 8. | बीबीएम | 150 मिलियन | फरवरी 2007 | कनाडा | फरवरी, 2021 |
| 9. | सिना वाइबो | 511 मिलियन | अगस्त 2009 | चीन | जनवरी, 2021 |
| 10. | लेग्यू ऑफ लिजेंड | 120+मिलियन | अक्टूबर 2009 | अमेरिका | जनवरी, 2021 |
| 11. | पिन्ट्रेस्ट | 301 मिलियन | मार्च 2010 | अमेरिका | जनवरी, 2021 |
| 12. | इन्स्टाग्राम | 1221 मिलियन | अक्टूबर 2010 | अमेरिका | जनवरी, 2021 |
| 13. | वी-चैट | 1213 मिलियन | जनवरी 2011 | चीन | जनवरी, 2021 |
| 14. | वाइबर | 359 मिलियन | दिसम्बर 2010 | इजराइल | अप्रैल, 2021 |
| 15. | व्हाट्स-अप | 2.0 बिलियन | जून 2011 | अमेरिका | जनवरी, 2021 |
| 16. | लाइन | 295 मिलियन | जून 2011 | जापान | दिसम्बर, 2020 |
| 17. | गूगल प्लस | 413 मिलियन | जून 2011 | अमेरिका | अप्रैल, 2021 |
| 18. | फेसबुक मैसेन्जर | 1.3 बिलियन | अगस्त 2011 | अमेरिका | मार्च, 2021 |
| 19. | स्नैपचैट | 211+मिलियन | सितम्बर 2011 | अमेरिका | दिसम्बर, 2020 |
| 20. | टेलिग्राम | 300 मिलियन | अगस्त 2013 | रूस | फरवरी, 2021 |

उपरोक्त साइटों के प्रयोग और उपयोगकर्ताओं के द्वारा सूचना सम्प्रेषण के आदान-प्रदान के परिणामस्वरूप विविध प्रकार के परिवर्तन स्वभावतः दिखलाई पड़ते हैं। सोशल साइट्स मुख्यतः विचारों और अभिव्यक्तियों को क्रियात्मक रूप से परिचित करने का माध्यम बन गया है। यह माध्यम नवीन ज्ञान के साथ समृद्धिशाली परिवर्तन को सामाजिक जीवन के प्रत्येक पक्ष में विविध प्रकार के क्रियाशील परिवर्तन की स्वीकृति प्रदान कर रहा है। भारत के सन्दर्भ में यदि हम देखें तो भारत में उपयोग की जाने वाली साइट्स मनोरंजन के साथ विविध प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक मुद्दों को वैचारिक चर्चा का आयाम बनाते हैं। साइट्स विविध प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक मंचों को सामाजिक जागृति के सन्दर्भ में प्रयोजित करता है और शोषण के विरुद्ध आन्दोलन की धार को तीव्र बनाता है। विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत में सोशल मीडिया द्वारा सामाजिक परिवर्तन वृहद रूप में दिखलाई पड़ता है क्योंकि भारतीय समाज और यहाँ की संस्कृति सात्मीकरण को महत्ता प्रदान करते हैं। यह सात्मीकरण संरचना में आये परिवर्तन को विविध कसौटियों पर मूल्यांकित करके तथा उनको उस समाज के अनुरूप निर्मित कर प्रयोजित करता है। यह प्रयोजन सोशल मीडिया पर विचारों के साझा करने के परिणामस्वरूप देखे जाते हैं। भारतीय परिदृश्य में सोशल साइट्स आध्यात्म दर्शन से लेकर विज्ञान और दैनिक जीवन की कार्यशैली का महत्त्वपूर्ण अंग है। यह सामाजिक संरचना के सन्दर्भ में नवसंस्कृतियों का विकास करता है, जिसे हम इस प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं।

**सन्दर्भ :**


1. पेट्रिक एण्ड एस.एल. घोष एवं परंजय गुहा ठाकुरर्ता (2013), **डिजिटल स्पेस में विस्फोटन**, योजना, सम्पादक-रमी कुमारी, योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली, पृ. 9
2. पंथ,अतुल (2013), **शिक्षा में सोशल मीडिया : मदद अथवा बाधा**, योजना, सम्पादक-रमी कुमारी, योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली, पृ. 15
3. गौतम, नीरज कुमार (2013), **ऑनलाइन समाज की चुनौतियाँ**, योजना, सम्पादक-रमी कुमारी, योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली, पृ. 44
4. देव, राहुल (2016), **सामाजिक मीडिया और भाषा**, आजकल, वरिष्ठ सम्पादक, राकेश रेणु, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्पलेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली, पृ. 13
5. सुनिता (2016), **सोशल मीडिया और हाशिये का साहित्य**, आजकल, वरिष्ठ सम्पादक, राकेश रेणु, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्पलेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली, पृ. 11
6. Linkedin_wikipedia, https://en.m.wikipedia.org/wiki/linkedin
7. सुमन, स्वर्ण (2014), **सोशल मीडिया ( सम्पर्क क्रान्ति का कल, आज और कल )**, हार्पर हिन्दी, हार्परकॉलिंग्स पब्लिशर्स, इण्डिया, ए-75, सेक्टर 57, नोएडा-201301, यू.पी., पृ. 94
8. Linkedin_wikipedia, https://en.m.wikipedia.org/wiki/linkedin
9. सी. नंदिनी (2013), **सामाजिक सक्रियता का नया चेहरा 'फेसबुक'**, योजना, सम्पादक-रमी कुमारी, योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली
10. You.Tube_wikipedia, https://en.m.wikipedia.org.wiki
11. You.Tube_wikipedia, https://en.m.wikipedia.org.wiki
12. सुमन, स्वर्ण (2014), **सोशल मीडिया ( सम्पर्क क्रान्ति का कल, आज और कल )**, हार्पर हिन्दी, हार्परकॉलिंग्स पब्लिशर्स, इण्डिया, ए-75, सेक्टर 57, नोएडा-201301, यू.पी., पृ. 96
13. चक्रवर्ती, देवाशीष, **140 अक्षरों की दुनिया : माइक्रोब्लॉगिंग**, http://www.nirantar.org/0708_tech_deeragha_microblogging
14. Twitter_Kikipedia : https://en.m.wikipedia.org/wiki/twitter
15. https://www.statista.com/statistics/242606/number_of_active_ twitter_user_in_selected_countries/
16. WhatsApp_wikipedia, https://en.m.wikipedia.org/wiki/whatsapp
17. https://www.statista.com/statistics/242606/number_of_active_ twitter_user_in_selected_countries/
18. WhatsApp.Revenue and Usage Stetistics (2020), business of Apps, https://businessofapps.com/data/whatsapp-statistics
19. Instagram-wikipedia, https://en.wikipedia.org/wiki/instagram
20. https://www.statista.com/statistics/183585/instagram-number-of-global-users/
21. Instagram users in India-January 2020, https://napoleoncat.com/stats/instragram-users-in-india/2020/01
22. टेलीग्राम की पूरी जानकारी हिन्दी में, हिन्दी सहायता https://hindisahayta.in/telegram-kya-hai/
23. https://bachlinko.com/telegram-users
24. टेलीग्राम की पूरी जानकारी हिन्दी में, हिन्दी सहायता https://hindisahayta.in/telegram-kya-hai/
25. Social Media-Wikipedia, https://en.wikipedia.org/wiki/social_media


***

# भारतीय समाज में धर्म की भूमिका

*डॉली कुमारी**

अपनी आत्मा को जो दुःखदायी लगे,
वैसा आचरण दूसरों के साथ न करें।

इन पंक्तियों के द्वारा मैं अपने लेख का आरम्भ करती हूँ। ये सही है कि हमें कोई काम ऐसा नहीं करना चाहिए, जो हम अपने लिए नहीं चाहते हैं। 'धर्म' एक शब्द है, जिसे मानने वाले या नहीं मानने वाले लेकिन इसको लेकर सभी बातें करते हैं और इसी से हमारे समाज को जानने के लिए धर्म के विविध रूपों को समझने का प्रयास करना होगा, क्योंकि अकेले इस शब्द की गहराइयों में एक सम्पूर्ण सभ्यता छिपा है। 'धर्म' एक अत्यन्त समृद्ध व कई चरणों में विकसित होता हुआ प्रत्यय कहा जा सकता है जो अपने में अनेक, यद्यपि परस्पर सम्बन्धित अर्थों को समाहित किये हुए है, यदि धर्म का स्वरूप सही अर्थों में समझा जाये। यह दावा खोखला नहीं है बल्कि विश्व के महानतम विचारकों ने एवं ऋषियों ने जिस संस्कृति की प्रस्तावना की है, जिसे विश्व के हित के लिए स्वीकार किया है, वह भारतीय संस्कृति धर्म पर आधारित है। धर्म की महत्ता न केवल भारतीय परिपेक्ष्य में है वरन् सम्पूर्ण विश्व के लिए है जैसा कि तैत्तिरीय आरण्यक के निम्नलिखित उद्धरण से अभिव्यक्त होता है–

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा,
लोकोंधमिष्ठम् प्रज्ञा उपसर्पन्ति
धर्मेण पापमपनुदति,
धर्मे सर्व प्रतिष्ठितम्,
तस्मात् धर्म परम वदन्ति।

'धर्म' समस्त जगत को धारण करने वाली शक्ति है। यदि धर्म के स्वरूप को भली भांति समझा जाये तो यह केवल व्यक्ति की नहीं अपितु समस्त चराचर जगत की सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की धारक, नियामक, सहयाक व पूरक शक्ति है और इसीलिए समस्त जगत की पालक है। यह भी कटु सत्य है कि ब्रह्माण्ड विशेषकर इसमें मानव जीवन अपूर्ण और एक अर्थ में दुखमय ही है और मानव जीवन का उद्देश्य मुख्यतः अमृत तत्व की या पूर्णता की प्राप्ति और दुःख से मुक्ति ही है। वैशेषिकसूत्रकार कणाद ने धर्म को इस रूप में परिभाषित किया है कि जिससे अभ्युदय व निःश्रेयस की प्राप्ति होती है वह धर्म।

महाभारत तथा मनुस्मृति में धर्म की व्युत्पत्ति का इसी रूप में प्रदर्शन हुआ है। (धारणाद धर्मभित्याहुः धर्मेण धारयते प्रज्ञाः महाभारत, कर्ण पर्व, 58–69) धर्म की यह भूमिका 'योग व क्षेम के द्वारा परिपुरित होती है। ये दोनों अस्तेय व अपरिग्रह के आचरण द्वारा ब्रह्माण्ड नियोजन की प्रक्रिया को अंजाम देते हैं। योग, क्षेम, अस्तेय, अपरिग्रह ये चार स्तंभ है जिन पर ब्रह्माण्डीय व्यवस्था टिकी है। धर्म के संप्रत्यय की उत्पत्ति वैदिक ऋत् की अवधारणा में देखी जा सकती है जो भारतीय जीवन पद्धति के प्रत्येक पक्ष के मूल में निहित है। ऋत् को वैदिक ऋषियों ने जगत व्यवस्था के क्रम के रूप में पहचाना है जो सर्वत्र व्याप्त है। खेद का विषय है कि इन शब्दों का मूल अर्थ काफी तोड़ा–मरोड़ा गया है, और उसे विकृत कर दिया गया है। वास्तविक अर्थ को न समझने की मूल का प्रभाव भारतीय समाज पर स्पष्ट दिखाई देता है। धर्म संस्कृति का एक हिस्सा है।

**धर्म :**

मानवीय जीवन संबंधी अनेक कार्यों की पूर्ति करता है, इसी मानवीय लगाव के कारण आदिकाल से लेकर वर्तमान काल तक सभी समाजों में धर्म ही दिखाई देता है। धर्म जीवन के मूल्यों का महत्वपूर्ण अर्थ से स्पष्ट करता है। सदाचार की भावना से मनुष्य में आत्म नियंत्रण की शक्ति का उदय होता है। सामाजिक तथा मानवीय दोनों ही दृष्टि से धार्मिक संस्थाओं का बहुत ही महत्व है।

---

* शोध छात्रा, दर्शनशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

**भारतीय समाज में धर्म की सकारात्मक भूमिका :**

1. आर्थिक विकास में सहायक : धार्मिक प्रभाव के कारण समाज की अर्थव्यवस्था में भी परिवर्तन होता है। मैक्स वेबर ने इस बात को स्पष्ट किया है कि प्रोटेस्टेंट धर्म में पूंजीवाद का विकास किया।
2. सामाजिक संगठन का आधार : सामाजिक संगठन का उत्तरदायित्व तभी पूर्ण होगा जब समाज के सदस्य सामाजिक संगठन द्वारा बनाए गए सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों का पालन करें। इसके साथ ही समाज के सदस्य अपने कर्त्तव्य पालन भी करें। धर्म का योगदान इन सभी परिस्थितियों को उत्पन्न करने में रहा है।
3. सामाजिक नियंत्रण का प्रभावपूर्ण साधन : आदिम समाजों में जब राज्य कानून आदि औपचारिक व्यवस्थाएँ नहीं थी। तब धर्म ही अपने सदस्यों के तौर–तरीके पर अंकुश लगाकर समाज में अपना नियंत्रण स्थापित किए रहता था। आज मनुष्य राज्य के कानून को तो तोड़ सकता है किन्तु धार्मिक नियमों की अवहेलना कर ईश्वरीय दंड का भागी नहीं बनना चाहता है।
4. व्यक्तित्व के विकास में सहायक : धर्म समाज तथा व्यक्ति दोनों को संगठित करता है तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व में सहायक होता है।
5. भावनात्मक सुरक्षा : धर्म में मानव अपनी परिस्थितियों के चारों ओर से घिरा रहता है। व्यक्ति विज्ञान सिद्धान्तों का पालन करके जीवित नहीं रह सकता क्योंकि मनुष्य के जीवन के लिए अनुभवशील तथा व्यवहारिक दोनों बातों का महत्व होता है। इन बातों का समावेश धर्म में होता है।
6. सामाजिक नियमों एवं नैतिकता की पुष्टि : प्रत्येक समाज में कुछ सामाजिक नियम होते हैं जो होते तो अलिखित हैं। परंतु समाज के दृष्टिकोण से अतिमहत्वपूर्ण होते हैं और इन नियमों का पालन करना मनुष्य का कर्त्तव्य होता है। अनेक सामाजिक नियमों को धार्मिक भावनाओं से जोड़ दिया जाता है। जिसके परिणाम स्वरूप इन नियमों का महत्व और बढ़ जाता है।
7. सामाजिक परिवर्तन का नियंत्रण : औद्योगिक तथा नगरीकरण के कारण आधुनिक समाज तेजी से परिवर्तन लाभदायक तथा हानिकारक दोनों हो सकते हैं। लेकिन समस्या इस बात की है कि परिवर्तन होने के कारण मानव अपने आप को परिवर्तित नहीं कर पाता है। जबकि समाज में विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है ऐसे समय में धर्म परिवर्तन को प्रोत्साहित करता है तथा मनुष्य में आत्मबल पैदा करता है कि ईश्वर जो कुछ करता है वह अच्छा करता है।
8. कर्त्तव्य का निर्धारण : धर्म केवल अलौकिक शक्ति में ही विश्वास नहीं करता बल्कि मानव नैतिक कर्त्तव्य तथा उनका पालन करना भी सुनिश्चित करता है। जैसा कि गीता में कहा गया है 'कर्म करो फल की चिन्ता मत करो।'
9. सद्‌गुणों का विकास : यद्यपि समाज में सभी वर्गों के लोग मंदिरों तथा तीर्थ स्थलों में नहीं जाते। फिर भी धर्म का प्रभाव समाज के सदस्यों पर किसी न किसी रूप में व्यक्तियों का व्यक्तित्व तथा चरित्र धार्मिक आस्थाओं के कारण ही परिवर्तित हो जाता है। अतः धर्म मनुष्य के नैतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही जीवन में समाहित है।
10. मनोरंजन प्रदान करता है : यदि धर्म मानव को केवल धर्म ही करने पर बल दें, तो मनुष्य एक मशीन की तरह हो जाएगा तथा उसमें स्थिरता आ जाएगी। विभिन्न उत्सवों और त्यौहारों के अवसरों पर धर्म मानव को मनोरंजन प्रदान करता है। इन्हीं अवसरों के माध्यम से मानव को मानव से संपर्क कर आता है। भावनात्मक एकता बढ़ाता है तथा सहयोग की भावना का विकास करता है।
11. सामाजिक एकता में सहायक : धर्म समाज में एकता की भावना पैदा करता है। समाज के कल्याण को प्रमुख स्थान देकर समाज के एकीकरण में बढ़ोतरी करता है तथा साथ ही सामाजिक मूल्य के महत्व को भी स्पष्ट करता है। दुर्खीम का मानना है जो लोग धर्म में विश्वास करते हैं उन सभी को धर्म एकता के एक सूत्र में पिरोता है।

12. पवित्रता की भावना को जन्म देता है : धर्म मानव को दो भागों में बाँटा है–साधारण तथा पवित्र धर्म ही व्यक्तियों को अपवित्र कार्यों से दूर रखकर पवित्र कार्यों की ओर प्रेरित करता है। क्योंकि पवित्र जीवन यापन करना ही धार्मिक जीवन का एक अहम पहलू है।

**भारतीय समाज में धर्म की नकारात्मक भूमिका :**

1. तनाव, भेदभाव एवं संघर्ष के लिए उत्तरदायी : विभिन्न धर्मों के मानने वाले अपने–अपने धर्म को श्रेष्ठ समझते हैं तथा एक दूसरे के धर्म को तुच्छ समझते तथा आपस में लड़ते रहते हैं।
2. विज्ञान विरोधी : धर्म अलौकिक शक्ति पर विश्वास करता है जबकि विज्ञान निरीक्षण एवं प्रयोग पर। धर्म हमको विज्ञान से दूर ले जाता है। जबकि विज्ञान आविष्कारों के तर्क के आधार पर धार्मिक विचारधाराओं की अपेक्षा गलत ठहराता है।
3. धर्म समाज के लिए अफीम है : मार्क्स के मतानुसार ईश्वर पाप पुण्य स्वर्ग नरक कर्म फल एवं पूनर्जन्म आदि धारणाएँ लोगों को सांसारिक कष्टों के प्रति निष्क्रिय बना देती है। धार्मिक व्यक्ति ईश्वर की इच्छा समझकर सभी कष्टों को स्वीकार कर लेता है।
4. धर्म सामाजिक प्रगति में बाधक : धर्म आज तक अपने अनुयायियों को हजारों साल पुरानी मान्यताओं कर्मकांड विधि–विधाओं को मानता रहा है तथा धर्म नयी विचारधाराओं तथा सिद्धान्तों का भी विरोधी है। अतः धर्म व्यक्ति को आगे की ओर नहीं बल्कि पीछे की ओर ही धकेलता है।
5. सामाजिक समस्याओं में वृद्धि : सरकार ने बाल विवाह, दहेज प्रथा आदि समस्याओं के निराकरण के लिए कानून बनाए हैं। फिर भी अंधविश्वासी लोग सरकारी कानूनों की अवहेलना करना ही उचित समझते हैं।
6. समय के साथ परिवर्तन में अक्षम : धर्म, समाज में जिस तरह से परिवर्तित हो रहा है। उसके अनुसार बदलती हुई परिस्थितियों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने में असमर्थ है। इसीलिए धर्म हमारे जीवन में दीर्घकाल तक स्थिर नहीं रह पाता है।
7. अकर्मण्यता को जन्म देता है : धर्म से व्यक्ति अकर्मण्य भी बन जाता है। एक तरफ बिना परिश्रम के पंडे पुजारी ईश्वर के नाम पर अपना भरण–पोषण करते हैं। जबकि दूसरी तरफ यह मान्यता है कि जिसने सोचती है वह चुका भी देगा। अतः इस प्रकार की विचारों से मनुष्य कर्त्तव्य परायण नहीं हो पाया है तथा वह निष्क्रिय हो जाता है। कुछ व्यक्ति धार्मिक क्रियाकलापों के माध्यम से ही बिना कार्य किए धन की प्राप्ति में लिप्त रहते हैं।

**निष्कर्ष :** निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि गतिशीलता ही जीवन है और स्थिरता मृत्यु। जीवन्त बने रहने के लिए यह आवश्यक है कि समाज और धर्म दोनों साथ–साथ युगानुरूप परिवर्तित होते रहें। यह सर्वानुभूत तथ्य है कि प्रवाहमान जल निर्मल होता है और स्थिर जल सड़ने लगता है। समाज में मनुष्यों की धर्म–पिपासा शान्त करने के लिए विविध पन्थों का होना जरूरी है। वे व्यर्थ नहीं है। मूर्ति–पूजा, यज्ञ, अनुष्ठान आदि धर्म के विविध सोपान है। यदि किसी मंदिर या प्रतिमा के सहारे हम अपने भीतर स्थित परमेश्वर को जान सकते हैं, तो हमें ऐसा करना चाहिए। जो अनुष्ठान हमें ईश्वर की ओर ले जा रहा है, उसे बेहिचक ग्रहण करना चाहिए। यदि हम राम–नाम से पुल्कित हो रहे हैं तो राम–नाम का संकीर्तन करना चाहिए। यदि खुदा की इबादत से सुकून मिलता हो तो ईमानदारी से नमाज अदा करना चाहिए। यह ध्यान रहे कि मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर और गुरुद्वारा केवल चित शुद्धि के साधन है। इन्हें सम्पूर्ण धर्म समझ लेना नादानी है, जीवन का लक्ष्य तो सत्य (ब्रह्म) का साक्षात्कार है। विवेकानन्द की मान्यता है। मन्दिर में पैदा होना बुरी बात नहीं है। मन्दिर में पैदा होकर वहीं रह जाना और मर जाना बुरी बात है। सच्चा धार्मिक व्यक्ति वही है, जिसे आत्म लाभ हुआ है। आत्मलाभ का निःतार्थ है अपने में सबको और सबमें अपने को देखना। अर्थात् सबको आत्मवत् समझना। निश्छल साधना द्वारा किसी भी धर्म के अनुयायी को आत्मलाभ हो सकता है। जैसे बादल बिना भेद–भाव के सभी पर बरसा है, वैसे परमात्मा की सहजकृपा सभी धर्मावलम्बियों पर समान रूप से होती है। अगर हमें इन सभी बातों को समझ लें कि हम एक माला के भिन्न–भिन्न मोती है, तो 'धर्म' की जितनी भी समस्याएँ हैं, वह हमारे समाज से समाप्त हो जाएगी।

**संदर्भ :**


1. वर्मा, डा० वेद प्रकाश (1991), *धर्म–दर्शन की मूल समस्याएँ* (दिल्ली : दिल्ली विश्वविद्यालय)
2. जैन एम०पी० (1988), *आधुनिक राजनीति के सिद्धान्त* (दिल्ली : आनर्स गिल्ड पब्लिकेशन्स)
3. डा० मसीह याकूब (1985), *तुलनात्मक धर्म–दर्शन*
4. वर्मा, अशोक कुमार (सं०) (1933), *स्वतंत्र्योत्तर भारतीय दार्शनिक चिन्तन* (पटना मोतीलाल बनारसीदास)
5. Ambedkar, B.R. (1989), "*Annihilation of Caste*" in Dr. Babasaheb Ambedkar writing and speeches (Bombay : Education Department, Government of Maharashtra)
6. Aristotle, *Politics*, tr. Benjamin Jowett, (New York : Carlton House) अन्य प्रमाणिक पुस्तकें (Other Authentic Sources)
7. अश्वघोष (1985), *बुद्धचरित* (दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास)
8. मसीह, याकूब (1973), *भारतीय एवं पाश्चात्य* (पटना : बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी)
9. वर्मा, वेद प्रकाश (1999), *भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन में निरीश्वरवाद* (नई दिल्ली : अलायड पब्लिशर्स लिमिटेड)
10. सांकृत्यायन, राहुल (1977), *बौद्ध दर्शन* (इलाहाबाद : किताब महल)


***

# गगनेन्द्र नाथ टैगोर के चित्रों पर पाश्चात्य प्रभाव

*डॉ. विनोद सिंह**

**सारांश**

भारतीय कला में जब अंकुर फूट रहे थे तब गगनेन्द्र नाथ टैगोर ऐसी मौलिक प्रतिभा लेकर अवतीर्ण हुए जिन्होंने अपनी संकल्पशील तेजस्विता से सर्वथा नयी दिशा अपनायी। भारतीय कला के पुराने परम्परागत सांचों को नवीनता प्रदान करने के लिए उन्होंने नई उगती शक्ति को प्रश्रय दिया। इन्होंने किसी परम्परागत शैली का अनुकरण नही किया अपितु यूरोप के घनवाद व भविष्यवाद को अपने ही ढंग से रचकर उसे एक नया आयाम एवं विस्तार दिया। अपने चित्रों को इन्होंने इतनी विविधता से भर दिया कि इनके समकालीन चित्रकार जिसकी कल्पना भी न कर सके। दृश्य चित्र, रहस्यात्मक चित्र, अमूर्त चित्र, व्यंग्य चित्र, रेखाचित्र एवं घनवाद पर आधारित कितने ही प्रकार के चित्र इनकी तूलिका ने सहज ही निसृत कर डाले। इनके चित्रों की यह विविधता इन्हें इनके समकालीन चित्रकारों की पंक्ति में सबसे आगे खड़ा करती है।

**संकेत शब्द –** पुनरूत्थान कला आन्दोलन, गगनेन्द्र नाथ टैगोर, बंगाल स्कूल, दृश्यचित्र, भारतीय घनवादी चित्र।

**प्रस्तावना**

19वीं शताब्दी में जहाँ एक ओर राजनैतिक आन्दोलन होने से भारतवासी पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े हुये उद्वेलित थे, वहीं दूसरी ओर नैतिक परिवर्तनों ने कलागत मूल्यों में परिवर्तन कर कलाकार को भारतीय संस्कृति से विमुख कर पाश्चात्य सभ्यता और कला–सर्जना की ओर उन्मुख होने को विवश कर दिया। भारतीय कलाकार अपनी कला–शैली को त्याग कर पाश्चात्य विषयों को चित्रित करने को बाध्य हो गये, जिससे कला के क्षेत्र में भारतीयता की भावना लुप्त हो गई। ऐसे परिवेश में भारतीय कला को विदेशी दासता से मुक्त कराने हेतु एक शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ जो आचार्य गगनेन्द्रनाथ के नाम से विश्व विख्यात हुये।

**जीवन परिचय –**

कलाकारों की मान्यता थी कि कला की रचना भारतीय साँस्कृतिक परिवेश में ही सम्भव है किन्तु गगनेन्द्रनाथ ऐसे कलाकार थे जिन्होंने विदेशी शैलियों का अध्ययन कर उसे भारतीयता का जामा पहनाकर यथा सम्भव स्थान दिया। उनका जन्म कलकत्ता (कोलकाता) में 1867 ई0 में हुआ था। वह अवनीन्द्रनाथ टैगोर के बड़े भाई थे।[1] ये उन कलाकारों में से हैं जिन्होंने स्वयं बंगाल शैली या टैगोर शैली का अनुसरण तो नहीं किया लेकिन अपनी स्वतन्त्र चित्रशैली से बंगाल कला–शैली को अप्रत्याशित बल प्रदान किया।

इन्होंने एक विशिष्ट कलात्मक वातावरण में रहते हुये भी अपनी निजी शैली का विकास किया। इनकी कला शैली इतनी अलग थी कि उसे बंगाल स्कूल के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। उन्होंने कला की कहीं औपचारिक शिक्षा नहीं ली थी। अति कलामय वातावरण बचपन से ही मिला, जो कुछ सीखा वह अपनी दिलचस्पी के बदौलत सीखा।

**कलाकर्म –**

आरम्भ में इन्होंने कला विद्यालय की शिक्षण पद्धति पर आधारित जल रंग चित्रण घर में ही सीखा। 1902–03 में जापानी चित्रकारों के इनके परिवार में ठहरने के कारण गगन बाबू ने भी जापानी चित्रांकन विधि सीख ली। इनके आरम्भिक चित्रों में हमें यह जापानी प्रभाव देखने को मिलता है। इस सम्बन्ध में विनोद बिहारी मुखर्जी ने लिखा है –

---

* असि. प्रोफेसर, चित्रकला, डॉ.पी.द.ब.हि. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटद्वार

**'आधुनिक जापान के दो प्रमुख चित्रकारों याकोहामा तैकान और विशेष रूप से काम्पू अराई के सम्पर्क में आने के बाद गगनेन्द्रनाथ की प्रतिभा ने नई दिशा ग्रहण की। इन जापानी चित्रकारों से दीक्षा प्राप्त कर उन्होंने एक महान नौसीखिए की समस्त गम्भीरता से ब्रुश और रोशनाई का प्रयोग किया।'[2]**

1910–15 में इन्होंने रवि बाबू की पुस्तक 'जीवन–स्मृति' का चित्रण भी किया। जिस समय गगनेन्द्रनाथ कलार्कम में जुटे, उस समय इस क्षेत्र में अनेक दिग्गज कलाकार यथाः नन्दलाल बोस, असित कुमार हाल्दार तथा चुगताई आदि कार्यरत थे, किन्तु वे किसी से भी प्रभावित नहीं हुए। वे न किसी परम्परागत शैली में बंधे और न ही उन्होंने किसी स्कूल विशेष का अनुकरण किया। कहा जाता है कि सन् 1920 से 1930 के मध्य उन्होंने जिन कृतियों का निर्माण किया उन पर पाश्चात्य चित्रशैली 'घनवाद' का प्रभाव था, उनका प्रयोग घनवाद का भारतीयकरण था। इसके अतिरिक्त गगनेन्द्रनाथ ने कुछ पर्वतीय दृश्य चित्र भी बनाये। आरम्भ में चौड़े तूलिकाघातों का प्रयोग किया किन्तु धीरे–धीरे ये तूलिकाघाट छोटे होते गये हैं। भारत में मौलिक विधि से विशुद्ध दृश्य चित्रण के आरम्भिक चित्रकार अवनीन्द्रनाथ तथा गगनेन्द्रनाथ ही माने जाते हैं।[3] गगनेन्द्रनाथ की कला को विषयानुसार पाँच भागों में वर्गीकृत किया जाता है।

1. परीलोक के समान वातावरण में रोमाण्टिक विषयों का चित्रण।
2. काले तथा रंगों में स्केच, व्यक्तिगत तथा सामाजिक व्यंग्य–चित्र।
3. प्राकृतिक दृश्यचित्र।
4. रहस्यपूर्ण प्रकाश सहित अमूर्त चित्र।
5. घनवाद पर आधारित चित्र।

**प्रथम वर्ग** – पहले वर्ग में हम गगनेन्द्रनाथ के उन प्रारम्भिक चित्रों को रख सकते हैं जो उन्होंने अपने कल्पना लोक, परियों की दुनियाँ के रंग व वैभव तथा स्वच्छता को प्रेरक तत्व मान कर बनाये। ये चित्र स्वपनिल चित्रकला के अर्न्तगत भी रखे गये हैं। उनके इन चित्रों में एक विचित्र मायालोक के दर्शन होते हैं। चित्रांगदा नामक चित्र इसका सुन्दर उदाहरण है। इस चित्र में उन्होंने नायक तथा नायिका को एक सौम्य वातावरण में चित्रित किया है। जो कि लंबे–लंबे पेड़ों से घिरी एक पहाड़ी पर खड़े है। इनके पीछे सूर्यास्त के दृश्य को गुलाबी और नारंगी रंग में बड़ी ही सुन्दरता से दर्शाया गया है। जोकि नायिका के पारदर्शी सौन्दर्य को लालित्य प्रदान करते हैं। इस प्रकार यह चित्र एक स्वपनिल लोक का निर्माण करता है।[4]

**द्वितीय वर्ग** – दूसरे वर्ग में उनके रेखाचित्रों की भाँति केरीकेचर व व्यंग्य चित्रों को रखा जाता है। आँगल–भारतीय जीवन, आधुनिक शिक्षा प्रणाली, भारतीय बैरिस्टरों के राष्ट्रवाद तथा सथ्यता की कुंजी आदि विषयों पर उन्होंने अनेक व्यंग्य चित्रों का निर्माण किया। जब कभी कोई वस्तु उनकी कवियों जैसी भावना को आहत करती थी तो उनका व्यंग्य और तीखा था। इन चित्रों में उन्होंने श्वेत और श्याम रगांकन विधि का प्रयोग किया। इन चित्रों के प्रमुख उद्देश्य लोगों का ध्यान अनेक समस्याओं की ओर खींचना था, ताकि वे उपने आचरण तथा औचित्य पर विचार कर सकें।[5]

**तृतीय वर्ग** – तीसरे वर्ग में गगनेन्द्रनाथ के दृश्य–चित्र आते हैं। गगन बाबू के दृश्य–चित्र अत्यंत स्वभाविक हैं। इन चित्रों पर रूमानी प्रभाव है। इनमें सन् 1907 के बाद की कृतियाँ शामिल की जा सकती हैं जो उन्होंने ओरिएन्टल स्कूल ऑफ आर्ट से सम्बन्द्ध रहकर बनायीं। सन् 1912 में उन्होंने रवींद्रनाथ टैगोर कृति 'जीवन–समृति' पर आधारित चित्र श्रंखला तैयार की, वह भी इस श्रेणी की है। गगनेन्द्रनाथ ने, धान के असीम खेतों नदी किनारे के मन्दिर, ताड़ और नारियल के पेड़ की

दृश्य चित्र

कतारों, तूफान और धुंधलके से ग्रस्त पहाड़ियों, संध्या समय गाँव अथवा नाव खेते केवट को उसी सहानुभूति और कुशलता से चित्रित किया है जिस प्रकार चाँदनी में नहाई शहर की छतों को। इन दोनों संसारों से इस घनिष्ठ सम्पर्क ने ही उनके प्राकृतिक दृश्यों के चित्रों को ऐसी रहस्यात्मकता प्रदान की है।[6] इसी प्रभाव ने उनके रहस्यात्मक तथा रुमानी विषयों को जन्म दिया। इनके कुछ चित्र तो एक ही रंग में बनाए गए हैं, शेष चित्रों में इन्होंने बंगाल स्कूल के कोमल, हल्के तथा बूझे हुए रंगों का प्रयोग किया है। अपने दृश्य–चित्रों में उन्होंने स्थान विशेष के स्वभाव और वातावरण को उतारने का प्रयास किया है, जिससे ये चित्र पर्याप्त यर्थाथवादी हो गये हैं।

**चतुर्थ वर्ग** – चौथे वर्ग में इनके वे चित्र आते हैं जो इन्होंने परिपक्व अवस्था में बनाये। सन् 1923 में इन्होंने अर्ध अर्मूतवादी, आभासवादी तथा किंचित घनवादी शैली मिश्रित चित्रों की रचना की। इन चित्रों की विषय वस्तु स्थापत्यपरक रही है। प्रायः इन चित्रों के वातावरण में हमें एक विचित्र प्रकार की शांति एवं स्तब्धता का एकसास होता है। इन चित्रों में स्थपात्यपरक रूपाकारों के सीधे धरातल व घुमावों के कठोर किनारे परस्पर मिलकर त्रि–आयामी अभिकल्प की रचना करते हैं। इनका रंग–संयोजन एक रहस्यात्मक वातावरण का निमार्ण करता है।[7]

इन चित्रों में प्रकाश का आभास कहीं–कहीं पर अत्यंत दीप्त दिखाई देता है, तो कहीं–कहीं पर कुछ ही स्थानों को प्रकाशित करता है। और दूसरे स्थानों पर लुप्त हो जाता हैं। यह प्रकाश दूसरे स्थान पर चलता हुआ सा, कहीं–कहीं चमकता तो कहीं–कहीं मंद होता सा प्रतीत होता है। यह स्वभाविक नहीं है बल्कि उसकी समग्र रूप से एक स्वच्छन्द व्यवस्था हुई है, जो इस प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए की गई है, उनके इन चित्रों में –परियों की राजकुमारी', 'जादूगर' 'अलादीन की गुफा' और 'वीरान घर' आदि प्रमुख हैं।

गगन बाबू को चित्रों में दीप्तिपरक कोटि हमें रेम्ब्रा तथा अन्य बॉरोक यूरोपीय ल्यूमिनिस्टों, कैरेवेज्जिओं तथा विशेष रूप से जार्ज डे ला टूर की भी याद दिलाती है। परन्तु निःसन्देह इन यूरोपीय चित्रकारों और भारतीय चित्रकार गगनेन्द्रनाथ के बीच पर्याप्त अन्तर है। बॉरोक की चित्रकारिता के मामले में, प्रकाश के साथ–साथ वे आकृतियों के सारतत्व और आयतन से भी संबंधित हैं। गगनेन्द्रनाथ की इन कृतियों में आयतनों का वह स्वरूप प्राप्त नहीं हुआ जो उनकी बाद की कृतियों में हमें देखने को मिलता है। संयोगवश चित्रों के स्वरूप का सम्मिश्रण विहसलर की कृतियों में देखने को मिलता है।[8]

जादूगर

**पंचम वर्ग** – अंतिम वर्ग में गगनेन्द्रनाथ के बाद के सभी चित्र रखे जा सकते हैं। 1923 में ही बर्लिन में आधुनिक भारतीय चित्रकला की एक प्रदर्शनी हुई जिसमें गगनेन्द्रनाथ की कृतियों को घनवादी कहा गया तथा यूरोपीय घनवादी चित्रकारों से उनकी तुलना की गई।

इस सम्बन्ध में स्टैला क्रैमरिश द्वारा कहीं गई उक्ति बडी ही उपयुक्त है–

**"The ever flowing life of an Indian work of art is opposite to cubism which essentially is crystallized static."[9]**

गगनेन्द्रनाथ को भारत का सबसे अधिक साहसी तथा आधुनिक चित्रकार माना गया। उनके चित्रों में अंधेरे अथवा प्रकाश वाले पारदर्शी तल एक दूसरे को कही बेधते है और कहीं आच्छादित कर लेते हैं। कोमल संवेदनाओं और छाया–प्रकाश से रहस्यात्मक प्रयोग के कारण वे रोमाण्टिक प्रतीत होते हैं। घनवाद में यद्यपि कोई क्रमबद्ध ढाँचा नहीं बनता तथापि आन्तरिक अनुभव तथा दीप्तिमान भावना

के दर्शन अवश्य होते हैं। पेरिस के कलाकारों ने यदि शीर्षवृत्त एवं अनुप्रस्थ चित्र बनाए, किन्तु गगनेन्द्रनाथ ने अपने चित्रों में विकर्षण का मौलिक संकेत दिया।[10]

उन्होंने व्यापक प्रभाववादी तकनीकी से चित्रकारी आरम्भ की, लेकिन जापानी तकनीकों और इसकी विविधताओं पर काफी निर्भर हो गए। इस प्रकार से ऐसा दावा किया जा सकता है कि उस रचनात्मक युग में जब उन्होंने तकनीक पर काफी महारथ कर ली थी, जापानी कला ने उन पर अत्याधिक प्रभाव डाला। रंगों में भी गगन बाबू की सीमित रूचि सम्भवतः जापानी कला से ही प्रभावित की क्योंकि इसमें काले रंग पर जोर दिया गया है और रंगों को केवल सजावट का माध्यम बना गया है। तीर्थों तथा रात्रि में काली स्याही अथवा गहरे रंगों द्वारा देवालयों के स्थापत्य, दर्शनार्थियों की भीड़ आदि का चित्रण किया है। इन चित्रों में देवालयों के गर्भगृह से आता हुआ प्रकाश आध्यात्मिक धार्मिक प्रतीकता लिये हुये हैं। धीरे–धीरे वे रात्रि के अन्धकार में आलौकिक शक्ति के प्रकाश से चमकते हुये देवालय चित्रित करने लगे। यह पद्धति उन्होंने बाद में बनाये सहस्यमय भवनों के चित्रों में प्रयुक्त की है। इस प्रकार के कुछ चित्रों में स्टेज सैटिंग का भी प्रभाव है और घनवादी, भविष्यवादी तथा निर्माणवादी कला आन्दोलनों की कल्पनाओं का उपयोग भी। काली स्याही से अंकित इस प्रकार के चित्रों पर श्वेत फोटोग्राफी का भी प्रभाव है।

''सन 1914 में पेरिस में भारतीय चित्रों की एक प्रदर्शनी हुई गगनेन्द्रनाथ टैगोर के भी चित्र थे। इन चित्रों की पर्याप्त प्रशंसा हुई। 1921 में उन्होंने घनवादी शैली में प्रयोग आरम्भ किये और 1922 में डॉ0 स्टैला क्रैमरिश ने सर्वप्रथम उन्हें एक भारतीय घनवादी चित्रकार कहा। सन् 1923 में बर्लिन में भारतीय आधुनिक चित्रकला की एक प्रदर्शनी हुई जिसमें गगनेन्द्रनाथ की कृतियों को घनवादी कहा गया तथा यूरोपीय घनवादी कलाकारों से उनकी तुलना की गई।''[11] विनय कुमार सरकार ने उनका सम्बन्ध भविष्यवाद से जोड़ा। किन्तु वास्तव में गगनेन्द्रनाथ पूर्ण रूप से घनवादी अथवा भविष्यवादी चित्रकार नहीं है।

यह एक प्रकार से आत्मा का पार–गमन ही था, जिसने गगनेन्द्रनाथ को सबसे अधिक उद्वेलित किया और यह चीज थी, जो रवीन्द्रनाथ के मन में रही थी जब उन्होंने गगनेन्द्र की स्मृति में ये पंक्तियाँ लिखी थीं–

"You ranged from shore to shore
of colour and line,
You were merged deep
in the very heart
of beauty.
The boad of your life
Has now passed beyond
Line's born
to the pure white mystery
of the viewless from."[11]

**सन्दर्भ :**


1. वाचस्पति गैरोला, भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, पृ.सं. 209
2. विश्व भारती त्रैमासिक, खण्ड–15, भाग–1, मई–जुलाई, 1949 पृ.सं.–1
3. डॉ0 गिरिराज किशोर अग्रवाल, आधुनिक भारतीय चित्रकला का इतिहास, आगरा, पृ.सं. 78
4. शचि रानी गुर्टू, कला प्रणेता, नई दिल्ली, पृ.सं. 239
5. डॉ0 जगदीश चन्द्रिकेश व नैन भटनागर, बंगांल शैली की चित्रकला, नई दिल्ली, पृ.सं. 118
6. डॉ0 गिर्राज किशोर अग्रवाल – आधुनिक भारतीय चित्रकला का इतिहास, आगरा 2006, पृ0स0 79

7. वही।
8. Ratan Parimo-Ggagnedranath Tagore (Monograph), N.G.M.A. New Delhi, Page No. – 18
9. Stella Kramrich – An Indian Cubist, Rupam 11, July 1922, Page No. 109
10. किरण प्रदीप–आकृति – III, भारतीय आधुनिक कला, मेरठ 2007, पृ.सं.–54
11. Gaganendranath Tagore' the Indian Society of Oriental Art, Calcutta, (Kolkata) March, 1972. Rabindranath Tagore.

***

# उत्तर भारत के राजनीतिक इतिहास में स्त्रियों का योगदान : अभिलेखों के संदर्भ में

*पूजा अर्चना**

जीवन का प्रत्येक पक्ष चाहे वह सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हो, स्त्रियों की भूमिका अग्रणी रही है। वे सदैव माता के रूप में पूजनीय एवं वन्दनीय रही है। भारतीय सभ्यता में स्त्रियों को आदरपूर्वक सम्मान दिया गया है तथा "यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रम्यन्ते तत्र देवता" जैसे सिद्धान्त को प्रतिपादित किया गया है। कुछ अपवादों को छोड़कर इतिहास के अधिकांश साहित्यिक स्त्रोत पुरूषों द्वारा रचित है, इसलिए स्त्री सदैव ही इतिहास का खामोश (एकाकी) पक्ष रही है। जिसमें पुरूष प्रतिष्ठा का ही प्रतिपादन दिखाई देता है, जैसाकि मनुस्मृति में उल्लिखित है कि स्त्रियाँ स्वतंत्रता के योग्य नहीं है, उन्हें सदैव सुरक्षा की आवश्यकता है। किन्तु अभिलेख इस विषय पर इतिहास के अन्य स्त्रोतों से भिन्न है। ऐसे बहुत से अभिलेख ज्ञात हुए है जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से स्त्रियों के अधिकार, उनका चरित्र एवं राजनीतिक इतिहास में उनके योगदान को दर्शाते हैं। यह सर्वथा विचारणीय है कि एक रानी जो एक नारी है; वह भी अपने पुत्र को जब शासक बनाती है या वह इस योग्य है कि राजा बन सके, उसमें भी उसी रानी (नारी) का ही योगदान रहता है। वह उसे अपने संस्कारों एवं शिक्षा–दीक्षा से श्रेष्ठ बनाती है।

मैनें अपने शोध–पत्र **"उत्तर भारत के राजनीतिक इतिहास में स्त्रियों का योगदान : अभिलेखों के विशेष संदर्भ में (मौर्य काल से गाहडवाल वंश तक)"** को चुना है। शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य समाज एवं राजनीतिक इतिहास में स्त्रियों की अग्रणी भूमिका को दर्शाना एवं उनके महत्त्व को सुस्पष्ट करना है।

प्रारम्भ से ही राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वैदिक काल से हीस्त्रियों का महत्त्व सुस्पष्ट दिखाई पड़ता है। गार्गी, अपाला, घोषा, लोपामुद्रा एवं अन्य विदुषी स्त्रियों को वेदों का ज्ञाता, मंत्रा, द्रष्टा कहा गया है। इसी काल में स्त्रियों ने सभा एवं समिति में भाग लेकर अपने अधिकारों एवं मन्तव्य को स्पष्ट कर दिया था। प्राचीन भारतीय राजनीति में स्त्रियों के योगदान को दो रूपों में देखा जा सकता है–1. प्रत्यक्ष, 2. परोक्ष। प्रत्यक्ष योगदान से तात्पर्य है कि वह राज्य के प्रशासनिक एवं राजनीतिक विषयों में सीधे सम्मिलित थी, जैसे–उन्हें राजाज्ञा (आदेश) देने का अधिकार, दान–दक्षिणा को देना, प्रशासनिक कार्यों में योगदान, युद्धों में भाग लेना, राज्य की नीतियों का निर्णय करना एवं शासक को जहाँ तक संभव हो सहयोग देना आदि सम्मिलित था। परोक्ष योगदान या परोक्ष रूप से सलाहकार एवं उनके प्रेरणा के रूप में वह राज्य को संभालती थी।

मौर्यकाल से लेकर गाहडवाल वंश तक के अभिलेखों से राजनीतिक इतिहास में स्त्रियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को देखा जा सकता है। मौर्यकालीन प्रयाग स्तम्भ लेख[1] जिसमें अशोक की दूसरी रानी कारूवाकी का, मंचपुरी गुहालेख[2] तथा मथुरा सिंह शीर्ष स्तम्भ लेख[3] जिसमें क्रमशः राजा खारवेल तथा राजुल की अग्रमहिषी की चर्चा है, उल्लेखनीय है। यद्यपि अभिलेख में उनके राजनीतिक योगदान के कोई संकेत प्राप्त नहीं होते। भारत में स्त्रियों का राजनीति में सक्रियता विदेशियों के आगमन के पश्चात् ही स्पष्ट प्रतीत होता है। जिसे विदेशी प्रभाव भी स्वीकार किया जा सकता है। भारत के पश्चिमोत्तर भाग में यवनों का राज्य द्वितीय शताब्दी ई0पू0 में स्थापित हुआ, जिन्होंने अपनी रानियों के सहयोग से शासन किया। इसमें संयुक्त शासन स्ट्रेटो प्रथम एवं उसकी माता अगाथोक्लिया[4] तथा हर्मियस और उसकी पत्नी रानी कालपी[5] के साथ उल्लेखनीय हैं जिसकी पुष्टि उनके द्वारा जारी किये गये चाँदी के सिक्कों से भी ज्ञात होती है।

* शोध छात्रा, प्रा. भा. इ. सं. एव पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय.

धनदेव के अयोध्या अभिलेख में भागभद्र की माता का उल्लेख है, जो काशी की राजकुमारी थी। स्पष्ट है कि भागभद्र की माता ने शासन–संचालन में अपने अनुभव एवं प्रशासनिक कार्यों में योगदान उसे अवश्य दिया होगा।

भारतीय शासकों द्वारा भी इस परम्परा का निर्वहन किया गया तथा कालान्तर में स्त्रियों ने स्वतः स्वतंत्रतापूर्वक शासन संचालन में अपना योगदान दिया। इसी क्रम में गुप्तकालीन स्वर्ण स्मारक मुद्रा[6] का उल्लेख करना विचारणीय है। इस सिक्के पर चन्द्रगुप्त प्रथम के साथ कुमारदेवी का नाम तथा चित्र अंकित है एवं 'लिच्छवयः' शब्द उत्कीर्ण हैं। यह सिक्का चन्द्रगुप्त प्रथम एवं कुमारदेवी के संयुक्त शासन का द्योतक है। तत्कालीन समय में गुप्त राजवंश के लिए लिच्छवी खतरा पैदा कर सकते थे क्योंकि लिच्छवी उस समय राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त शक्तिशाली थे। उनके राजनीतिक क्षेत्र में महत्त्व को देखते हुए चन्द्रगुप्तने कूटनीति का सहारा लेते हुए उनसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया एवं महाराजाधिराज की प्रथम उपाधि धारण कर अपनी पहचान बनाई, इसी परिप्रेक्ष्य में कुमारदेवी के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता क्योंकि उसने भी राजनीति में सक्रिय सहयोग देकर शक्तिशाली साम्राज्य की नींव तैयार कर दी, यही कारण है कि प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त स्वंय को लिच्छवी दौहित्र होने में गौरव का अनुभव करता है एवं गुप्तवंशावली उत्कीर्ण करवाते समय अपनी माता का नाम लेखों एवं मुद्राओं पर अंकित करवाना नहीं भूलता। प्रयाग–प्रशस्ति में उसने स्वंय का परिचय *लिच्छवी दौहित्रस्य महादेव्याकुमारदेव्या मुत्पन्नस्य* तथा सिक्कों पर लिच्छवी दौहित्र के रूप में दिया है।[7]राजनीतिक मजबूती के लिए समकालीन राजवंशों नाग, कदम्ब, वाकाटकों के साथ चन्द्रगुप्त द्वितीय ने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए। इन सम्बन्धों के माध्यम से भी राज्य की सशक्तिकरण में स्त्रियों ने अपना परोक्ष सहयोग अवश्य प्रदान किया। मुद्राएँ राज्य और राजनीति से सम्बन्धित विषय है, ऐसा स्मिथ[8], मजूमदार[9], आयंगर[10] एवं अल्टेकर[11] आदि विद्वान यही मत प्रदान करते हैं। लिच्छवयः नामांकित सिक्का गुप्तों द्वारा चलाया जाना यह सिद्ध करता है कि गुप्त एवं लिच्छवी सम्बन्ध का महत्त्व प्राकृत्या राजनीतिक था। ऐसा अनुमान है कि प्राचीन भारत में किसी नरेश के अभिलेखों में उसका वंशवृक्ष देते समय उसके श्वसुर कुल का उल्लेख प्रायः तभी किया जाता था जब उसे श्वसुर कुल से महत्त्वपूर्ण राजनीतिक सहायता मिलती थी, जिसका उल्लेख बाद के लेखों में हुआ है। वाकाटकों के लेख इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण दिखाई देते हैं जिसमें रूद्रसेन प्रथम के श्वसुर चन्द्रगुप्त द्वितीय का उल्लेख है।

गुप्तकाल में स्त्रियों में ध्रुवस्वामिनी का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। शासन में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने के कारण ध्रुवस्वामिनी ने अपनी राज–मुहर चलवाई जिस पर उसके नाम के साथ महादेवी[12] उपाधि भी उत्कीर्ण है।

मुहर पर गरूड़ चिह्न के स्थान पर सिंह का अंकन है। ध्रुवस्वामिनी की पृथक मुहर का निर्माण यह तथ्य उद्घाटित करता है कि ध्रुवस्वामिनी को पृथक विशेषाधिकार मिला हुआ था। यह गुप्त–प्रशासन में स्त्रियों से सम्बन्धित ध्रुवस्वामिनी की विशिष्ट प्रतिष्ठा एवं सम्मान का सूचक है। लिच्छवी राजकुमारी एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय की पत्नी कुमारदेवी की पुत्री उसी की भाँति प्रभावती गुप्ता ने वाकाटक शासन को अपने पिता के सहयोग एवं पति रूद्रसेन द्वितीय की मृत्यु एवं पुत्रों के अल्पवयस्क होने के कारण स्वंय शासन संचालिका के रूप में सुदृढता प्रदान की। प्रभावती गुप्ता ने 25 वर्षों तक सफलतापूर्वक शासन का कार्य–भार संभाला। प्रभावती गुप्ता के दो ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं– पूना ताम्रपत्र[13], रिद्धपुर ताम्रपत्र[14]।पूना ताम्रपत्र में प्रभावती गुप्ता को एक कुशल प्रशासिका के रूप में दर्शाया गया है जिसमें उसने कुटुम्बियों, ब्राह्मणों तथा निवासियों को शासनादेश दिया है। ताम्रपत्र में यह उल्लेख है कि दान दिए गए गाँव से सम्बन्धित सभी आदेशों का पालन नियमों के साथ होना चाहिए यदि कोई व्यक्ति इन नियमों में व्यवधान उत्पन्न करेगा तो शिकायत होने पर वह उसका सदण्डपूर्वक निग्रह करेगी। इन विवरणों से ज्ञात होता है कि वह एक सशक्त शासिका थी।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के शकारि उपाधि धारण करने से यह ज्ञात होता है कि उसने उस समय गुजरात एवं काठियावाड़ के शक राज्य पर आक्रमण किया होगा। वाकाटक राज्य भौगोलिक दृष्टि से इस युद्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता था। बहुत संभव है कि अपने पिता की सहायता करने में प्रभावती गुप्ता ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया होगा।

इस प्रकार हमें यह देखने को मिलता है कि गुप्तकाल में कुमारदेवी, ध्रुवस्वामिनी एवं प्रभावती गुप्ता आदि स्त्रियों ने राजनीति के क्षेत्र में अपना योगदान देकर उसे एकमहत्त्वपूर्ण आयाम प्रदान किया।परन्तु यह बात भी उल्लेखनीय है कि जहाँ एक ओर कुमारदेवी, ध्रुवस्वामिनी एवं प्रभावती गुप्ता ने राजनीति के क्षेत्र में अपना योगदान दिया एवं सशक्त नारी चरित्र के रूप में उभरी, वहीं दूसरी ओर इसी काल में समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से ही ज्ञात होता है कि सामन्तों एवं अधीनस्थ राजाओं ने समुद्रगुप्त की प्रसन्नता के लिए अपनी कन्याओं को उसे भेंट किया (कन्योपायन–दान)[15]।

छठी शताब्दी ई0 में पुष्यभूति वंश में उत्पन्न एवं मौखरि शासक ग्रहवर्मा की पत्नी राज्यश्री वर्धन ने पति की मृत्यु के पश्चात् मौखरि राज्य की बागडोर अपने भाई हर्षवर्धन की सहायता से संभाली। हर्ष ने उसे अपना संरक्षण दिया। राज्यश्री के यद्यपि स्वतंत्र लेख नहीं मिलते किन्तु चीनी साक्ष्य फैंग–चीन नामक चीनी ग्रन्थ से इसके सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है। गौरीशंकर चटर्जी, रमेश शंकर त्रिपाठी, वैजनाथ शर्मा आदि विद्वानों का मानना है कि गृहवर्मा की मृत्यु के पश्चात् राज्यश्री कन्नौज साम्राज्य की शासिका थी और हर्ष ने विशाल हृदयता और भगिनी प्रेम का उदाहरण देते हुए कन्नौज के शासन–भार को उठाने का कष्ट किया। इस मत का विरोध देवहुति ने किया है, उन्होंने अपना तर्क प्रस्तुत किया है कि हर्ष ने सर्तकतापूर्वक एवं कूटनीति का सहारा लेकर कन्नौज पर अधिकार किया[16]। किन्तु हर्ष के राजनीतिक गाथा को देखते हुए एवं संस्कार का वर्णन करते हुए यह मानना उचित नहीं है कि हर्ष ने राज्यश्री का सहारा लेकर कन्नौज को अपने अधिकार में किया हो। विधवा होने के पश्चात् राज्यश्री को कोई पुत्र भी नहीं था। भगिनी प्रेमवश हर्ष ने राज्यश्री के साथ कन्नौज पर सह–शासन किया।

पूर्व मध्यकाल में कलचुरि, गुर्जर–प्रतिहार, चालुक्य, चंदेल, चाहमान एवं गाहडवाल आदि वंशों की रानियों ने सह–शासिका, अल्पवयस्क पुत्रों की संरक्षिका, प्रेरणा स्त्रोत एवं स्वतन्त्र शासिका के रूप में राजनीति में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

उत्तर भारत में 8वीं–9वीं शताब्दी ई0 के ऐसे कई लेख प्राप्त हुए हैं जिसमें शासन में कार्य–भार को संभालना एवं राजा और सैनिकों के साथ स्त्रियों का युद्ध स्थल पर जाने का उल्लेख है। इस संदर्भ में कलचुरियों के अभिलेख विशेष सराहनीय है जिसमें सैन्य स्त्रियों का वर्णन है। युवराजदेव द्वितीय के बिलहरी शिलालेख[17] परोक्ष रूप से यह संकेत करता है कि समुद्रतट के निकट स्थित वन में जहाँ उसकी सैन्य शिविर थी, एकत्र करती हुई स्त्रियों के हाथों के स्पर्श मात्र से मूंगों की उत्पत्ति दो गुनी हो गई थी। रानी नोहला के वंशावली का भी विवरण इसी लेख से ज्ञात होता है जो उसकी प्रतिष्ठा का सूचक है[18]। गयाकर्ण की पत्नी आल्हणदेवी की पूर्ण वंशावली नरसिंह देव के भेडाघाट शिलालेख[19] से ज्ञात होता है, जिसमें उसे गुहिल वंश की राजकुमारी एवं विजयसिंह की पुत्री बताया गया है। अल्हणदेवी ने राजा की आज्ञा एवं बिना आज्ञा के ही विहारों, मंदिरों, भूमियों एवं गाँवों को दान दिया था, जो उसकी प्रतिष्ठा का सूचक है। इस सूची में महारानी एवं महादेवी का भी उल्लेख है, जिसमें कलचुरियों के अनेक भूमिदान से सम्बन्धित विस्तृत बातों की जानकारी थी और उनके निमित्त उनकी सहमति आवश्यकता थी, उदाहरणार्थ– कर्ण का गोरहवा ताम्रपत्र[20], जयसिंह का जबलपुर अभिलेख[21] आदि। रानियों को दान सम्बन्धी वस्तुओं की प्रकृति एवं स्थिति की जानकारी दी जाती थी तथा उनकी सहमति प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से ली जाती थी। प्रतिहारकालीन अभिलेख भी स्त्रियों के राजनैतिक स्वतन्त्रता का उल्लेख करते हैं। प्रतिहार शासक मिहिरभोज के सागर तल प्रशस्ति[22] में ऐसी स्त्रियों का विवरण है जिन्होंने असुरों पर विजय पाने में भोज की मदद की थी।

स्त्रियों की सहभागिता की पुष्टि राजनीतिक क्षेत्र में साहित्यिक साक्ष्यों से भी होती है। सैनिकों के अभियान काल में स्त्रियाँ भी उनके साथ होती थी और उनका मनोबल ऊचाँ करती थी, ऐसा राजशेखर कृत काव्यमीमांसा[23] से भी विदित होता है। ऐसी स्त्रियाँ वर्ग्या के नाम से जानी जाती थी। सैनिक अभियान के समय भी स्त्रियों की विभिन्न पदों पर नियुक्ति की जाती थी। अंग सेना, कलिंग सेना, काम सेना, वसन्त सेना तथा विक्रम सेना नाम वाली पाँच चाँवर डुलाने वाली स्त्रियों को चमकती हुई तलवार के साथ नियुक्त किया जाता था।

गुजरात के चालुक्य राजवंश के इतिहास में भी रानियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस संदर्भ में कूर्मादेवी एवं नायकी देवी का उल्लेख किया जा सकता है। यद्यपि इन दोनों के सम्बन्ध में अभिलेखों से प्रत्यक्ष सूचना ज्ञात नहीं होती किन्तु साहित्यिक विवरण में जो उल्लेख मिलते है वह इतिहास में उनके नाम

को अमर करने के लिए पर्याप्त है। पाटन की राजकुमारी कूर्मादेवी, राजपूत प्रमुख समर सिंह जो प्रशासन एवं सैनिक योग्यताओं में पारंगत था, की रानी थी। 1192 ई0 में तराईन के दूसरे युद्ध में मुइजुद्दीन की सेना से लड़ते हुए वह पराजित हुआ तथा वीर गति को प्राप्त हुआ। उस समय उसका पुत्र कर्णसिंह अल्पवयस्क था। ऐसी परिस्थिति में उसकी माता कूर्मादेवी ने प्रशासन का कार्यभार संभाला एवं अम्बर के निकट कुतुबुद्दीन एवं उसके सैनिकों का सामना किया[24]। इस वंश की दूसरी रानी अन्हिलवाड़ा पाटन के शासक मूलराज द्वितीय की माता नायकी देवी थी। उसके अल्पवयस्क पुत्र के शासनकाल में गुजरात में मुस्लिमों का आक्रमण हुआ, नायकी देवी ने अपने पुत्र को गोद में लेकर शत्रुओं का सामना किया एवं युद्ध में शत्रुओं को पराजित भी किया, ऐसा उल्लेख प्रबन्धचिन्तामणि[25] में मिलता है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर यह संभावना व्यक्त की जाती है कि वह मुस्लिम आक्रमणकारी संभवतः मुहम्मद गोरी रहा होगा।

राजनीति के क्षेत्र में चन्देल काल की अनेक स्त्रियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। मदनवर्मन देव के टीकमगढ़ ताम्रपत्र[26] में यह उल्लिखित है कि बलहोड़ा ग्राम की भूमि रानी लखमादेवी के पुरोहित नाबूक को देने का उल्लेख है। जिससे यह प्रतीत होता है कि रानी लखमादेवी का प्रशासन में महत्त्वपूर्ण स्थान था तथा उसकी स्थिति अत्यन्त सशक्त थी। चंदेल काल में स्त्रियाँ राजनीति में अपना महत्त्वपूर्ण प्रभाव रखती थी तथा उन्हें किसी भी प्रकार का दान देने का अधिकार था। इस काल में देवदासियों का भी प्रभावशाली स्थान था। देवदासियाँ शासकीय अधिकारियों के सदृश थी। मदनवर्मा के कालंजर स्तम्भ लेख[27] में नीलकण्ठ मंदिर की महानचिनी पद्मावती का उल्लेख है जिसे दरबार में सम्मानजनक पद प्राप्त था। महापुरोहित संग्राम सिंह के पश्चात् मुख्य अधिकारियों की तालिका में महानचिनी पद्मावती द्वितीय स्थान पर थी।

साहित्यिक विवरण भी स्त्रियों के राजनीतिक पृष्ठभूमि में योगदान के लिए महत्त्वपूर्ण साक्ष्य का वर्णन करते हैं। पृथ्वीराजरासों में यह वर्णित है कि महोबा के युद्ध स्थल पर जाने से इंकार करने पर आल्हा एवं उदल को उनकी माता ने उपदेश देकर प्रेरित किया ताकि वे पृथ्वीराज से युद्ध कर सके।[28] चंदेल शासक परमर्दि की पत्नी मल्हनादेवी महोबा के शासन–संचालन का कार्य करती थी। इसका प्रमाण यह है कि जब पृथ्वीराज चौहान ने महोबा पर आक्रमण किया तो मल्हना देवी ने कवि जगनिक को यह कहलवा कर पृथ्वीराज चौहान के पास भेजा कि जब तक कन्नौज से आल्हा एवं उदल आ न जाए तब तक युद्ध स्थगित रहे।[29]

चाहमान काल में भी स्त्रियाँ अभिभावक के अभाव में आवश्यकता पड़ने पर शासन की बागडोर अपने हाथों से संभालती थी। पृथ्वीराज चौहान के अल्पायु में उसकी माँ कर्पूरदेवी ने उसके वयस्क होने तक संरक्षिका के रूप में शासन किया था।[30] चाहमान शासक अजयराय की पत्नी सोमलदेवी के सिक्कें प्राप्त हुए हैं।[31] चांदी के सिक्के की तौल 65 ग्रेन है, उसमें एक ओर श्री सोमलदेवी लिखा है तथा दूसरी तरफ सिर बना है। ये सिक्कें सोमलदेवी के राजनीतिक स्वतंत्रता के द्योतक है।

गाहडवालकालीन अभिलेखों में भी स्त्रियों के राजनैतिक स्वतंत्रता की बात स्पष्ट दिखाई देता है। गोविन्दचन्द्र की पत्नी कुमारदेवी का एक अभिलेख सारनाथ से मिला है, जिसे कुमारदेवी का सारनाथ अभिलेख[32] भी सम्बोधित किया जाता है। लेख से यह ज्ञात होता है कि कुमारदेवी ने जम्बुकी को पत्तलाओं में प्रमुख नियुक्त किया गया। कुमारदेवी द्वारा जम्बुकी को प्रमुख के रूप में नियुक्ति यह संकेत करता है कि कुमारदेवी को प्रशासनिक कार्यों में स्वतंत्रता प्राप्त थी एवं उसने राजनैतिक कार्यों में स्वतंत्रता प्राप्त थी एवं उसने राजनैतिक कार्यों में भी अवश्य सहयोग दिया होगा। यह भी संभावना व्यक्त की जाती है कि अपने राज्यकाल में अधिकांश समय में गोविन्दचन्द्र को युद्ध में व्यतीत करना पड़ा जिसके कारण उसे अपने राज्य से बाहर भी रहना पड़ा होगा। इस परिस्थिति में कुमारदेवी ने राज्य की आन्तरिक–व्यवस्था को संभालना पड़ा।

मछलीशहर अभिलेख[33] से ज्ञात होता है कि गाहडवाल राजा जयचन्द्र की रानियों ने राज्य के पमही भाग जिस पर उनका आधिपत्य था उन्होंने उसे हरिश्चन्द्र को दे दिया।

प्राचीन भारत के राजनैतिक इतिहास में अनेक वंशों की रानियों जिनमें गुप्त, कलचुरि, चाहमान, चन्देल, गाहडवाल काल की आदि सम्मिलित थी, ने यह सिद्ध कर दिया कि स्त्रियों के द्वारा सफल प्रशासन चलाने में प्राकृतिक परिसीमन बाधक नहीं है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्त्री पुरूष का अर्द्धांग है, उसके बिना पुरूष अधूरा है, एवं पुरूष के बिना स्त्री। प्रत्येक काल चाहे वह जिस वर्ग का प्रतिनिधित्त्व

करता रहा हो, स्त्री के बिना अधूरा है। एक स्त्री माँ, बहन, पुत्री, पत्नी आदि परम्परा का निर्वहन आज तक करती आई है, राजनीतिक क्षेत्र में उसका योगदान अनूठा है। स्त्री एक समय में यदि गौरी, लक्ष्मी, सरस्वती एवं सीता का रूप होती है किन्तु आवश्यकता पड़ने पर वह दुर्गा, काली, चण्डी का भी रूप धारण कर सकती है। राजनीतिक इतिहास में अपना योगदान देकर प्राचीन काल की स्त्रियों ने यह सिद्ध कर दिया है।

**संदर्भ :**


1. गोयल, श्रीराम, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, पृ0 120–21
2. एपि0 इण्डि0, भाग–13, पृ0 159
3. गुप्त, पी एल, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, पृ0 127–28
4. सरकार, डी.सी., सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, पृ0 107
5. वही, पृ0 109
6. अल्तेकर, ए.एस., गुप्तकालीन मुद्राएँ, पृ0 19–20
7. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त अभिलेख, पृ0 124
8. स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0 124
9. मजूमदार, रमेशचन्द्र, वाकाटक गुप्त एज, पृ0 128
10. आयंगर, एस.के., एन्शियन्ट इण्डिया एण्ड साउथ इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ0 236
11. अल्तेकर, क्वायनेज, पृ0 2
12. गुप्त, पी.एल, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, पृ0 77
13. का0 इ0 इ0, भाग–5, पृ0 5–9
14. वही, पृ0 33–37
15. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त अभिलेख, पृ0 123
16. देवहूति, हर्षः ए पॉलिटिकल स्टडी, पृ0 79
17. का0 इ0 इ0, भाग–4, पृ0 210
18. वही, भाग–4, पृ0 211–12
19. वही, पृ0 316
20. वही, पृ0 258
21. वही, पृ0 328
22. एपि0 इण्डि0, भाग–18, पृ0 109
23. काव्यमीमांसा, 13.183
24. टाड, एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग–1, पृ0 320–21
25. प्रबन्धचिन्तामणि, पृ0 154
26. भारती, अंक–2, पृ0 13–14
27. का0 इ0 इ0, भाग–7, पृ0 391
28. रासोसार, महोबा युद्ध समय, पृ0 461
29. वही, पृ0 460
30. पाण्डेय, विमलचन्द्र, प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 194
31. सिंह, ओ.एन., गुप्तोत्तर कालीन उत्तर भारतीय मुद्राएँ, पृ0 61–62
32. एपि0 इण्डि0, भाग–9, पृ0 323–24
33. वही, भाग–10, पृ0–98


***

# भीष्म साहनी कृत 'कबिरा खड़ा बाजार में' : धार्मिक विसंगतियों की अभिव्यक्ति

*दिव्या मिश्रा*[*]

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के विशिष्ट रचनाकारों में भीष्म साहनी का नाम उल्लेखनीय है। भीष्म साहनी के साहित्य में देश–विभाजन की त्रासदी, उससे उत्पन्न दारूण, पीड़ा, दंश एवं विसंगतियों तथा उनके सामाजिक प्रभाव का यथार्थ अंकन मिलता है। भीष्म साहनी अन्याय, अत्याचार, गरीबी तथा शोषण के विरूद्ध लेखनी चलाने वाले एक संवेदनशील रचनाकार है। उनका सम्पूर्ण साहित्य मानवीय संवेदनाओं से ओत–प्रोत है। उनकी रचनाओं में मनुष्य की संवेदनाओं का यथार्थ चिंतन बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत हुआ है। उन्होंने हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, जीवनी, आत्मकथा तथा बालसाहित्य इत्यादि में लेखनी चलायी। भीष्म साहनी लगभग पाँच दशकों तक साहित्य साधना में लगे रहे और हिन्दी साहित्य को महत्वपूर्ण कृतियाँ प्रदान की। आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य को समृद्ध बनाने वाले महान रचनाकारों में भीष्म साहनी का स्थान महत्वपूर्ण है।

भीष्म साहनी जितने सफल कथाकार या उपन्यासकार हैं। उतने ही सशक्त नाटककार भी। उन्होंने अपने नाटकों में इतिहास, पुराण आदि से कथानक ग्रहण कर उसे आधुनिक सन्दर्भ में व्याख्यायित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया या कह सकते हैं कि उन्होंने प्राचीन और आधुनिक दोनों काल में विद्यमान मानवीय सरोकार एवं संवेदना का यथार्थ अंकन समग्र रूप में किया है। भीष्म साहनी ने हानूश, कबिरा खड़ा बाजार में, माधवी, मुआवजे, रंग दे बसंती चोला तथा आलमगीर नामक महत्वपूर्ण नाटकों की रचनाकर हिन्दी नाट्य साहित्य की परपरा को आगे बढ़ाया। भीष्म साहनी के नाटकों में 'कबिरा खड़ा बाजार में' बहुचर्चित नाट्य कृति है। इस नाटक के माध्यम से लेखक ने एक ओर मध्ययुगीन समाज में व्याप्त धर्मान्धता, तानाशाही, निरंकुशता, छुआ–छूत, अंधविश्वास, रूढ़ियों तथा ऊँच–नीच इत्यादि का प्रतिरोध है तो दूसरी ओर समाज में व्याप्त इन विसंगतियों एवं विद्रूपताओं के खिलाफ कबीर के निर्भय व्यक्तित्व, उनके सत्यभाषी स्वरूप तथा अन्याय और अत्याचार के खिलाफ उनके क्रान्तिकारी व्यक्तित्व को भी प्रस्तुत किया है। लेखक ने स्वयं नाटक की भूमिका में लिखा है ''नाटक में उनके काल की धर्मान्धता, अनाचार, तानाशाही आदि के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उनके निर्भीक सत्यान्वेषी प्रखर व्यक्तित्व को दिखाने की कोशिश की है।''[1]

भारतीय इतिहास के मध्ययुगीन परिवेश में कबीर उस संघर्ष चेतना के रूप में जाने जाते हैं जो अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व के माध्यम से उस समय के सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक ताकतों को डंके की चोट पर चुनौती देते हैं। कबीर ने सामाजिक, धार्मिक विषमताओं से अपने समाज के लोगों को सचेत कराया। वे समाज के उन गर्हित रीति–नीति, रूढ़ियों, आडम्बर, पाखण्ड तथा सड़े–गले उन सभी अंगों को उखाड़ फेंकना चाहते थे जो मनुष्य–मनुष्य में जाति सम्प्रदाय, धार्मिक विभेद, साम्प्रदायिक वैमनस्य तथा ऊँच–नीच की भावना को उत्पन्न करें। चाहे उसके लिए उन्हें कितना भी प्रताड़ित क्यों न किया जाये। कबीर भेदमूलक सामाजिक एवं मानसिक जड़ता के विरूद्ध सदैव संघर्षरत रहे। यह समस्यायें कहीं न कहीं आज भी हमारे समाज की पीड़ा हैं। यही कारण है कि कई रचनाकारों ने उन्हें अपनी लेखनी का आधार बनाया। भीष्म साहनी कबीर से बेहद प्रभावित थे। वे लिखते हैं–''कबीर के व्यक्तित्व और वाणी दोनों से बहुत प्रभावित रहा। प्रखर और निर्भीक और काशी जैसे पुरातनता के गढ़ में अकेले खड़ा होकर धर्माचार्य का विरोध करने वाला व्यक्ति निश्चय ही मेरे लिए बड़ा आकर्षक था।''[2]

नाटक में कबीर एक अभावग्रस्त जुलाहा परिवार से सम्बन्धित है जो कि तत्कालीन समाज व्यवस्था में उपेक्षित है। उस समय का सामाजिक परिवेश धर्मान्धता, छुआछूत, पाखण्ड, अन्याय तानाशाही, ढोंग इत्यादि विषमताओं से युक्त था, जिसके विरूद्ध कबीर अपने कवित्तों के माध्यम से

[*] शोध छात्रा, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ. प्र.) 221002

प्रहार करते दिखायी देते हैं। नाटक में जब साधु एक निम्न जाति के बच्चे पर, उनके सवारी के आगे आ जाने पर उस पर चाबुक से प्रहार करता है तब कबीर अत्यन्त साहस के साथ उस बच्चे को बचाता है और जब साधु स्वयं को सभी ब्राह्मणों में श्रेष्ठ बताता है तब कबीर मानव की समानता सिद्ध करते हुए धम्र के स्वार्थी ठेकेदारों पर करारी चोट करते हैं। यथा–

**''कबीर – हम क्या जाने, कौन चाण्डाल, कौन ब्राह्मण**
**साधु – तुम्हें नजर नहीं आता हम गोड़ ब्राह्मण हैं।**
**ब्राह्मणों की 108 जाति में सबसे ऊँचे।**
**कबीर – तब तो आपकी धमनियों में अमृत बहता होगा.....**
**सुन ब्राह्मण**
**एक बूँद एकै मलमूतर, एक चाम, एक गूदा।**
**एक जाति है सब उत्पन्ना, को ब्राह्मण को सूदा।।''**[3]

कबीर भेदकतापरक इस दृष्टिकोण को उखाड़ फेंकना चाहते है। वह मानवता को श्रेष्ठ मानते है। वह मनुष्य को जाति–उपजाति, श्रेष्ठ–निम्न की श्रेणी से ऊपर उठाकर समानता के रूप में प्रतिष्ठित देखना चाहते है। जहाँ मनुष्य–मनुष्य में भेद न होकर प्रेम और सौहार्द हो। कबीर ऊँच–नीच, छुआछूत की भावना रखने वाले लोगों पर अपने कवित्त के माध्यम से न सिर्फ प्रश्न उपस्थित करते है. अपितु उसे निरूत्तर भी कर देते हैं। तत्कालीन समाज में जिस महन्त, मौलवी से जनता डरती और खुद को कमतर महसूस कर उसके प्रताड़ना को सहती चली जाती है ऐसे माहौल किन्तु कबीर सभी प्रकार की सामाजिक धार्मिक विद्रुपताओं के विरूद्ध पूरे तर्क के साथ खड़े होते हैं। वह चाहे हिन्दू हो या मुस्लिम दोनों ही धर्मों के बाह्याचारों तथा पाखण्ड का पुरजोर विरोध करते हैं। यथा–

**''कबीर–अल्लाह ताला भी कुछ ऊँचा सुनने लगे है क्या?**
**वाह, वाह मुल्ला जी जरा और ऊँचा।**
**काँकर पाथ जोर करि**
**मस्जिद लयी चुनाव**
**ता चढ़ मुल्ला बाँग दे**
**क्यों बहरा हुआ खुदाय?.....**
**मौलवी– कमजात जुलाहे, दीन कौ तौहीन करता है?**
**कबीर– सामने आकर**
**खुदा सब सुनता है मौलवी साहिब, उसे अज़ान देकर**
**सुनाने की जरूरत नहीं।**
**चींटी के पग नेवर बाजे।**
**सो भी साहिब सुनता है।''**[4]

कबीर का विरोध ईश्वर से नहीं अपितु ईश्वर के नाम पर किये जा रहे बाह्याचार, ढोंग, पाखण्ड या मजहबी भेद से है। उनका मानना है कि ईश्वर सभी के लिए एक समान है सभी को धर्म और जाति के विभेद को मिटाकर उसकी उपासना करनी चाहिए। नाटक में कबीर अपनी टोली बनाकर सत्संग करते हुए भी दिखाये गये हैं। उनका मानना है कि चींटी के पैरों में नुपूर की आवाज भी ईश्वर तक पहुँचती है। ईश्वर और मजहब के नाम पर धार्मिक विभेद और इसके अन्तर्गत आम जनता का शोषण पारम्परिक तरीके से किस प्रकार होता चला जा रहा है। इसका चित्रण नाटक में देखा जा सकता है।

कबिरा खड़ा बाजार में नाटक में लेखक ने मध्ययुगीन सामाजिक परिदृश्य को अपने पूरे कलेवर में उद्घाटित करने का प्रयास किया है। राजसत्ता और धर्मसत्ता के आपसी द्वन्द्व तथा इसकी शिकार साधारण जनता थी उसका स्पष्ट रूप नाटक में मिलता है। यथा–''सुनो कबीरदास यह काशी है। लोग तुम्हें कुचल देंगे। यहाँ का राजा हिन्दू है पर कोतवाल तुर्क है। लोदी बादशाह की अमलदारी है और तुम खुद मामूली जुलाहे हो।''[5]

भीष्म साहनी ने समाज तथा धर्म के ठेकेदारों और उनसे जुड़ी राजसत्ता के घिनौने कुरूप चेहरे को बड़े ही निर्ममता के साथ उघाड़ते हैं। यह दृश्य तत्कालीन सामाजिक परिवेश एवं परिस्थिति को उजागर करने में समर्थ है।

भीष्म साहनी ने समाज तथा धर्म के ठेकेदारों और उनसे जुड़ी राजसत्ता के घिनौने कुरुप चेहरे को बड़े ही निर्ममता के साथ उघाड़ते हैं। यह दृश्य तत्कालीन सामाजिक परिवेश एवं परिस्थिति को उजागर करने में समर्थ है।

कबीर साधु–सन्त, मुल्ला–मौलवी, प्रशासन का अधिकारी हो या फिर स्वयं शहंशाह सिकन्दर लोदी सभी से अपनी बात अदम्य साहस और निडरता के साथ रखते हैं। जिसके कारण कबीर के घर को जलाया गया, उहो जंजीरों में बांधकर गंगा में डुबाया गया, मदमस्त हाथी के सामने फेंका गया किन्तु कबीर जैसा क्रान्तिकारी चरित्र तत्कालीन समाज के प्रताड़नाओं को सहते हुए साधारण जनता को तमाम सामाजिक धार्मिक विद्रूपताओं से जागृत कराने का कार्य किया। कबीर की निर्भीकता तब देखते बनती जब वह शहंशाह सिकन्दर के समक्ष अपनी बातों को दो टूक रखता है। सिकंदर के द्वारा पूछे जाने पर कि तुम किसकी इबादत करते हो कबीर कहता है 'एक निरंजन अल्लाह मेरा, हिन्दू–तुर्क दुहीं नहीं मेरा' मैं उस खुदा की इबादत करता हूँ जो हर इंसान के दिल में बसता है। मेरी नजर में न कोई हिन्दू है न कोई मुस्लिम। यहाँ एक साधारण जुलाहे और सिकन्दर के बीच का वार्तालाप उल्लेखनीय है। यथा–

**''कबीर–मैं इंसान को हिन्दू और तुर्क की नजर से नहीं देखता, मैं उसे केवल इन्सान की नजर से, खुदा के बन्दे की नजर से देखता हूँ।**

**सिकन्दर–लेकिन हिन्दू हिन्दू है, और मुसलमान मुसलमान।**

**क्या हिन्दू का बेटा हिन्दू नहीं होगा?**

**कबीर – जन्म से सभी इन्सान होते हैं। वरना ब्राह्मण का बेटा माँ के पेट से तिलक लगाकर निकलता और तुर्क का बेटा खतनी करवाकर निकलता।''**[6]

अतः स्पष्ट है कि कबीर इंसान–इंसान के भेद को नहीं स्वीकारते। हम सभी एक ही हाड़–मास से बने तथा पंचतत्व से निर्मित है। यदि ईश्वर को मनुष्य–मनुष्य में भेद करना होता तो वह खुद मनुष्य को धार्मिक चिन्ह के साथ उत्पन्न करता। कबीर की नजर में धर्म मानवता धारण करने में है जहाँ सभी मनुष्य समान है। वह ईश्वर को मानते थे किन्तु मजहब को नहीं, वह ऊँच–नीच, ब्राह्मण–शूद्र इत्यादि जाति उपजाति को न स्वीकार कर सभी मनुष्य को एक मानव जाति का मानते थे। यही कारण है कि कबीर धर्म, जाति, मजहब रूपी भेदकता को समाज का सबसे बड़ा वैषम्य मानते थे नाटक में कबीर ने इस वैषम्य की जड़ से हिलाकर रख दिया, किन्तु उसकी जड़ें आज भी समाप्त न हो सकी।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नाटक में वर्णित मध्यकालीन स्थितियाँ वर्तमान समसामयिक सन्दर्भों में आज भी जीवित हैं। धर्म, जाति, वर्ग में विभाजित समाज का विखण्डित रूप, धर्मों का साम्प्रदायिक स्वरूप, धर्म तथा सत्ता के नाम पर निम्न वर्गों का शोषण इत्यादि के बीच निर्भीक सत्यान्वेषी तथा विद्रोही कबीर का प्रगतिशील चिन्तन वर्तमान में अपनी प्रासंगिकता उपस्थित करता है।

'कबिरा खड़ा बाजार में' नाटक ऐतिहासिक संरचना के कलेवर को समेटते हुए समसामयिक परिवेश तथा परिस्थितिगत युगयथार्थ को प्रतिध्वनित करता है। कबीर के सामाजिक संघर्ष और कवित्तों पर आधारित तीन अंकों, आठ दृश्यों, लगभग तीस पात्रों तथा रंगमंच की कसौटी पर खरा उतरने वाला एक सशक्त नाटक है। कबीर के विलक्षण संघर्षरत चरित्र तथा मध्ययुगीन भारतीय परिवेश का ऐसा वास्तविक एवं यथार्थ विन्यास यह नाटक प्रस्तुत करता है जिसकी समस्याएँ और संवेदनाएँ आधुनिक संदर्भ से भी उतनी ही जुड़ती है जितनी कि मध्य युग से यथा–''कबिरा खड़ा बाजार में मध्ययुगीन परिवेश पर आधारित अतीताश्रित नाटक है, जिसकी समस्याएँ, सन्दर्भ और संवेदनाएँ आधुनिक है।''[7]

नाटक की भाषा एवं संवादों में चरित्रों के अनुरूप भावों का सार्थक प्रयोग है। नाटक के स्वरूप में गीत–संगीत की भी निर्णायक भूमिका है। शिल्प और संरचना के धरातल पर यथार्थवादी शैली में लिखित इस नाटक का मूल प्रतिपाद्य विद्रोही कवि कबीर और उनके मध्ययुगीन परिवेश एवं परिस्थिति के बहाने आधुनिक जीवन एवं जगत की विषमताओं जैसे–जाति, वर्ग, वर्ण, धर्म, सम्प्रदाय, राजसत्ता तथा धर्मसत्ता रूपी विद्रूपताओं को उद्घाटित करना है।

**सन्दर्भ :**

1. कबिरा खड़ा बाजार में – भीष्म साहनी, भूमिका राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, नई दिल्ली, दसवीं आवृत्ति 2006
2. मेरे साक्षात्कार–भीष्म साहनी, पृ0सं0 29, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2011
3. कबिरा खड़ा बाजार में – भीष्म साहनी, पृ0सं0 61, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, नई दिल्ली, दसवीं आवृत्ति 2006
4. कबिरा खड़ा बाजार में – भीष्म साहनी, पृ0सं0 63–64, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, नई दिल्ली, दसवीं आवृत्ति 2006
5. कबिरा खड़ा बाजार में – भीष्म साहनी, पृ0सं0 81, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, नई दिल्ली, दसवीं आवृत्ति 2006
6. कबिरा खड़ा बाजार में – भीष्म साहनी, पृ0सं0 96, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, नई दिल्ली, दसवीं आवृत्ति 2006
7. पल प्रतिपल (जन साहित्य की त्रैमासिकी)–सम्पादक–देश निर्मोही, मार्च–जून 2001, पृ0सं0 340–341, आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पंचकूला हरियाणा।

***

# लोकतान्त्रिक राज्य में नौकरशाही की भूमिका और उनका संवैधानिक संरक्षण–एक अवलोकन

*डॉ. मनीष शंकर तिवारी* *

वर्तमान कल्याणकारी उद्देश्यात्मक राज्य में नौकरशाही की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गयी है। इग्लैंड में जब मंत्रिमंडलीय, व्यवस्था प्रारम्भ हुयी थी तब नौकरशाही उस व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग नहीं समझी जाती थी। और राबर्ट पी. जैसे प्रधानमंत्री एवं लार्ड सेलिसबरी जैसे विदेशमंत्री स्वयं ही अपने कार्यों से संबद्ध निर्णय लेकर उनकी लिखा–पढ़ी किया करते थे।[1]

लारेंसलावेल ने अपनी पुस्तक **'गर्वमेंट ऑफ इग्लैंड'**[2] में ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था में नौकरशाही का महत्वपूर्ण भूमिका की ओर संकेत किया था, और आज इंग्लैंड तथा उसके द्वारा अपनायी गयी शासन पद्धति वाले देशों में नौकरशाही का महत्व अनुदिन बढ़ता जा रहा है तथा सही अर्थों में नौकरशाही ही शासक समझी जा रही है।

राज्य के नकारात्मक स्वरूप से सकारात्मक स्वरूप में परिवर्तन ने मंत्रियों को बाध्य कर दिया है, कि वे महत्वपूर्ण नीति गतप्रश्नों एवं कार्यों को अपने अधिकारियों पर छोड़ दें और वे संसदीय प्रश्नोत्तरत के ही अपने को सीमित रखें। ज्यों–ज्यों प्रजातांत्रिक व्यवस्था में इस सेवा का महत्व बढ़ता गया, त्यों–त्यों समाज के योग्य एवं कुशल व्यक्ति इस की ओर आकृष्ट होते गये। फलतः सक्षम एवं कुशल व्यक्तियों की उपस्थिति के कारण इस सेवा की गुणवत्ता मे पर्याप्त वृद्धि हुई।

इन सक्षम व्यक्तियों के आचरण एवं व्यवहार ने समस्त संसार के सामने एक आदर्श रखा। वेईमानदार थे तथा अपने समय की सरकारों की पूर्णनिष्ठा एवं लगन के साथ सेवा की। उस समय वेसत्ता के भूखे नहीं थे। हाँ यह अवश्य है कि उनकी क्षमता एवं सेवा की भावना ने उन्हें सत्ता का प्रमुख अंग बना दिया, और उसका उन्होंने लाभ ले लिया। राज्य के उद्देश्यों में परिवर्तन के कारण जोनई समस्यायें उत्पन्न हुई, नागरिक प्रशासन जिस संकट की घड़ी में आया उसका सफलता पूर्वक सामना कर नौकरशाही ने यह दिखा दिया कि वह परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढालने में सक्षम है। इसी कारण नौकरशाही का महत्व बढ़ा भी है। क्यों कि नई व्यवस्थाओं की आवश्यकतायें नयेय समाधानों की खोज में ही रहती हैं।

प्रो. लास्की ने नौकरशाही की विशिष्टता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि नौकरशाही सरकारी कार्यक्रमों को एवं सरकारी संचालन को निरंतर बनाये रखती हैं। यह सरकारी कार्यक्रमों में सत्तासी नराजनीतिकदल की नीतियों को आत्मसात् करके उनका बिना पक्षपात के कार्यान्वयन करती है। इस प्रकार यह राजनीति कमशीन में तेल डालकर उसको संचालित बनाये रखती हैं। इसकी शक्ति इस के प्रभाव में है, अधिकार में नहीं है। यह नीति निर्धारण के लिए उन आवश्यक सामग्रियों को एकत्र करती है जिसके आधार पर मंत्री लोगनीति–निर्धारण का कार्य करते हैं।[3]

मंत्रियों को राय देना, चेतावनी देना, संस्मरण पत्र एवं भाषण लिखना, सरकारी नीतियों को स्पष्ट करना, नीतियों के कार्यान्वयन में आने वाली कठिनाईयों को बताना, और प्रमुख रूप से नीतियों के अनुसार सरकारों के कार्यों को सुनिश्चित करना बताया है।[4]

अपनी लम्बी स्वच्छ परम्परा एवं प्रशासनिक अनुभव के कारण प्रजातांत्रिक देशों में राजनीतिज्ञों तथा नौकरशाही के सदस्यों में से स्पष्टतः अन्तर दिखायी पड़ता है। राजनीतिक दृष्टिकोण से भले ही वे एक दूसरे से भिन्न हों परन्तु यह भिन्नता राजनीतिज्ञों द्वारा निर्धारित नीति एवं नौकरशाही द्वारा उसके कार्यान्वयन के बीच कोई बाधा नहीं डाली।

मन्त्रिमंडलीय उत्तरदायित्व, विपक्ष की सशक्त भूमिका तथा नौकरशाही की लंबी परम्परा इन कार्यों को सुगम बना देती है। संसदीय प्रजातंत्र में मंत्रियों एवं उनके विभागों के कार्य सदैव संसदीय

* एसोसियेट प्रोफेसर, विधि विभाग, आगरा कालेज, आगरा

नियंत्रण के विषय होते हैं, फलतः दोनों की सतर्कता, दोनों में समन्वय स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

संसदीय नियंत्रण के कारण ही प्रश्नों के उत्तर नौकरशाही द्वारा ठीक–ठाक तैयार किये जाते हैं, और वास्तविकता से अलग कुछ नहीं बताया जाता। इसी के कारण नौकरशाही में निरंतर अनुशासन की भावना बनी रहती हैं, मंत्रियों के लिए वे जो भी उत्तर तैयार करते हैं, उसका औचित्य वे संसद में कैसे सिद्ध करेंगे, इसका भय उन्हें सदैव सतर्क एवं उत्तरदायी बनाये रखता है।

भारत सहित अनेक देशों में अनेक अवसरों पर नौकरशाही के सदस्य राजनीतिक विवादों के शिकार हुए हैं। परन्तु राजनीतिक दृष्टि से उनकी तटस्थता नौकरशाही का नियम है और ऐसी कतिपय घटनायें उसका अपवाद है। मनुष्य होने के नाते नौकरशाही के सदस्य भी इन मानवीय दुर्बलताओं के शिकार हो जाते है। नौकरशाही के सामने मुख्य रूप से दो कठिनाईयाँ आती हैं।

प्रथमतः वे अधिक नियमबद्ध एवं परम्परावादी होते हैं, उनके निर्णय फाइलों पर आधारित होते हैं। त्वरित निर्णय करने में वे हिचकते हैं फलतः नीतियों के कार्यान्वयन में वे यही उचित समझते है कि किसी नई व्यवस्था को अपनाने के बजाय वेपुरानी व्यवस्था को ही वर्तमान में समायोजित करने का प्रयास करते रहे तथा करते है। वे वर्तमान एवं भविष्य की अपेक्षा अतीत की ओर अधिक उन्मुख होते हैं। फलतः लोककल्याणकारी कार्यों के प्रति समर्पित सरकार अपनी जनता को उतना लाभ नहीं दे पाती जितनी कि प्रत्याशा उससे रहती है।

नौकरशाही के इसी दृष्टिकोण के कारण इसका अधिकार बढ़ता गया, परन्तु उत्तरदायित्व की भावना में कमी आती गयी, भारतीय परिवेश में प्रधानमंत्री नेहरू की उपस्थिति, स्वतंत्रता संग्राम के महत्वपूर्ण सैनानियों के प्रभाव तथा अंग्रेजो द्वारा छोड़ी गयी सुव्यवस्थित नौकरशाही के ढाँचे के कारण, नौकरशाही तानाशाह नही हो पायी, परन्तु 1956 की नयी औद्योगिक नीति ने नौकरशाही की भूमिका को नीतियों के कार्यान्वयन के लिए वृहद् स्तर पर प्रशासनिक राज्य की स्थापना की गयी और नौकरशाही को नियंत्रण का पूरा अधिकार दे दिया गया। भूतपूर्व केबिनेट सचिव श्री बी0जी0 देशमुख के अनुसार–राजनीतिज्ञों के साथ मिलकर नौकरशाही ने यह भूमिका भी संभाल ली कि जनता के लिए क्या हित कर है, क्या नैतिक है और से क्या करना चाहिए? इस तरह राजनीतिज्ञों के साथ मिलकर नौकरशाही ने अपने लिए अत्यधिक शक्ति और अधिकार प्राप्त कर लिया।[5]

नौकरशाही के बढ़ते हुये अधिकार ने नौकरशाही के भीतर अहम् एवं मनमानेपन की भावना को भर दिया। वर्ग विशेष के होने के कारण जनता की कठिनाइयों से भी वे उदासीन होते गये। उन्होंने नियमों एवं कानूनों की उपेक्षा करनी शुरू की, उनकी महत्वाकांक्षा ही उनके लिए कानून थी।

प्रो. लास्की की आलोचना के मूल में उनका यह सिद्धान्त कार्य करता है कि न्यायाधीशो ंको प्रशासकीय प्रक्रिया की मालिक नहीं बनाना चाहिए। संसद ने अपने नागरिकों को बेहतर जीवन बनाने का जो अवसर प्रदान किया है, उसे विधि के शासन के नाम पर न्यायपालिका को ध्वस्त करने का अवसर नहीं देना चाहिए।

संविधान का अनुच्छेद 309 संघ तथा राज्यों के प्रशासन से संबंधित मामलों के लिए नियुक्त किये गये लोक–सेवकों की भर्ती, तथा उनकी सेवा की शर्तों से संबंधित है। इस पदावली के अर्थ बोध में सेवा–नियोजन, उसकी निरन्तर तापद मुक्ति, सेवा–निवृत्ति आदि सभी सम्मिलित है, परन्तु इनका विस्ताार–क्षेत्र इतना अधिक नहीं है, कि उनके द्वारा अनुच्छेद 311 में अभिव्यक्त संविधानिक संरक्षणों का अतिक्रमण किया जायें। भर्ती तथा सेवा की शर्तों का विनियमन करते समय इस प्रकार संविधानिक संरक्षणों का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता।[6] इसी प्रकार यदि किसी अवैध नियुक्ति को वैध नियुक्ति उद्घोषित करने के उद्देश्य से किसी विधि का निर्माण किया जाता है, तो वह विधि अनुच्छेद 309 की परिधि में निर्मित विधि नहीं मानी जायेगी।[7] इसी प्रकार यदि किसी नियुक्ति को विनियमित करने वाली विधि में यह उद्घोषित किया जाता है, कि वह उस नियुक्ति का विनियमन कर रही है, परन्तु वास्तव में उसका विनियमन नहीं करती, तो वह विधि भी अनुच्छेद 309 के क्षेत्र में नही ंआती।[8] अनिवार्य सेवा–निवृत्ति तथा सेवा–निवृत्ति की वय में वृद्धि[9] सेवा की शर्तों के अन्तर्गत आते हैं। सरकार 'सेवा

की शर्तों' में एक तरफा परिवर्तन करने के लिए अधिकृत हैं, क्योंकि सरकारी कर्मचारियों व सरकार के बीच का संबंध संविदाजन्य संबंध नहीं है। जब कोई व्यक्ति सरकारी कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया जाता है, तो वह उस नियुक्ति के फलस्वरूप एक हैसियत प्राप्त कर लेता है। उसके अधिकार व अधिबंधन दोनों पक्षों की परस्पर सहमति से निर्धारित न होकर विधि के प्रावधानों के अनुसार निर्धारित होती है।[10] सरकारी कर्मचारियों के कर्तव्यों का निर्धारण विधि द्वारा होता है, उनके कर्तव्यों के अनुपालन में सामाजिक हित निहित रहता है।[11] नियमों की अविद्यमानता की स्थिति में सरकारी कर्मचारियों का त्यागपत्र उस तिथि से प्रभावी होता है, जब सरकार उसका त्यागपत्र स्वीकार कर लेती है।[12] परन्तु सरकार किसी प्रशासकीय अनुदेश के माध्यम से सरकारी कर्मचारियों की सेवा की शर्तों में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं कर सकती, कि उनसे सरकारी कर्मचारियों का अहित हो।[13]

संविधान के अनुच्छेद 309 के अन्तर्गत संसद तथा राज्य विधान मण्डलों को सरकारी कर्मचारियों की भर्ती तथा उनकी सेवा की शर्तों के विनियमन के लिए प्राप्त विधि निर्मात्री शक्ति संविधान के प्रावधानों के अधीन है। इसी कारण राष्ट्रपति तथा राज्यपालों की भी शक्ति संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत है। इसका तात्पर्य यह है कि मूलभूत अधिकारों का अतिक्रमण करते हुये सेवा की शर्तों का विनियमन नहीं किया जा सकता।[14] परन्तु सरकारी कर्मचारियों का मूलभूत अधिकार कार्य कुशलता, ईमानदारी तथा निष्पक्षता के आधार पर प्रतिबंधित किया जा सकता है।[15]

इस तरह कार्यपालिका को मनमानी न करने देने के लिए न्यायालयों ने यह निर्धारित किया है कि यदि भर्ती के नियमों में भर्ती की प्रक्रिया वर्णित है और राज्य के लोक सेवा आयोग को राज्य में भर्ती करने का दायित्व सौंपा गया है और सरकार एक कार्यपालक आदेश द्वारा लोक सेवा आयोग से यह कार्य है छीन कर किसी दूसरे अधिकरण को सौंपती है और वह अधिकरण भर्ती की दूसरी प्रक्रिया अपनाती है तो सरकार का यह कार्य अवैध है।[16]

यदि अनुच्छेद 309 के अन्तर्गत विधायीनियमों द्वारा वंशानुगत प्रणाली से गाँव के अधिकारियों को मिले हुए वेतन को नियमित कर दिया जाता है और वेतन की दरें निश्चित कर दी जाती है तो राज्यपाल द्वारा नये नियमों के अन्तर्गत निश्चित वेतन की दरों के विपरीत पुराने दर पर वेतन देना नियमों का उल्लघंन है।[17]

यदि सरकारी कर्मचारियों को नियमों के अन्तर्गत कुछ अधिकार प्राप्त है तो उन्हें पूर्व तिथि से उनसे नहीं छीना जा सकता। साथ ही कार्यपालक आदेश द्वारा पूर्व तिथि से सेवा के नियमों में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता।[18] न्यायालय ने यह स्पष्ट किया है कि जब कभी अनुच्छेद 309 के अन्तर्गत बने साधारण एवं विशेष नियमों में असमबद्धता दिखाई पड़े तो सर्वोपरि खण्ड के प्रयोग के द्वारा एक दूसरे को रद्द करने की व्याख्या के बजाय समन्वयात्मक व्याख्या की विधि अपनानी चाहिए।

इसी तरह उच्चतमन्यायालय ने आर0 तिमलमनि बनाम भारत संघ में यह स्पष्ट किया है कि अनुच्छेद 309 के अन्तर्गत अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के नियुक्ति एवं पदोन्नति के लिए बने 1955 की नियुक्ति एवं प्रोन्नति अधिनियम की, इस प्रकार व्याख्या की जानी चाहिए कि अभ्यर्थी को अधिक से अधिक लाभ हो सकें, क्योंकि संकीर्ण व्याख्याओं से न्याय की प्राप्ति नहीं होती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नौकरशाही की लोकतान्त्रिक राज्य में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि विधायिका के द्वारा शासन चलाने के लिये तथा जनसामान्य को लाभ पहुंचाने के लिये जो भी निर्णय लेने होते हैं उसकी पृष्ठभूमि इन्हीं के द्वारा तैयार की जाती है। हांलांकि अपनी इन्हीं कार्यकुशलता की वजह से इनके अन्दर अहम् की भावना भी विकसित होती है। जिसकी वजह से इनके द्वारा ऐसे कार्य किये जाते हैं जो इनके लिये लाभकारी तो है किन्तु शासन व्यवस्था तथा जनसामान्य के लिये लाभकारी नहीं है। कानून के अन्तर्गत इनको संरक्षण भी प्राप्त हैं जिनका जिक्र ऊपर किया गया है किन्तु इनको जो सरंक्षण प्राप्त है वो उनकी नियुक्ति की सेवा शर्तो के अधीन है। जब भी अपने किसी कार्य से वे कुछ ऐसा करते हैं जिससे उनकी सेवा शर्ते भंग होती हैं तो उनको प्राप्त संरक्षण भी खत्म हो जाता है।

**सन्दर्भ :**

[1]. हेराल्ड जेलास्की, पार्लियामेंट गवर्नमेंट इन इंग्लैण्ड ए कमेन्ट्री, लंदनपेज 309, सातवां इम्प्रेश, 1963
[2]. द गवर्नमेंट ऑफ इंग्लैंड–वाल्युम 1 1098
[3]. हेराल्ड जेलास्की, पार्लियामेंट गवर्नमेंट इन इंग्लैण्ड ए कमेन्ट्री, लंदनपेज 313, सातवां इम्प्रेश, 1963
[4]. केबिनेट गवर्नमेंट, 1963 पेज 126
[5]. ब्यूरोकेसी एट वाटरशेड फार मिडबुल चेंज ऑफ एडजस्टमेंट, टाइम्स ऑफ इंडिया, 10 अप्रैल 1992 पेज 8
[6]. मोतीलाल बनाम एन.ई.एफ. रेलवे, ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 600
[7]. स्टेट ऑफ मसूरी बनाम पद्मनाभाचार्य ए.आई.आर.1966 एस.सी. 602
[8]. आर.एन. नजुड़प्पा बनाम टी. थिमियाह (1972) 2 एस.सी.आर. 799
[9]. श्यामलाल बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 369
[10]. विष्णुनारायण बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 1567
[11]. रोशनलाल बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 1889
[12]. राजकुमार बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, ए.आई.आर. 1969 एस.सी. 10
[13]. एन.सी. सिंघल बनाम डी.जी. आनन्दप्रेस , ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 628
[14]. स्टेटऑफपंजाब बनाम जोगेन्द्र सिंह ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 913
[15]. घोष बनाम जोसेफ ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 812
[16]. (क) गोविन्द–डप्पानियप्पा बनाम आई.जी. आफ रजिस्ट्रेशन, 1964 (1)मैसूर एल.जे. 478
[17]. सुब्बाराव बनाम मैसूरराज्य 1970 (2) मैसूर एल.जे. 286
[18]. (क) जी. नायडू बनाम मैसूरराज्य 1970 (2) मैसूर एल.जे. 296
(ख) एन.सी. सिंघल बनाम डायरेक्टर जनरल ऑफ आर्मड् फोर्सेज, ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 628

***

# संपोषणीय विकास का मूल तत्व एवं पर्यावरण

*डॉ. उमेश सिंह* *

वर्तमान युग में विकास ने जहाँ एक ओर सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तनों को जन्म दिया और मानव जाति को जीने के तरीकों का ज्ञान कराया, वहीं दूसरी ओर भौतिकवादी प्रवृत्ति के कारण विकास की गति दिशाहीन होने लगी। इससे मानव जीवन का समस्त अंग और उसके समस्त क्षेत्र– सामाजिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक अथवा पर्यावरणीय, आर्थिक, राजनीतिक आदि प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके और विभिन्न समस्याएँ पैदा हुईं। पर्यावरणीय समस्या के रूप में– ग्रीन हाउस इफेक्ट, ओजोनपरत में बढ़ता छिद्र, तेजाबी वर्षा, जीव–जन्तुओं के प्रति बढ़ती हुई बाजारीकरण की प्रवृत्ति व उनका विलुप्त होना, नवीनीकरण और अनवीनीकरण संसाधनों का अन्धाधुन्ध उपयोग, जंगलों का सफाया इत्यादि। आर्थिक–सामाजिक समस्या के रूप में– गरीबी, भुखमरी, अकाल, कुपोषण आदि तथा नैतिक अथवा मूल्यपरक समस्या के रूप में– मानव के सामूहिक संवेदना में ह्रास, आध्यात्मिक प्रवृत्ति से विलगाव, नैतिक पतन, चारित्रिक ह्रास इत्यादि। इन सभी समस्याओं ने समाज को इतना विकृत कर दिया है कि समाज के हाशिये पर खड़ा कमजोर व्यक्ति अत्यधिक प्रभावित हो रहा है। विशेषतौर पर महिलाएँ एवं पद्दलित वर्ग।

विकास मानव को अपनी क्षमताओं की पहचान या उनमें वृद्धि कराने वाली और बेहतर जीवनशैली प्राप्त करने के लिये सक्षम बनाने वाली अनवरत प्रक्रिया है। प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से मानव जीवन का भरण पोषण होता आया है लेकिन प्रकृति की पुनरुत्पादन क्षमता सीमित है। पिछली दो शताब्दियों में मानव जनसंख्या के फैलाव, प्राकृतिक संसाधनों की प्रति व्यक्ति मांग में वृद्धि और प्राकृतिक पर्यावरण में मानव आविष्कृत नए रसायनों (प्लास्टिक और कीटनाशक रसायन) के उपयोग के परिणामस्वरूप वैश्विक पर्यावरण और मानव जाति पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। संपोषणीय विकास की धारणा 1980 के दशक में उस समय उभरकर आई जब कुछ क्षेत्रों में बेहतरी महसूस की गई (उदाहरण के लिये वातानुकूलित प्रौद्योगिकी, हरित क्रान्ति की तकनीकों से खाद्यान उत्पादन में तीव्र वृद्धि और तीव्र आर्थिक वृद्धि) प्राप्त की गई लेकिन इसके बदले जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता की हानि, जल संसाधनों एवं मृदा अवमल्यन जैसी नई समस्याएँ उत्पन्न हुई। साथ ही पहले से उपस्थित समस्याओं जैसे अपरिहार्य विकास, मानव के लिये आवश्यक उत्पादनों में प्राकृतिक अवरोध और भूकम्प ने और अधिक भयानक स्वरूप धारण कर लिया।

पर्यावरणीय विज्ञान में प्रगति ने इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि मानवीय गड़बड़ियों से उभर पाने की प्राकृतिक पर्यावरण की क्षमता सीमित है। सामाजिक विज्ञान ने न्याय संगत आर्थिक विकास के महत्त्व की ओर ध्यान आकर्षित किया। ज्ञान में प्रगति ने विकास को अंतर्विषयक दृष्टिकोण के मार्ग पर आगे बढ़ाया। पर्यावरण, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं और सम्भावनाओं को स्थानिक (स्थानीय से वैश्विक) और कालिक (अल्पकालिन से दीर्घकालीन) पैमाने पर एक साथ देखना संपोषणीय विकास की आधारशिला बना। विभिन्न रूपों में परिभाषित, पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग ने संपोषणीय विकास की व्याख्या एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में की है जो भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकता पूर्ति की क्षमताओं से कोई समझौता किए बिना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करे। वर्ष 1992 में रियो में आयोजित संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण और विकास सम्मेलन (पृथ्वी सम्मेलन) में बरूंडटलैंड आयोग को व्यापक रूप से स्वीकार कर इसकी सराहना की गई।

वर्तमान समय में बढ़ते प्रदूषण और पर्यावरण का ह्रास विकास का पर्याय बन गया है। वैसे शहर जो 10 वर्ष पूर्व साफ और स्वच्छ हुआ करते थे, आज विकास के कारण प्रदूषित हो गए हैं। छोटे शहर तो दूर गाँव की छोटी–छोटी नदियाँ भी प्रदूषित हो चुकी है। बढ़ती जनसंख्या के कारण विकास

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, आर.आर.पी.जी. कॉलेज, अमेठी, उ.प्र.

की इस प्रक्रिया को रोक नहीं सकते, लेकिन ऐसे विकास से उत्पन्न समस्याएँ अंततः विकास का अंत करती नजर आती है। संपोषणीय विकास इन्हीं समस्याओं से निजात पाने के लिए विकास की संकल्पना है।

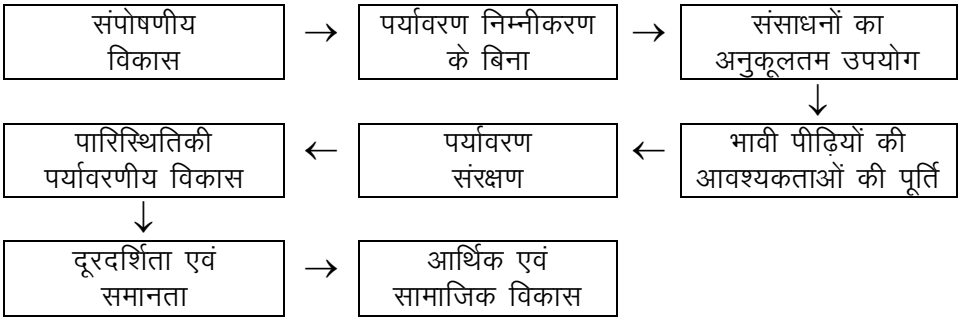


संपोषणीय विकास मानव विकास की वह प्रक्रिया है जिसमें पर्यावरण का निम्नीकरण किए बिना प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया जाता है, साथ ही भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इनके उपयोग पर बल दिया जाता है। अर्थात संपोषणीय विकास सुनियोजित सिद्धान्त है, जो कि मानव विकास के लक्ष्य को प्राप्त करता है, साथ ही प्राकृतिक संसाधन और पारिस्थितिक तंत्र प्रदान करने की क्षमता प्रकृति में सुरक्षित रहती है। इस विकास प्रक्रिया से पर्यावरण संरक्षण, पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय विकास के साथ आर्थिक एवं सामाजिक विकास का भी अनुसरण किया जाता है। यह एक दूरदर्शी विकास योजना है।[1]

जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र के रूपरेखा समझौते (यूएनएफसीसीसी) और जैव विविधता समझौते (सीबीडी) को औपचारिक रूप देने, जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता की क्षति से बढ़ते अपोषणीयता के खतरों से मानवता की रक्षा की वैश्विक रणनीति बनाई गई और नए वैश्विक पर्यावरण विकास निधिकरण प्रक्रियाएँ जैसे वैश्विक पर्यावरणीय सुविधा (जीईएफ) की स्थापना की गई। चूँकि जलवायु परिवर्तन जैवभौतिक पर्यावरण (वातावरण संरचना और भूमि उपयोग) में परिवर्तन, भूमि की उर्वरकता खत्म होना और जैविक हमले और आर्थिक–सामाजिक–राजनीतिक पर्यावरण (जैसे वैश्वीकरण, मुक्त व्यापार, संस्कृति ग्राह्यता, नव बौद्धिक सम्पत्ति साम्राज्यों और द्विपक्षीय बहुपक्षीय सहयोग, गठबंधन) में अन्य परिवर्तनों के साथ गड़बड़ियाँ करता है। संपोषणीय विकास दृष्टिकोण बहु–समस्याओं के एक साथ समाधान के लिये इस क्षेत्र के महत्त्व को समझता है। वर्ष 2002 में संपोषणीय विकास पर संयुक्त राष्ट्र के जोहनसबर्ग सम्मेलन और संपोषणीय विकास के मूल, सामाजिक स्वीकार्य विकास, आर्थिक रूप से जीवनक्षम और पर्यावरणीय युक्तियुक्त मानव संसाधनों एवं आर्थिक संसाधनों में बहुत बड़े परिवर्तन से संपोषणीय विकास धारणा की वैश्विक स्वीकार्यता और अधिक सुदढ़ हुई हैं।

वर्तमान सामाजिक पारिस्थितिकी अथवा पर्यावरणीय संकट से छुटकारा पाने के लिए राजनीतिज्ञों, मानवषास्त्रियों व समाजद्रष्टाओं ने विकास की सही दिशा पर चिन्तन प्रारम्भ किया, जिसे संपोष्य विकास के नाम से जाना जाता है। इसे जीवनदायी विकास, टिकाऊ विकास, पोषणकारी विकास, जीवन धारण करने योग्य विकास आदि नामों से अभिहित किया जाता है। विचारकों का मानना है कि ऐसा विकास पारिस्थितिकी को दृष्टि में रखकर किया जा सकता है। अर्थात् **ऐसा विकास जो मानव जीवन की उत्तमता को पर्यावरण को बिना हानि पहुचाए बनाए रखे**। यह विकास पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करके होगा या ऐसे तकनीकों का विकास करके होगा, जिनसे पर्यावरण की क्षति को रोका जा सके। इसमें पारिस्थितिकी के साथ–साथ मानव जीवन के विभिन्न आयामों– सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं नैतिक आदि को ध्यान में रखना होगा।

संपोष्य विकास की अवधारणा पर विचार व्यक्त करने के पहले आवश्यक है कि 'वृद्धि' और विकास के बीच अन्तर स्पष्ट कर लिया जाय। अधिकांश रूप में लोग 'वृद्धि' को ही विकास की संज्ञा प्रदान करते हैं, परन्तु बात ऐसी नहीं है। आर्थिक रूप से समृद्ध होना, सुख के साधन जुटाना, उद्योगों का विस्तार करना आदि आर्थिक समृद्धि का परिचायक है, परन्तु इसे 'विकास' नहीं कह सकते। अतः आर्थिक समृद्धि या भौतिक सुख–सुविधाओं की बहुलता को वृद्धि तो कह सकते हैं, परन्तु 'विकास' नहीं कह सकते। विकास तो पर्यावरण से जुड़ा हुआ है। अर्थात् विकास और पर्यावरण में सामंजस्य रहता है। विकास तभी कहा जाएगा जब हम पर्यावरण को बिना क्षति पहुँचाए कोई निर्माण या रचना करें। विनाश, विकास नहीं है। जब कोई निर्माण कार्य हो और उससे प्रकृति में बिगाड़ उत्पन्न हो तो वह विकास नहीं विनाश है। प्रो. एस.पी. वर्मा ने विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुए 'आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त' में लिखा है कि ''विकास का अर्थ 'वस्तुओं' का विकास नहीं, 'मनुष्यों का विकास है'– ऐसा विकास, जिसमें मानव मात्र की आधारभूत आवश्यकताएँ, भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा आदि पूरी की जा सके। विकास की कोई भी ऐसी प्रक्रिया को जो समाज को मानव की इन आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में नहीं ले जाती, विकास का नाम नहीं दिया जा सकता। वृद्धि की ऐसी प्रक्रिया को जो केवल अमीर, अल्पसंख्यक वर्ग को ही लाभान्वित करती है और उन देशों के भीतर, असमानताओं का निर्वाह करती है अथवा उन्हें बढ़ाती है, विकास का नाम नहीं दिया जा सकता।'' ''यह कहना भी न्यायसंगत होगा कि विकास की व्याख्या में काम करने का अधिकार भी सम्मिलित किया जाना चाहिए, जिसका अर्थ केवल यही नहीं है कि प्रत्येक को काम दिया जाय परन्तु यह भी है कि वह काम ऐसा हो जिसके द्वारा वह अपने व्यक्तित्व का सहज रूप में विकास कर सके। साथ ही उसका यह अधिकार भी होना चाहिए कि ऐसी उत्पादन–पद्धतियों को, जो मनुष्यों का उपयोग उपकरण के रूप में करती हैं, समाज से यह छूट न मिल सके कि वे समाज और परिवार से उसके सम्बन्धों को तोड़ दें और वह अपने में अलगाव की भावना विकसित करने के लिए विवश हो। जो समाज आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने के नाम पर इन 'अन्य आवश्यकताओं' की, जो उतनी ही अधिक महत्वपूर्ण हैं, उपेक्षा करता है, वह विकास की दिशा में नहीं, पतन की ओर जाने वाला समाज है।'' आज तो अधिक विकसित देश ही पर्यावरण पर भारी दबाव डाल रहे हैं, और न केवल अपने लिए परन्तु दूसरों के लिए भी नयी–नयी समस्याएँ खड़ी कर रहे हैं। पर्यावरण को क्षति पहुँचाने में अति–विकसित देशों को ही उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए, क्योंकि अतिविकसित देशों में (जिन्हें समृद्ध कहा जाता है) लापरवाही के साथ प्राकृतिक साधनों को समाप्त करने की प्रवृत्ति भी दिखायी देती है– यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जो विभिन्न देशों में असमान सम्बन्धों के कारण दृढ़ होती जा रही है। देश के भीतर की क्रय–विक्रय की प्रक्रियाओं के द्वारा निर्देशित और शक्तिशाली अभिजनों के द्वारा उनके अपने हित में कार्यान्वित की गयी आर्थिक विकास की एकांगी खोज का भी विकासशील देशों पर विनाशात्मक प्रभाव पड़ता है।[2]

अब इतना तो स्पष्ट हो गया है कि 'वृद्धि' वह है, जो 'विकास' नहीं है। विकास अर्थात् सन्तुलित रूप से विकसित होना 'वृद्धि' की अपेक्षा कठिन है। 'वृद्धि' अपेक्षाकृत सरल है। अब तक वृद्धि को हम विकास समझते आए हैं, यह उचित नहीं है। विकास में प्रकृति का सन्तुलन बना रहना अनिवार्य है। यही वास्तविक विकास होगा। 'वृद्धि' जिसमें पर्यावरण–संरक्षण पर ध्यान नहीं दिया गया है, विकास नहीं है। अब जो विकास की अवधारणा बनी है, उसमें विकास पर्यावरण के साथ–साथ है। अर्थात् पर्यावरण को बिना क्षति पहुँचाए विकास की अवधारणा को स्वीकार करना होगा। ऐसा विकास पोषणकारी या संपोष्य विकास होगा, और ऐसी स्थिति तभी संभव है, ''जब तृतीय विश्व के देश अपने लिए विकास की एक ऐसी दिशा चुनें जो एक ओर तो उनके इतिहास, संस्कृति और प्रतिभा के, और दूसरी ओर तेजी से बदलते हुए अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरणों के अधिक अनुकूल हो।''[3]

1992 में पर्यावरण व विकास पर 3 जून से 14 जून तक संयुक्त राष्ट्र संघ पर्यावरण सम्मेलन ब्राजील के नगर रियो डी जेनेरो में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में विकास व पर्यावरण में सामंजस्य स्थापित करने व टिकाऊ विकास के मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिए 27 सिद्वान्तों व कार्य

योजना एजेण्डा– 21 की घोषणा की गयी। इस रिपोर्ट में संपोष्य विकास हेतु 'मानव–चिन्ता' को केन्द्र में रखा गया और उन्हें (मानव) प्रकृति के समन्वय के साथ स्वस्थ और उत्पादक जीवन की आवश्यकता है, पर बल दिया गया। इसके साथ ही इस सम्मेलन में इस तथ्य पर भी बल दिया गया कि विकास के पीढ़ी दर पीढ़ी चलने के लिए वातावरण और विकास की आवश्यकताओं में साम्य बना रहे। इस एजेण्डा में सम्पोषी विकास के लिए पर्यावरण में सामं०जस्य, स्वदेशी क्षमता में विस्तार, युद्ध की त्याज्यता, बेहतर भविष्य की माँग आदि को महत्वपूर्ण बताया गया।[4]

माइकेल रेडक्लिफ्ट के अनुसार ''संपोष्य विकास का अर्थ प्राकृतिक पर्यावरण व आर्थिक संवृद्धि के बीच समझौते से कुछ अधिक है।''[5]

मैल्काम एस. आदिदेश्या ने संपोष्य विकास को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''संपोष्य विकास वह विकास है, जो सभी की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। वे आवश्यकताएँ हैं– रोजगार, भोजन, शक्ति, जल, निवास, स्थान (घर) इत्यादि। संपोष्य विकास इन आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक तत्वों की वृद्धि को भी सुनिश्चित करता है, जैसे– कृषि, दस्तकारी, शक्ति और सेवाएँ।''[6]

के.पी. गीथ कृष्णन ने संपोष्य विकास की परिभाषा करते हुए लिखा है कि ''हम अर्थात् वर्तमान पीढ़ी के लोग अपने चारो ओर भूमि, जल और वायु के रूप में पर्यावरण और पारिस्थितिकी की कुछ निश्चित मात्रा विरासत के रूप में पाते हैं, जब हम इसे आने वाली दूसरी पीढ़ी के लिए छोड़े तो जिस स्थिति में हमने इसे विरासत के रूप में प्राप्त किया था, उससे भी अधिक अच्छी अवस्था में छोड़ें। यदि यह न संभव हो तो कम से कम उस स्थिति में तो छोड़े ही जिस स्थिति में इसे प्राप्त किया था। यही इतना संपोष्य विकास का सार तत्व है।''[7]

एस.आर. भट्ट ने संपोष्य विकास को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''सामान्यतया यह (संपोष्य विकास) प्राकृतिक संसाधनों का ऐसा विकास है जो वर्तमान पीढ़ी की तात्कालिक आवश्यकताओं की माँगों की पूर्ति भविष्य में आने वाली पीढ़ियों के अस्तित्व को बिना संकट में डाले पूरा करता है और पर्यावरण व पारिस्थितिकी को सुरक्षित रखता है।[8]

पेजी और पीयर्स ने संपोष्य विकास की परिभाषा में पर्यावरणीय आवश्यकता को मानव जीवन का मूल माना है और इसे विकास के एजेण्डा का मुख्य मुद्दा बताया है।[9]

'संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम' के रिपोर्ट के अनुसार ''संपोष्य विकास वह विकास है जो न केवल आर्थिक समृद्धि का पुनरूत्थान करता है वरन् इसके लाभ का निष्पक्ष और न्यायपूर्ण वितरण भी करता है। यह पर्यावरणीय विखंडन की बजाय उसके पुनरूत्थान पर बल देता है।[10]

इस तरह संपोष्य विकास की विभिन्न परिभाषाओं में भौतिक–प्राकृतिक पर्यावरण के साथ–ही–साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक पर्यावरण की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता मानव–विकास की अवधारणा है। मानव एक संसाधन नहीं है। विकास मानव के लिए है न कि मानव विकास के लिए है। यह साध्य है। विकास का केन्द्र बिन्दु 'मानव' है। मानव का सर्वांगीण विकास करना इसका लक्ष्य है। इस प्रकार संपोष्य विकास का अध्ययन संगठनात्मक, पूर्णव्यवस्था उपागम के रूप में होता है जो विभिन्न आयामों और पहलुओं को समझने और अध्ययन के लिए आवश्यक है।

अतः आवश्यक है कि संपोष्य विकास के स्वरूप के स्पष्टीकरण के लिए उसके समस्त विशेषताओं लक्षणों अथवा सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला जाय।

प्रथम तत्व संपोष्य विकास में प्रकृति–अनुराग, प्रकृति–प्रेम व स्नेह बनाना आवश्यक है।

संपोष्य विकास के दूसरे मौलिक तत्व में व्यक्ति की वर्तमान व भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करना माना जा सकता है।

संपोष्य विकास का तीसरा मूल तत्व है– पर्यावरणीय प्रदूषण कम करना। पर्यावरणीय प्रदूषण को कम करने का सीधा अर्थ हुआ कि हम आर्थिक विकास (समृद्धि) वर्तमान व भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं का ख्याल रखकर ही करें। अर्थात् विकास के लिए भविष्य की पीढ़ी का जीवन तहस नहस न करें। पृथ्वी पर पाए जाने वाले संसाधनों का अतिशयता से, मनमाने ढंग से उपयोग या

प्राकृतिक सम्पत्ति का दोहन (शोषण) अनेक प्रकार से पर्यावरण को प्रदूषित करता है। संसाधनों का अवकर्षण हो रहा है। इस प्रकार प्रदूषण और अवकर्षण से भविष्य का जीवन खतरे में है। अतः आर्थिक वृद्धि या विकास के कारण प्राकृतिक या सांस्कृतिक पर्यावरण का विनाश नहीं होना चाहिए। मानव जीवन का भविष्य संरक्षित रहे, इसके लिए आवश्यक है कि विकास पोषणकारी हो। इस दृष्टि से प्रकृति के संसाधनों का आवश्यकतानुसार उपयोग किया जाय न कि लालचवश। ऐसी स्थिति में पर्यावरणीय प्रदूषण कम होगा और मानव–विकास संपोषी बन सकेगा।

संपोष्य विकास का चौथा मूल तत्व पर्यावरण व विकास के मध्य अन्तर्द्वन्द्व को समाप्त कर दोनों को एक सिक्के के दो पहलू सिद्ध करना है। संपोष्य विकास में पर्यावरण संरक्षण के साथ विकास होता है। अर्थात् स्वस्थ पर्यावरण व स्वस्थ आर्थिक विकास का साथ–साथ होना। पर्यावरण प्रदूषित होगा तो जैविक जगत भी प्रदूषित होता। इस प्रदूषण से असंतुलन पैदा होता है। अतः संपोषी विकास संरक्षणीय विकास को महत्व देता है।

संपोष्य विकास की पाँचवी विशेषता यह है कि इसमें आर्थिक विकास के साथ–साथ प्राकृतिक पूँजी का संरक्षण होता है। संपोष्य विकास में, प्रकृति का संरक्षण अनिवार्य तत्व है। आर्थिक विकास सफल नहीं हो सकता, जब तक कि प्रकृति के संसाधनों का समुचित उपयोग नहीं होता।

सुन्दरलाल बहुगुणा के अनुसार पाश्चात्य अवधारणा में ''प्रकृति को व्यापार की एक वस्तु माना गया है। उसका मूल्य बाजार निर्धारित करता है और समाज केवल मनुष्यों का है, इस चिन्तन के कारण प्रकृति की ओर देखने और व्यवहार करने की दृष्टि ही बदल गयी। प्रकृति से अपनी आवश्यकता सातत्य के आधार पर पूरी करने के बजाय उसका अधिक से अधिक शोषण करता है। अधिक भोग ही विकास का मापदण्ड है। वे पुरानी संस्कृतियाँ जो प्रकृति के साथ समरस होकर जीने का आधार थीं, मिट गइ।''[11]

संपोष्य विकास का छठा मूल तत्व आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन के रूप में देखा जा सकता है।

सातवें तत्व के रूप में संपोष्य विकास गरीबों और स्त्रियों के प्रति उत्तरदायी है।

संपोष्य विकास का आठवाँ तत्व विकास के जनतन्त्रात्मक स्वरूप पर बल देता है।

संपोष्य विकास का नवाँ और महत्वपूर्ण तत्व है विकास का सर्वांगीण रूप का होना। अर्थात् विकास का स्वरूप एकांगी न होकर समग्र होता है।[12]

संपोष्य विकास का दसवाँ मूल तत्व जनसंख्या नियन्त्रण को महत्वपूर्ण मानना है। जनसंख्या की समस्या विश्वव्यापी है। जनसंख्या वृद्धि से पर्यावरण प्रदूषण और गरीबी दोनों ही बढ़ रही है। द्रुतगति से बढ़ती हुई जनसंख्या से मूल्यवान प्राकृतिक संसाधनों जैसे– जल, वायु, शक्ति, जंगल, भूमि, पारिस्थितिकी, स्वास्थ्य, सफाई आदि पर अत्यधिक दबाव पड़ रहा है। जनसंख्या वृद्धि से वस्तुओं और सेवाओं की मांग बढ़ती है, जिससे पर्यावरण क्षति में वृद्धि होती है। अधिक लोगों द्वारा अधिक सामग्री का उपयोग करने से अधिक गन्दगी और कूड़ाकरकट को बढ़ावा मिलता है, इसके फलस्वरूप स्थानीय स्वास्थ्य की परिस्थितियों पर दबाव बढ़ता है, बीमारियाँ बढ़ती हैं, पारिस्थितिकी में विषाक्तता आती है। अतः जनसंख्या नियन्त्रण के बिना संपोष्य विकास की कल्पना असम्भव है।

संपोष्य विकास का ग्यारहवाँ मूल तत्व है– लघु उद्योगों का ग्रामोभिमुख होना।

संपोष्य विकास का अन्तिम मूल तत्व सामाजिक न्याय की प्रतिस्थापना करना है। सामाजिक न्याय वस्तुतः समाज के हित को मान्यता देता है। संपोष्य विकास में आर्थिक दृष्टि से सामाजिक न्याय समाज में अर्थ के न्याय व निष्पक्षपूर्ण वितरण, पर्यावरणीय दृष्टि से स्वस्थ पर्यावरण, प्रकृति–पूजा, प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकतानुसार उपभोग, पर्यावरण व विकास का सहगामी होना, राजनीतिक दृष्टि से–समानता, स्वतन्त्रता व न्याय में सम्बन्ध, सामाजिक सुरक्षा, अवसर की समानता, मानवाधिकार की रक्षा, दलितोत्थान को महत्व, जनसहभागिता को महत्व, सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि से– मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना पर बल, नारी अस्मिता की रक्षा व उसके अधिकार को सुनिश्चित करना,

अलगावपन की समस्या को दूर करना, आध्यात्मिक पुनर्जागरण, नैतिकता को महत्व देना आदि महत्वपूर्ण माना जाता है।

इस प्रकार संपोष्य विकास के उपर्युक्त तत्वों का अध्ययन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि संपोष्य विकास 'विकास' के सन्दर्भ में एक समग्र चिन्तन है। इसमें जीवन का समस्त पक्ष समाहित है। समग्रता का दर्शन ही इसका आधार है। इसमें 'प्रकृति' विपणन की वस्तु न होकर 'पूजनीय' है। इसके लिए व्यक्ति में अन्तःचेतना अथवा विचार दर्शन की आवश्यकता है, जिससे व्यक्ति प्रकृति के साथ अपने सम्बन्धों को पहचान सके और उसका निर्वहन कर सके।

**सन्दर्भ :**


1. के.जी. सक्सेना, योजना, 2015
2. एस.पी. वर्मा : आ.राज. सिद्धान्त, पृ. 260–62.
3. एस.पी. वर्मा : आ.राज. सिद्धान्त, पृ. 260–62.
4. U.N. Conference on Environment and Development (UNCED) Rio De Jauniro, Mexico, 3-14 June 1992.
5. Michel Redclift, Sustainable Development : Exploring Contradictions, Methuen Co. Ltd., New York, 1987, p. 199.
6. Malcolm S. Adiseshiah (ed.) Sustainable Development : its Content, Scope and Prices; Lancer International, New Delhi, 1989, p. 32.
7. K.P. Geetha Krisnan– "Sustainable Development in Operation" in a Malcolm S. Adiseshiah (ed.) Sustainable development: Its contents scope and prices, New Delhi, Lancer International, 1990, p.7.
8. S.R. Bhatt- "A Model of Sustainable Development : An Indian Perspective" Paper presented on International Conference on Environmental Stewardness and Sustainable Development, New Delhi, 20-21 October 1995, p. 1-2.
9. K. Gopal Iyer, Sustainable Development : Ecological and Socio-Cultural Dimensions, Vikas Publishing House, New Delhi, 1996, p. 4.
10. United Nations Development Program (UNDP) 1994, "Sustainable Human Development: from Concept to Operation, New York, p. 4.
11. सुन्दरलाल बहुगुणा, ''यही हो सकती है विकास की सही दिशा'', नई आजादी, इलाहाबाद, अंक 63, जनवरी 1996, पृ. 4.
12. Fritjof Capra 'The Web of Life' Anchor Books, New York, 1996, p. 6-8.


***